सन्तों
की
बानी
राधास्वामी
सत्संग ब्यास

सन्तों की बानी

महाराज चरन सिंह

राधास्वामी सत्संग ब्यास

प्रकाशक:
जगदीश चन्द्र सेठी, सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग ब्यास
डेरा बाबा जैमल सिंह
पंजाब 143 204

© 1969, 2006 राधास्वामी सत्संग ब्यास
सर्वाधिकार सुरक्षित
पहला संस्करण 1969

तेईसवाँ संस्करण 2006

मुद्रक: अजन्ता ऑफ़सेट एन्ड पैकेजिंग लि., नई दिल्ली

Published by:
Jagdish Chander Sethi, Secretary
Radha Soami Satsang Beas
Dera Baba Jaimal Singh
Punjab 143 204

© 1969, 2006 by Radha Soami Satsang Beas
All rights reserved
First edition 1969

Twenty third edition 2006

13 12 11 10 09 08 07 06 8 7 6 5 4 3 2 1

ISBN 81-8256-705-X

Printed in India by: Ajanta Offset & Packaging Ltd., New Delhi

विषय सूची

शब्द | पृष्ठ

बानी गुरु अंगद देव जी

बानी गुरु अमरदास जी

शब्द | पृष्ठ

बानी गुरु रामदास जी

बानी गुरु अर्जुन देव जी

बानी गुरु तेग़ बहादुर जी

शब्द — पृष्ठ

पुस्तक का तेईसवाँ संस्करण

यह पुस्तक पहले 1969 में छपवायी गयी थी। इस के पहले भाग 'सन्त-मार्ग' में हुजूर महाराज जी ने सन्तमत के सिद्धान्तों पर बहुत सरल तथा सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। दूसरे भाग में हुज़ूर स्वामी जी महाराज, श्री आदि ग्रन्थ, कबीर साहिब, सन्त दादू दयाल के अलावा और बहुत से सन्तों की वाणी शामिल की गयी है। बहुत से सन्तों की वाणी का संकलन होने के कारण, यह पुस्तक बहुत लोकप्रिय हुई है। अब तक इसके बाईस संस्करण छप चुके हैं। संगत के अनुरोध पर पुस्तक के इस संस्करण में रामचरितमानस और सूरदास जी की वाणी में से कुछ और शब्द शामिल कर दिये गये हैं। इसके अलावा पुस्तक में बहुत से कठिन शब्दों के अर्थ फ़ुटनोटों में बढ़ा दिये गये हैं, जिससे पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ गयी है।

आशा है कि संगत इस पुस्तक से अधिक से अधिक लाभ उठायेगी।

डेरा बाबा जैमल सिंह,
ज़िला अमृतसर (पंजाब)।
19 मार्च, 2006

जगदीश चन्द्र सेठी,
सेक्रेटरी,
राधास्वामी सत्संग ब्यास।

पाठकों से निवेदन

हिन्दी पाठकों में यह बात देखने में आती है कि वे गुरुवाणी का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं, क्योंकि गुरुवाणी में शब्दों के अन्त में ह्रस्व इ (ि) और ह्रस्व उ (ु) का जो प्रयोग है, वह हिन्दी में प्रचलित नहीं है। देखने में यह व्यर्थ-सा जान पड़ता है परन्तु गुरुवाणी में शब्द के अन्त में लगने वाले इन स्वरों का अर्थ की दृष्टि से एक विशेष महत्व है।

गुरुवाणी को पढ़ते समय प्राय: इन स्वरों का उच्चारण नहीं किया जाता। जैसे श्री आदि ग्रन्थ में आरम्भ के 'सतिनामु' का उच्चारण 'सतनाम' ही होता है। उदाहरणत: इस निम्नलिखित श्लोक में आता है।

कामु क्रोधु परहरु पर निंदा॥ लबु लोभु तजि होहु निचिंदा॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1041)

पढ़ते समय इसका उच्चारण इस प्रकार किया जायेगा:

काम क्रोध परहर पर निंदा॥ लब लोभ तज हो निचिंदा॥

इसी प्रकार:

अंतरि बाहरि सो प्रभु जाणै। रहै अलिपतु चलते घरि आणै॥

(आदि ग्रन्थ, पृ. 1042)

इसका उच्चारण इस प्रकार होगा:

अंतर बाहर सो प्रभ जाणै। रहै अलिपत चलते घर आणै॥

इसलिये हिन्दी पाठकों से निवेदन है कि वाणी का पाठ करते समय शब्द के अन्त में आने वाले इन ह्रस्व इ (ि) और ह्रस्व उ (ु) का उच्चारण न करें।

— प्रकाशक

सन्त-मार्ग

सन्त-मार्ग

फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिओ मांझा दुधु॥
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु॥[1]

बाबा फ़रीद कहते हैं—शक्कर, खाँड, मिश्री, गुड़, शहद, भैंस का दूध—ये सब चीज़ें मीठी हैं, लेकिन हे परमात्मा! इनमें से कोई भी चीज़ तुझ तक नहीं पहुँचती यानी तेरे नाम की मिठास का मुकाबला नहीं कर सकती।

सन्तों का उपदेश

महात्मा चाहे किसी जाति, धर्म, देश या समय में क्यों न आये हों, सबका एक ही सन्देश और एक ही अनुभव है। वे दुनिया में जाति और धर्म बनाने के लिए नहीं आते, न ही हमें एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना सिखाने आते हैं, बल्कि वे हमारे अन्दर उस मालिक की भक्ति का शौक़ व प्यार पैदा करने और इस देह के बन्धनों से आज़ाद करके हमें मालिक से मिलाने के लिए आते हैं। लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों और प्यारों के जाने के बाद बाहरमुखी हो जाते हैं, कर्मकाण्ड में उलझ जाते हैं और उन महात्माओं के असली अनुभव और उपदेश को बिल्कुल भूल जाते हैं। उनकी असली शिक्षा और रूहानियत को जातियों और देशों के छोटे-छोटे दायरों में बन्द करने की कोशिश करते हैं और एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना शुरू कर देते हैं। जिन महात्माओं की शिक्षा सारे संसार के लिए होती है, उनके उपदेश को जब हम छोटे-छोटे दायरों में बन्द करके क़ौमों-मज़हबों की शक्ल देने की कोशिश करते हैं तो इससे ज़्यादा उन महात्माओं के साथ हम और क्या बेइन्साफ़ी कर सकते हैं। यह सब कुछ हम अपने पेट की ख़ातिर या मान-बड़ाई के लिए करते हैं। अगर हम तंगदिली को छोड़कर

किसी भी महात्मा के अनुभव की खोज करें तो पता चलेगा कि हर एक महात्मा का एक ही उपदेश है, एक ही सन्देश है।

महात्मा समझाते हैं कि यह जो सारी रचना है, जिस दुनिया को हम चलती-फिरती देख रहे हैं, यह सब अपने आप ही पैदा नहीं हुई। इसकी रचना करनेवाला कोई न कोई ज़रूर है। वह कौन है ? वह एक परमात्मा है, जिसके हमने अनेकों ही नाम अपने प्रेम और प्यार में आकर रखे हुए हैं। यह जो कुछ भी नज़र आ रहा है, इस सबकी रचना उस एक परमात्मा ने की है। हमारी आत्मा उस परमात्मा की अंश है। हम उस सतनाम रूपी समुद्र की बूँदें हैं, उस एक ही सूरज की किरणें हैं। कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

कहु कबीर इहु राम की अंसु॥[2]

तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

चौथे महल पुरुष इक स्वामी। जीव अंस वहि अन्तरजामी॥[3]

गोस्वामी तुलसीदास जी भी रामचरितमानस में लिखते हैं:

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥[4]

यह आत्मा उस एक राम या परमात्मा की अंश है। गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं, 'आतम महि रामु राम महि आतमु चीनसि गुर बीचारा॥'[5] आत्मा के अन्दर वह परमात्मा है और परमात्मा के अन्दर यह आत्मा है। मिसाल के तौर पर, एक बड़ का पेड़ कितना बड़ा होता है, लेकिन उसका बीज कितना छोटा होता है। अगर कोई हमें समझाये कि इस छोटे-से बीज के अन्दर इतना बड़ा बड़ का पेड़ है तो आसानी से हमारी समझ में नहीं आयेगा। लेकिन जब हम उस बीज को ज़मीन में बोते हैं तो वह छोटा-सा पौधा बनकर, पालन-पोषण पाकर, कितना बड़ा बड़ का पेड़ बन जाता है। फिर हमें पता चलता है कि उस छोटे-से बीज में इतना बड़ा बड़ का पेड़ है और पेड़ के अन्दर बड़ का छोटा-सा बीज है। इसी तरह गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि जब सन्तों के उपदेश पर चलकर हम अन्दर

खोज करेंगे, तब हमें पता चल जायेगा कि परमात्मा के अन्दर आत्मा है और जिस परमात्मा की हमें खोज है, वह हमारी आत्मा के अन्दर है।

कर्म-सिद्धान्त

हम उस मालिक से बिछुड़कर इस माया के जाल में उलझे हुए हैं। यहाँ आकर हमारी आत्मा ने मन का साथ ले लिया है। हमारा मन इन्द्रियों के भोगों, विषय-विकारों, शराबों-कबाबों, दुनिया के धन्धों का आशिक़ है। मन जो कर्म करता है, उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है, क्योंकि आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है। इसी लिए ऋषियों-मुनियों ने इस दुनिया को कर्म-भूमि कहा है। मुहम्मद साहिब ने इसे आख़िरत (परलोक) की खेती फ़रमाया है। उनके वचन हैं, 'अल दुनिया मज़रअत उल आख़िरत।'[6] गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में कहते हैं:

> करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥[7]

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

> ददै दोसु न देऊ किसै दोसु करंमा आपणिआ॥
> जो मै कीआ सो मै पाइआ दोसु न दीजै अवर जना॥[8]

गुरु अर्जुन देव जी इसको 'करमा संदड़ा खेतु॥'[9] कहकर बयान करते हैं। इस दुनिया में आकर हम जो-जो कर्म करते हैं, अच्छे हों या बुरे, उन सबका नतीजा भुगतने के लिए देह के बन्धनों में आना पड़ता है। इसी प्रकार हज़रत ईसा ने फ़रमाया है, 'मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा।'[10]

अगर हम खेत में मिर्च बोते हैं तो मिर्च की ही फ़सल इकट्ठी करने के लिए जायेंगे। अगर कोई आम का पौधा लगाता है, वह आम के फल खाने का हक़दार होता है। अगर नेक कर्म करते हैं तो सेठ-साहूकार बनकर आ जायेंगे। 'सी-क्लास' के क़ैदी होने के बजाय 'ए-क्लास' प्राप्त कर लेंगे, झोंपड़ी से बिस्तर उठाकर महल में जा बिछायेंगे, लोहे की ज़ंजीरें उतर जायेंगी और सोने की बेड़ियाँ पड़ जायेंगी। ज़्यादा से ज़्यादा हम स्वर्ग या

बैकुण्ठ तक चले जाते हैं। वे भी भोग योनियाँ हैं, उसके बाद फिर हमें चौरासी के जेलख़ाने में आना पड़ता है। अगर बुरे कर्म करते हैं, फिर तो नरक और चौरासी हमेशा तैयार ही रहते हैं। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

करम जो जो करेगा तू। वही फिर भोगना भरना॥[11]

सहजो बाई कहती हैं:

पसु पंछी नर सुर असुर, जलचर कीट पतंग।
सबही उतपति कर्म की, सहजो नाना अंग॥[12]

क्या राजा, क्या प्रजा, क्या अमीर, क्या ग़रीब, क्या औरत, क्या आदमी, हम सब दुनिया के जीव कर्मों के जाल में फँसे हुए हैं। इन कर्मों के कारण जिस जामे में जाकर जन्म लेना पड़ता है उसमें बैठकर दुःख ही दुःख, मुसीबतें ही मुसीबतें सहनी पड़ती हैं। उस मालिक से बिछुड़कर किसी भी योनि में हम कभी सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। हर रोज़ इनसान की ख़ुराक के लिए हज़ारों तरह के जानवर ज़िबह किये जाते हैं। किस तरह उनके गलों पर छुरियाँ चल रही हैं। क्या हम ऐसे मुर्गी, भेड़ या बकरी के जामे में जाकर सुख प्राप्त कर सकते हैं ? हम कभी यह विचार ही नहीं करते कि अगर हमें अपने कर्मों के कारण उन जामों में जाना पड़े और हमारी गर्दन पर छुरियाँ और कुल्हाड़ियाँ हों तो हम क्या महसूस करेंगे! कई बार, जिस समय डाक्टर टीका लगाने के लिए एक पतली-सी सूई गर्म करता है तो हमारा शरीर डर से काँपना शुरू कर देता है, हालाँकि वह टीका हमारे फ़ायदे के लिए ही होता है। ऊँट के जामे की हालत देखें, किस तरह उस पर बोझ लदा हुआ है और किस तरह आगे नकेल से खींचा जा रहा है। तांगे के घोड़े की हालत हम देखते हैं कि उस पर कितनी सवारियाँ बैठी हैं और किस तरह उस पर धड़ाधड़ चाबुक पड़ रहे हैं! बैल के जामे के बारे में सोचें। उसे सारा दिन किसान हल में जोतते हैं। अगर वह थककर गिर भी जाता है तो वे लोहे की आर मार-मारकर उसी तरह हल में चलाये जाते हैं।

मतलब यही है कि किसी भी जामे को लेकर परख करें, हरएक में दुःख-ही-दुःख, मुसीबतें-ही-मुसीबतें दिखाई देती हैं।

निचले जामों की हालत तो अलग रही, मनुष्य के जामे के बारे में अच्छी तरह विचार करके देख लें, कितने दुःख और कितनी मुसीबतें हर रोज़ उठानी पड़ती हैं। हालाँकि इस जामे को 'टॉप ऑफ़ दी क्रिएशन' (सृष्टि का सरताज) कहते हैं, ऋषि-मुनि इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाते हैं, मुसलमान फ़क़ीर इसे 'अश्रफ़-उल-मख़्लूकात' कहकर याद करते हैं और देवी-देवता भी इस जामे को तरसते हैं, लेकिन फिर भी इस जामे में बैठकर कोई भी सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता। कोई बीमारी के हाथों दुःखी हो जाता है, कोई बेरोज़गारी से तंग आ जाता है। किसी के सन्तान पैदा नहीं होती, वह दिन-रात तड़पता है, तो कइयों को बाल-बच्चों ने दुःखी कर रखा है। किसी को कर्ज़ा चुकाना है, वह चिन्ता और फ़िक्र में सारी रात सो नहीं सकता, किसी को कर्ज़ा वसूल करना है, वह सारा दिन कचहरी में परेशान हो रहा है। हम सर्दी और गर्मी में रोज़ सड़कों पर कंगालों की हालत देखते हैं कि किस तरह पेट की ख़ातिर वे चिल्ला रहे हैं। इसी तरह अस्पतालों में जाकर बीमारों की चीख़ें सुनते हैं कि किस प्रकार वे बेचारे दुःखी हो रहे हैं। जेलख़ानों में क़ैदियों की हालत देखकर पता चलता है कि वे कितना दुःख उठा रहे हैं। मतलब यह है कि संसार में जिधर भी नज़र डालकर देखें, चारों ओर दुःख-ही-दुःख, मुसीबतें-ही-मुसीबतें नज़र आती हैं। कभी भी रेडियो चलाकर या अख़बार पढ़कर देख लें, दुनिया में किसी न किसी क़ौम, मज़हब या मुल्क के लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं, कितने ग़रीबों का ख़ून हो रहा है, किस तरह औरतें विधवा हो रही हैं और बच्चे यतीम हो रहे हैं। जिस दुनिया में यह हालत है कि लोग रोटी-कपड़े की ख़ातिर दिन-रात भटकते और तड़पते फिरते हैं और मौत का डर हमेशा बना रहता है कि पता नहीं किस समय और किसके हाथों आ जाये, उस नगरी के अन्दर हम सुख और शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? गुरु नानक साहिब का कथन है:

नानक दुखीआ सभु संसारु ॥[13]

'रामचरितमानस' में गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं:

सकल जीव जग दीन दुखारी।[14]

अगर मनुष्य के जामे में आकर भी हम इस संसार में सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते तो फिर और किस जामे में प्राप्त कर सकेंगे। महात्मा उपदेश देते हैं कि इस दुनिया में कभी किसी को हमेशा के लिए सुख व शान्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि यह दुनिया सुख और दु:ख का घर है, पुण्य और पाप की नगरी है। हम अपने पुण्यों और पापों के कारण यहाँ आकर सुख और दु:ख भुगत रहे हैं। अच्छी तरह दुनिया में खोज करके देख लो, कोई शख़्स ऐसा नहीं मिलेगा जिसे इस शरीर में बैठकर सुख ही सुख मिलते हों, कभी दु:खों का सामना न करना पड़ा हो या किसी को दु:ख ही दु:ख मिलते हों कभी सुख की साँस न आयी हो। देखने में आता है कि अगर दस दिन सुखों के मिल जाते हैं तो फिर दु:खों का सामना करना पड़ता है और अगर दस दिन दु:ख के भुगत लेते हैं तो फिर थोड़े-बहुत सुख के स्वाँस आ जाते हैं। जितने भी दु:ख हमें भुगतने पड़ते हैं, ये हमारे पिछले जन्मों में किये हुए पापों का नतीजा हैं। और जो भी सुख की साँसें आ रही हैं, वे हमारे पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण हैं। पुण्य और पाप मिलते हैं तो हमें इनसान का जामा मिलता है, जिसमें बैठकर हम उन पुण्यों और पापों का हिसाब दे रहे हैं। अगर हमारे सिर्फ़ पुण्य होते तो हम स्वर्गों में पहुँच जाते और अगर सिर्फ़ पाप होते तो हम नरकों में सज़ा भुगत रहे होते। किसी के ज़्यादा पुण्य और थोड़े पाप हैं, तो वह ज़्यादा सुखी और कम दु:खी नज़र आता है। किसी का पापों का बोझ ज़्यादा हो जाता है और पुण्यों का कम, तो वह ज़्यादा दु:खी है और कम सुखी है। यही कारण है कि इस दुनिया में अमीरी-ग़रीबी, बीमारी-तन्दुरुस्ती और ऊँच-नीच दिखाई देती है, क्योंकि हरएक जीव के अपने-अपने कर्म हैं जिनका फल वह यहाँ आकर भोग रहा है।

यह दुनिया आज तक न कभी सुखों की नगरी बनी है और न कभी बन ही सकती है। जब हम इतिहास पढ़ते हैं तो पता चलता है कि दुनिया में लड़ाई-झगड़े, सुख-दुःख, अमीरी-ग़रीबी हमेशा से चली आ रही है। हर क़ौम, मज़हब, मुल्क और वक़्त के अन्दर उच्च कोटि के महात्मा और बड़े-बड़े समाज-सुधारक आये हैं, फिर भी इसकी हालत पहले से कोई बेहतर नहीं हुई और न ही कभी हो सकती है। अगर सन्तों-महात्माओं का मक़सद इस दुनिया को स्वर्ग या सुख की नगरी बनाने का होता, तो आज तक यह दुनिया ज़रूर सुखों की नगरी बन जानी चाहिए थी। बल्कि वे तो हमें ऐसा साधन और तरीक़ा बताते हैं जिस पर चलकर हम हमेशा के लिए इस देह के बन्धनों से मुक्त हो जायें और फिर इस दुनिया में ही न आयें। दुनिया के काँटे इकट्ठे करने में आज तक किसी ने सफलता प्राप्त नहीं की और न ही कोई कर सकता है। लेकिन अगर हम अपने पैरों में मज़बूत जूते पहन लें तो वे काँटे अपना असर नहीं कर सकते। दुनिया की समस्याएँ न आज तक किसी ने हल की हैं, न कोई हमेशा के लिए हल कर ही सकता है। लेकिन महात्माओं के उपदेश पर चलकर हम अपने ख़याल को इतना ऊँचा ले जा सकते हैं कि दुनिया के सुख-दुःख की समस्याएँ हम पर असर ही नहीं कर सकतीं। ईसा मसीह ने बाइबल में ज़िक्र किया है, 'मैं तो आया हूँ कि बेटे को उसके पिता से, और बेटी को उसकी मां से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ।'[15]

यानी मैं इस दुनिया को सुख और शान्ति की नगरी बनाने नहीं आया, बल्कि जीवों को यहाँ से आज़ाद करने आया हूँ; माँ-बाप, बेटे-बेटियों वग़ैरह के आपस के मोह के बन्धनों को काटने आया हूँ, एक-दूसरे के लगाव, मोह या प्यार की ज़ंजीरों को तोड़कर उनको आज़ाद करने आया हूँ।

निस्सन्देह संसार में परोपकारियों और समाज-सुधारकों की कोई कमी नहीं है। यहाँ अनेक दयालु और नेक पुरुष हुए हैं। लेकिन सन्तों-महात्माओं का जो परोपकार है उस तक और कोई परोपकार नहीं पहुँच सकता। मिसाल के तौर पर एक जेलख़ाने में बहुत-से क़ैदी हैं। एक परोपकारी देखता है कि गर्मी का मौसम है और उन क़ैदियों को ठण्डा पानी पीने को

नहीं मिलता। वह उन पर तरस खाकर बर्फ़ डालकर शरबत वग़ैरह का प्रबन्ध कर देता है। दूसरा परोपकारी सोचता है कि क़ैदियों को अच्छा खाना नहीं मिलता। वह दया करके अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन, मिठाइयाँ आदि बनवाकर उनको दे देता है जिससे क़ैदी और ख़ुश हो जाते हैं। तीसरा परोपकारी देखता है कि तेज़ सर्दी का मौसम है, उन क़ैदियों के पास सर्दी से बचने के लिए गर्म कपड़े नहीं हैं। उसने काफ़ी रुपये ख़र्च करके उनको सर्दी से बचाने के लिए गर्म कपड़े बनवा दिये। इस परोपकारी ने शायद पहले परोपकारियों से ज़्यादा अच्छा परोपकार किया। इन सभी परोपकारियों ने क़ैदियों पर तरस खाकर परोपकार किया, जिससे क़ैदियों की हालत पहले से ज़्यादा अच्छी हो गयी। वे 'सी' क्लास से 'ए' क्लास के क़ैदी तो बन गये और उनको जेलख़ाने में ज़्यादा सुख व आराम भी प्राप्त हो गया, लेकिन इन सब परोपकारियों के होते हुए भी क़ैदी तो जेलख़ाने में ही रहे। चौथे परोपकारी ने, जिसके पास जेलख़ाने की चाबी थी, क़ैदियों पर तरस खाकर जेलख़ाने का दरवाज़ा ही खोल दिया और उन्हें हमेशा के लिए आज़ाद कर दिया। अगर इनमें सबसे ऊँचा परोपकार है तो उस जेलख़ाने की चाबी वाले का है।

सन्त-महात्मा इस चौरासी के जेलख़ाने की चाबी लेकर संसार में आते हैं और हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक़ व प्यार पैदा करके, हमें रास्ता व युक्ति बतलाकर, धुर-धाम पहुँचाकर हमेशा के लिए इस जेलख़ाने से आज़ाद कर देते हैं। इसलिए सन्तों और महात्माओं का परोपकार दूसरे सब समाज-सुधारकों या परोपकारियों के परोपकार से कहीं ऊँचा और सच्चा है। महात्मा हमें उपदेश देते हैं कि जब तक हमारी आत्मा वापस जाकर उस परमात्मा से मिलाप नहीं कर लेती तब तक हम शरीर के बन्धनों और संसार के दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकते। कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।[16]

स्वामी जी महाराज का फ़रमान है:

धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना॥[17]

आत्मा और परमात्मा

हमारी आत्मा स्त्री है और परमात्मा इसका पति है। यह आत्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति के चरणों में जाकर ही ख़ुशी प्राप्त कर सकती है और हमेशा के लिए सुहागिन हो सकती है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

पिर सचे ते सदा सुहागणि ॥[18]

फिर फ़रमाते हैं:

जिन्ही घरु जाता आपणा से सुखीए भाई ॥[19]

जो वापस अपने असली घर पहुँच जाते हैं, वे सदा के लिए सुख और शान्ति प्राप्त कर लेते हैं। मौलाना रूम भी फ़रमाते हैं:

ईं जहाँ ज़िन्दान ओ मा ज़िन्दानियाँ,
हुफ़रा कन ज़िन्दान व ख़ुद रा वा रिहाँ।[20]

यानी यह जहान क़ैदख़ाना है, जिसमें हम क़ैद हैं। क़ैदख़ाने की छत में सूराख़ करके यहाँ से भाग निकलो।

बहुत-से महात्माओं ने आत्मा और परमात्मा के रिश्ते को स्त्री और पति का रिश्ता कहकर समझाया है, क्योंकि स्त्री हमेशा पति के चरणों में जाकर सुख व शान्ति प्राप्त कर सकती है। अगर एक स्त्री अपने पति के चरणों से दूर हो जाती है तो उसे चाहे दुनिया भर की इज़्ज़त दे दें, कितना ही रुपया पैसा दे दें, उसके मन को कभी सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। वह अपने प्रियतम या पति के प्यार में से ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

हरि नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम ॥
जितु घरि हरि कंतु न प्रगटई भठि नगर से ग्राम ॥
स्रब सीगार तंबोल रस सणु देही सभ खाम ॥[21]

रामकृष्ण परमहंस परमात्मा और आत्मा के रिश्ते को माँ और बेटे के रिश्ते से याद करते हैं। जब तक बच्चा माँ की निगरानी में है, उसे कोई चिन्ता नहीं होती और वह हर प्रकार से ख़ुश रहता है। ईसा मसीह ने इस रिश्ते को बाप और बेटे के रिश्ते से याद किया है, क्योंकि जब तक बेटे के सिर पर बाप की छत्र-छाया है, उसे कोई ग़म या फ़िक्र नहीं हो सकता। इसी तरह हमारी आत्मा, परमात्मा को पाकर ही सच्चा सुख और सच्ची शान्ति प्राप्त कर सकती है।

संसार की अवस्था

सहजो बाई जो कि एक बहुत प्रसिद्ध महात्मा हुई हैं, कहती हैं:

> धनवन्ते सब ही दुखी, निर्धन हैं दुख रूप।
> साध सुखी सहजो कहै, पायौ भेद अनूप॥[22]

इसी प्रकार कबीर साहिब फ़रमाते हैं कि राजा और प्रजा सब दुखी नज़र आते हैं:

> तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
> उदय अस्त की बात कहतु हैं, सबका किया बिबेका हो।
> घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
> सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो।
> जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
> आसा तृस्ना सबको ब्यापै, कोई महल न सूना हो।
> साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
> ब्रह्मा बिस्नु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो।
> अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो।
> कहैं कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो।[23]

तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में संसार के दु:खों के बारे में इस प्रकार कहते हैं:

कोई तो तन मन दुखी, कोई चित्त उदास।
एक एक दुख सभन को, सुखी संत का दास॥[24]

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नानक दुखीआ सभु संसारु॥[25]

दुनिया के सब जीव अपनी-अपनी जगह दुःखों व मुसीबतों के मारे हुए हैं, असली सुख और शान्ति उसी को है जिसने मालिक की भक्ति और प्यार का आसरा लिया हुआ है। हम दुनिया के जीव उस परमात्मा को तो भूले बैठे हैं, उसकी खोज नहीं करते, उसकी भक्ति की ओर हमारा ख़याल ही नहीं है और दुनिया की शक्लों और पदार्थों में से सुख व शान्ति ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। हम सब का अनुभव है जितना हम उस परमात्मा को भूलकर सुख और शान्ति ढूँढ़ रहे हैं, उतना ही दिन-रात ज़्यादा दुखी होते जा रहे हैं, क्योंकि जिन शक्लों और पदार्थों में से हम सुख ढूँढ़ रहे हैं, वे सब चीज़ें आरज़ी हैं और उनका सुख भी केवल आरज़ी ही हो सकता है। जब तक हमें वह चीज़ न मिले जो कभी नाश न हो, हम उसे अपना न बना लें, हम सुख व शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि जिस चीज़ के मिल जाने से जितनी ख़ुशी होती है, उसके जाने में उतना ही दुःख होता है।

शादी के समय हमारे मन में कितनी ख़ुशी होती है, लेकिन अगर उसी साथी से झगड़ा हो जाये तो हम कितने दुखी हो जाते हैं। जिस सन्तान के जन्म पर हम दावतें करते हैं, ख़ुशियाँ मनाते हैं, अगर वही सन्तान नालायक़ निकले, कहने में न चले, बीमार हो जाये या परमात्मा उसे वापस बुला ले तो ज़रा सोचें कि वह हमारे लिए कितने दुःख का कारण बन जाती है। हम दुनिया की धन-दौलत में सुख ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। आप सोचें इसे कमाने के लिए कितने दुःख, कितनी मुसीबतें सहनी पड़ती हैं, अपने क़ीमती उसूलों को भी क़ुरबान करते हैं, सेहत का भी सत्यानाश कर लेते हैं और कई प्रकार की मानसिक बीमारियाँ मोल ले लेते हैं। फिर इसको रखने में कौन-सी शान्ति प्राप्त होती है? अगर बैंकों में रखते हैं तो उनके फेल हो जाने का ख़तरा है, कभी आय-कर और बिक्री-कर की चिन्ता लगी रहती है,

कभी यारों-दोस्तों के मुकर जाने की फ़िक्र है कि शायद वे रुपया लेकर वापस न करें। फिर जिस वक़्त वही दौलत जाती है, अच्छी तरह दुःखों और मुसीबतों में फँसाकर ही जाती है। कभी डाक्टर की फीसों में होकर निकल जाती है, कभी मुकद्दमों में उलझाकर चली जाती है। कितने दुःखों और मुसीबतों से कमायी, लेकिन फिर भी सुख न दिया। उसके जाने पर जो शरीर पर मुसीबतें भुगतनी पड़ती हैं, वे अलग हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है:

पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई॥*[26]

फिर यह ख़याल आता है कि शायद दुनिया के ऐशो-इशरत या भोग-विलास में सुख हो, हम शराबों-कबाबों के स्वादों में उलझ जाते हैं। लेकिन ये भी हमारे मन को तबाह कर देते हैं, गिरा देते हैं और हमें बीमारियों में फँसा देते हैं। कभी हम हुकूमत के नशे में सुख ढूँढ़ते हैं या राजनैतिक नेता बनने का शौक़ पैदा हो जाता है। जिस समय लोग हमें आदर और मान-बड़ाई देते हैं, हमारे जुलूस निकालते हैं, अख़बारों में तारीफ़ करते हैं, हमारा मन फूला नहीं समाता। लेकिन हम नेताओं के हाल भी रोज़ पढ़ते हैं। रातों-रात तख़्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी का ज़ोर पड़ जाता है, तो वे कभी गोली का शिकार बना देते हैं, कभी फाँसी के तख़्तों पर चढ़ा देते हैं, कभी जेलख़ाने में डाल देते हैं, कभी अख़बारों में मिट्टी पलीत करनी शुरू कर देते हैं। जिस हुकूमत के नशे और दुनिया की मान-बड़ाई में सुख ढूँढ़ने की कोशिश की, वही हमारे लिए दुःख का कारण बन जाती है। कबीर साहिब का कथन है:

सुखु मांगत दुखु आगै आवै॥[27]

साराँश यह कि इस दुनिया में हम कभी सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। ये जो थोड़े-बहुत सुख नज़र आ रहे हैं, समय पाकर दुःखों में बदल जाते हैं। महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जब तक हमारी आत्मा

---

* **पापा...जाई**=पाप किये बग़ैर इकट्ठी नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती।

परमात्मा से मिलाप नहीं करती, हम कभी सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। संसार की धन-दौलत और शक्लों में से भी हम तब तक ही सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, जब तक हमारा ख़याल मालिक की भक्ति की ओर है। मिसाल के तौर पर, एक बच्चा अपने पिता की अँगुली पकड़कर नुमाइश देखने जाता है। उसे वहाँ हर चीज़ बड़ी ही सुन्दर और अच्छी मालूम देती है। कहीं बिजलियाँ जल रही हैं, कहीं तरह-तरह के खेल हो रहे हैं, कहीं खिलौनों और मिठाइयों की दुकानें सजी हुई हैं। बच्चा समझता है कि यह ख़ुशी उसे नुमाइश के साज़ो-सामान से मिल रही है। लेकिन अगर ग़लती से बच्चे से अपने पिता की अँगुली छूट जाती है तो वह चीख़ें मारना शुरू कर देता है और रोने-चिल्लाने लगता है, हालाँकि नुमाइश का सब साज़ो-सामान वहीं का वहीं है। फिर बच्चा महसूस करता है कि वह नुमाइश में ख़ुशी उतनी देर तक ही प्राप्त कर सकता था जितनी देर तक उसने अपने पिता की अँगुली पकड़ी हुई थी। इसी तरह दुनिया में भी हम सुख और शान्ति उसी समय तक पा सकते हैं, जब तक हमारा ख़याल और लिव उस मालिक की ओर रहती है। इसलिए महात्मा हमारे अन्दर मालिक से मिलने का प्रेम-प्यार पैदा करते हैं। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि की पूजा दुलंभ है संतहु कहणा कछू न जाई ॥[28]

मालिक की भक्ति दुर्लभ है, इसकी महिमा बयान से बाहर है। हम सब दुनिया के जीव किसी न किसी के मोह-प्यार में फँसे हुए हैं, किसी न किसी की भक्ति और पूजा ज़रूर कर रहे हैं। कोई बेटे-बेटियों से प्यार करता है, कोई क़ौमों, मज़हबों और मुल्कों की भक्ति कर रहा है, कोई धन-दौलत की पूजा करता है। ये शक्लें और पदार्थ हमारी भक्ति और प्यार के क़ाबिल नहीं, क्योंकि इनकी प्रीति और भक्ति हमें बार-बार देह के बन्धनों में खींचकर ले आती है। मालिक की भक्ति और प्यार ही हमें वापस उस परमात्मा से मिलाता है। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि उस मालिक की भक्ति की महिमा कभी बयान नहीं की जा सकती। उसकी भक्ति और प्यार के द्वारा हम वापस जाकर मालिक से मिलकर मालिक का ही रूप बन जाते हैं। भीखा जी फ़रमाते हैं:

भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठरी लाल।
गिरह खोल न जानही, ता ते भए कंगाल॥[29]

परमात्मा एक है

सब महात्माओं का यही अनुभव है कि जिस परमात्मा से हम मिलना चाहते हैं, वह एक है। यह नहीं कि हिन्दुओं का कोई और या सिक्खों व ईसाइयों का कोई और है। शेख़ सअदी कहते हैं:

बनी आदम आअज़ाए यक दीगर अंद,
कि दर आफ़रीनश ज़ि यक जौहर अंद।[30]

सब इनसान एक ही जिस्म के जुदा-जुदा अंगों की तरह हैं क्योंकि सभी एक ही स्रोत से निकले हैं। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

एकु पिता एकस के हम बारिक॥[31]

सभी इनसान एक ही परमात्मा के बच्चे हैं और सब का एक ही पिता है इसलिए सभी भाई-भाई हैं। गुरु नानक साहिब कहते हैं:

सभना जीआ का इकु दाता॥[32]

सिर्फ़ इनसानों को ही नहीं, संसार के सभी जीवों को पैदा करनेवाला वह एक ही परमात्मा है। मुसलमान फ़क़ीर उस परमात्मा को रब्बुल-आलमीन कहकर याद करते हैं, कि सारे आलम का एक ही परमात्मा है और हमेशा से वही परमात्मा चला आ रहा है। यह नहीं कि पहले कोई और परमात्मा था या अब कोई और है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं, 'जगजीवनु साचा एको दाता॥'[33] सारे जग को जीवन देनेवाला एक ही दाता है और वह हमेशा से सच्चा है यानी वह मरण-जन्म से रहित है। जपुजी साहिब के शुरू में ही गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

आदि सचु जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु॥[34]

आप कहते हैं कि हमारे तजुरबे में एक ऐसी चीज़ आयी है जो आदि जुगादि से सच चली आ रही है, जो कभी नाश या फ़ना नहीं होती, वह एक परमात्मा है जिसके महात्माओं ने हज़ारों नाम अपने-अपने प्यार में आकर रखे हुए हैं। उस मालिक के अलावा जो कुछ भी हम आँखों से देख रहे हैं, सबने नष्ट या फ़ना हो जाना है। कोई भी चीज़ यहाँ स्थिर नहीं है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि बिनु सभु किछु मैला संतहु ॥[35]

इसी तरह गुरु नानक साहिब एक और जगह कहते हैं:

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ॥
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्हणहारु ॥
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ॥
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ॥[36]

हमारा यह शरीर भी कूड़ और नाशवान है और इसके अन्दर बैठकर जिस दुनिया को हम अपना बनाने की कोशिश करते हैं, जिसके साथ प्यार किए बैठे हैं, यह भी कूड़ है। दुनिया में कोई भी चीज़ हमारी दोस्ती या प्यार के क़ाबिल नहीं, सिवाय उस परमात्मा के, क्योंकि उसके सिवाय हरएक चीज़ नाशवान है। सिर्फ़ एक मालिक ही है जो हमेशा रहता है।

जाति और धर्म

उस मालिक की कोई क़ौम नहीं है, उसका कोई मज़हब या मुल्क नहीं है। न ही उस मालिक की कोई जाति या रंग-रूप है। अगर हम महात्माओं की वाणियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो पता चलेगा कि वे हमारे ख़याल को जाति-पाँति, क़ौम, मज़हब व मुल्क के भेद-भाव से ऊँचा उठाकर हमारे

अन्दर परमात्मा की भक्ति का शौक़ और प्रेम-प्यार पैदा करते हैं। गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं:

वरनु जाति चिहनु नही कोई सभ हुकमे स्रिसटि उपाइदा॥[37]

जिस परमात्मा ने अपने हुक्म के द्वारा इस सृष्टि की रचना की है, अगर उसका कोई रंग-रूप और जाति नहीं है तो हमारी आत्मा की— जो उस परमात्मा की अंश है, उस परमात्मा से ही निकली है और वापस जाकर उसमें ही समाना चाहती है— कैसे कोई जाति हो सकती है ? जब समुद्र की कोई जाति नहीं है तो उसकी एक बूँद की क्या जाति हो सकती है ? अगर सूरज की कोई क़ौम या मज़हब नहीं है तो एक मामूली किरण की कौन-सी क़ौम, कौन-सा मज़हब हो सकता है ? ये सब जाति-पाँति के झगड़े हमारे अपने पैदा किये हुए हैं। परमात्मा ने तो सिर्फ़ इनसान पैदा किये हैं। हम अपने आपको जाति-पाँति, क़ौमों, मज़हबों व मुल्कों के छोटे-छोटे दायरों में बाँट रहे हैं और एक-दूसरे के भेद-भाव में फँसे हुए हैं। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

जिथै लेखा मंगीऐ तिथै देह जाति न जाइ॥[38]

जिस जगह हमारे कर्मों का हिसाब-किताब होगा, उस जगह न तो कोई हमारी जाति-पाँति के बारे में पूछेगा और न हमारा शरीर ही वहाँ पहुँच सकेगा। किसी का शरीर अग्नि के सुपुर्द हो जाता है, किसी का मिट्टी के अन्दर ही दबा रह जाता है। जाति-पाँति या क़ौमों-मज़हबों का सम्बन्ध इस शरीर के साथ ही रह जाता है। अन्त में किसी की जाति-पाँति जल जाती है, किसी की मिट्टी में ही दबी रह जाती है। एक महात्मा फ़रमाते हैं:

जात पात पूछे ना कोय। हर को भजे सो हर का होय।[39]

किसी को भी आपकी जाति-पाँति नहीं पूछनी है, जो परमात्मा की भक्ति करता है, वह परमात्मा का रूप हो जाता है। जहाँ हमारे कर्मों का हिसाब-किताब होगा वहाँ कोई यह सवाल नहीं पूछने वाला है कि तुम हिन्दू

थे या ईसाई, हिन्दुस्तान से आये हो, अमरीका से आये हो या अफ़्रीका से। उस जगह तो हमारे भक्ति-भाव, इश्क़ और प्रेम की ही क़द्र होती है। इसी तरह साईं बुल्लेशाह, जो जाति के सैयद थे, मुसलमानों में एक बेधड़क महात्मा हुए हैं, अपने कलाम में स्पष्ट करते हैं:

अमलाँ उत्ते होन निबेड़े, खड़ी रहणगिआँ जाताँ।[40]

जो अपने अमलों या कर्मों पर ध्यान देते हैं, वे ही परमात्मा को अच्छे लगते हैं। जो जाति-पाँति के अहंकार में फँसे हैं, उनकी उस दरगाह में कोई क़द्र नहीं है। तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में यही समझाते हैं:

नीच नीच सब तरि गये, संत चरन लौलीन।
जातहिं के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन॥[41]

जो अपने आपको नीचा समझता है, जिसके अन्दर नम्रता और दीनता है, जो सन्तों के चरणों से प्यार रखता है, उनके उपदेश पर चलता है, वह इस भवसागर से पार हो जाता है। जिनको जाति-पाँति का अभिमान है, वे इस भवसागर में ग़ोते खाते हैं। क़ौमों की क़ौमें, मज़हबों के मज़हब इस जाति-पाँति के अभिमान में डूबे जा रहे हैं। फिर फ़रमाते हैं:

बड़े बड़ाई पाय कर, रोम रोम हंकार।
सतगुरु के परचे बिना, चारों बरन चमार॥[42]

यानी बड़ाई पाकर बड़े लोगों का रोम-रोम अहंकार से भर जाता है। सतगुरु से मिले बिना, उनके प्यार के बिना चारों वर्ण ही नीच हैं। पलटू साहिब भी हमें यही समझाते हैं:

पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोइ करै हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥[43]

मालिक की दरगाह में केवल भक्ति और प्यार की ही क़द्र है। भक्ति और प्यार ही हमें वापस ले जाकर उस मालिक से मिलायेंगे। किसी के मन

में यह विचार न हो कि मैं ब्राह्मण के घर पैदा हो गया हूँ, मुझे ही मालिक से मिलने का गौरव प्राप्त हो सकता है, या मैं हिन्दू से ईसाई बन गया हूँ, अब सिर्फ़ मैं ही परमात्मा से मिल सकूँगा। या कोई यह सोचे कि मैं एक नीच जाति में जन्म ले चुका हूँ, मैं शायद अब कभी परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकूँगा। गुरु अमरदास जी ने तो इस जाति-पाँति का यहाँ तक खण्डन किया है:

बिनु नावै सभ नीच जाति है बिसटा का कीड़ा होइ॥[44]

जो मालिक के नाम की कमाई नहीं करता, उससे ज़्यादा नीच जाति वाला और कौन हो सकता है, क्योंकि मौत के बाद उसे विष्टा का कीड़ा तक बनना पड़ेगा यानी नीच और अधम योनियों में जाना पड़ेगा। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

जिसु नामु रिदै सोई वड राजा॥ जिसु नामु रिदै तिसु पूरे काजा॥

. . . .

जिसु नामु रिदै सो जीवन मुकता॥ जिसु नामु रिदै तिसु सभ ही जुगता॥

. . . .

जिसु नामु रिदै सो सभ ते ऊचा॥ नाम बिना भ्रमि जोनी मूचा॥[45]

गुरु अमरदास जी कहते हैं:

सबदि रतीआ सोहागणी सचै सबदि सीगारि॥[46]

नानक होरि पतिसाहीआ कूड़ीआ नामि रते पातिसाह॥[47]

जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके उस मालिक के शब्द या नाम को अपने मन में बसा लेता है, उठते-बैठते एक शब्द की कमाई में लग जाता है, वही व्यक्ति सबसे ऊँचा है क्योंकि वह मौत के बाद जाकर सच्चे परमात्मा के अन्दर समा जायेगा। इसलिए , जो मालिक की जाति, क़ौम, मज़हब और मुल्क है, वही हमारी आत्मा की जाति, क़ौम, मज़हब व मुल्क है, इसलिए

हरएक महात्मा हमारे ख़याल को पक्षपात या भेद-भाव के इन छोटे-छोटे दायरों से ऊपर ले जाने की कोशिश करता है और हमारे अन्दर उस परमात्मा के प्यार और सच्चे नाम की कमाई का शौक़ पैदा करता है।

परमात्मा हमारे अन्दर है

सभी महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जिस परमात्मा की हमें तलाश है और जिस परमात्मा से मिलकर हमारी आत्मा हमेशा के लिए मरण-जन्म के दुःखों से बच सकती है, वह कहीं बाहर नहीं है। वह हरएक के शरीर के अन्दर है। जिसे मिला है, अपने अन्दर ही मिला है और जिसे भी मिलेगा अपने अन्दर ही मिलेगा। इसलिए अगर कोई 'लेबारटरी' (laboratory) या प्रयोगशाला है जिसके अन्दर जाकर हमें परमात्मा से मिलने की खोज या रिसर्च करनी है, वह केवल हमारा शरीर ही है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

सभ किछु घर महि बाहरि नाही॥ बाहरि टोलै सो भरमि भुलाही॥[48]

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

काइआ अंदरि जगजीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला॥[49]

जिस परमात्मा ने सारे जग को जीवन दिया है, इस सृष्टि की रचना की है और जो सबका दाता है, सबकी सँभाल और रखवाली करता है, वह परमात्मा इस शरीर के अन्दर रहता है। आप समझाते हैं:

इसु गुफा महि अखुट भंडारा॥ तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा॥[50]

हमारा यह शरीर केवल आत्मा के रहने की ही गुफा नहीं है। वह परमात्मा भी, जो कि अलख और अगम है, इस गुफा यानी शरीर के अन्दर ही है। फिर एक और स्थान पर आप लिखते हैं:

काइआ अंदरि आपे वसै अलखु न लखिआ जाई॥
मनमुखु मुगधु बूझै नाही बाहरि भालणि जाई॥[51]

वह परमात्मा ख़ुद हमारे शरीर के अन्दर बैठा हुआ है। हम उसे बाहरी आँखों के द्वारा बाहर ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, वह हमें कैसे नज़र आ सकता है? हम मनमुख हैं, मुगध और गँवार हैं, जो चीज़ हमारे घर के अन्दर है, हम उसे बाहर ढूँढ़ रहे हैं। कबीर साहिब का भी यही अनुभव है:

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सकै तो जागि॥[52]

आप फिर फ़रमाते हैं:

जा कारन जग ढूँढया, सो तो घट ही माहिं।
परदा दीया भरम का, ता तें सूझै नाहिं॥

. . . . .

ज्यों नैनन में पूतरी, यों खालिक घट माहिं।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं॥[53]

जिस तरह तिलों में तेल है और पत्थर में आग है, उसी तरह परमात्मा भी हमारे शरीर के अन्दर है। जिस प्रकार आँखों के अन्दर पुतली है, उसी प्रकार इस दुनिया को बनानेवाला भी हमारी देह के अन्दर है। हम लोग मूर्ख हैं, अन्धे हैं, उसे अपने शरीर के अन्दर तो ढूँढ़ते नहीं, बाहर तलाश करने की कोशिश करते हैं। जिसकी खोज के लिए हम जंगलों-पहाड़ों में भटकते-फिरते हैं, जिसे हम मन्दिरों-मसजिदों में ढूँढ़ते फिरते हैं, वह हमारे शरीर के ही अन्दर है। हमारे और मालिक के दरमियान भ्रम का पर्दा है, इसलिए वह हमें दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार महात्मा चरन दास जी का अनुभव है:

दूध मध्य ज्यों घीव है, मेंहदी माहीं रंग।
जतन बिना निकसै नहीं, चरनदास सो ढंग॥
जो जानै या भेद कूँ, और करै परवेस।
सो अबिनासी होत है, छूटै सकल कलेस॥[54]

इसी प्रकार तुलसी साहिब, जो उत्तरप्रदेश में दक्खनी बाबा के नाम से बड़े प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, अपनी वाणी में कहते हैं:

क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में।
रास्ता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिए।।[55]

क्यों उस परमात्मा की तलाश में बाहर भटकते फिर रहे हो। परमात्मा हरएक के अन्दर है और अपने तक पहुँचने का रास्ता भी परमात्मा ने हरएक के अन्दर ही रखा है। ईसा मसीह ने भी बाइबल में यही समझाया है, 'ख़ुदा की बादशाहत तेरे अन्दर है।'[56] पलटू साहिब का भी यही अनुभव है:

साहिब साहिब क्या करै, साहिब तेरे पास।[57]

वह परमात्मा तो चौबीस घण्टे तुम्हारे साथ तुम्हारे अन्दर है फिर तुम बाहर किसे दिन-रात ढूँढ़ते फिर रहे हो। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सदा हजूरि दूरि न जाणहु॥ गुर सबदी हरि अंतरि पछाणहु॥[58]

इसी तरह दादू साहिब फ़रमाते हैं:

दादू जीव न जाणै राम कौं, राम जीव से पास।
गुरु के सब्दौं बाहिरा, ता थैं फिरै उदास॥
दूरि कहैं ते दूरि हैं, राम रह्या भरपूरि।
नैनहुँ बिन सूझै नहीं, ता थैं रबि कत दूरि॥
कोई दौड़ै द्वारिका, केई कासी जाहि।
केई मथुरा कौं चलै, साहिब घट ही माहिं॥
सब घटि माहैं रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ॥[59]

जिस परमात्मा ने दुनिया की रचना की है, वह चौबीस घण्टे तुम्हारे साथ-साथ है। लेकिन हम दुनिया के जीव अपनी देह के अन्दर जाकर कभी परमात्मा की खोज करने की कोशिश नहीं करते। हमेशा उसे या तो जंगलों और पहाड़ों में ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, या ग्रन्थों-पोथियों में से पाना चाहते हैं या समझते हैं कि वह गुरुद्वारों, मन्दिरों, मसजिदों या गिरजा-घरों में ही मिल सकता है। कभी विचार आता है कि वह कहीं आसमानों के पीछे

छिपा बैठा है लेकिन जिस जगह वह परमात्मा है, उस जगह तलाश नहीं करते। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

गुरमुखि होवै सु काइआ खोजै होर सभ भरमि भुलाई॥[60]

जो मालिक के असली भक्त और प्यारे हैं, जिनको किसी सन्त-महात्मा की संगति मिल चुकी है, वे परमात्मा को शरीर या देह के अन्दर ढूँढ़ते हैं। बाक़ी सब दुनिया के जीव भ्रमों में फँसकर यहीं भूले फिरते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं:

बुल्ला शौह असाँ तो वख नहीं। बिन शौह थीं दूजा कख नहीं॥
पर वेखण वाली अक्ख नहीं। ताँ जान जुदाइयाँ सहन्दी है॥[61]

कबीर साहिब ने तो बड़े ज़ोरदार लफ़्ज़ों में हमारे ख़याल को इस वहम और भ्रम से निकालने की कोशिश की है। आप समझाते हैं:

काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ताँ चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जेहि कारन तूँ बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय॥
तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
अलख पुरष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय॥[62]

हम पत्थर और ईंटें इकट्ठी करके मसजिद या मालिक के रहने की जगह बना लेते हैं और उनके ऊपर चढ़कर मौलवी ऊँची-ऊँची बाँग देकर परमात्मा को पुकारता है, जैसे कि परमात्मा बहरा है और हमारी आवाज़ उस तक नहीं पहुँच सकती। आप समझाते हैं कि ऐ मुल्ला! वह ख़ुदा बहरा नहीं है। जिस ख़ुदा के लिए तू इतने ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा है, वह तो तेरे अन्दर ही मौजूद है। मुसलमान उस ख़ुदा को मसजिद के अन्दर ढूँढ़ रहे हैं। हिन्दू मन्दिरों में उस परमात्मा की तलाश कर रहे हैं। सिक्ख और ईसाई गुरुद्वारों और गिरजों में जाकर खोज कर रहे हैं। लेकिन वह अलख पुरुष तो उनके शरीर के अन्दर ही है और अन्दर ही मिलेगा। इसी प्रकार तुलसी साहिब समझाते हैं:

नकली मन्दिर मसजिदों में जाय सद अफसोस है।
कुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिए।[63]

साईं बुल्लेशाह बेधड़क होकर कहते हैं:

भठ नमाज़ाँ चिकड़ रोज़े कलमे दे सिर स्याही।
बुल्ले नूँ शौह अंदरों मिलया, भुल्ली फिरे लोकाई।[64]

फिर फ़रमाया है:

वेद कुरान पढ़ पढ़ थक्के, सिजदे करदयां घिस गए मत्थे।
ना रब तीरथ ना रब मक्के, जिन पाया तिन दिल विच यार।[65]

जो हमने परमात्मा के रहने के स्थान बनाये हैं, कितना अफ़सोस है कि हम उन स्थानों पर जाकर दिन-रात उस परमात्मा को खोज रहे हैं और जिस मसजिद यानी शरीर के अन्दर वह परमात्मा रहता है, वह शरीर उस मालिक की याद में दिन-रात दु:ख उठा रहा है। अगर कोई सच्चे से सच्चा गुरुद्वारा, मन्दिर, मसजिद या गिरजा है, वह केवल हमारा अपना शरीर है। यह जगह परमात्मा ने अपने रहने के लिए ख़ुद बनायी है और इस के अन्दर वह ख़ुद रहता है। कबीर साहिब का फ़रमान है:

सब घट पूरन पूर रहा है, आदि पुरुष निर्बानी।[66]

सेण्ट पाल ने भी इस शरीर को परमात्मा का जीता जागता मन्दिर कहकर पुकारा है।[67] ऋषियों-मुनियों ने इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाया है; वह देह जिसके अन्दर परमात्मा रहता है और जिस देह के अन्दर ही आत्मा को परमात्मा से मिलने का गौरव प्राप्त हो सकता है। यही गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं:

हरि मंदरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ।[68]

हमारा शरीर ही मालिक के रहने का असली हरि-मन्दिर है और उस मालिक का असली ज्ञान उसी के अन्दर से प्राप्त हो सकता है। ज़रा ग़ौर

करके देखें कि उस परमात्मा के रहने के लिए जो स्थान हमने ख़ुद बनाये हैं, जैसे कि मसजिद, मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरजे वग़ैरह उनमें हम परमात्मा की खोज कर रहे हैं, बनिस्बत उस स्थान के जो परमात्मा ने ख़ुद अपने रहने के लिए बनाया है और जिसमें वह ख़ुद बैठा हुआ है।

हम अपने धार्मिक स्थानों को कितना साफ़-सुथरा रखते हैं। ज़रा सी भी गन्दगी वहाँ नहीं रहने देते, धूप वग़ैरह जलाते हैं, वहाँ कोई बुरा कर्म नहीं करते, किसी से कोई बुरा शब्द तक नहीं कहते, क्योंकि हम समझते हैं कि यह मालिक के रहने का स्थान है। उन स्थानों की पवित्रता बनाये रखना चाहते हैं, लेकिन जो जगह मालिक ने ख़ुद अपने रहने के लिए बनायी है और जिसके अन्दर वह परमात्मा ख़ुद बैठा हुआ है—यानी हमारा शरीर—उसको किस प्रकार दिन-रात गन्दगी से भर रहे हैं। कभी मांस और शराब उसके अन्दर डालते हैं, कभी उसके अन्दर बैठकर बुरे-बुरे विचार उठाते हैं और पाप व खोटे कर्म करते हैं। अपनी बनायी हुई चीज़ की तो क़द्र करते हैं, जो मालिक ने ख़ुद अपने रहने के लिए जगह बनायी हुई है उसकी क़द्र नहीं करते। कई बार तो इतिहास पढ़कर बड़ी शर्म महसूस होती है कि अगर हमारे बनाये हुए किसी मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे या गिरजे की ग़लती से किसी दीवार में एक दरार भी आ जाती है, तो हम उस परमात्मा के बनाये हुए हरि-मन्दिरों को हज़ारों की संख्या में गिराने को तैयार हो जाते हैं:

हिन्दू कहत हैं राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़े मरतु हैं, मरम कोई नहिं जाना॥[69]

इतिहास गवाह है कि इन धर्म-स्थानों को लेकर कितने युद्ध और झगड़े हुए, कितने ख़ून ख़राबे हुए, कितने बच्चे अनाथ हुए, कितनी औरतें विधवा हुईं, और हम इस पर फ़ख़्र और गौरव करते हैं, अपने आपको धर्म के रक्षक, मज़हब के रखवाले समझते हैं और शहीदाने-मिल्लत* कहलवाते हैं। अगर एक-दूसरे की हत्या और ख़ल्के-ख़ुदा† का ख़ून बहाने से ही

---

* **शहीदाने-मिल्लत**=धर्म के लिए शहीद। † **ख़ल्के-ख़ुदा**=परमात्मा की सृष्टि।

परमात्मा मिल सकता है तो इससे ज़्यादा सस्ता सौदा और आसान तरीक़ा और क्या हो सकता है! लेकिन हमारा यह ख़याल ग़लत है। जिनका परमात्मा से प्यार है, वे परमात्मा की सृष्टि से भी प्यार करते हैं। जब परमात्मा एक ही है और उस परमात्मा ने ही सबको पैदा किया है। हरएक के अन्दर वह ख़ुद ही बैठा हुआ है और हरएक को अपने अन्दर ही उसकी खोज करनी है। अगर फिर भी कोई किसी से नफ़रत करता है तो वह परमात्मा से नफ़रत करता है। अगर एक क़ौम दूसरी क़ौम को भला-बुरा कहती है और एक मज़हब दूसरे मज़हब वालों के ख़ून का प्यासा है, तो समझना चाहिए कि उस क़ौम और मज़हब के अन्दर अभी तक मालिक से मिलने का शौक़ व प्यार ही पैदा नहीं हुआ, क्योंकि जिसका उस मालिक, उस परमात्मा से प्यार है, वह परमात्मा की रचना से भी ज़रूर प्यार करेगा। अगर हम किसी से नफ़रत करते हैं तो इसका मतलब हुआ कि हम उस परमात्मा से भी नफ़रत कर रहे हैं, जो कि उसके अन्दर बैठा हुआ है और जिसने उसे पैदा किया है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

> जीअ जंत सभि तिस दे सभना का सोई।
> मंदा किस नो आखीऐ जे दूजा होई॥[70]

हे परमात्मा! सब दुनिया के जीव तेरे अपने पैदा किये हुए हैं और तू ख़ुद ही हरएक के अन्दर बैठा हुआ है। नीच और बुरा तो मैं उसे कहूँ जिसके अन्दर कोई और हो या जिसे किसी और ने पैदा किया हो। कबीर साहिब भी हमें यही उपदेश देते हैं:

> अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे।
> एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे॥[71]

इसी तरह बाइबल में ईसा मसीह ने समझाया है, 'वह सच्ची ज्योति जगत् में आनेवाले हरएक मनुष्य को प्रकाशित करती है।'[72] उस परमात्मा का नूर और प्रकाश हरएक के अन्दर है, न कोई बुरा है, न कोई अच्छा है, सब

अपने-अपने कर्मों के अनुसार अपना-अपना हिसाब दे रहे हैं। इसलिए, महात्मा समझाते हैं कि उस परमात्मा की खोज बाहर नहीं बल्कि अपने शरीर और देह के अन्दर ही करनी चाहिए।

हौंमैं की रुकावट

अब मन में क़ुदरती ही यह विचार आता है कि अगर परमात्मा हरएक के अन्दर है तो हमें अपने अन्दर नज़र क्यों नहीं आता? हमारे अन्दर किस चीज़ की रुकावट है? वह रुकावट किस प्रकार दूर हो सकती है? गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं:

> एका संगति इकतु ग्रिहि बसते मिलि बात न करते भाई॥
> अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई॥[73]

दोनों इकट्ठे ही रहते हैं और एक ही घर में दोनों का निवास है, लेकिन आपस में मिलाप नहीं है। आत्मा भी शरीर के अन्दर है, परमात्मा भी इस शरीर के अन्दर है, लेकिन न कभी आत्मा ने परमात्मा को देखा, न कभी आत्मा सुहागिन हुई। फिर ख़ुद ही जवाब देते हैं कि परमात्मा ज़रूर हमारे शरीर के अन्दर है, लेकिन हमारे और मालिक के दरमियान हौंमैं की बड़ी ज़बरदस्त रुकावट है। गुरु नानक देव जी का कथन है:

> हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ॥ हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ॥
> हउ विचि दिता हउ विचि लइआ॥ हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ॥
> हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु॥ हउ विचि पाप पुंन वीचारु॥
> हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु॥[74]

फिर गुरु अंगद देव जी कहते हैं:

> हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि॥
> किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि॥[75]

गुरु नानक देव जी कहते हैं:

जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ॥[76]

हम जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, अगर हमारे अन्दर से हौमैं की रुकावट दूर हो जाये। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि जीउ सचा ऊचो ऊचा हउमै मारि मिलावणिआ॥[77]

वह परमात्मा सच्चा है, ऊँचे से ऊँचा है यानी सचखण्ड का रहनेवाला है, लेकिन जब तक हम हौमैं की रुकावट दूर नहीं करेंगे, उस परमात्मा से नहीं मिल सकते। यही दादू साहिब समझाते हैं:

दादू दावा दूर कर, निरदावे दिन काट।
केते सौदा कर गये, पंसारी की हाट॥[78]

हे दादू! दुनिया में किसी चीज़ का दावा न कर। तेरा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। यह सब कुछ उस परमात्मा का है। इसको परमात्मा का ही समझ, अपना बनाने की कोशिश न कर। न यह दुनिया कभी किसी की बनी है और न कभी बन सकती हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा इस संसार को अपना बनाते-बनाते चले गये , यह दुनिया उनकी न बन सकी। यह हमारा मोह और हौमैं ही है जो बार-बार हमें इस देह के बन्धनों में लाता है।

बाइबल में ईसा मसीह ने भी ज़िक्र किया है, 'ऊँट सूई के नाके में से भले ही गुज़र जाए लेकिन किसी दौलतमन्द का ख़ुदा की दरगाह में दाख़िल होना मुश्किल है।'[79] बुल्लेशाह का भी यही कलाम है:

दुई दूर करो कोई शोर नहीं, इहाँ तुरक हिन्दू कोई होर नहीं।
सब साध लखो कोई चोर नहीं, हरि घट घट बीच समाया है॥[80]

इसी तरह कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

काम तजे तें क्रोध न जाई, क्रोध तजे तें लोभा।
लोभ तजे अंहकार न जाई, मान बड़ाई सोभा॥[81]

हौंमैं क्या है? हम जो सारा दिन सोचते हैं कि यह मेरी औलाद है, मेरी जायदाद है, मेरी धन-दौलत है, ये सब कुछ असल में उस परमात्मा का है। हम अपने आपको उस परमात्मा से अलग समझे बैठे हैं, इनको अपना बनाने की कोशिश करते हैं। लेकिन ये आज तक न किसी के बने हैं, न कभी बन सकते हैं। अगर हम इन्हें अपना बनाने की कोशिश करते हैं, तो हमारा मन इनमें इतना उलझ जाता है कि रात को हमें इनके ही सपने आने शुरू हो जाते हैं और मौत के समय इनकी ही शक्लें हमारी आँखों के सामने आकर सिनेमा की तस्वीरों की तरह घूमनी शुरू हो जाती हैं। जिस ओर भी आख़िरी वक़्त हमारा ख़याल होता है, हम दुनिया के जीव उसी रौ में बह जाते हैं। यह दुनिया की शक्लों और पदार्थों का मोह या प्यार है जो हरएक जीव को बार-बार देह के बन्धनों की ओर खींचकर ले आता है। ईसा मसीह भी बाइबल में कहते हैं, 'और मनुष्य के बैरी उसके परिवार वाले ही होंगे।'[82]

फिर वे आगे बताते हैं कि हमारे सच्चे रिश्तेदार कौन हैं? 'जो कोई मेरे परमपिता की इच्छा पर चले वही मेरा सच्चा भाई, सच्ची बहन और सच्ची माता है।'[83]

हमारा मन

दुनिया की शक्लों और पदार्थों से कौन प्यार किये बैठा है? यह हमारा मन है। इसलिए अगर आत्मा और परमात्मा के दरमियान कोई रुकावट और पर्दा है तो वह केवल हमारे मन का पर्दा है। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं, 'मनि जीतै जगु जीतु॥'[84] अगर हम अपने मन को जीत लेते हैं तो सारी दुनिया के बनानेवाले को ही जीत लेते हैं। दुनिया में अगर कोई हमारा दुश्मन है तो सिर्फ़ हमारा मन ही है। यह कभी किसी को अपना बनाता है, तो कभी किसी को बेगाना समझता है। अच्छी तरह विचार करके देखें तो पता चलता है कि यह सिर्फ़ हमारा मन ही है जिसके ताबे होकर क़ौम, क़ौम की दुश्मन है; मज़हब, मज़हब का दुश्मन है; एक देश, दूसरे देश को तबाह करना चाहता है; भाई, भाई को देखना नहीं चाहता और लोग हमेशा एक-दूसरे के गले काटने की तरकीबें और उपाय सोचते रहते हैं। यह सब कुछ

हमारा मन ही हमसे करवा रहा है। जब तक हम अपने मन को वश में नहीं करते, हम वापस जाकर परमात्मा से मिलने के क़ाबिल कैसे हो सकते हैं?

मन को वश में करने का क्या मतलब है? जिस प्रकार हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, इसी प्रकार हमारा मन भी कोई छोटी चीज़ नहीं है। यह भी ब्रह्म का अंश है, त्रिकुटी का रहनेवाला है, लेकिन यहाँ माया के जाल में फँसकर अपने आपको भूल गया है। आत्मा सत्तपुरुष की अंश है, सचखण्ड की रहने वाली है। यहाँ आकर इसने भी मन का साथ लिया हुआ है यानी आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है। जब तक आत्मा मन का साथ नहीं छोड़ती, न उसे कभी अपने आपका पता चल सकता है और न कभी वह अपने असल या मूल से मिलने के क़ाबिल हो सकती है। मन का साथ आत्मा उस समय ही छोड़ सकेगी जब मन वापस जाकर ब्रह्म या त्रिकुटी में अपने ठिकाने पर पहुँच जायेगा। हमें जो भी कोशिश करनी है, वह मन और आत्मा की गाँठ खोलने की करनी है। इसी लिए सुकरात ने कहा, 'अपने आपको पहचानो।'[85] यही गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

सो जनु निरमलु जिनि आपु पछाता॥[86]

वह व्यक्ति निर्मल और पवित्र है जो अपने आपको पहचानने के क़ाबिल बन जाता है। कबीर साहिब भी यही फ़रमाते हैं:

साधो सतगुरु अलख लखाया, जब आप आप दरसाया।[87]

स्वामी जी महाराज भी फ़रमाते हैं:

आप आप को आप पिछानो। कहा और का नेक न मानो॥[88]

अपने आपको पहचानने का मतलब यह है कि हमें मन और माया के दायरे से पार जाना है। हमें अपनी आत्मा पर से सूक्ष्म, स्थूल और कारण तीनों ग़िलाफ़ उतारने हैं और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण— तीनों गुणों से पार जाना है। तब जाकर अपने आपका पता चलेगा, अपने असल की पहचान होगी। हमारी आत्मा तो बिलकुल निर्मल, पवित्र और पाक थी, लेकिन मन

का साथ लेने के कारण अति गन्दी और मैली हो चुकी है। मिसाल के तौर पर बादलों में पानी कितना साफ़-सुथरा होता है, लेकिन जब वह बरसात बनकर ज़मीन पर आता है तो कितना गन्दा हो जाता है, उसमें से बदबू तक आनी शुरू हो जाती है। वह अपनी असलियत को बिल्कुल भूल जाता है और अपने आपको गन्दगी का ही रूप समझना शुरू कर देता है। लेकिन जब उसे सूरज की तपिश मिलती है और वह भाप बनकर उस गन्दगी को छोड़ता है तब उसे अपने आपका होश आता है कि मैं कौन हूँ। तब उसको अपने आपका पता चलता है, फिर वह अपने असल या मूल के बारे में सोचता है और सीधा जाकर बादलों में, अपने असल में ही समा जाता है। यही हमारी आत्मा की हालत है। यह माया के जाल में फँसकर मन के ताबे हो चुकी है, और मन आगे इन्द्रियों के भोगों का आशिक़ बन चुका है और जो-जो कर्म मन करता है, उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है। जब तक यह मन का साथ नहीं छोड़ेगी, यह कभी अपने असल के अन्दर समाने के क़ाबिल नहीं हो सकेगी। महात्मा चरन दास जी फ़रमाते हैं:

> इंद्रिन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्ध।
> कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ बिरुद्ध ॥[89]

बिजली का एक बल्ब चाहे कितनी ही रोशनी वाला क्यों न हो, अगर हम उसके चारों ओर बहुत-से काले कपड़े लपेटना शुरू कर दें तो उसकी रोशनी कम होते-होते ख़त्म हो जायेगी। जैसे-जैसे हम वे काले कपड़े उतारते जायेंगे, उसकी रोशनी और ज्योति प्रकट होनी शुरू हो जायेगी और सब कपड़े उतर जाने पर उसकी रोशनी पूर्ण रूप से प्रकट हो जायेगी। इसी प्रकार जैसे-जैसे हमारी आत्मा मन का साथ छोड़ती जायेगी या मन के परदे उस पर से उतरते जायेंगे, वह अपने आपको पहचानने के क़ाबिल बनती जायेगी। इसी लिए कहा है, परमात्मा को पहचानने से पहले अपने आप को पहचानना ज़रूरी है।

हमें जो भी कोशिश करनी है, जो भी तरीक़ा सोचना है, वह अपने मन को वश में करने का ही सोचना है, मन को वापस ब्रह्म या त्रिकुटी में ले जाने की कोशिश करनी है। हरएक धर्म का यही उद्देश्य है। अब सवाल पैदा हुआ कि इस मन रूपी दुश्मन को किस तरह क़ाबू किया जाये? हम दुनिया के जीव अपनी-अपनी अक़्ल के अनुसार हज़ारों युक्तियों और तरीक़ों से मन को वश में करने की कोशिश करते हैं। जप-तप करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, ग्रन्थ-पोथियाँ, वेद-शास्त्र आदि पढ़ते हैं, दान-पुण्य करते हैं, कई प्रकार के हवन वग़ैरह भी करते हैं। यहाँ तक कि घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में छिपकर बैठ जाते हैं। ये सभी साधन सिर्फ़ मन को वश में करने के लिए ही करते हैं। हम हठ-कर्मों के ज़रिये अपने ख़याल को दुनिया से अलग करने की कोशिश करते हैं। क्योंकि हमारा ख़याल आगे जाकर किसी चीज़ से जुड़ता नहीं, इसलिए वह लौटकर दुनिया में ही भटकना शुरू कर देता है।

दुनिया में से अपने ख़याल को ज़बरदस्ती निकालना ऐसे ही है जैसे एक ज़हरीले साँप को किसी टोकरी या पिटारी में बन्द कर देना है। जितनी देर वह टोकरी के अन्दर बन्द रहता है, हम उसके डंक और ज़हर से बचे रहते हैं। लेकिन जब भी उसको बाहर निकलने का मौक़ा मिलेगा, वह ज़रूर डसेगा, कभी अपनी आदत से बाज़ नहीं आ सकता। इसलिए साँप को टोकरी में बन्द कर देने से हम हमेशा के लिए उसके ज़हर से निश्चिन्त नहीं हो सकते। हमें अपनी जान का ख़तरा लगा ही रहता है। अगर उसी साँप को पकड़कर उसकी विष की थैली ही निकाल दें, तो वह विषहीन हो जाता है और हम हमेशा के लिए उसके डंक से बच जाते हैं, चाहे उसे फिर अपने गले में डालकर रखें।

इस प्रकार हम जंगलों-पहाड़ों में छिपकर, ग्रन्थ-पोथियाँ, वेद-शास्त्र पढ़कर, बाल-बच्चों को त्यागकर समझ लेते हैं कि हमारा मन वश में आ गया है। लेकिन जिस समय दुनिया का सामना करना पड़ता है, वे ही इच्छाएँ और तृष्णाएँ जो हमारे अन्दर दबी पड़ी थीं, हमें फिर से अँगुलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, बल्कि हमारी हालत आम लोगों से भी बदतर हो जाती है।

जितना हम मन को दबाते हैं, उतना ही वह विद्रोह करता है। ज़बरदस्ती मन को वश में करना ऐसे ही है जैसे सुलगते हुए कोयलों पर राख डाल देना। देखने में आग बुझी हुई लगती है लेकिन जब ज़रा भी हवा चलती है, वह राख उड़ जाती है और आग फिर से भड़क उठती है। इसी प्रकार जब भोगों और विषयों की आँधी आती है, हमारा मन फिर जागकर बेक़ाबू हो जाता है और पहले से भी ज़्यादा मुँहज़ोर हो जाता है।

ज़बरदस्ती मन को क़ाबू करना ऐसे ही है जैसे हम किसी बदमाश को पुलिस के हवाले कर देते हैं। जब तक वह पुलिस की हिरासत में रहता है, तब तक हम उसकी शरारतों से ज़रूर बचे रहते हैं। लेकिन जब पुलिस उसे आज़ाद कर देती है, वह बस्ती में आकर फिर वैसी ही शरारतें शुरू कर देता है। अगर उस बदमाश को पुलिस के हवाले करने की बजाय हम समझा-बुझाकर एक भलामानस इनसान बना लें तो हम हमेशा के लिए उसकी शरारतों से बच सकते हैं। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि हठ-कर्मों के द्वारा या 'डिसिप्लिन' (discipline) या संयम के द्वारा हम अपने मन को कभी वश में नहीं कर सकते। कुछ समय के लिए ज़रूर कुछ शान्ति या आराम प्राप्त कर लेंगे, लेकिन हमेशा के लिए नहीं।

अगर हम मन को हमेशा के लिए वश में करना चाहते हैं तो मन की आदत और स्वभाव को अच्छी तरह समझना ज़रूरी है। हमारा सबका अनुभव है कि मन लज़्ज़तों का आशिक़ है। यह एक चीज़ से प्यार करता है, अगर दूसरी चीज़ या शक्ल उससे अच्छी दिखाई देती है तो पहली को छोड़कर दूसरी की ओर दौड़ना शुरू कर देता है। कोई भी मोह या प्यार हमेशा के लिए हमारे मन को बाँधकर नहीं रख सकता। हरएक का अपने-अपने जीवन का अनुभव है कि वे शक्लें या पदार्थ जिन्हें हम किसी समय अपना बनाने की कोशिश करते थे और समझते थे कि उनके बग़ैर हमारा ज़िन्दा रहना ही मुश्किल या असम्भव है, कोई वक़्त आता है कि उन्हें देखना तक गवारा नहीं करते।

हम देखते हैं कि मन 'वेराइटी' (variety) का आशिक़ है, एक ही चीज़ को देख-देखकर, खा-खाकर हम ऊब जाते हैं। अपनी सारी ज़िन्दगी

को आँखों के आगे रखकर ग़ौर से देखें कि बचपन में हमारा माता-पिता से कितना प्यार था, अगर वे दो मिनट भी हमारी आँखों से दूर हो जाते थे तो हम रोना और चीख़ना-चिल्लाना शुरू कर देते थे। लेकिन जब दो-तीन भाई-बहन हो जाते हैं तो वही माता-पिता का प्यार भाई-बहनों के प्यार में बदलना शुरू हो जाता है। जब स्कूलों और कालेजों में जाते हैं, वही प्यार यार-दोस्तों से हो जाता है। शादी के बाद पत्नी और बाल-बच्चों के प्यार में बदल जाता है। बूढ़े होते हैं तो क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों तक जाकर फैल जाता है। एक प्यार है, कितनी शक्लें बदलता है! लेकिन कोई भी प्यार हमारे मन को हमेशा के लिए बाँध नहीं सकता, क्योंकि हमारा मन लज़्ज़त का आशिक़ है। जब तक हमारे मन को दुनिया की लज़्ज़त और मोह या प्यार से ऊँची और सच्ची लज़्ज़त नहीं मिलती, यह दुनिया की लज़्ज़त और मोह या प्यार को किसी भी हालत में छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता।

वह लज़्ज़त किस चीज़ की है जिसे पाकर हमारा मन दुनिया के मोह या प्यार को छोड़ देगा? महात्मा अपना अनुभव बतलाते हैं कि वह शब्द या नाम की लज़्ज़त है। वह लज़्ज़त इतनी ऊँची, पवित्र और निर्मल है कि उसे पाकर हमारा मन अपने आप ही दुनिया के मोह व प्यार को छोड़ देता है। जिसको हीरे और जवाहरात मिल जाते हैं, वह कौड़ियों के लिए दर-ब-दर ठोकरें नहीं खाता। लड़कियाँ गुड़ियों और खिलौनों से तब तक खेलती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। यह बात ग़लत है कि अगर हठ-कर्मों के ज़रिये मन को दुनिया में से निकाल लिया जाये तो यह अपने आप परमात्मा से जुड़ जायेगा। यह ज़रूरी नहीं कि एक चीज़ का त्याग करने से दूसरी के साथ अपने आप प्यार हो जायेगा। लेकिन जब एक चीज़ को प्यार करते हैं तो मन क़ुदरती तौर पर दूसरी को छोड़ देता है। मन एक ही समय दो चीज़ों को प्यार नहीं कर सकता। 'डीटैचमैंट' (detachment) या वैराग्य कभी हमारे अन्दर 'अटैचमैंट' (attachment) या लगाव पैदा नहीं कर सकता, सिर्फ़ लगाव ही हमारे अन्दर वैराग्य पैदा कर सकता है। अगर एक लड़की को शादी से पहले समझाया जाये कि माता-पिता का प्यार छोड़ दे, भाई-बहनों, सखियों-सहेलियों को भूल जा ताकि तेरी शादी कर दें, तो यह

उसके लिए कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव होगा। शादी के बाद जब उसका अपने पति से प्यार हो जाता है तो माता-पिता, भाई-बहन, सखियों-सहेलियों को अपने आप ही भूल जाती है। एक कंगाल कौड़ियाँ माँगता फिरता है, उससे अगर हम एक कौड़ी भी छीनने की कोशिश करें तो वह मरने-मारने को तैयार हो जाता है। लेकिन जब हम उसके हाथ में अशरफ़ी दे दें तो उसकी कौड़ियों वाली मुट्ठी अपने आप खुल जायेगी। गुरु अर्जुन देव जी मन के बारे में समझाते हैं:

> पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे॥
> पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे॥
> पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका॥[90]

मन को वश में करने के लिए हमने अनगिनत ग्रन्थों-पोथियों का पाठ किया, षट्-दर्शन, अठारह पुराण, गीता-भागवत और वेदों-उपनिषदों पर भी विचार किया, प्राणायाम, न्योली कर्म और हठयोग की कठिन क्रियाएँ करके भी देखीं, कुण्डलिनी साधने का भी यत्न किया, लेकिन पाँच डाकुओं-काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—से पीछा न छूटा, बल्कि मन का अहंकार और बढ़ गया। आप आगे समझाते हैं:

> मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही॥
> तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही॥
> मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए॥
> मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए॥[91]

बोलना बन्द करके चुप भी रहे, घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में गये, कपड़े, बर्तन वग़ैरह भी त्यागे और सिर्फ़ हाथों में ही खाना खाया, धरती के सब तीर्थों में घूमे, सारी धरती की परिक्रमा भी की, और भी ऐसे कितने ही कठिन साधन किये, लेकिन फिर भी मन का मैल न उतरा। मन को वश में करने के लिए काशी जाकर करवत भी लिया यानी आरे के द्वारा अपने शरीर को चिरवा लिया। इस प्रकार के और भी लाखों यत्न किये,

लेकिन न तो मन की दुविधा दूर हुई न ही प्रभु की प्राप्ति हुई। साईं बुल्लेशाह भी यही पुकार-पुकार कर कहते हैं:

ना ख़ुदा मसीते लभदा, ना ख़ुदा ख़ाना काबे।
ना ख़ुदा क़ुरान कतेबाँ, ना ख़ुदा नमाज़े॥
ना ख़ुदा मैं तीरथ डिठा, ऐवें पैंडे झागे*।
बुल्ला शौह जद मुरशद मिल गया, टुटे सब तगादे॥[92]

मन को वश में करने का तो सिर्फ़ एक ही उपाय है कि इसे शब्द या नाम की लज़्ज़त दी जाये। जैसे-जैसे यह शब्द या नाम का रस पियेगा, वैसे-वैसे इसका दुनिया से मोह या प्यार टूटना शुरू हो जायेगा। शब्द की कशिश और नाम की लज़्ज़त इसे दुनिया से अलग कर देगी। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

कोटि जतन से यह नहिं माने। धुन सुन कर मन समझाई॥
जोगी जुक्ति कमावें अपनी। ज्ञानी ज्ञान कराई॥
तपसी तप कर थाक रहे हैं। जती रहे जत लाई॥
ध्यानी ध्यान मानसी लावें। वह भी धोक्खा खाई॥
पंडित पढ़ पढ़ वेद बखानें। बिद्या बल सब जाई॥
बुद्धि चतुरता काम न आवे। आलिम रहे पछताई॥
और अमल का दख़ल नहीं है। अमल शब्द लौ लाई॥
गुरू मिले जब धुन का भेदी। शिष्य विरह धर आई॥
सुरत शब्द की होय कमाई। तब मन कुछ ठहराई॥[93]

एक और शब्द में भी स्वामी जी महाराज उपदेश देते हैं:

सोता मन कस जागे भाई। सो उपाव मैं करूँ बखान॥
तीरथ करे बर्त भी राखे। विद्या पढ़ के हुए सुजान॥
जप तप संजम बहु बिधि धारे। मौनी हुए निदान॥

* झागे=यों ही व्यर्थ।

अस उपाव हम बहुतक कीन्हे। तो भी यह मन जगा न आन॥
खोजत खोजत सतगुरु पाये। उन यह जुक्ति कही परमान॥
सतसंग करो संत को सेवो। तन मन करो क़ुरबान॥
सतगुरु शब्द सुनो गगना चढ़। चेत लगाओ अपना ध्यान॥
जागत जागत अब मन जागा। झूठा लगा जहान॥
मन की मदद मिली सूरत को। दोनों अपने महल समान॥
बिना शब्द यह मन नहिं जागे। करो चाहे कोइ अनेक विधान॥[94]

एक अन्य शब्द में आप अच्छी तरह समझाते हैं:

जिन्हों ने मार मन डाला। उन्हीं को सूरमा कहना॥
बड़ा बैरी यह मन घट में। इसी का जीतना कठिना॥
पड़ो तुम इसही के पीछे। और सबही जतन तजना॥
गुरू की प्रीत कर पहिले। बहुरि घट शब्द को सुनना॥
मान दो बात यह मेरी। करे मत और कुछ जतना॥[95]

गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

सचै नामि सदा मनु सचा सचु सेवे दुखु गवावणिआ॥[96]

सिर्फ़ सच्चे शब्द या सच्चे नाम की कमाई करके ही हमारा मन निर्मल, पवित्र और पाक हो सकता है। सच्चे शब्द की कमाई करके ही हम चौरासी के दु:खों से बच सकते हैं। गुरु नानक साहिब बड़ी सुन्दर मिसाल देते हैं:

गुरमुखि गारड़ु जे सुणे मंने नाउ संतोसु॥[97]

अगर किसी को साँप डस लेता है तो उसके इलाज के लिए, उसका ज़हर उतारने के लिए, किसी डाक्टर के पास जाते हैं। उसकी दवा के द्वारा साँप का ज़हर उतर जाता है। इसी प्रकार अगर हम मन रूपी साँप का ज़हर अपने अन्दर से निकालना चाहते हैं तो हमें सन्तों के पास जाकर अपने ख़याल को शब्द या नाम के साथ जोड़ना होगा। मन को वश में करने का और कोई इलाज या तरीक़ा नहीं है। गुरु नानक देव जी आगे फ़रमाते हैं:

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु ॥[98]

यह हमारा मन जो विषय-विकारों में, दुनिया के मोह या प्यार में फँसकर हिरण की तरह भटकता फिरता है, जब यह राम-नाम या शब्द के साथ जुड़ जाता है तो हमेशा के लिए बिँध जाता है। इसके अलावा और कोई विचार करना या इस मन को वश में करने का और कोई उपाय करना व्यर्थ है। स्वामी जी महाराज भी समझाते हैं:

सुर्त शब्द कमाई करना। सब जतन दूर अब धरना ॥[99]

सच्चा नाम

हम किसी भी महात्मा की वाणी की खोज करें, यही पता चलेगा कि सभी महात्मा नाम या शब्द की महिमा करते हैं। हमारे जितने भी मज़हब हैं, हरएक के रीति-रिवाज या शरीयत अपनी-अपनी है। लेकिन जो असली रूहानियत है, सत्य का मूल रूप है, रूहानियत की जड़ है, वह हरएक मज़हब की तह में एक ही है। हरएक महात्मा हमारे अन्दर सिर्फ़ इस रूहानियत को ही प्राप्त करने का शौक़ व प्यार पैदा करते हैं, उसकी प्राप्ति का तरीक़ा या साधन समझाते हैं। इस रूहानियत को अलग-अलग महात्माओं ने अलग-अलग जातियों, धर्मों और देशों में आकर अलग-अलग लफ़्ज़ों या शब्दों के ज़रिये समझाने की कोशिश की है। ऋषि-मुनि इसको राम-नाम, राम-धुन, निर्मल-नाद, दिव्य-ध्वनि या कई और शब्दों से याद करते हैं। गुरु नानक साहिब इसे आम तौर पर 'शब्द' या 'नाम' कहकर याद करते हैं। इसी को गुरु की वाणी, धुर की वाणी, सच्ची वाणी, अमर, हुकम, अकथ-कथा, हरि-कीर्तन और निर्मल नाद कहकर बयान करते हैं। मुसलमान फ़क़ीर इसे कलमा, इस्मे-आज़म, बाँगे-सुल्तानी, कलामे-इलाही या सुल्तान-उल-अज़कार कहते हैं। ईसा ने इसे 'वर्ड' या 'लॉगॉस' कहा है। इसे ऋग्वेद में 'वाक्' कहा गया है, 'यावृत ब्रह्म श्रेष्ठम् तावती वाक्'[100] यानी शब्द इतना महान् है जितना कि ब्रह्म। शत्पथ ब्राह्मण में आता है, 'वाक् एव ब्रह्म'[101] यानी शब्द ही ब्रह्म है।

हमारा लफ़्ज़ों के साथ कोई विवाद नहीं है। हमें तो उस रूहानियत की खोज करनी है जिसकी हर महात्मा महिमा करता है और जिसको पाकर हमारा मन बिँध जाता है और वापस जाकर अपने ठिकाने पर पहुँच जाता है। जब तक हमें यह समझ न आये कि महात्मा शब्द, नाम, वाक या वाणी किसको कहते हैं, वह किस जगह है, किस प्रकार हमें उसके साथ अपना ख़याल जोड़ना है और उसकी हमें क्या ज़रूरत है, तब तक हम बेशक किसी भी महात्मा की वाणी या ग्रन्थ-पोथी पढ़ते रहें, हम कभी उससे फ़ायदा नहीं उठा सकते। महात्माओं की वाणी में जगह-जगह सच्चे शब्द, सच्चे नाम या सच्ची वाणी का ज़िक्र आता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सचै सबदि सची पति होई॥[102]

जब सन्त-महात्मा सच्चें शब्द की महिमा करते हैं तो मन में यह विचार ज़रूर आता है कि शायद और भी कोई वाणी, शब्द या नाम ऐसा है जो सच्चा नहीं है। सच्चे शब्द का मतलब उस वाणी, शब्द या नाम से है जो कभी नाश नहीं होता, फ़ना नहीं होता। सन्त-महात्मा समझाते हैं कि शब्द या नाम दो प्रकार का है। एक वर्णात्मक शब्द है, दूसरा धुनात्मक। वर्णात्मक शब्द हम उसे कहते हैं जो हमारे लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है। हमने अपने-अपने प्यार में आकर उस परमात्मा के जितने भी नाम रखे हुए हैं—अल्लाह, वाहिगुरु, राधास्वामी, हरिओम, परमात्मा, परमेश्वर—आदि ये सब हमारे वर्णात्मक शब्द हैं, क्योंकि ये लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं। हमारे कई मुल्क हैं। हर मुल्क में कई-कई बोलियाँ हैं और हरएक बोली में हम कितने ही लफ़्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद करते हैं। हज़ारों, अनेकों महात्मा दुनिया में आये हैं और हज़ारों अनेकों ही अभी आयेंगे। उन्होंने अनेकों लफ़्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है और अनेकों ही लफ़्ज़ों के द्वारा अभी याद करेंगे। पिछले रखे हुए नाम हम भूलते जाते हैं और अपने प्यार में आकर कई और नाम रखते चले जा रहे हैं।

हम हरएक नाम का इतिहास खोज सकते हैं और उसका समय निश्चित कर सकते हैं। स्वामी जी महाराज को आये सिर्फ़ सौ वर्ष हुए हैं, उनके आने

के बाद हमने उस मालिक को 'राधास्वामी' कहना शुरू कर दिया। लेकिन इस बात का हम कभी विचार ही नहीं करते कि स्वामी जी महाराज के आने से पहले भी हम दुनिया के जीव यहीं थे, और वही मालिक था और हम कई लफ़्ज़ों से उस मालिक को याद करते थे। इसी प्रकार श्री गुरु नानक देव जी के आने के बाद हमने उस परमात्मा को 'वाहिगुरु' कहकर पुकारना शुरू कर दिया। लेकिन आपको भी आये केवल पाँच सौ वर्ष हुए हैं। मुहम्मद साहिब के आने के बाद हम उस मालिक को 'अल्लाह' कहकर याद करने लगे। उनको भी आये हुए अधिक समय नहीं हुआ, सिर्फ़ चौदह सौ साल हुए हैं। और इसी तरह श्री रामचन्द्र जी महाराज के आने के बाद उस मालिक को हम 'राम-राम' कहकर पुकारने लगे। आपको आये इससे भी ज़्यादा समय हुआ होगा। मतलब यही है कि हरएक नाम का इतिहास खोजा जा सकता है।

वर्णात्मक शब्द भी चार प्रकार के हैं—बैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा। पहला वह जो ज़बान से बोला जाता है, जैसे हम हर रोज़ एक-दूसरे से बातचीत करते हैं। दूसरा वह जो कण्ठ से धीरे-धीरे बोलते हैं। तीसरा हृदय में और चौथा वह जो नाभि में योगीजन हिलोर उठाते हैं। ये सभी शब्द वर्णात्मक हैं और इनमें से कोई भी सच्चा शब्द या नाम नहीं है। स्वामी जी महाराज अपनी वाणी में फ़रमाते हैं:

> नाम निर्णय करूँ भाई। दुधा विधि भेद बतलाई॥
> वर्ण धुनआत्मक गाऊँ। दोऊ का भेद दरसाऊँ॥
> वर्ण कहु चाहे कहु अक्षर। जो बोला जाय रसना कर॥
> लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया॥[103]

जो नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है, जिसकी मियाद मुकर्रर की जा सकती है, इतिहास बताया जा सकता है, उसे महात्मा वर्णात्मक शब्द कहते हैं। जिस नाम की हरएक महात्मा महिमा करता है, जिस नाम की कमाई से हमें मुक्ति प्राप्त करनी है, मन को वश में करना है, आत्मा और मन की गाँठ को खोलना है और अपने आपको पहचान कर मालिक को

पहचानने के क़ाबिल बनना है, वह धुनात्मक नाम ही सच्चा नाम है। महात्मा केवल उस सच्चे नाम की ही महिमा करते हैं। वह सच्चा नाम न लिखने में आता है, न पढ़ने में और न बोलने में। उसको हुज़ूर महाराज जी (सावन सिंह जी महाराज) 'अनरिटन लॉ' यानी अलिखित कानून और 'अनस्पोकन लैंग्विज' यानी अनबोली वाणी कहकर समझाया करते थे। ईसा मसीह अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं, 'आँखें होते हुए तुम देख नहीं सकते, कान होते हुए सुन नहीं सकते।'[104] इसी प्रकार गुरु अंगद साहिब उस नाम की महिमा करते हैं:

अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा॥
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा॥
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥[105]

इस शब्द को न तो बाहर की आँखें देख सकती हैं, न कान सुन सकते हैं, न उस जगह हमारे ये पैर हमें लेकर पहुँच सकते हैं, न वह चीज़ इन हाथों से पकड़ी जा सकती है। उसे प्राप्त करने और परमात्मा से मिलने के लिए हमें जीते-जी मरना पड़ता है।

ये जितने भी हमारे लफ़्ज़ हैं, वर्णात्मक नाम हैं, ये हमारे ज़रिये, साधन या उपाय हैं और वह सच्चा नाम हमारा उद्देश्य और लक्ष्य है। इन लफ़्ज़ों के प्यार में उलझकर हमें किसी क़ौम, मज़हब और मुल्क के झगड़े खड़े नहीं करने हैं, बल्कि इन लफ़्ज़ों के ज़रिये उस सच्चे नाम की खोज करनी है। लेकिन हम दुनिया में क्या देखते हैं? कोई परमात्मा को वाहिगुरु कहकर याद करता है, वह अपने आपको सिक्ख समझना शुरू कर देता है। कोई अल्लाह कहकर पुकारता है, वह मुसलमान बन जाता है। कोई राम कहता है, वह हिन्दू कहलाना शुरू कर देता है। और हमारा एक-दूसरे से मिलना-जुलना भी मुश्किल हो जाता है। हम इस बारे में कभी नहीं सोचते कि हमारे लफ़्ज़ हमारे ध्यान या ख़याल को किस ओर ले जाते हैं। अगर आज हमारा ख़याल उस सच्चे शब्द से जुड़ जाता है तो दुनिया के सब झगड़े ख़त्म हो जाते हैं।

पहले अर्ज़ किया जा चुका है कि आत्मा की न कोई क़ौम है, न मज़हब और न कोई मुल्क। ये झगड़े तब तक ही हैं जब तक कि हमें सच्चे शब्द की समझ नहीं आती और हम इन लफ़्ज़ों से प्यार लगाये बैठे हैं। हरएक महात्मा हमें इन लफ़्ज़ों के भ्रम से निकालकर उस सच्चे शब्द से जोड़ने के लिए आता है। जिस प्रकार माता प्यार में आकर अपने बच्चे को कई लफ़्ज़ों से याद करती है, लेकिन माता का जो बच्चे से रिश्ता है, वह कोई लफ़्ज़ों का रिश्ता नहीं, बल्कि प्यार का रिश्ता है। ये लफ़्ज़ तो सिर्फ़ माता के प्यार को प्रकट करते हैं। वह प्यार असल में कोई और चीज़ है और ये लफ़्ज़ कोई और चीज़ हैं। इसी प्रकार मालिक के भक्तों और प्यारों ने अनेक लफ़्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है। असल में उस मालिक का कोई नाम नहीं है। जैसा कि कहा गया है:

बनामे ऊ कि ऊ नामे नदारद, बहर नामे कि ख़्वानी सर बर आरद।[106]

यानी उसके नाम से शुरू करता हूँ जिसका कोई नाम नहीं, जिस नाम से बुलाओ, वह जवाब देता है। ये जो उस मालिक के नाम हैं, ये सब वर्णात्मक शब्द हैं, लेकिन जिस शब्द के ज़रिये आत्मा उस परमात्मा में लीन हो सकती है वह सच्चा शब्द या सच्चा नाम है। उस सच्चे शब्द या सच्चे नाम का कोई इतिहास नहीं बतलाया जा सकता और न ही उसका कोई समय निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि उस सच्चे शब्द ने दुनिया की रचना की है, उसके आधार पर सब खण्ड-ब्रह्माण्ड चल रहे हैं और हम सबको उसका ही आसरा है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

उतपति परलउ सबदे होवै॥ सबदे ही फिरि ओपति होवै॥[107]

शब्द ने ही इस दुनिया की रचना की है और जिस समय परमात्मा उस शब्द की ताक़त को इस दुनिया से खींच लेगा, यहाँ प्रलय और महाप्रलय हो जायेगी। यह जितनी भी दुनिया की रचना है, सब पाँच तत्त्वों—की बनी हुई है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—हरएक चीज़ में कोई न कोई तत्त्व मौजूद है। ये पाँचों तत्त्व एक-दूसरे के दुश्मन हैं, लेकिन शब्द के

कारण और शब्द के आसरे ही ये एक-दूसरे का साथ दे रहे हैं। जिस समय परमात्मा उस शब्द की ताक़त को दुनिया से निकाल लेता है, पृथ्वी पानी में घुल जाती है, पानी को अग्नि ख़ुश्क कर देती है, अग्नि को हवा उड़ा ले जाती है और हवा को आकाश खा जाता है और इस सारी दुनिया में धुन्धुकार छा जाता है। इसी तरह हमारा यह शरीर पाँच तत्त्वों का पुतला है। जब तक उस शब्द की किरण हमारे अन्दर है, हम दुनिया में किस तरह दौड़ते फिरते हैं। जिस दिन उस शब्द की किरण या आत्मा को परमात्मा शरीर से निकाल लेता है, हमारा सारा शरीर यानी ये पाँचों तत्त्व बेकार हो जाते हैं, ये पाँच तत्त्व, पाँच तत्त्वों में ही जाकर मिल जाते हैं और हमारी हस्ती ख़त्म हो जाती है। इसी तरह महात्मा समझाते हैं कि उस शब्द के ही आधार पर सारी दुनिया चल रही है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥

. . . .

नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥[108]

इसी प्रकार गुरु अमरदास जी लिखते हैं, 'नामै ही ते सभु किछु होआ॥'[109] यानी जो कुछ भी हम दुनिया में देखते हैं, सब नाम ने ही पैदा किया है। बाइबल में सेंट जॉन का कथन है, 'आदि में शब्द था और शब्द परमेश्वर के साथ था और शब्द ही परमेश्वर था। यह सबकुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ और जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न नहीं हुई।'[110]

ऋषि-मुनि भी वेदों-शास्त्रों में उल्लेख करते हैं कि परमात्मा ने आकाशवाणी के द्वारा संसार की रचना की है। क़ुरान शरीफ़ में आया है कि उस मालिक ने 'कलमे' या 'कुन' के ज़रिये दुनिया पैदा की है। चीन के दर्शन-शास्त्रों में भी यही उल्लेख है कि 'टाओ' (Tao) ने दुनिया की रचना की है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं:

शबदे धरती शबदे आकास। शबदे शबद भया परगास॥
सगली सृसट शबद के पाछे। नानक शबद घटे घट आछे॥[111]

शाह-न्याज़ भी कहते हैं:

आलमे-सौत अज़ ऊ ज़ुहूर गरिफ़्त,
अज़ हज़रूश बिसाते-नूर गरिफ़्त।*[112]

हम ख़ुद ही अनुमान लगा सकते हैं कि जिस ताक़त ने दुनिया की रचना की हो उसका क्या इतिहास हो सकता है, क्या समय और क्या अवधि तय की जा सकती है? उसका समय और उसकी अवधि तो कोई हो ही नहीं सकती।

हमें मुक्ति प्राप्त करने के लिए उस सच्चे शब्द की ज़रूरत है। वह सच्चा शब्द परमात्मा ने सब मनुष्यों के अन्दर रखा है। जब तक हम अपने शरीर के अन्दर उसको खोजकर अपने ख़याल को उस सच्चे शब्द से नहीं जोड़ते, अपने आपको उसमें जज़्ब और लवलीन नहीं करते, हम कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

सचै सबदि सची पति होई॥ बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥[113]

सबदु न जाणहि से अंने बोले से कितु आए संसारा॥[114]

बिनु सबदै अंतरि आनेरा॥ न वसतु लहै न चूकै फेरा॥[115]

जब तक हम उस शब्द की खोज नहीं करते, हमारे अन्दर से अज्ञानता का अन्धेरा कभी दूर नहीं हो सकता, न परमात्मा ही मिल सकता है और न कभी देह के बन्धनों से छुटकारा हो सकता है। आप फ़रमाते हैं:

सबदि मरै सोई जनु पूरा॥ सतिगुरु आखि सुणाए सूरा॥[116]

---

* **आलमे...गरिफ़्त**=इस आवाज़ से आलम या संसार प्रकट हुआ, इसकी उपस्थिति से नूर की चादर प्राप्त हुई।

हज़रत ईसा भी बाइबल में कहते हैं, 'अगर तुम मेरे शब्द से जुड़े रहते हो तो मेरे सच्चे शिष्य हो; तभी तुम सच को जान सकोगे और वह सच तुम्हें आज़ाद कर देगा।'[117] आगे फिर कहते हैं कि उस नाम की कमाई के बिना तो मालिक की और कोई भक्ति ही नहीं है। बाइबल का कथन है, 'परमात्मा एक चेतन सत्ता (शब्द) है और जो उसे पूजना चाहें उन्हें चाहिए कि सच्चे और चेतन होकर उसे पूजें।'[118] कबीर साहिब समझाते हैं:

जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥[119]

जिस समय हमारे हृदय में नाम प्रकट हो जाता है, हमारे सब कर्मों का सिलसिला ख़त्म हो जाता है, जिनकी वजह से हम देह के बन्धनों में फँसे हुए हैं। जिस तरह एक सूखे घास का ढेर कितना ही बड़ा क्यों न हो, आग की एक चिनगारी उस पूरे ढेर को जलाकर राख कर सकती है, इसी तरह हम संसारी और मनमुख पुरुषों के कितने भी बुरे और खोटे कर्म क्यों न हों, यह नाम की कमाई हमारे सब कर्मों का हिसाब ख़त्म कर देती है। दरिया साहिब फ़रमाते हैं:

दरिया सुमिरै राम को, करम भरम सब खोय।
पूरा गुरु सिर पर तपै, विघन न लागै कोय॥[120]

इसी प्रकार गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

आनि आनि समधा बहु कीनी पलु बैसंतर भसम करीजै॥
महा उग्र पाप साकत नर कीने मिलि साधू लूकी दीजै॥[121]

स्वामी जी महाराज कहते हैं:

शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे॥[122]

हज़रत ईसा मसीह भी बाइबल में कहते हैं, 'जो शब्द मैंने तुमसे कहा है उसके द्वारा तुम अब शुद्ध हो गये हो।'[123] यानी मैंने जो सच्चा शब्द तुम्हें

दिया है उसने तुम्हारे सब पाप धो डाले हैं। कबीर साहिब तो नाम की यहाँ तक महिमा करते हैं:

नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम॥[124]

अगर कोई कोढ़ी भी है, जिसके शरीर से पानी बह रहा है, लेकिन उसका ख़याल अन्दर शब्द या नाम के साथ जुड़ा हुआ है, तो वह उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो सोने जैसी काया और दुनिया के सब ऐशो-आराम लेकर बैठा है, मगर परमात्मा को भूला हुआ है। जिस सच्चे नाम की महात्मा इतनी महिमा करते हैं, वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे शरीर के अन्दर ही है। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

सरीरहु भालणि को बाहरि जाए॥ नामु न लहै बहुतु वेगारि दुखु पाए॥[125]

जो उस नाम को शरीर के बाहर ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं, वे बेगारियों की तरह अपना क़ीमती समय बर्बाद करते हैं। बेगारी कौन है? जो सारा दिन मेहनत करता है, अपना ख़ून-पसीना एक कर देता है, लेकिन आख़िर में उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। अगर कोई चीज़ हमारे घर के अन्दर है तो बाहर खोजने से वह कैसे मिल सकती है? अब सवाल पैदा हुआ कि हमें अपने अन्दर शब्द या नाम रूपी खज़ाने की खोज किस तरह करनी है?

सिमरन और ध्यान

हमारा रूहानी सफ़र पैरों के तलवों से लेकर सिर की चोटी तक है और इस सफ़र की दो मंज़िलें हैं। एक आँखों तक है और दूसरी आँखों के ऊपर। हमारे शरीर के अन्दर आत्मा और मन का जो स्थान है, वह हमारी आँखों के पीछे है, जिसे मुसलमान फ़क़ीरों ने 'नुक्ताए-सुवैदा' कहकर बयान किया है, हज़रत ईसा ने जिसे 'घर का दरवाज़ा' कहकर समझाया है। ऋषियों-मुनियों ने उसका वर्णन 'शिव-नेत्र' और 'दिव्य-चक्षु' कहकर किया है। गुरु नानक साहिब उसे 'घर-दर' (घर का दरवाज़ा) या तिल कहते हैं। अगर हम कोई

बात भूल जायें और उसे याद करना चाहें तो हमारा हाथ अपने आप, क़ुदरती ही माथे पर आकर टिक जाता है। कभी हम किसी भूली हुई चीज़ को याद करने के लिए लातों-पैरों पर हाथ नहीं टिकाते। आँखों के बीच व पीछे के स्थान का हमारे सोचने-विचारने के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। हमारा हरएक का ख़याल यहाँ से उतर कर नौ द्वारों के ज़रिये सारी दुनिया के अन्दर फैल रहा है। गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

> मनु खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै तिलु घरि नही वासा पाईऐ॥
> गुरि अंकसु सबदु दारू सिरि धारिओ घरि मंदरि आणि वसाईऐ॥[126]

हमारा ख़याल तीसरे तिल से उतर कर पल-पल सारी दुनिया में फैलता जाता है और मन एक क्षण के लिए भी आँखों के पीछे नहीं ठहरता। जब तक मन आँखों के पीछे नहीं ठहरता तब तक यह अपने घर, त्रिकुटी में जाकर नहीं समा सकता।

हमारे शरीर के नौ दरवाज़े हैं—दो आँखें, दो कान के सूराख़, दो नाक के सूराख़, मुँह और नीचे दो इन्द्रियों के सूराख़। इन नौ द्वारों के ज़रिये हमारा ख़याल सारी दुनिया में फैलता है। कितनी ही अन्धेरी कोठरी के अन्दर जाकर क्यों न बैठ जायें, बाहर कितने ही ताले क्यों न लगे हों, हमारा मन वहाँ नहीं होगा, बाहर सारी दुनिया में फैला हुआ होगा। हमारे मन को दलीलें करने की और सोचने की जो आदत पड़ी हुई है, इसको महात्मा सिमरन करना कहते हैं।

सिमरन करने की हरएक को क़ुदरती आदत पड़ चुकी है। हम कभी एक मिनट के लिए भी सिमरन के बिना नहीं रह सकते, कोई बाल-बच्चों का सिमरन करता है, कोई घर के कारोबार का सिमरन करता है। जिसका भी हम सिमरन करते हैं, उसकी शक्ल हमारी आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। अगर बच्चों का सिमरन करते हैं, उनको याद करते हैं, उनकी शक्लें आँखों के आगे आ जाती हैं। अगर घर के कारोबार के बारे में ख़याल आता है तो घर के कारोबार आँखों के आगे आने शुरू हो जाते हैं। इसको महात्मा ध्यान करना कहते हैं। जिसका हम सिमरन करते हैं उसका ध्यान भी

करना शुरू कर देते हैं। जिन-जिन शक्लों और पदार्थों का सिमरन और ध्यान पकता जाता है, उनके साथ हमारा मोह या प्यार भी पैदा हो जाता है। सिमरन और ध्यान के ज़रिये हमारा उनके साथ इतना लगाव और प्यार पैदा हो जाता है कि रात को हमें सपने भी उनके ही आने शुरू हो जाते हैं। मौत के वक़्त उन्हीं की तस्वीरें हमारी आँखों के आगे आकर खड़ी हो जाती हैं और मौत के समय जिस ओर भी हमारा ख़याल होता है, उसी रौ (धारा) में हम बहना शुरू कर देते हैं। 'जहाँ आसा तहाँ बासा।' मौत के बाद उस मोह के बँधे हुए हम वापस वहीं आकर जन्म लेते हैं। संसार की शक्लों और पदार्थों का प्यार हमें संसार में ही वापस ले आता है।

इसलिए महात्मा समझाते हैं कि सिमरन और ध्यान की हमें क़ुदरती आदत पड़ी हुई है। इसलिए इस क़ुदरती आदत से फ़ायदा उठाओ और दुनिया के सिमरन और ध्यान के स्थान पर मालिक के नाम का सिमरन और ध्यान करो, क्योंकि सिमरन को सिमरन काटेगा और ध्यान को ध्यान काटेगा। पानी की मारी हुई खेती पानी से ही हरी-भरी होती है। दुनिया की नाशवान चीज़ों का सिमरन करके हम उनसे मोह या प्यार किये बैठे हैं। उनमें से कोई भी चीज़ हमारा साथ देनेवाली नहीं है। उनका मोह या प्यार हमें बार-बार देह के बन्धनों की ओर ले आता है। हमें चाहिए कि उस मालिक के नाम का सिमरन और ध्यान करें जो कभी फ़ना नहीं होता, जिसकी हमारी आत्मा अंश है और जिसके अन्दर वह समाना चाहती है। गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं:

निहचलु एकु आपि अबिनासी सो निहचलु जो तिसहि धिआइदा॥[127]

वह परमात्मा निश्चल है। वह कभी जन्म और मरण के दुःखों में नहीं आता। जो उसका ध्यान करते हैं, उससे प्यार करते हैं, उसका सिमरन करते हैं, वे भी निश्चल हो जाते हैं। उनका भी मरण-जन्म के दुःखों से छुटकारा हो जाता है।

हमें आँखों के पीछे अपना ख़याल जमाकर परमात्मा के नाम का सिमरन करके अपने फैले हुए ख़याल को वापस इकट्ठा करके इसी केन्द्र पर

एकाग्र करना है। यह इतना सरल और आसान तरीक़ा है कि छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक इसे आसानी से कर सकते हैं, क्योंकि सिमरन करने की आदत तो क़ुदरती ही सबको पड़ी हुई है। हमें दुनिया का सिमरन करने की इस आदत को छोड़कर मन को उस मालिक के नाम के सिमरन में लगाना है। जब सिमरन के द्वारा हमारा ख़याल उलटकर आँखों की तरफ़ इकट्ठा होता है तो मन उस जगह टिकता और ठहरता नहीं है, क्योंकि उसे बार-बार नौ द्वारों के ज़रिये बाहर दौड़ने की आदत पड़ी हुई है। इस अँधेरे, शून्य और खलाअ में मन को खड़ा करना बड़ा मुश्किल है। जब तक हम मन को किसी के स्वरूप के ध्यान का आधार नहीं देते और उसे वहाँ ठहराने वाली कोई चीज़ नहीं मिलती तो हमारे ख़याल के लिए वहाँ ठहरना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि मन को वहाँ खड़ा करने के लिए किसी न किसी के स्वरूप के ध्यान का आधार देना बहुत ज़रूरी है।

ध्यान किसके स्वरूप का करना चाहिए? यह बड़ी सोच और विचार करने योग्य बात है, क्योंकि जिसके भी स्वरूप का ध्यान करेंगे क़ुदरती ही हमारा उसके साथ मोह या प्यार पैदा हो जायेगा और जहाँ वह जायेगा, हम भी उसके मोह या प्यार में बँधे हुए वहीं जायेंगे। इस बात पर विचार करने के लिए हम सारी दुनिया पर नज़र डालकर देखते हैं कि कौन-सी चीज़ हमारे ध्यान के क़ाबिल हो सकती है।

जितनी भी दुनिया की चीज़ें हैं ये सब पाँच तत्त्वों की बनी हुई हैं। हरएक चीज़ के अन्दर कोई न कोई तत्त्व मौजूद है। मनुष्य के अन्दर पाँचों तत्त्व मौजूद हैं, इसलिए महात्मा हमें रचना का सरताज या अश्रफ़-उल-मख़्लूकात और पाँच तत्त्वों का पुतला कहते हैं। तत्त्वों की दृष्टि से हम रचना को पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं। पहली श्रेणी वह है जिसमें पानी का तत्त्व प्रधान है। इसमें फल, फूल, सब्ज़ी और पेड़-पौधे आते हैं। अगर हम पाँच तत्त्वों के पुतले होकर पेड़ों, पौधों आदि का ध्यान करेंगे तो हम उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि उनका ध्यान हमें उन्हीं के जामे में यानी पेड़ों, पौधों आदि के जामे में ले जायेगा। इसलिए पूरा वनस्पति जगत् हमारे ध्यान के क़ाबिल नहीं है। दूसरी श्रेणी कीड़े-मकौड़े, साँप, बिच्छू वग़ैरह की है जिनके

अन्दर दो तत्त्व—पृथ्वी और अग्नि—मौजूद हैं। ये भी हमारे ध्यान के क़ाबिल नहीं हो सकते। तीसरी श्रेणी पक्षियों की है जिनमें तीन तत्त्व हैं—हवा, पानी और अग्नि। अगर हम पाँच तत्त्वों वाले मनुष्य होकर गरुड़, मोर, चिड़ियों आदि का ध्यान करेंगे तो हम इन पक्षियों के जामे में आ जायेंगे। हमारा मक़सद तो इनसान के जामे से भी ऊपर जाने का है। इसलिए यह श्रेणी भी हमारे ध्यान के योग्य नहीं है। चौथी श्रेणी चौपायों, जानवरों की है, जिनमें बुद्धि या आकाश नहीं है, बाक़ी चार तत्त्व मौजूद हैं। इसलिए गाय, बैल, घोड़े वग़ैरह भी हमारे ध्यान के क़ाबिल नहीं। पाँचवीं श्रेणी ख़ुद इनसान की है और हर इनसान में पाँचों ही तत्त्व मौजूद हैं। इसलिए क़ुदरती तौर पर मन में यह विचार आता है कि इनसान, इनसान का ध्यान करे तो क्यों करे? ख़ासकर आजकल के ज़माने में जब हमारे सबके अधिकार समान हैं।

अब इनसान, इनसान का ध्यान नहीं करता, देवी-देवता किसी ने आज तक देखे नहीं, गायों-भैंसों की बोली समझ नहीं आती और मालिक के स्वरूप का पता नहीं। इस नुक़्ते पर पहुँचकर बहुत-से लोग परमात्मा की हस्ती से ही इनकार कर देते हैं और बाक़ी सब भी इस उलझन में फँस जाते हैं कि अब कौन-सी चीज़ हमारे ध्यान के योग्य हो सकती है। महात्मा एक बहुत अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं कि अगर एक कमरे में बहुत-से रेडियो रख दें, जिनका कनैक्शन किसी बैटरी या बिजली से न हो तो हम कभी किसी देश की ख़बरें नहीं सुन सकते। लेकिन उनका कनैक्शन अगर किसी बैटरी या बिजली से हो जाये तो हम जिस देश की चाहें ख़बरें सुन सकते हैं। इसी प्रकार हमें उन मालिक के भक्तों और प्यारों की खोज करनी है, जिनका कनैक्शन या तार परमात्मा के साथ जुड़ा हुआ है। वे अपनी भक्ति और प्यार के बँधे हुए वापस जाकर उसी परमात्मा से मिल जाते हैं। इसलिए हम भी उनके स्वरूप का ध्यान करके, उनके साथ प्यार लगाकर वापस जाकर उसी परमात्मा के अन्दर समा जायेंगे। गुरु अर्जुन साहिब समझाते हैं:

गुर की मूरति मन महि धिआनु ॥[128]

अकाल मूरति है साध संतन की ठाहर नीकी धिआन कउ ॥[129]

यानी सतगुरु के तसव्वुर या ध्यान को हमेशा मन में रखो। यही स्वामी जी महाराज का भी उपदेश है:

गुरू का ध्यान कर प्यारे। बिना इस के नहीं छुटना॥[130]

ईसा मसीह भी इसी ओर इशारा करते हुए कहते हैं 'मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसीलिए तुमने भी उस परमात्मा को देखा है, और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजनेवाले को देखता है।'[131]

भाव, सतगुरु के स्वरूप के ध्यान के द्वारा हम वापस जाकर उस परमात्मा में समा जाते हैं। ध्यान के द्वारा हमारे ख़याल को आँखों के पीछे ठहरने की आदत पड़ जाती है। ध्यान हमें अपने सतगुरु का करना है जिन्होंने मालिक की भक्ति का तरीक़ा और रास्ता हमें बताया है।

जब सिमरन के द्वारा हमारी सुरत तीसरे तिल में एकाग्र होती है, ध्यान के द्वारा वहाँ ठहर जाती है, तब हमें अपने आप पता चल जाता है कि आँखों के पीछे एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज़ आ रही है। यह आवाज़ मालिक की दरगाह से उठ रही है और हरएक मनुष्य के अन्दर है। यहाँ किसी क़ौम, मज़हब या मुल्क का सवाल नहीं है, चाहे हम हिन्दू हों या सिक्ख, मुसलमान या ईसाई हों। जो भी भाग्यशाली जीव अपने ख़याल को आँखों के पीछे एकाग्र करता है, उसका ख़याल अपने आप उस आवाज़ के साथ जुड़ जाता है। इस अभ्यास या क्रिया को महात्मा नौ द्वारे खाली करके दसवीं गली में जाना या जीते-जी मरना कहते हैं, क्योंकि ख़याल को आँखों के पीछे एकाग्र करके उस मीठी और सुरीली आवाज़ को सुनने से आत्मा और मन नौ द्वारों से आज़ाद हो जाते हैं और इनका सम्बन्ध इस दुनिया से बिल्कुल टूट जाता है। दुनिया के सब दुःख भूलकर मनुष्य अपने अन्दर शब्द की स्थायी ख़ुशी का अनुभव करने लगता है। कबीर साहिब इस बारे में लिखते हैं, 'कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनंदु॥'[132] गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ॥[133]

बाइबल में सेण्ट पाल भी कहते हैं, 'मैं प्रतिदिन मरता हूँ।'[134] अहले इसलाम की हदीस भी कहती है, 'मूतू कबलन्त मूतू'[135] यानी मौत से पहले मरो। प्रसिद्ध महात्मा दादू साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं:

जीवित माटी ह्वै रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहले मर रहै, पीछे तौ सब कोइ॥[136]

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सतिगुरु सेवे ता मलु जाए॥ जीवतु मरै हरि सिउ चितु लाए॥[137]

दरिया साहिब फ़रमाते हैं:

दरिया गुरु गरुवा मिला, कर्म किया सब रद्द।
झूठा भर्म छुड़ाय कर, पकड़ाया सत शब्द॥[138]

इसी प्रकार गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

मिटै अंधेरा अगिआनता भाई कमल होवै परगासु॥
गुर बचनी सुखु ऊपजै भाई सभि फल सतिगुर पासि॥[139]

उस मीठी और सुरीली आवाज़ को ही, जो कि आँखों के पीछे से आ रही है, महात्मा शब्द या नाम कहकर पुकारते हैं। ये जितने भी हमारे मज़हब हैं, सबके रीति-रिवाज या शरीयत अलग-अलग हैं, लेकिन जो असलियत है, हक़ीक़त है, रूहानियत का मूल है, वह हर धर्म या मज़हब की तह में एक ही है। उस रूहानियत को अलग-अलग महात्माओं ने अलग-अलग लफ़्ज़ों के द्वारा समझाने की कोशिश की है, लेकिन मतलब सबका उसी रूहानियत से है, उसी नाम या शब्द से है जो हरएक मनुष्य के अन्दर मौजूद है। हमें बाहरी लफ़्ज़ों के बहस-मुबाहिसे में नहीं उलझना चाहिए। हमें तो अपने शरीर के अन्दर उस केन्द्र पर अपने ख़याल को एकाग्र करना है, जहाँ वह शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा है। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

नउ दर ठाके धावतु रहाए॥ दसवै निज घरि वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ॥[140]

यानी जब हम अपने शरीर के नौ द्वारों में से ख़याल निकालकर आँखों के पीछे एकाग्र करते हैं तो हम अपने असली घर के दरवाज़े पर आ जाते हैं। हमारा असली घर सचखण्ड है जहाँ परमात्मा का निवास है। उसका दरवाज़ा आँखों के पीछे तीसरा तिल है। उस दरवाज़े की निशानी यह है कि उस जगह अनहद शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा है। जब तक उस घर के दरवाज़े पर ख़याल को इकट्ठा करके शब्द को नहीं पकड़ते, तब तक हमारा मुक्ति प्राप्त करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हज़रत ईसा भी इसी दरवाज़े की ओर इशारा करते हैं, 'ढूँढ़ो और तुम्हें मिलेगा, खटखटाओ और वह तुम्हारे लिए खोला जायेगा।'[141]

आन्तरिक मार्ग

अगर हमें अपने घर के अन्दर जाना हो तो सबसे पहले घर के दरवाज़े की तलाश करनी पड़ती है। निज-घर का वह दरवाज़ा आँखों के पीछे तीसरी आँख, एक आँख या तीसरा तिल है। उसी को खोलने के लिए हम उसको खटखटाते हैं यानी बार-बार सिमरन और ध्यान के द्वारा अपने फैले हुए ख़याल को आँखों के पीछे इकट्ठा करते हैं। जब बार-बार खटखटाने से यानी सिमरन और ध्यान से हमारा ख़याल इकट्ठा हो जाता है, तब उस घर का दरवाज़ा खुल जाता है। फिर हमें घर जाने का रास्ता मिलता है। जब हम अपने ख़याल को वहाँ जाकर शब्द के साथ जोड़ते हैं, तो शब्द का मार्ग खुल जाता है। उसके द्वारा हम वापस जाकर परमात्मा से मिलाप कर सकते हैं। तुलसी साहिब समझाते हैं:

कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से,
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिए।[142]

मुसलमानों का ख़याल है कि हज्ज यानी काअबा की यात्रा करने से हम नजात प्राप्त कर सकते हैं। तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि जो असली काअबा

है वह हमारा शरीर है। पैरों के तलवों से हमारा हज्ज शुरू होता है और सिर की चोटी पर जाकर ख़त्म होता है। इस हज्ज की दो मंज़िलें हैं—एक आँखों तक और दूसरी आँखों से ऊपर। मौलवी हमेशा मेहराब के अन्दर खड़ा होकर बाँग देता है। हमारे माथे की बनावट भी मेहराब की तरह है। जो मालिक की दरगाह की तरफ़ से क़ुदरती कलमा आ रहा है, वह इस मेहराब यानी माथे के अन्दर आ रहा है। जब हम उस आवाज़ या कलमे को पकड़ते हैं, तो हम उसके पीछे-पीछे चल कर अपनी मंज़िले-मक़सूद पर पहुँच जाते हैं जहाँ से यह आवाज़ आ रही है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

इसु काइआ अंदरि वसतु असंखा॥ गुरमुखि साचु मिलै ता वेखा॥
नउ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ॥[143]

हमारा यह शरीर सिर्फ़ हड्डियों और मांस का ही बना हुआ नहीं है और न सिर्फ़ पाँच-छः फुट लम्बा मिट्टी का पुतला ही है। परमात्मा ने इसके अन्दर बेशुमार ख़ज़ाने रखे हुए हैं। बल्कि वह परमात्मा भी ख़ुद इसके अन्दर बैठा हुआ है। जब तक कोई सच्चा गुरुमुख नहीं मिलता तब तक हम शरीर में उस परमात्मा को देखने और अन्दर खोज करने के तरीक़े का पता नहीं लगा सकते। आप समझाते हैं कि शरीर के दो हिस्से हैं, एक आँखों से नीचे और दूसरा आँखों से ऊपर। आँखों के नीचे नौ द्वारों में सिर्फ़ इन्द्रियों के भोग और विषय-विकारों के स्वाद हैं। जब तक हमारा ख़याल आँखों से नीचे-नीचे है, हम मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि मुक्ति का दरवाज़ा आँखों के पीछे है। उसकी यही पहचान है कि उस जगह अनहद शब्द धुनकारें दे रहा है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

गुर सबदि मिलहि से विछुड़हि नाही सहजे सचि समावणिआ॥[144]

जब हम गुरुमुखों के ज़रिये शब्द को पकड़ लेते हैं तो फिर शब्द हमें छोड़ता नहीं, अपने साथ लेकर परमात्मा में ही समा जाता है। हमें उस शब्द के ज़रिये अपने अन्दर अपने घर का रुख़ क़ायम करना है और शब्द के प्रकाश के ज़रिये अपने घर का रास्ता देखना है। हमारी आत्मा की जो देखने

की शक्ति है, उसे महात्मा 'निरत' कहते हैं और जो सुनने की शक्ति है उसे 'सुरत' कहते हैं। सुरत के द्वारा शब्द की आवाज़ को सुनना है और निरत के द्वारा उसके प्रकाश को देखना है।

मिसाल के तौर पर अगर हम अपने घर से शाम को सैर करते हुए कहीं दूर निकल जाते हैं, रात का अन्धेरा सिर पर छा जाता है, हाथ को हाथ नहीं सूझता, अपने घर के रास्ते का कुछ पता नहीं चलता और न घर के रुख़ का ही कुछ अन्दाज़ा रहता है, तब हम वापस अपने घर पहुँचने के लिए उस अन्धेरे में चुपचाप खड़े होकर बड़े ग़ौर से किसी न किसी आवाज़ को सुनने की कोशिश करते हैं जो कि हमारे घर की तरफ़ से आ रही हो। किसी रेडियो की आवाज़ हो या कुत्ता भौंकता हो, या ऐसी ही कोई और आवाज़ आती हुई सुनायी दे, तो हम उस आवाज़ को सुनकर अपने घर का रुख़ क़ायम कर लेते हैं कि हमारा घर आगे की तरफ़ है या पीछे की तरफ़ है, दाईं तरफ़ है या बाईं तरफ़। रुख़ का पता चल जाता है, लेकिन रास्ते में अन्धेरा है, ऊँची-नीची ज़मीन है, पानी या झाड़ियाँ वग़ैरह हैं, इसलिए अगर हमारे हाथ में कोई टार्च या लालटेन हो तो हम उसके प्रकाश के द्वारा ऊँची-नीची ज़मीन देखते हुए काँटों, झाड़ियों वग़ैरह से बचते हुए अपना रास्ता ढूँढ़कर सही-सलामत वापस अपने घर पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार महात्मा उपदेश देते हैं कि हमारे हरएक के अन्दर परमात्मा ने हमारे लिए वह आवाज़ भी रखी है और वह रोशनी भी रखी है। हमें उस आवाज़ को सुनकर अपने घर का रुख़ क़ायम करना है और रोशनी के ज़रिये अपना रूहानी सफ़र तय करना है। कबीर साहिब भी उसकी तरफ़ इशारा करते हैं, 'दीवा बले अगम का, बिन बाती बिन तेल'।[145] वह अगम की जोत हमारे सबके अन्दर बग़ैर बत्ती और तेल के जल रही है। पलटू साहिब भी अपना यही अनुभव समझाते हैं:

> उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग।
> तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती॥
> छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती।[146]

हमारे सिर के ऊपर के हिस्से को आप उलटा कुआँ कहकर बयान करते हैं। कुएँ का मुँह ऊपर और पैंदा नीचे होता है। हमारे सिर का पैंदा ऊपर और मुँह नीचे की तरफ़ है यानी उसकी बनावट कुएँ से उलटी है। आप फ़रमाते हैं कि जब हम नौ द्वारों से ख़याल को निकालकर आँखों के पीछे इकट्ठा करेंगे तो हम उस उलटे कुएँ के अन्दर आ जायेंगे। उस जगह हरएक के अन्दर एक जोत जल रही है। उस जोत को जलाने के लिए न तो किसी बत्ती की ज़रूरत है और न ही किसी तेल की। बाहर हम जितनी जोतें जलाते हैं उनको बत्ती और तेल की ज़रूरत होती है। अगर बत्ती ख़त्म हो जाये या तेल समाप्त हो जाये तो वे बुझ जाती हैं। लेकिन जिस जोत का पलटू साहिब ज़िक्र करते हैं वह जोत चौबीस घण्टे हमारे सबके अन्दर जल रही है। साल की छः ऋतुएँ होती हैं और बारह महीने। वह जोत हर ऋतु, हर महीने और हर वक़्त हर मनुष्य के अन्दर जल रही है। स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

बसो तुम आय नैनन में, सिमट कर एक यहँ होना।
दुई यहँ दूर हो जावे, दृष्टि जोत में धरना॥[147]

अगर हम अपनी तवज्जुह नौ द्वारों से समेट कर आँखों के पीछे इकट्ठी कर लें तो हम द्वैत से निकल कर एकता में आ जाते हैं और उस जोत के दर्शन करने के क़ाबिल हो जाते हैं। जब तक हमारी तवज्जुह या ध्यान दोनों आँखों के द्वारा बाहर की ओर फैल रहा है, हम द्वैत में फँसे हुए हैं। जब ख़याल को समेटकर आँखों के पीछे इकट्ठा करते हैं, तो हम एकता में आ जाते हैं। फिर हमें इस नुक्ते पर उस जोत के दर्शन होते हैं। हज़रत ईसा ने बाइबल में इसी का ज़िक्र किया है, '(वह) आँख शरीर का उजाला है। इसलिए अगर तू एक आँख वाला हो जाये तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भर जायेगा।'[148] गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं:

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥[149]

हरएक मनुष्य के अन्दर वह जोत जल रही है। उस जोत के अन्दर से एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज़ निकल रही है। जो उस जोत के दर्शन

करता है और उस वाणी की सुरीली आवाज़ को सुनता है, उसका दुनिया से मोह या प्यार निकल जाता है और मालिक से प्यार पैदा हो जाता है। हम सबको मालूम है कि जितने हमारे धार्मिक स्थान हैं, क्या गुरुद्वारा, क्या मसजिद, क्या मन्दिर, क्या गिरजा, सबके अन्दर हम जोत जलाते हैं और घण्टे या शंख जैसी आवाज़ पैदा करते हैं। किसी गिरजे में चले जायें, वहाँ मोमबत्तियाँ जलायी जाती हैं और सबसे ऊपर घण्टा लटका रहता है जो प्रार्थना आदि शुरू होने से पहले बजाया जाता है। इसी तरह बौद्ध मन्दिरों में भी हमेशा जोत जलती रहती है जिसे वे अखण्ड जोत कहते हैं और जिसे कभी बुझने नहीं देते। लेकिन जिस अखण्ड जोत की ओर महात्मा बुद्ध ने इशारा किया है वह तो हमारे सबके अन्दर है। उनके मन्दिरों में बिगुल वग़ैरह भी बजाये जाते हैं। जैनियों और हिन्दुओं के मन्दिरों में भी जोत जलायी जाती है और घण्टे बजाये जाते हैं। मुसलमान भी मज़ारों पर रात को चिराग़ जलाते हैं। मौलवी ऊँची-ऊँची आवाज़ में बाँग देता है, नक़्क़ारा बजाता है। हमने कभी यह विचार नहीं किया होगा कि हरएक धार्मिक स्थान पर जोत क्यों जलायी जाती है, घण्टा क्यों बजाया जाता है? असल में ऋषियों-मुनियों, सन्तों-महात्माओं, पीरों-पैग़म्बरों ने समझाया था कि हमारा शरीर ही सबसे बड़ा और असली गुरुद्वारा, मन्दिर, मसजिद या गिरजा है और इस शरीर के अन्दर जोत जल रही है और शब्द की आवाज़ (जो शुरू-शुरू में घण्टे और शंख जैसी है) हो रही है। लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों और प्यारों के जाने के बाद उनकी असली शिक्षा को भूल गये और बाहरमुखी हो गये।

अन्दर उस शब्द की आवाज़ को सुनकर और प्रकाश को देखकर हमारा मन बिँध जाता है, वश में आ जाता है और वापस अपने ठिकाने पर पहुँच जाता है। आत्मा और मन की गाँठ खुल जाती है। उस हालत में हम अपने आपको पहचानने के क़ाबिल बन जाते हैं, परमात्मा को पहचानने के क़ाबिल बन जाते हैं। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

> गुर गिआन अंजनु सचु नेत्री पाइआ॥
> अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ॥
> जोती जोति मिली मनु मानिआ हरि दरि सोभा पावणिआ॥[150]

जब हम गुरुमुखों की बतायी हुई युक्ति के अनुसार आँखों में शब्द रूपी सुरमा डालते हैं तो अज्ञानता का अन्धेरा हमारे रास्ते से दूर हो जाता है तथा परमात्मा का नूर और प्रकाश नज़र आना शुरू हो जाता है। हिन्दुस्तान में यह आम रिवाज है कि किसी को दिखाई कम देता हो तो उसे सुरमे का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। आम धारणा है कि सुरमा डालने से नज़र ठीक हो जाती है और अच्छी तरह दिखाई देना शुरू हो जाता है। गुरु अमरदास जी यह मिसाल देकर समझाते हैं कि हम दुनिया के जीव आँखों के होते हुए भी अन्धे बने हुए हैं, हमें अपने अन्दर कुछ भी नज़र नहीं आता, जब हम शब्द रूपी सुरमे का प्रयोग करते हैं, यानी अपने ख़याल को अन्दर समेट कर शब्द के साथ जोड़ते हैं तो हमारा अज्ञानता का अन्धेरा दूर हो जाता है और हमें अपने अन्दर प्रकाश दिखाई देने लगता है, जिसे देखकर हमारा मन मान जाता है यानी वश में आ जाता है। फिर यह मन, जो इन्द्रियों के भोगों का ग़ुलाम बना बैठा था, उस प्रकाश में लीन हो जाता है और शब्द की आवाज़ को सुनकर व पकड़कर अपने असली ठिकाने त्रिकुटी में पहुँच जाता है। तब कहीं हमारी आत्मा मन के पंजे से आज़ाद होकर परमात्मा में लीन होती है यानी हमारी ज्योति उस परम ज्योति में मिलती है और हमारी आत्मा मालिक की दरगाह में जाकर असली इज़्ज़त और शोभा प्राप्त करती है। हज़रत ईसा भी बाइबल में कहते हैं, 'मैं इस जगत में न्याय के लिए आया हूँ ताकि जो नहीं देखते वे देखें और जो देखते हैं वे अन्धे हो जायें।'[151]

यानी मैं इस दुनिया में इसलिए आया हूँ कि जो लोग आँखें होने के बावजूद अन्धे हैं और उस मालिक को नहीं देखते, मैं उनको इस दुनिया की शक्लों और पदार्थों की ओर से अन्धा कर दूँ और मालिक की ओर से आँखों वाला कर दूँ। गुरु अमरदास जी यही समझाते हैं:

जिन अंतरि सबदु आपु पछाणहि गति मिति तिन ही पाई॥[152]

जो अन्दर उस शब्द को पकड़कर अपने आपको पहचानने के क़ाबिल बनते हैं, असली गति और मालिक से मिलने का सौभाग्य उन्हीं को प्राप्त होता है। आप फ़रमाते हैं:

सबदै सादु जाणहि ता आपु पछाणहि ॥[153]

शब्द या नाम की लज़्ज़त प्राप्त करके ही हम अपने आपको पहचानने के क़ाबिल बनते हैं। हम अपने आपको तब पहचानते हैं जब हमारी आत्मा के ऊपर से सब गन्दे-गन्दे गिलाफ़ उतर जाते हैं। इसलिए महात्मा हमें मुक्ति प्राप्त करने का सिर्फ़ यही साधन समझाते हैं कि हम अपने ख़याल को अन्दर शब्द या नाम के साथ जोड़ें। गुरु नानक साहिब एक और स्थान पर फ़रमाते हैं:

सबदि मरै सो मरि रहै फिरि मरै न दूजी वार ॥[154]

स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

नाम के रंग में रंग जा। मिले तोहि धाम निज अपना ॥[155]

ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों में महात्मा उस नाम या शब्द की महिमा लिखते हैं। उनको पढ़ने से हमें समझ आ जाती है कि हमें नाम की कमाई क्यों करनी है और किस तरह करनी है। लेकिन ग्रन्थों-पोथियों में वह नाम नहीं है, सिर्फ़ नाम को हासिल करने का तरीक़ा है। उनके पढ़ने में मुक्ति नहीं है, जो पढ़ते हैं उस पर अमल करने में मुक्ति है। जिस तरह डॉक्टर की किताबों में नुस्ख़े या बीमारियों का इलाज करने के तरीक़े लिखे हुए हैं, लेकिन किताबों में दवाइयाँ नहीं हैं। कोई बीमार सारा दिन डाक्टरी की किताब पढ़ने से तंदुरुस्त नहीं हो सकता, बल्कि जो कुछ उस किताब में लिखा है उसके मुताबिक़ दवा का इस्तेमाल करके ही ठीक हो सकता है। दवा अपने आपमें कोई और चीज़ है और किताबों में दवा का ज़िक्र कुछ और है। इसी प्रकार अगर कोई सारा दिन खाना बनाने की किताबें पढ़ता रहे, जिनमें तरह-तरह के पकवान बनाने के तरीक़े लिखे हुए हैं तो उनको पढ़ने से उसे न तो खाने का स्वाद आ सकता है और न पेट ही भर सकता है। जब वह किताब के अनुसार खाना बनाकर खा लेता है तो पेट भी भर जाता है और स्वाद भी आ जाता है। इसी तरह अगर किसी को रेल से सफ़र

करना है तो पहले 'टाइमटेबल' (time table) या गाइड बुक को अच्छी तरह पढ़ा जाता है। उससे पता चलता है कि रेल की यात्रा कितनी लम्बी है, कौन-कौन से स्टेशन रास्ते में आयेंगे, कितना किराया लगेगा और कितने बजे गाड़ी स्टेशन से रवाना होगी। लेकिन उस 'टाइमटेबल' को सिर्फ़ पढ़ने से ही हम अपनी मंज़िले-मक़सूद पर नहीं पहुँच जाते। जब स्टेशन पर जाकर, टाइमटेबल के अनुसार टिकट लेकर गाड़ी पर सवार हो जाते हैं, तभी हम मंज़िले-मक़सूद (लक्ष्य) पर पहुँच सकते हैं। इस नुक़्ते और स्थान पर आकर आज आम दुनिया भूली बैठी है।

हम अपने ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने को ही मुक्ति का साधन समझ लेते हैं और आम तौर पर पढ़ते भी ख़ुद नहीं, बल्कि कोई पण्डित या ज्ञानी हमारे घर में पढ़ता रहता है और हम दुनिया के काम-काज में डूबे रहते हैं और मन में सोचते हैं कि हम कितना लाभ उठा रहे हैं, कितना पुण्य कमा रहे हैं। अगर ख़ुद बैठकर पढ़ें या सुनें तो उन महात्माओं के वचन हमारे कानों में पड़ें, हमें अपनी कमज़ोरियों और कमियों का पता चले और फिर उनको दूर करने का मन में शौक़ पैदा हो, तरीक़े और साधन का पता चले, तब तो उस पढ़ने-पढ़ाने का भी फ़ायदा हो। हमने तो उसे सिर्फ़ एक रीति-रिवाज बनाया हुआ है कि शायद उस पण्डित के पढ़ने से ही हम मुक्ति प्राप्त कर लें। महात्मा हमारे ख़याल को इन भ्रमों में से निकालते हैं। स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

वेद शास्त्र स्मृत और पुराना। पढ़ पढ़ सब पंडित हारा॥
बिन सतगुरु और बिना शब्द सुर्त। कोइ न उतरे भौ पारा॥[156]

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं:

पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥[157]

चाहे हम सारा दिन पढ़ते रहें, सारा महीना पढ़ते रहें, सारा साल, सारी ज़िन्दगी और साँस-साँस पढ़ते रहें तो भी सिर्फ़ एक ही चीज़ हमारे हिसाब में लिखी जायेगी कि क्या हमारी सुरत उस शब्द या नाम को पकड़ती है। अगर नहीं, तो हमारा सब पढ़ना-पढ़ाना फ़ज़ूल है। यही तुलसी साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं:

चार अठारह नौ पढ़े, षट पढ़ि खोया मूल।
सुरत सब्द चीन्हे बिना, ज्यों पंछी चंडूल॥[158]

चाहे कोई चारों वेद, अठारह पुराण, नौ व्याकरण और छः शास्त्र भी पढ़ ले, लेकिन अगर उसने शब्द-सुरत का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो उसकी हालत चण्डूल पक्षी जैसी है, जिसके लिए कहा जाता है कि जैसी बोली वह सुनता है उसी की नकल कर लेता है। कबीर साहिब का कथन है:

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥[159]

साईं बुल्लेशाह भी यही उपदेश देते हैं:

इलमों बस करीं ओ यार, इक्को अलफ़ तेरे दरकार।
बहुता इल्म इज़राइल ने पढ़िया, झुगा झाहा उसे दा सड़या॥[160]

बाइबल में हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, 'हे पिता! लोक परलोक के स्वामी! मैं तेरा शुक्रिया करता हूँ कि तूने इन बातों को ज्ञानियों और बुद्धिमानों से छिपाकर रखा और बालकों पर प्रकट किया है।'[161] आपके कहने का मतलब है कि हे मालिक! तूने इस गूढ़ रहस्य को सांसारिक और तर्क-बुद्धि वाले लोगों से परे रखा है और केवल उन्हीं पर प्रकट किया है जो बच्चों के समान सरल और निष्कपट हैं।

हम ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों को पढ़कर वाचक ज्ञानी बन जाते हैं। वाद-विवाद करने की आदत पैदा हो जाती है। अपने आपको बड़े गुणी-ज्ञानी, आलिम-फ़ाज़िल समझना शुरू कर देते हैं और दूसरों को नासमझ व

अज्ञानी मानने लग जाते हैं। मन में हौमैं, घमण्ड और अहंकार आ जाता है, जबकि मालिक की भक्ति के मार्ग पर तो पढ़-लिखकर भी बच्चों के समान सरल बनना पड़ता है।

ग्रन्थ-पोथियाँ और वेद-शास्त्र क्या हैं? गुरु साहिबान, ऋषियों-मुनियों, पीरों-पैग़म्बरों ने मेहनत की और मालिक से मिलाप किया। जो कुछ नज़ारे उन्होंने अन्दर देखे और जो रुकावटें उन्होंने अन्दर महसूस की और देखीं, उन्होंने हमारे फ़ायदे के लिए इन धर्म-पुस्तकों में उनका ज़िक्र कर दिया। ये पवित्र पुस्तकें उन महात्माओं के निजी अनुभवों का 'रिकार्ड' (record) हैं। हमें उनके पढ़ने से वे अनुभव नहीं हो सकते, जब तक, जो कुछ हम पढ़ते हैं, उसके अनुसार अपने अन्दर खोज और जाँच-पड़ताल नहीं करते, उसे पढ़ने का कोई फ़ायदा नहीं। यह खोज और तहक़ीक़ात करने का तरीक़ा सिर्फ़ शब्द या नाम की कमाई है। वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे शरीर के अन्दर है और हमारे लिए ही परमात्मा ने हमारे अन्दर रखा है। लेकिन उसकी खोज किस तरह करनी है, इसके भेद या तरीक़े का हमें सन्तों से ही पता चलता है। गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं:

> अनहद बाणी पूंजी॥ संतन हथि राखी कूंजी॥[162]

गुरु अमरदास जी का कथन है:

> सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥[163]

सन्तों की संगति

जिस परमात्मा ने हमें पैदा किया है, नाम की दौलत उसने हमारे लिए हमारे अन्दर रखकर उसका भेद सन्तों के हवाले कर दिया है। इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए हमें सन्तों-महात्माओं की संगति करनी पड़ती है। गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

> जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई॥
> अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥[164]

गुरु अमरदास जी लिखते हैं:

> बिनु गुर दाते कोइ न पाए॥ लख कोटी जे करम कमाए॥[165]
>
> सतिगुरु सेवे सदा सुखु पाए सतिगुरि अलखु दिता लखाई॥[166]

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

> कहु नानक प्रभि इहै जनाई॥ बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई॥[167]
>
> मत को भरमि भुलै संसारि॥ गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि॥[168]

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

> संतहु सुनहु सुनहु जन भाई गुरि काढी बाह कुकीजै॥
> जे आतम कउ सुखु सुखु नित लोड़हु तां सतिगुर सरनि पवीजै॥[169]

महात्मा सतगुरु की संगति व सोहबत पर बहुत ही ज़ोर देते हैं कि उनके बग़ैर हमारा मुक्ति प्राप्त करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता। गुरु अर्जुन देव जी फिर कहते हैं:

> सासत बेद सिम्रिति सभि सोधे सभ एका बात पुकारी॥
> बिनु गुर मुकति न कोऊ पावै मनि वेखहु करि बीचारी॥[170]

गुरु अमरदास जी कहते हैं:

> बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे॥[171]

मालिक ने अपने मिलने का यही क़ुदरती क़ानून रखा है कि जब भी वह मिलता है, सन्तों-महात्माओं के ज़रिये ही मिलता है। हज़रत ईसा भी बाइबल में यही कहते हैं, 'हे सब मेहनत करनेवालो और बोझ से दबे हुए लोगो! मेरे पास आओ, मैं तुम्हें चैन प्रदान करूँगा।'[172] यानी ऐ दुनिया वालो, तुम जो गुनाहों के बोझ से लदे और थके हुए हो, मेरे पास आओ, मैं तुमको आराम और शान्ति दूँगा। आगे फिर कहते हैं, 'मैं ही मार्ग, हक़ीक़त और

जीवन हूँ। बिना मेरे ज़रिये कोई भी पिता के पास नहीं पहुँच सकता। अगर तुमने मुझे पहचाना होता तो मेरे पिता को भी पहचान लेते, पर अब तुम उसे जानते हो और तुमने उसे देखा भी है।'[173]

भाव, तुम अपने पिता से सिर्फ़ मेरे ही ज़रिये मिल सकते हो। मैं ही उससे मिलाने का साधन और रास्ता हूँ। अगर तुमने मुझे पहचान लिया है तो तुमने उस परमात्मा को पहचान और देख लिया है। आगे फिर कहते हैं, 'और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजनेवाले को देखता है।'[174] यानी मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसलिए तुमने भी उस परमात्मा को देखा है। इसी प्रकार एक और जगह कहते हैं, 'जगत की ज्योति मैं हूँ; जो मेरे पीछे चलेगा वह अन्धेरे में नहीं चलेगा, बल्कि जीवन की ज्योति पा जायेगा।'[175] तुलसी साहिब भी यही उपदेश देते हैं:

तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साध संग सतगुरु सरन, दया दीन उपकार॥[176]

सोना काई नहिं लगै, लोहा घुन नहिं खाय।
बुरा भला जो गुर-भगत, कबहूँ नरक न जाय॥[177]

अपनी वाणी में स्वामी जी महाराज भी यही ज़िक्र करते हैं:

यह देही फिर हाथ न आवे। फिरो चौरासी बन में॥
गुरु सेवा कर गुरू रिझाओ। आओ तुम इस ढंग में॥
गुरु बिन तेरा और न कोई। धार बचन यह मन में॥[178]

बिन मेहर गुरू नहिं पावे। बिन शब्द हाथ नहिं आवे॥
सुर्त खैंच चढ़ावो गगनी। धुन शब्द सुनो यह करनी॥[179]

कबीर साहिब भी फ़रमाते हैं:

कबीर गुरु की भगति बिनु, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा बिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय॥[180]

उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं॥[181]

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल गया, बूझौ बेद पुरान॥[182]

गुरु नानक देव जी का कथन है:

बिनु गुर साकतु कहहु को तरिआ॥ हउमै करता भवजलि परिआ॥
बिनु गुर पारु न पावै कोई हरि जपीऐ पारि उतारा हे॥[183]

गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

जिना सतिगुरु पुरखु न भेटिओ से भागहीण वसि काल॥
ओइ फिरि फिरि जोनि भवाईअहि विचि विसटा करि विकराल॥[184]

जिन्हें पूरा सतगुरु नहीं मिला वे बड़े भाग्यहीन हैं। वे हमेशा काल के अधीन रहते हैं। उन्हें बार-बार मरण-जन्म के दुःखों में आना पड़ता है, यहाँ तक कि उनको अन्त में गन्दगी के कीड़े तक बनकर दुःख उठाना पड़ता है। जो पूरे सतगुरु की खोज नहीं करते, वे शब्द या नाम के साथ कभी नहीं जुड़ सकते। वे अपने कर्मों के अनुसार चौरासी के जेलख़ाने में दुःख और मुसीबतें भुगतते हैं। असल में वे दुनिया में आकर जीते हुए भी मुर्दे के समान ही रहते हैं। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सतिगुर की सेव न कीनीआ हरि नामि न लगो पिआरु॥
मत तुम जाणहु ओइ जीवदे ओइ आपि मारे करतारि॥[185]

हरएक इनसान सुख और शान्ति की तलाश कर रहा है और अलग-अलग चीज़ों में अलग-अलग स्थानों पर जाकर सुख और शान्ति ढूँढ़ता है।

लेकिन असली ख़ुशी सिर्फ़ शब्द में ही है, जिसके साथ हमारा ख़याल सिर्फ़ सतगुरु के ज़रिये ही जुड़ सकता है। वह शब्द बेशक हमारे अन्दर है, लेकिन अगर हमें किसी सन्त-महात्मा की संगति नहीं मिली तो हम उस ऊँची, सच्ची और पवित्र धुन को कभी नहीं पकड़ सकते। इसलिए हमें चाहिए कि पूरे गुरु की तलाश करें, जो हमारे ख़याल को उस शब्द से जोड़कर हमें मालिक से मिला दे। इसके अलावा और कोई चीज़ हमें असली और सच्ची ख़ुशी नहीं दे सकती। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं कि अगर इनसान संसार में अनेक प्रकार के भोग भोग रहा है, नौ खण्ड पृथ्वी का राज भी कर रहा है, तो भी उसे बिना सतगुरु के सच्चा सुख नहीं मिल सकेगा और वह बार-बार जन्मता और मरता रहेगा। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

जे लख इसतरीआ भोग करहि नव खंड राजु कमाहि॥
बिनु सतगुर सुखु न पावई फिरि फिरि जोनी पाहि॥[186]

साईं बुल्लेशाह ज़ोर देकर कहते हैं:

बिन मुरशद कामिल बुल्लया तेरी ऐवें गई इबादत कीती।[187]

बुल्ला शौह दी सुनो हिकायत, हादी फड़यां होई हिदायत।
मेरा साईं शाह इनायत, ओहो लंघावे पार॥[188]

सन्तों-महात्माओं ने हमारे अन्दर घोलकर कुछ नहीं डालना है। वह दौलत परमात्मा ने हमारे अन्दर हमारी ख़ातिर रखी है और हमें अन्दर से ही मिलेगी। सन्त तो सिर्फ़ युक्ति और साधन समझाते हैं। जिस तरह विद्या की ताक़त हरएक इनसान के अन्दर जन्म से ही है, लेकिन सोयी हुई है। जब हम स्कूलों-कालेजों में जाते हैं, उस्तादों के आदेश के मुताबिक़ चलते हैं, रातों को जागते हैं, तब वह सोयी हुई ताक़त हमारे अन्दर से ही जाग उठती है। फिर हम बी. ए., एम. ए. कर लेते हैं, विद्वान बन जाते हैं। जो विद्यार्थी उस्तादों से डर कर स्कूलों-कालेजों में नहीं जाते, विद्या की ताक़त उनके अन्दर भी है, लेकिन वह सोयी आती है और सोयी ही चली जाती है। जो

विद्या प्राप्त कर लेते हैं, उनके अन्दर उस्ताद घोलकर तो कुछ नहीं डालते, सिर्फ़ उस्तादों की संगति करने से ही विद्यार्थियों की सोयी हुई ज्ञान-शक्ति जाग उठती है। हम सबको यह मालूम है कि दूध के अन्दर घी है, लेकिन अगर हमें युक्ति या तरीक़ा पता न चले तो हम कभी उस घी को दूध में से प्राप्त नहीं कर सकते। घी हमेशा दूध से ही निकलता है, लेकिन युक्ति के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। गुरु रामदास जी समझाते हैं:

> कासट महि जिउ है बैसंतरु मथि संजमि काढि कढीजै॥
> राम नामु है जोति सबाई ततु गुरमति काढि लईजै॥[189]

जिस प्रकार लकड़ी के अन्दर आग होती है, लेकिन वह हमें दिखाई नहीं देती और न हम उस अग्नि से कोई फ़ायदा उठा सकते हैं। जब लकड़ी पर लकड़ी रगड़ते हैं तो इस युक्ति के द्वारा अग्नि भी प्रकट कर लेते हैं और उससे फ़ायदा भी उठा लेते हैं। इसी तरह वह राम-नाम की जोत हमारे सबके अन्दर है, लेकिन सतगुरु के उपदेश पर चलकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। गुरु रामदास जी बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं:

> घरि रतन लाल बहु माणक लादे मनु भ्रमिआ लहि न सकाईऐ॥
> जिउ ओडा कूपु गुहज खिन काढै तिउ सतिगुरि वसतु लहाईऐ॥[190]

हमारे घर यानी शरीर के अन्दर परमात्मा ने नाम रूपी अपार दौलत रखी है, लेकिन हमारा मन बाहरमुखी होकर भ्रमों में उलझा हुआ है। जब तक हम अपने शरीर के अन्दर खोज नहीं करते, उस दौलत को प्राप्त नहीं कर सकते। कहीं-कहीं आबादियों के नीचे पुराने कुएँ दबे होते हैं। हम उन ज़मीनों पर चलते-फिरते हैं लेकिन हमें मालूम नहीं होता कि इस जगह कुआँ मिट्टी के नीचे दबा हुआ है। ओड* लोग हमें विद्या और हुनर के द्वारा वह जगह बता देते हैं जहाँ मिट्टी की खुदाई करने से बना बनाया कुआँ मिल सकता है। ओड लोग कुआँ बनाकर उसे मिट्टी से नहीं दबा देते।

---

* **ओड**=जल-गणक या पानी-पण्डित, जो ज़मीन के अन्दर पानी होने के बारे में बताते हैं।

उनको सिर्फ़ यह ज्ञान और इल्म होता है, जिसका फ़ायदा उठाकर हम उस कुएँ का उपयोग कर सकते हैं। इसी तरह महात्मा भी हमारे अन्दर कुछ नहीं डालते। उनको इल्म और ज्ञान है कि हमारे अन्दर वह परमात्मा है और उससे मिलने का रास्ता भी हमारे अन्दर ही है। सन्त हमें अन्दर उस रास्ते पर लगा देते हैं। इसलिए हमें सन्तों-महात्माओं की तलाश करनी पड़ती है, उनकी संगति और सोहबत में रहना पड़ता है। हमारा मन हमेशा संगति का असर लेता है। अगर हम शराब पीने वालों की संगति करते हैं तो हमें भी वैसी ही आदत पड़ जाती है। अगर जुआरियों की संगति करते हैं तो वैसे ही ख़याल हमारे मन में भी आने शुरू हो जाते हैं। अगर हम मालिक के भक्तों और प्यारों की संगति करते हैं तो उन्हें देखकर हमारे अन्दर भी परमात्मा से मिलने का शौक़ और प्यार पैदा हो जाता है। गुरु रामदास जी समझाते हैं:

साकत सूतु बहु गुरझी भरिआ किउ करि तानु तनीजै॥
तंतु सूतु किछु निकसै नाही साकत संगु न कीजै॥[191]

अगर सूत में बहुत सारी गुत्थियाँ हों, तो उससे कभी कपड़ा नहीं बुना जा सकता। इसी प्रकार, मनमुखों का मन सारी दुनिया में फैला हुआ है। वे दिन-रात इन्द्रियों के भोगों और विषय-विकारों में ही लगे रहते हैं। उनकी संगति और सोहबत में जाकर हमारा ख़याल किस प्रकार परमात्मा की भक्ति की ओर जा सकता है? फिर गुरु रामदास जी उपदेश देते हैं:

साकत नर प्रानी सद भूखे नित भूखन भूख करीजै॥
धावतु धाइ धावहि प्रीति माइआ लख कोसन कउ बिथि दीजै॥[192]

मनमुख लोग हमेशा भूखे रहते हैं। परमात्मा उन्हें जो चाहे बख़्श दे, कितनी ही नेक सन्तान हो, धन-दौलत हो, दुनिया में मान, इज़्ज़त और बड़ाई हो, सेहत हो, लेकिन वे फिर भी कभी परमात्मा से परमात्मा को नहीं माँगते, वे हमेशा परमात्मा से अपनी दुनिया की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी करवाना चाहते हैं। जो लोग हमेशा दुनिया के पदार्थों और शक्लों की ओर ही भागते हैं, गुरु रामदास जी समझाते हैं कि ऐसे लोगों की कभी भूले-

भटके भी संगति नहीं करनी चाहिए, बल्कि उनसे लाख कोस दूर रहना चाहिए। फिर किस की संगति करनी चाहिये ? आप कहते हैं:

गोबिंद जीउ सतसंगति मेलि हरि धिआईऐ ॥[193]

हे परमात्मा! सन्तों-महात्माओं की संगति और सोहबत दे, ताकि तेरा पता चले, तेरी तरफ़ हमारा ख़याल जाये। महात्मा हमेशा सत्संग पर ज़ोर देते हैं, क्योंकि सन्तों के सत्संग में जाकर ही पता चलता है कि आत्मा और परमात्मा का रिश्ता क्या है, आत्मा और परमात्मा के दरमियान रुकावट किस चीज़ की है, और वह रुकावट हमारे अन्दर से किस तरह दूर हो सकती है। महात्मा सत्संग उसको नहीं कहते जहाँ एक क़ौम दूसरी क़ौम की निन्दा करती हो, जिस जगह एक मज़हब, दूसरे मज़हब का गला काटने के उपाय सोचता हो या जहाँ पुराने राजा-महाराजाओं की कथा-कहानियाँ सुनायी जाती हों। सन्तों के सत्संग में किसी की भी निन्दा और बुराई नहीं की जाती। वे सिर्फ़ हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक़ और प्यार पैदा करते हैं और हमें मालिक से मिलने का रास्ता, तरीक़ा और साधन बतलाते हैं। यह तो बहुत ही बुरी बात है कि अगर कोई हमारी बुद्धि और इच्छा के अनुसार परमात्मा की भक्ति नहीं करता तो हम उसे डण्डे और तलवारों से डराना शुरू कर दें और उसे भला-बुरा कहना शुरू कर दें। बल्कि हमें उन लोगों को प्यार से समझाना चाहिए कि इस रास्ते पर चलकर हमें यह फ़ायदा प्राप्त हुआ है, अगर आपकी समझ में आता है तो आप भी इस रास्ते पर चलकर यह फ़ायदा उठा सकते हो। गुरु नानक साहिब समझाते हैं:

सतसंगति कैसी जाणीऐ ॥ जिथै एको नामु वखाणीऐ ॥[194]

केवल पूर्ण महात्मा और पूरे गुरु की संगत को ही सच्चा सत्संग कहा जा सकता है। पूर्ण गुरु शब्द-अभ्यासी और शब्द-स्वरूपी होता है और नाम की युक्ति बता कर जीवों को परमात्मा के साथ मिलाने की शक्ति रखता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

सतिगुर बाझहु संगति न होई॥ बिनु सबदे पारु न पाए कोई॥[195]

कबीर साहिब भी सत्संग की इस प्रकार महिमा करते हैं:

कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकत संग न जाय॥[196]

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध॥[197]

यही स्वामी जी महाराज का उपदेश है:

मित्र तेरा कोई नहीं संगियन में। पड़ा क्यों सोवे इन ठगियन में॥
चेत कर प्रीत करो सतसंग में। गुरू फिर रंग दें नाम अरँग में॥[198]

अटक तू क्यों रहा जग में। भटक में क्या मिले भाई॥
खटक तू धार अब मन में। खोज सतसंग में जाई॥[199]

मौलाना रूम भी अपने कलाम में फ़रमाते हैं:

हम नशीनीं साअते बा औलिया।
बेहतर अज़ सद साला ताअत बे-रिया॥[200]

मालिक के भक्तों और प्यारों की एक घड़ी की संगति या सोहबत मन और बुद्धि की सौ साल की बन्दगी से बेहतर है। अगर रास्ता पूर्व की तरफ़ है और हम पश्चिम की तरफ़ दौड़ रहे हैं तो हम अपनी मंज़िले-मक़सूद से और दूर होते चले जा रहे हैं। हरएक महात्मा सत्संग के ज़रिये हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक़ और प्यार पैदा करता है।

सन्तों का असली स्वरूप

सन्तों का असली स्वरूप शब्द या नाम होता है। वे शब्द या नाम में से ही आते हैं और हमारे ख़याल को शब्द या नाम के साथ जोड़कर उसी नाम में

वापस जाकर समा जाते हैं। इनसान का उस्ताद इनसान ही हो सकता है। देवी-देवता किसी ने देखे नहीं, परमात्मा के स्वरूप का किसी को पता नहीं, जब तक कोई हमें हमारे जैसा इनसान होकर न समझाये तब तक उस मालिक के बारे में हमें कुछ भी समझ नहीं आ सकती। हज़रत ईसा ने उन महात्माओं को 'देहधारी शब्द' कहा है, यानी वह शब्द जब इनसान के जामे में आ जाता है हमारे लिए देहधारी गुरु बन जाता है। लेकिन असल में परमात्मा और शब्द एक ही चीज़ हैं। हज़रत ईसा कहते हैं:

> मैं और मेरा पिता एक ही हैं।[201]
>
> आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था।[202]
>
> और शब्द देहधारी हुआ और हमारे बीच में आकर रहा।[203]
>
> और यीसू, पवित्र आत्मा (शब्द) से परिपूर्ण, जोर्डन से लौटा।[204]

हज़रत ईसा ख़ुद अपने बारे में लिखते हैं, 'मैं पिता में से प्रकट हुआ, और इस दुनिया में आया हूँ, मैं दुनिया को छोड़ूँगा और वापस पिता में समा जाऊँगा।'[205] आगे कहते हैं, 'जब मैं दुनिया में उनके साथ था मैंने उन्हें तेरे नाम से जोड़े रखा। जिनको तूने मुझे दिया था उनको मैंने सँभाला और किसी को भी नहीं खोया।'[206] अर्थात् हे मालिक! जितने समय मैं दुनिया में रहा, मैंने उन सब रूहों की सँभाल की जो तूने मेरे सुपुर्द की थीं और उनमें से किसी को भी गुमराह नहीं होने दिया।

मालिक और मालिक के भक्तों में कोई फ़र्क या भेद नहीं है। वे मालिक की भक्ति करके मालिक का ही रूप हो जाते हैं। श्रुति का कथन है, 'ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म एव भवति'[207] कि ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है। जिस प्रकार, समुद्र की लहरें समुद्र में से उठती हैं और वापस समुद्र में ही जाकर समा जाती हैं, इसी प्रकार जो एक लहर का समुद्र के साथ रिश्ता है वही मालिक के भक्तों और सन्तों का उस मालिक से रिश्ता होता है। सन्त उस सतनाम के समुद्र की लहरें होते हैं जो दुनिया में आकर हमारे ख़याल

को शब्द या नाम के साथ जोड़कर, बल्कि हमको साथ ले जाकर, उसी सतनाम के समुद्र में समा जाते हैं। परमात्मा जब हमें देह के बन्धनों से छुड़ाना चाहता है तो वह ख़ुद गुरुमुखों के अन्दर बैठकर, हमारे ख़याल को शब्द के साथ जोड़कर, हमें वापस ले जाकर अपने में ही मिला लेता है। गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं:

हरि का सेवकु सो हरि जेहा॥ भेदु न जाणहु माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा॥[208]

गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ।[209]

परमात्मा गुरु के अन्दर बैठकर ही बोलता है:

बिन काया ब्रह्म कैसे बोले। ब्रह्म बोले काया के ओहले।[210]

गुरु नानक साहिब समझाते हैं, 'गुर महि आपु रखिआ करतारे।'[211] गुरु रामदास जी लिखते हैं:

समुंदु विरोलि सरीरु हम देखिआ इक वसतु अनूप दिखाई।
गुर गोविंदु गुोविंदु गुरू है नानक भेदु न भाई।[212]

गुरु साहिब समझाते हैं कि हमने शरीर के अन्दर शब्द की कमाई करके देखा है कि परमात्मा और गुरु एक ही हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं। गुरु अर्जुन देव जी लिखते हैं, 'गुरु परमेसरु एको जाणु।'[213] मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं:

दर बशर रूपोश कर्द अस्त आफ़ताब।[214]

यानी मनुष्य के अन्दर सूर्य (प्रभु) ने ख़ुद को छिपा रखा है। यही बुल्लेशाह समझाते हैं, 'मौला आदमी बण आया।'[215] कबीर साहिब भी यही फ़रमाते हैं:

राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय।
दो करि सोइ जानई, सतगुरु मिला न होय॥[216]

बाइबल में ईसा मसीह कहते हैं, 'मुझमें विश्वास करो, मैं पिता में हूँ और पिता मुझमें है।'[217] स्वामी जी महाराज भी यही फ़रमाते हैं:

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में। गुरु होय जीव चिताये॥[218]

राधास्वामी से मतलब उस कुल मालिक से है। सन्त नामदेव जी कहते हैं:

आतम राम देह धरि आयो, ता में हरि को देखो।
कहत नाम देव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखो॥[219]

शम्स तब्रेज़ का कथन है:

आँ बादशाहे आज़म दर बस्ता बूद मुहकम,
पोशीद दल्के-आदम यअनी कि बर दर आमद।*[220]

सच्चे गुरु हमें बाहरी रीति-रिवाजों में नहीं फँसाते, बल्कि अन्दर शब्द की कमाई करने का तरीक़ा बतलाते हैं। पूर्ण गुरु हमें अपने शरीर के अन्दर ही असली घर जाने यानी सचखण्ड का रास्ता दिखाते हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं:

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥[221]

यही स्वामी जी महाराज का अनुभव है:

घर में घर गुरु दिखलावें। धुन सब्द पाँच बतलावें॥[222]

* **आँ...आमद**=उस महान् बादशाह ने हमें बाहर निकालकर दरवाज़ा पक्के तौर पर बन्द कर दिया है। फिर वह आदमी की पोशाक में छिपकर ख़ुद ही दरवाज़ा खोलने आ गया है।

महात्मा समझाते हैं कि हमारे निज घर सचखण्ड के मार्ग में हमारे अन्दर पाँच मंज़िलें हैं। हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया है, 'मेरे पिता के घर में बहुत-से निवास-स्थान हैं।'[223] हरएक मंज़िल का अपना-अपना शब्द या धुन है। सच्चा गुरु हमें उन पाँच मंज़िलों से ले जाकर, पाँचों शब्दों या धुनों से जोड़कर परमात्मा तक पहुँचा देता है। असल में शब्द तो एक ही है, लेकिन हर मंज़िल में उसकी अलग-अलग आवाज़ है और अलग-अलग प्रकाश है। उदाहरण के तौर पर, एक नदी अपने स्रोत से निकलती है और समुद्र में जा समाती है। लेकिन उस नदी की अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग आवाज़ होती है। जहाँ से निकलती है वहाँ उसकी और आवाज़ है; जिस समय बड़ी-बड़ी चट्टानों और खड्डों में से गुज़रती है उसकी आवाज़ और है; जब वह झरना बनकर गिरती है तो आवाज़ बदल जाती है; जब वह मैदानों में फैलती है उसकी आवाज़ और ही हो जाती है और जब नदी समुद्र में समाती है तो आवाज़ और हो जाती है। लेकिन हर जगह नदी एक ही होती है। इसी प्रकार शब्द भी एक है लेकिन अलग-अलग मण्डलों में से गुज़रता हुआ अलग-अलग धुनों और प्रकाश के रूप में प्रकट होता है। सब पूर्ण सन्तों ने इसी अन्तर्मुखी शब्द की कमाई का उपदेश दिया है। कबीर साहिब भी पाँच शब्दों का ज़िक्र करते हैं और शब्द की साधना पर ज़ोर देते हैं:

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी॥
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी॥[224]

साधो सब्द साधना कीजै।
जेहिं सब्द तें प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै॥[225]

मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं:

बहफ़्तम फ़लक नौबत पंज दारी,
चूं ख़ैमा ज़ि शश जहत बरकन्दा बाशी॥[226]

जब तू छः दिशाओं यानी स्थूलता के दायरे से निकलकर सातवें आसमान में पहुँच जायेगा, तो वहाँ पाँच नौबतें बजती हुई सुनायी देंगी। इसी प्रकार शम्स तब्रेज़ अपने कलाम में लिखते हैं:

ख़ामोश ओ पंज नौबत बिशनौ ज़ि आसमाने,
क-आं आसमाने-बेरूँ ज़ाँ हफ़्त ईं शश आमद।[227]

ख़ामोशी के साथ आसमान की पाँच नौबतें या धुनें सुन। वह आसमान हमारे इन सात आसमानों और स्थूल दुनिया से परे है। एक अन्य स्थान पर लिखते हैं:

हर रोज़ पंज नौबत बर दरे ऊ, हमी कोबन्द कौसे-किब्रयाई।[228]

हर रोज़ उसके दरवाज़े पर पाँच ख़ुदाई नक़्क़ारे बजते हैं। गुरु अमरदास जी के लिखे हुए आनन्द साहिब में हम रोज़ पढ़ते हैं:

वाजे पंच सबद तितु घरि सभागै॥
घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ॥
पंच दूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारिआ॥[229]

बेणी जी आदि ग्रन्थ में फ़रमाते हैं:

पंच सबद निरमाइल बाजे॥ ढुलके चवर संख घन गाजे॥
दलि मलि दैतहु गुरमुखि गिआनु॥ बेणी जाचै तेरा नामु॥[230]

पूर्ण गुरु

पूरा गुरु वही है जो इन पाँचों शब्दों के द्वारा हमें अपने सच्चे घर ले जाता है। स्वामी जी महाराज भी अपनी वाणी में यही लिखते हैं कि शब्द-स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी गुरु की ही तलाश करनी चाहिए:

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥

और पहिचान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई॥
शब्द भेद लेकर तुम उन से। शब्द कमाओ तुम तन मन से॥[231]

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि अगर महात्मा पूरा नहीं होगा तो वह ख़ुद भी अपने शिष्यों के साथ डूब जायेगा। फ़रमाया है, 'अगर अन्धा अन्धे का मार्ग-दर्शन करेगा, तो दोनों गड्ढे में गिरेंगे।'[232] गुरु अमरदास जी भी यही समझाते हैं:

सतिगुरु पूरा सबदु सुणाए॥ अनदिनु भगति करहु लिव लाए॥[233]

पलटू साहिब भी यही कहते हैं:

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव।[234]

पूरे और सच्चे गुरु की यही पहचान है कि वे हमारी आत्मा को अनहद शब्द के साथ जोड़ देते हैं। जिसे ऐसा गुरु मिल जाता है वह अपने अन्दर उस शब्द की ऊँची और मीठी आवाज़ को सुनना शुरू कर देता है, जो कि शुरू-शुरू में घण्टे की आवाज़ के समान होती है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं 'घंटा जा का सुनीऐ चहु कुंट॥'[235] आप पूरे गुरु की महिमा में फ़रमाते हैं:

कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा॥ वाजे ता कै अनहद तूरा॥[236]

अखंड कीरतनु तिनि भोजनु चूरा॥ कहु नानक जिसु सतिगुरु पूरा॥[237]

वह अनहद शब्द ही अनन्त और कभी बन्द न होनेवाला ऊँचा और सच्चा संगीत है। वह शब्द ही हमेशा हमारे अन्दर गूँजने वाली ईश्वरीय आवाज़ है। सच्चे गुरु अपने सेवक को उस शब्द को सुनने का भेद और तरीक़ा बतलाते हैं, उस अनहद शब्द को अन्दर सुनने, उसी में जाकर समाने की युक्ति बतलाते हैं। गुरु ख़ुद उस शब्द या नाम के साथ जुड़ा होता है। वह हमें भी उस शब्द या नाम के साथ जोड़कर परमात्मा से मिला देता है। हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया है, 'तुम मेरे अन्दर समाये हुए हो, मैं उस परमात्मा के अन्दर समाया हुआ हूँ, इसलिए तुम भी उस परमात्मा के

अन्दर समाये हुए हो।'[238] वे इस प्रकार कहते हैं, 'जिसने मुझे देखा है, उसने पिता को देखा है। क्या तुम सच नहीं मानते कि मैं पिता में और पिता मेरे अन्दर है।'[239] स्वामी जी महाराज कहते हैं:

शब्द भेद तुम गुरु से पाओ। शब्द माहिं फिर जाय समाओ॥[240]

वास्तव में गुरु का असली रूप शब्द ही है। शरीर तो उस शब्द ने सिर्फ़ दुनिया के जीवों को समझाने-बुझाने और चेताने के लिए ही धारण कर रखा है। और न ही जीवों का असली रूप यह शरीर है। यह शरीर तो गुरु और शिष्य दोनों को ही यहीं छोड़ जाना है। शिष्य का असली रूप आत्मा है, जो अन्त में जाकर उस शब्द में ही समायेगी। स्थूल शरीर छोड़ देने के बाद भी गुरु अपने शब्द-स्वरूप में शिष्य की सँभाल करता है। बाइबल में हज़रत ईसा कहते हैं, 'ये बातें मैंने तुमसे कहीं जब कि मैं तुम्हारे साथ मौजूद हूँ। लेकिन वह साँत्वना प्रदान करनेवाला (शब्द) जो कि पवित्र आत्मा है, जिसे पिता मेरे नाम से भेजेगा, वह तुम्हें सब बातें सिखायेगा और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब तुम्हें याद दिलायेगा।'[241]

यानी जब मैं इस शरीर को छोड़कर चला जाऊँगा, तो वह मालिक मेरे नूरानी स्वरूप में उस शब्द को तुम्हारे अन्दर प्रकट करेगा और फिर वह नूरानी स्वरूप तुम्हारी सँभाल और रहनुमाई करेगा।

गुरु असल में शब्द ही है। जीवों के लिए वह इस दुनिया में शरीर धारण करके उनको मालिक तक पहुँचाने का ज़रिया बनता है और फिर अपना काम पूरा करके उस शब्द में ही जा समाता है। इसी तरह इनसान की आत्मा भी उस शब्द की ही किरण है और किसी सच्चे गुरु को पाकर वह भी वापस उस शब्द में ही जा समाती है। गुरु नानक साहिब भी यही फ़रमाते हैं, 'सबदु गुरू सुरति धुनि चेला॥'[242]

बीते समय में कई पूर्ण सन्त हो चुके हैं। लेकिन हम उनसे अब लाभ नहीं उठा सकते। हमें अब किसी जीवित देहधारी महात्मा की खोज करनी पड़ेगी। अगर कोई बीमार आज कहे कि उसे लुकमान हकीम से अपना इलाज करवाना है तो वह अब उसका इलाज करने के लिए नहीं आयेगा।

उसे किसी मौजूदा डाक्टर या हकीम के पास जाना पड़ेगा। अगर कोई कहे कि वह अपने मुकद्दमे का फ़ैसला महाराजा रणजीत सिंह से करवायेगा तो अब महाराजा रणजीत सिंह तो उसका फ़ैसला करने नहीं आ सकते। उसे किसी मौजूदा न्यायाधीश या हाकिम की अदालत में ही जाना होगा। अगर कोई स्त्री कहे कि वह राजा विक्रमादित्य से शादी करना चाहती है तो राजा विक्रमादित्य तो उससे शादी करने नहीं आयेगा। इसलिए जिस प्रकार वक़्त का हकीम, वक़्त का हाकिम और मौजूदा पति ही इस समय काम आ सकते हैं, इसी प्रकार हमें भी मौजूदा गुरु की ही ज़रूरत है और उसी से हमारा काम बन सकेगा। यही इशारा हज़रत ईसा ने बाइबल में 'जॉन दि बैपटिस्ट' के बारे में किया है:

वह तो जलता और चमकता हुआ ज्योति-पुंज था और तुम्हें एक वक़्त तक उसकी ज्योति में मग्न होना मंजूर था।[243]

फिर अपने बारे में हज़रत ईसा ख़ुद बिलकुल साफ़ लफ़्ज़ों में कहते हैं, 'जिसने मुझे भेजा है मुझे उसका काम करना ज़रूरी है, जब तक कि दिन है (मेरे जीवन-काल में); रात आती है, तब कोई मनुष्य काम नहीं कर सकता। जब तक मैं दुनिया में हूँ, मैं दुनिया की ज्योति हूँ।'[244]

गुरु की ज़रूरत सिर्फ़ इसलिए है कि वह हमारे जैसा इनसान होकर हमें हर चीज़ अच्छी तरह समझा सकता है। अगर हम वक़्त के गुरु के बग़ैर ही मालिक की भक्ति कर सकते तो जिन पुराने महात्माओं की हम आज टेक लिए बैठे हैं, वे क्यों देह में आये ? पूर्ण सन्त हर युग में, हर समय में आते हैं और अपना काम पूरा करके फिर उसी परमात्मा में समा जाते हैं। इसलिए हमें उस जीवित देहधारी महात्मा की ज़रूरत है जो हमारे जैसा इनसान होकर हमें समझाये।

संसार का कोई भी काम हम उस्ताद के बग़ैर नहीं सीख सकते। हम देखते हैं कि इंजीनियरिंग और डाक्टरी पर विद्वानों द्वारा लिखी कितनी खोजपूर्ण पुस्तकें पुस्तकालयों में भरी पड़ी हैं, लेकिन कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो उन किताबों को पढ़कर ही इंजीनियर या डाक्टर बन गया हो। पन्द्रह-बीस साल उस्तादों की संगति करके, मेहनत करके इन विद्याओं की

जानकारी प्राप्त होती है और उसके बाद प्रैक्टीकल ट्रेनिंग भी लेनी पड़ती है, तब कहीं जाकर इनका कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। हमें बचपन से ही हर मंज़िल पर, हर क़दम पर किसी उस्ताद या रहबर की ज़रूरत रही है। रूहानियत का विषय तो बहुत ही पेचीदा है। जब तक हमें कोई ऐसा रहबर या मार्गदर्शक न मिले, जो अन्दर की रूहानी मंज़िलों पर गया हो और हम उसके अनुभव से फ़ायदा न उठायें, तब तक हम कभी अन्दर एक क़दम भी नहीं जा सकते। बेशक हमारा असली गुरु वह शब्द या नाम है जो कि हमारे अन्दर है, लेकिन फिर भी हम उस शब्द को अपने अन्दर पकड़ नहीं सकते, जब तक वही शब्द या नाम देह धारण करके यानी इनसान के जामे में गुरु के रूप में प्रकट होकर हमारी मदद न करे। गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

> बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंम्रितु सारे॥
> गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै परतखि गुरू निसतारे॥[245]

सतगुरु शब्द है और शब्द ही सतगुरु है। उस शब्द के अन्दर ही असली अमृत है। सतगुरु अपने शिष्यों को हमेशा उस शब्द का ही उपदेश देता है। शिष्य उनके आदेश में चलकर अपने ख़याल को शब्द से जोड़ता है। लेकिन मुक्ति केवल देहधारी गुरु ही दे सकता है।

हम इनसान हैं, इसलिए कोई इनसान ही हमारा गुरु हो सकता है, जिससे हम सब कुछ पूछ सकें, बोल सकें, जिससे प्यार कर सकें और जो हमारे अन्दर उस शब्द की धारा को प्रकट कर सके। बेशक गुज़रे हुए महात्मा पूर्ण थे और जो उनकी संगति में आये उनको वे फ़ायदा पहुँचा गये। आज न तो वे किसी की आत्मा को शब्द के साथ मिला सकते हैं और न ही उनकी लिखी हुई पुस्तकें यह काम कर सकती हैं। जब हमने परमात्मा को नहीं देखा हम उससे किस तरह प्यार कर सकते हैं? इसी प्रकार जो महात्मा पहले हो चुके हैं उनसे हमारा प्यार करना भी मन की एक झूठी और व्यर्थ की कल्पना है, क्योंकि अब वे परमात्मा के पास पहुँच चुके हैं, इस दुनिया में नहीं हैं, हमारा उनके साथ किसी प्रकार भी सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता। अब तो कोई ज़िन्दा देहधारी गुरु मिले तब ही हमारा उसके साथ

प्यार पैदा हो सकता है और उसका प्यार ही हमें परमात्मा के प्यार में लगा सकता है।

सच्चे और पूरे गुरु दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो सीधे सचखण्ड से आते हैं और जन्म से ही सन्त होते हैं। दूसरे वे जो शब्द का अभ्यास करके अपने गुरु की दया-मेहर से सचखण्ड तक पहुँच जाते हैं और अपनी ज़िन्दगी में ही सन्त बन जाते हैं। जब हम सतगुरु की शरण प्राप्त करते हैं तो वे हमें नाम देकर बेफ़िक्र नहीं हो जाते, बल्कि हमें धुर-धाम पहुँचाने के ज़िम्मेदार होते हैं। गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं, 'गुरु मैरै संगि सदा है नाले॥'[246] गुरु नानक देव जी फ़रमाते हैं:

गुर की दाति न मेटै कोई॥ जिसु बखसे तिसु तारे सोई॥[247]

हज़रत ईसा कहते हैं, 'और मैं उन्हें अनन्त जीवन देता हूँ और वे कभी नष्ट न होंगे और कोई उन्हें मेरे हाथ से छीन न सकेगा।'[248]

जिन पर सतगुरु अपनी छाप लगा देते हैं, उनको मौत के बाद यमदूतों के साथ नहीं जाना पड़ता। वे नाम की जो बख़्शिश करते हैं, उसे कोई नहीं छीन सकता। एक अन्य स्थान पर हज़रत ईसा ने ज़ोरदार लफ़्ज़ों में कहा है, 'पृथ्वी और आकाश मिट जायेंगे, पर मेरे शब्द कभी नहीं मिट सकते।'[249] यानी यह ज़मीन और आसमान चाहे नाश हो जायें, लेकिन मेरा दिया हुआ शब्द कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। इसी प्रकार स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

संत डारिया बीज, घट धरती जेहि जीव के।
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को॥[250]

गुरु अर्जुन देव जी भी फ़रमाते हैं:

मेरा गुरु परमेसरु सुखदाई॥
पारब्रहम का नामु द्रिड़ाए अंते होइ सखाई॥[251]

ऐसे सतगुरु मृत्यु के समय सेवक को ख़ुद लेने आते है और यमदूतों के साथ नहीं जाने देते। सतगुरु हमारे सच्चे दोस्त और रक्षक हैं, सिर्फ़ इस

दुनिया में ही नहीं, मौत के वक़्त भी वे अपने नूरी स्वरूप में हमारी मदद और रखवाली करते हैं। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

सजण सेई नालि मै चलदिआ नालि चलंन्हि॥
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन्हि॥[252]

गुरु अर्जुन देव जी का कथन है:

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ॥
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि॥[253]

दुनिया के सब रिश्ते नाशवान हैं। हमारे बहुत-से रिश्तेदार, दोस्त, मित्र हमसे जीते-जी ही अलग हो जाते हैं। आख़िर में कोई किसी के साथ नहीं जाता, न ही कोई किसी की मदद कर सकता है। लेकिन, सन्त वे असली दोस्त हैं, जो मौत के बाद भी हमारा साथ नहीं छोड़ते, बल्कि हमें यमदूतों के पंजों से भी छुड़ाते हैं। ऐसे सतगुरु की शरण में आने के बाद हमारा धर्मराज का हिसाब-किताब ख़त्म हो जाता है। गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

धरम राइ दरि कागद फारे जन नानक लेखा समझा॥[254]

गुरु अर्जुन देव जी फ़रमाते हैं:

सिमरत नामु किलबिख सभि काटे॥ धरम राइ के कागर फाटे॥[255]

धरम राइ अब कहा करैगो जउ फाटिओ सगलो लेखा॥[256]

बाइबल में हज़रत ईसा कहते हैं, 'धन्य हैं वे जो प्रभु का शब्द सुनते और सँभालते हैं।'[257] आगे फिर कहते हैं, 'जो मेरा शब्द सुनता है...उसका जीवन अनन्त है...वह मृत्यु से पार होकर जीवन में प्रवेश कर चुका है।'[258] अर्थात् जिनको मैं उस शब्द से जोड़ देता हूँ वे मौत के पंजे से हमेशा के लिए छूटकर अनन्त जीवन प्राप्त कर लेते हैं।

ऐसे सन्त दुर्लभ हैं, लेकिन वे संसार में हमेशा मौजूद रहते हैं। हरएक युग में सच्चे जिज्ञासुओं को शब्द या नाम का रास्ता बताने के लिए वे आते हैं। गुरु नानक साहिब लिखते हैं, 'जुगि जुगि संत भले प्रभ तेरे॥'[259]

यह नहीं कि पूर्ण महात्मा किसी ख़ास समय या काल में ही आते हैं या वे किसी ख़ास क़ौम या ख़ास मुल्क से बँधे हुए होते हैं। हरएक युग में महात्मा आते रहे हैं और वे किसी भी क़ौम, मज़हब या मुल्क में आ सकते हैं। गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं:

हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की जिनी गुरमुखि नामु धिआइआ॥[260]

एक समय में एक से अधिक महात्मा भी हो सकते हैं। ऐसे महात्मा दुनिया में समाज पर बोझ बनकर नहीं आते बल्कि अपनी मेहनत की कमाई करके संगत की मुफ़्त सेवा करते हैं। गुरु नानक साहिब ने ख़ुद अपने हाथों से खेती की, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और साध-संगत की मुफ़्त सेवा की। आप अपनी वाणी में समझाते हैं:

गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ॥ ता कै मूलि न लगीऐ पाइ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ॥ नानक राहु पछाणहि सेइ॥[261]

अगर कोई गुरु और पीर बनकर अपने शिष्यों और सेवकों से माँगता फिरता है, तो उसके पैरों पर कभी माथा ही मत टेको। जो महात्मा ख़ुद अपनी मेहनत की कमाई करके अपना जीवन बिताता है और संगत की मुफ़्त सेवा करता है, ऐसे महात्मा की खोज करनी चाहिए। हज़रत ईसा भी बाइबल में कहते हैं, 'तुम्हें मुफ़्त मिला है, मुफ़्त ही दो।'[262]

कबीर साहिब के जीवन के वृत्तान्तों से पता चलता है कि आपने सारी उम्र कपड़ा बुनकर गुज़ारा किया, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और साध-संगति की मुफ़्त सेवा की, हालाँकि शाह बलख बुख़ारा जैसे आपके सेवक थे, जो आपको दुनिया की हर नियामत और आराम दे सकते थे। आप अपनी वाणी में कहते हैं:

सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछु न लेय॥[263]

फिर फ़रमाते हैं:

मरि जाऊँ मांगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज॥[264]

सन्त-महात्मा हमारा रुपया-पैसा दुनिया के फ़ायदे में लगा देते हैं, ताकि हमारी कमाई नेक और सफल हो सके और हमारे मन से पैसे का मोह या प्यार निकल सके। लेकिन अपने लिए कभी किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते। स्वामी जी महाराज भी अपनी वाणी में यही फ़रमाते हैं:

गुरु नहिं भूखा तेरे धन का। उन पै धन है भक्ति नाम का॥
पर तेरा उपकार करावें। भूखे प्यासे को दिलवावें॥[265]

महात्मा रविदास ने सारी उम्र जूतियाँ गाँठकर गुज़ारा किया, हालाँकि राजा पीपा, जो कि एक क्षत्रिय राजा था, आपका सेवक था और मीराबाई भी, जो कि मेवाड़ की रानी थी, आपकी शिष्या थी। मीराबाई के जीवन-वृत्तान्त में आता है कि उसे बिरादरी वालों ने ताने सुनाये कि तू तो महलों में रानी बनी बैठी है और तेरा गुरु जूतियाँ गाँठने का काम करता है। सेवकों के लिए अपने गुरु के बारे में ताना सुनना बड़ा मुश्किल होता है। उसने एक क़ीमती हीरा लेकर रविदास जी के पास जाकर अर्ज़ की कि हे गुरुदेव! लोग मुझे ताने सुनाते हैं। आप इस हीरे को बेचकर अपने लिए एक अच्छा मकान बनवाकर इज़्ज़त की ज़िन्दगी बसर करें। लेकिन महात्मा रविदास ने समझाया कि बेटी! मुझे जो कुछ मिला है वह इन जूतियों के गाँठने और इस कुण्ड के पानी से मिला है। मुझे इस हीरे की कोई ज़रूरत नहीं।

महात्मा ख़ुद मिसाल बनकर दिखाते हैं कि किस तरह दुनिया में रहते हुए, दुनिया के काम-काज करते हुए मालिक की भक्ति करनी है। वे यह नहीं कहते कि घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों की ओर चले जाओ और

संन्यास आदि धारण कर लो। जंगलों-पहाड़ों में जाकर हमारे अन्दर मालिक से मिलने का कोई ज़्यादा शौक़ और प्यार पैदा नहीं हो जाता, क्योंकि वही इच्छाएँ, वही तृष्णाएँ हमारे अन्दर वहाँ भी दबी रह जाती हैं। जिस समय फिर दुनिया का सामना करना पड़ता है, तो वही इच्छाएँ हमें अँगुलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, बल्कि हमारी हालत साधारण मनुष्यों से भी बुरी और बदतर हो जाती है।

हमें दुनिया में किस चीज़ की ज़रूरत है? शरीर को ढकने के लिए और गर्मी व सर्दी से बचने के लिए कपड़ों की ज़रूरत है; पेट को भोजन की और रहने के लिए किसी कोठरी या मकान की ज़रूरत है। इन ज़रूरतों को हम जितना भी चाहें बढ़ा लें या कम कर लें; लेकिन जहाँ भी हम जाते हैं, ये ज़रूरतें हमारे साथ ही जाती हैं। जंगलों-पहाड़ों में जाने से क्या होता है? हम सफ़ेद कपड़े उतार देते हैं, भगवे पहन लेते हैं। लेकिन कपड़े की ज़रूरत तो फिर भी महसूस हुई। अपनी स्त्री के हाथ का बनाया हुआ भोजन छोड़कर, लोगों के आगे जाकर पेट की ख़ातिर हाथ फैलाना पड़ता है, लेकिन पेट ने खाना तो फिर भी माँगा। अपने घर का सुख और आराम छोड़कर किसी गुफ़ा, कन्दर या आश्रम में जा बैठे। सिर ढकने के लिए किसी न किसी जगह की तो फिर भी ज़रूरत पड़ी। हमसे उन चीज़ों में से कोई भी चीज़ नहीं छूटी, उलटे हम अपना बोझ समाज पर डाल देते हैं और आलसी बन जाते हैं। लोगों की कई तरह की ख़ुशामदें करनी पड़ती हैं और कई तरह के झूठ-सच अपने पेट की ख़ातिर बोलने पड़ते हैं। महात्मा समझाते हैं कि दुनिया में हमें सूरमा और बहादुर बनकर रहना है। दुनिया में रहते हुए भी दुनिया की गन्दगी में नहीं फँसना है। गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं:

> जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे॥
> सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥[266]

जिस तरह कमल का फूल पानी में पैदा होता है, लेकिन हमेशा पानी से बाहर रहता है, हालाँकि उसकी नाल और जड़ पानी के अन्दर होती है। जिस

प्रकार मुरग़ाबी (जल-कुक्कुट) पानी के अन्दर रहते हुए भी सूखे परों से उड़ जाती है। इसी तरह हमें भी दुनिया में रहते हुए अन्दर अपनी सुरत को शब्द के साथ जोड़कर भवसागर से पार होना है। एक मक्खी जो शहद के किनारे पर बैठती है शहद का स्वाद भी लेती है और सही-सलामत उड़ भी जाती है। लेकिन अगर वह शहद के अन्दर फँस जाये तो वह स्वाद भी नहीं ले सकती और तड़प-तड़पकर अपनी जान दे देती है। दुनिया में हमें इस प्रकार रहना है जिस प्रकार एक विवाहित लड़की अपने माता-पिता के पास रहती है। वह माता-पिता की सेवा भी करती है और घर का काम-काज भी करती है, लेकिन माता-पिता के घर रहते हुए भी वह अपने पति को कभी नहीं भूलती। उसका मन सदा अपने पति के चरणों में लगा रहता है। इसी प्रकार हमें भी दुनिया में रहते हुए, दुनिया के लेन-देन का हिसाब ख़त्म करते हुए, अपनी लिव उस मालिक की भक्ति और प्यार में लगाए रखनी है। इसलिए सन्त-महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि अपने घर-बार में रहते हुए , हक़-हलाल की कमाई करते हुए, मालिक की भक्ति करो। हमें ऐसे महात्मा की खोज करके ही उनसे शब्द या नाम का भेद लेना है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

संतहु गुरमुखि पूरा पाई॥ नामो पूज कराई ॥[267]

सच्ची भक्ति और पूजा

गुरु अमरदास जी का कथन है:

सचै सबदि सची पति होई॥ बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥
बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे ॥[268]

मालिक ने अपने मिलने के लिए यही क़ुदरती क़ानून बनाया है कि सच्चे शब्द या नाम की कमाई के बग़ैर हम कभी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते और सतगुरु के बिना हमें नाम की कमाई करने के तरीक़े और साधन का पता नहीं चल सकता। हज़रत ईसा भी इस ओर इशारा करते हैं, 'मैं

तुझसे सच कहता हूँ, जब तक मनुष्य दुबारा जन्म नहीं लेता, वह ख़ुदा की बादशाहत नहीं देख सकता।'[269] नया जन्म लेने से मतलब उस नाम या शब्द से जुड़ना है, जिसे पाकर इस नाशवान संसार से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है और हम अपने परमपिता परमात्मा के घर जाने के क़ाबिल बन जाते हैं। जैसा कि गुरु नानक साहिब ने अपनी वाणी में फ़रमाया है:

सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ॥[*270]

एक और स्थान पर हज़रत ईसा फ़रमाते हैं, 'अब उस शब्द के द्वारा जो मैंने तुमसे कहा है, तुम शुद्ध हो।'[271] अर्थात् मैंने जिस शब्द से तुम्हें जोड़ा है, उसने तुम्हें पापों के भार से मुक्त कर दिया है।

वह मालिक ख़ुद-मुख़्तार है, स्वाधीन है, जो चाहे अपने मिलने का तरीक़ा बना सकता है। इसमें किसी का कोई दख़ल नहीं। जो भक्ति उस परमात्मा को मंज़ूर है, वह शब्द या नाम की कमाई है। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई॥[272]

दुनिया व्यर्थ भ्रमों में फँसकर इस चौरासी के जेलख़ाने में भटक रही है। उस नाम के बग़ैर तो मुक्ति का कोई और रास्ता ही नहीं है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं:

नामु विसारि चलहि अन मारगि अंत कालि पछुताही॥[273]

नाम की कमाई करने का रास्ता छोड़कर अगर हम किसी और रास्ते पर चलने की कोशिश करते हैं तो अन्त में मौत के समय पछताना पड़ता है कि यों ही अपने क़ीमती समय को व्यर्थ की बातों में गँवा दिया। गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

विणु नावै दरि ढोई नाही ता जमु करे खुआरी॥[274]

---

* **गवनु**=आवागमन।

शब्द या नाम की कमाई के बग़ैर मालिक के दरबार में जाने की कभी इजाज़त नहीं मिलती और यमदूतों के हाथों ख़राब होना पड़ता है। यही स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

गुरु कहें खोल कर भाई। लग शब्द अनाहद जाई॥
बिन शब्द उपाव न दूजा। काया का छुटे न कूज़ा॥[275]

शब्द या नाम की कमाई के सिवाय और कोई उपाय और तरीक़ा नहीं है जिससे कि हम देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। बाक़ी जितने भी साधन जैसे जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य वग़ैरह हैं, सबका फल हमें ज़रूर मिलता है। लेकिन उनका फल लेने के लिए हमें फिर से देह के बन्धनों में आना पड़ता है। नेक कर्म करते हैं तो राजा-महाराजा बनकर आ जाते हैं, सेठ-साहूकार बन जाते हैं, क़ौमों, मज़हबों, मुल्कों की हुकूमत हासिल करके आ जाते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा बैकुण्ठों-स्वर्गों तक पहुँच जाते हैं। लेकिन ये भी भोग-योनियाँ हैं, जो एक निश्चित समय के लिए होती हैं। उसके बाद हमें फिर चौरासी के जेलख़ाने में आना पड़ता है। लेकिन नाम की कमाई हमें हमेशा के लिए देह के बन्धनों से आज़ाद कर देती है। गुरु नानक साहिब का कथन है:

सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु॥[276]

इन सब चीज़ों का फल शब्द की कमाई के फल के नीचे रहता है यानी हमें काल के दायरे में ही रखता है। शब्द की कमाई का फल सबसे ऊँचा है। वह हमें काल के दायरे से पार ले जाता है; क्योंकि वह चीज़ ही हमें मन और माया के दायरे से पार ले जा सकती है जो मन और माया के दायरे के पार से आती हो। वह शब्द सचखण्ड से उठता है। काल की सीमा ब्रह्म और त्रिलोकी तक है। इसलिए, हम शब्द को पकड़कर काल की हद से पार चले जाते हैं। स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

शब्द कमाई कर हे मीत। शब्द प्रताप काल को जीत॥
शब्द घाट तू घट में देख। शब्दहि शब्द पीव को पेख॥

शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे॥
शब्द बिना सब झूठा ज्ञान। शब्द बिना सब थोथा ध्यान॥
शब्द छोड़ मत अरे अजान। राधास्वामी कहें बखान॥[277]

गुरु नानक साहिब भी यही कहते हैं:

हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ॥[278]

हमने अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लिया है कि कोई भी चीज़ नाम-भक्ति की बराबरी नहीं कर सकती। फिर गुरु नानक देव जी कहते हैं:

सूहटु पिंजरि प्रेम कै बोलै बोलणहारु॥
सचु चुगै अंम्रितु पीऐ उडै त एका वार॥[279]

हमारी आत्मा तोते के समान है और यह शरीर एक पिंजरे के समान है। जिस प्रकार तोता पिंजरे से प्यार करके तरह-तरह की बोलियाँ बोलता है, उसी तरह हमारी आत्मा भी इस शरीर से प्यार लगाये बैठी है। कभी उसके अन्दर बैठकर रोती है, कभी हँसती है, कभी सुख और कभी दुःख महसूस करती है। अगर हमारी आत्मा इस देह के प्यार को छोड़ दे और इसके अन्दर परमात्मा ने जो सच का चोगा रखा है उसको चुगना और उस शब्द रूपी अमृत को पीना शुरू कर दे तो यह हमेशा के लिए इस देह के बन्धनों से आज़ाद हो जाये। गुरु अर्जुन साहिब एक बहुत अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं:

अनिक करम कीए बहुतेरे॥ जो कीजै सो बंधनु पैरे॥
कुरुता बीजु बीजे नही जंमै सभु लाहा मूलु गवाइदा॥
कलजुग महि कीरतनु परधाना॥ गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना॥
आपि तरै सगले कुल तारे हरि दरगह पति सिउ जाइदा॥[280]

नाम की कमाई के बग़ैर जो भी साधन या तरीक़े हम मुक्ति की प्राप्ति के लिए अपनाते हैं, वे हमें देह के बन्धनों में और ज़्यादा फँसा देते हैं। अगर

हम ज़मीन में बे-मौसम का बीज बोते हैं तो हम कितना भी हल चला लें, अच्छी से अच्छी खाद डाल लें और पानी आदि समय पर दें, तो भी वह फ़सल हमारे घर नहीं आ सकती, हमारी सब मेहनत, बीज और ख़र्च फ़ज़ूल चले जाते हैं। इसी तरह कलियुग में मुक्ति प्राप्त करने का असली तरीक़ा शब्द या नाम की कमाई है जिसके बारे में हमें सिर्फ़ पूरे गुरु से ही पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त हो सकती है। स्वामी जी महाराज भी कहते हैं:

कलजुग कर्म धर्म नहिं कोई। नाम बिना उद्धार न होई॥[281]

गुरु रामदास जी भी फ़रमाते हैं:

कलिजुगि राम नामु बोहिथा गुरमुखि पारि लघाई॥[282]

कलियुग में अगर कोई ऊँचे से ऊँचा, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कर्म है तो वह सिर्फ़ नाम की कमाई है। इस बात को गुरु अमरदास साहिब और भी अच्छी तरह समझाते हैं:

इसु जुग का धरमु पड़हु तुम भाई॥ पूरै गुरि सभ सोझी पाई॥
ऐथै अगै हरि नामु सखाई॥[283]

चार युग एक-दूसरे के बाद चक्कर लगा रहे हैं। हरएक युग में हमारे जीवन के हालात बिलकुल अलग-अलग होते हैं। सतयुग में हमारी उम्र बहुत लम्बी थी, हमारा स्वास्थ्य भी अच्छा था और हमारा ख़याल भी दुनिया में इतना फैला हुआ नहीं था। मामूली से यत्न से हमारा ख़याल मालिक की भक्ति की ओर लग जाता था। जैसे-जैसे युग पलटते गये, उम्र छोटी होती गयी, स्वास्थ्य कमज़ोर होता गया और ख़याल भी दुनिया में पूरी तरह फैल गया। जो साधन हमें सतयुग में काम देते थे, वे अब कलियुग में काम नहीं दे सकते। कलियुग में तो कोई भाग्यशाली इनसान ही सत्तर या अस्सी साल गुज़ार कर जाता है। स्वास्थ्य भी इतना कमज़ोर है कि एक डेढ़ घण्टा भी हम लगातार मालिक की भक्ति एक आसन पर बैठकर नहीं कर सकते और ख़याल भी इतना फैला हुआ है कि पाँच मिनट के लिए भी हम किसी विषय

पर पूरी एकाग्रता के साथ विचार नहीं कर सकते। गुरु साहिब समझाते हैं कि अगर हम कलियुग में आकर ज़िन्दगी के चार दिन सुख और शान्ति से गुज़ारना चाहते हैं और वापस जाकर परमात्मा से भी मिलना चाहते हैं तो सिर्फ़ नाम की कमाई का ही रास्ता है। कलियुग में आकर तो महात्माओं ने बड़ा खोल कर नाम का प्रचार किया है।

हमारा मन हमें उस शब्द या नाम की कमाई की ओर जाने ही नहीं देता, बल्कि हमेशा पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, जप-तप, दान-पुण्य आदि में ही लगाये रखता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

> पूजा करै सभु लोकु संतहु मनमुखि थाइ न पाई॥
> सबदि मरै मनु निरमलु संतहु एह पूजा थाइ पाई॥[284]

हम सब दुनिया के जीव अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस परमात्मा की भक्ति करने की कोशिश ज़रूर करते हैं, क्योंकि आत्मा का झुकाव अपने असल या मूल की ओर होता है। इसी झुकाव के फलस्वरूप हम परमात्मा को ढूँढ़ते हैं, लेकिन मन के पीछे लगकर मालिक की भक्ति करते हैं। यह भक्ति हमें कभी हमारे ठिकाने पर नहीं पहुँचाती। हमारा ठिकाना सचखण्ड है और मन की हद ब्रह्म तक ही रह जाती है। शब्द या नाम की कमाई करने से ही हमारा मन निर्मल होता है और यह नाम की कमाई ही हमें अपने असली ठिकाने या असली घर सचखण्ड पहुँचाती है। हरएक भक्ति हमें परमात्मा से नहीं मिलाती, सिर्फ़ नाम की कमाई ही मालिक तक ले जा सकती है। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

> अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो कर्म दहा॥[285]

यह मनुष्य का चोला परमात्मा की अपार कृपा से प्राप्त हुआ है। इसमें बैठकर वह भक्ति करो जिससे कर्मों का सिलसिला ख़त्म हो जाये। वह भक्ति सिर्फ़ नाम या शब्द की कमाई है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

> पूजा करहि परु बिधि नही जाणहि दूजै भाइ मलु लाई॥[286]

हमें भक्ति करने के असली तरीक़े का पता नहीं चलता, ग़लत रास्ते पर पड़कर और अधिक मैल और पापों को इकट्ठा कर लेते हैं। बाइबल में यही हज़रत ईसा ने कहा है, 'तू पूजा करता है पर नहीं जानता कि क्या कर रहा है।'[287] स्वामी जी महाराज भी इसी प्रकार समझाते हैं:

फोकट धर्म पकड़ कर जूझे। बूझे न शब्द जुगत पारा॥
पानी मथे हाथ कुछ नाहीं। क्षीर मथन आलस भारा॥
जीव अभाग कहूं मैं क्या क्या। बाहर भरमे भौ जारा॥
अंतरमुख जो शब्द कमाई। ता में मन को नहिं गारा॥[288]

जो मालिक की भक्ति का असली तरीक़ा है यानी शब्द की कमाई है, उसे तो हम पकड़ने की कोशिश नहीं करते, हमेशा बाहरी रीति-रिवाजों और कर्मकाण्ड में ही उलझे रहते हैं। इन बातों को स्वामी जी महाराज 'फोकट धर्म' कहकर समझाते हैं। हम छिलकों से प्यार करते हैं, लेकिन जो उनके अन्दर गूदा है, उसे ग्रहण नहीं करते। स्वामी जी महाराज समझाते हैं कि सारी उम्र अगर हम पानी बिलोते रहेंगे तो उसमें से कुछ नहीं निकलेगा। लेकिन अगर दूध को मथेंगे तो उसमें से मक्खन प्राप्त कर सकेंगे। इसलिए वे समझाते हैं कि अपने मन को अन्दर शब्द के साथ जोड़ना चाहिए, उससे जुड़कर ही यह निर्मल और पवित्र हो सकता है। गुरु अमरदास जी का कथन है:

सबदु विसारनि तिना ठउरु न ठाउ॥ भ्रमि भूले जिउ सुंञै घरि काउ॥
हलतु पलतु तिनी दोवै गवाए दुखे दुखि विहावणिआ॥[289]

जो शब्द या नाम की खोज नहीं करते, उनका न तो इस दुनिया में कहीं ठिकाना है और न ही अगली दुनिया में कोई ठिकाना बनता है। जैसे ख़ाली घर के अन्दर कौआ दिन-भर फुदकता रहता है, लेकिन उसे खाने के लिए कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार हम इस चौरासी के जेलख़ाने में भटकते रहते हैं। ऐसे लोगों ने अपने दीन और दुनिया दोनों ख़राब कर लिये। हज़रत ईसा भी शब्द या नाम के महत्त्व के बारे में कहते हैं कि जो लोग उससे मुख

मोड़ लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं उनका गुनाह न इस दुनिया में माफ़ हो सकता है न अगली दुनिया में, 'जो कोई भी पवित्र आत्मा (शब्द) के विरोध में कुछ कहेगा उसका गुनाह न तो इस लोक में और न परलोक में बख़्शा जायेगा।'[290]

जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य आदि सबका जो भी फल है, वह सब शब्द या नाम की कमाई में आ जाता है, जैसे कि कहावत है, 'हाथी के पाँव में सबका पाँव।' जिस समय हमारी ज़बान पर दिन-रात उस मालिक का नाम चढ़ा होता है यानी हम उस मालिक के नाम के सिमरन में लगे होते हैं, तो उससे बड़ा 'जप' और कौन-सा हो सकता है! जब हम अपने आपको उस मालिक के हवाले किये बैठे हैं और उसकी रज़ा में रह रहे हैं तो इससे बड़ा 'तप' और क्या हो सकता है! जब हम अपने अन्दर दिन-रात उस शब्द रूपी वाणी को सुन रहे हैं तो इससे बड़ा पाठ और क्या कर सकते हैं! जब गुरुमुखों के स्वरूप को दिन-रात प्यार में अपने साथ-साथ लिये रहते हैं तो इससे बड़ी 'पूजा' और क्या हो सकती है! जिस समय उस नाम रूपी अमृत को पीकर मन दुनिया से उदास और उचाट हो जाता है तो इससे बड़ा 'वैराग्य' और क्या हो सकता है! न घर-बार छोड़ने की ज़रूरत है, न बाल-बच्चों को त्यागने की ज़रूरत है, न ही कहीं बाहर जंगलों-पहाड़ों में भटकने की ज़रूरत है। हमें संसार में रहते हुए, संसार का कारोबार अपना फर्ज़ और कर्तव्य समझकर करते हुए, अपने अन्दर ही उस शब्द का अभ्यास करना है। सतगुरु से शब्द या नाम की बख़्शिश लेकर अपने अन्दर ही उसका स्वाद प्राप्त करना है, कहीं बाहर भटकने की ज़रूरत नहीं।

नाम की कमाई करके हम जन्म-जन्मान्तरों के देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं और वापस जाकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हमें नाम की कमाई, लोगों की मान-बड़ाई पाने के लिए नहीं करनी है, ऋद्धि-सिद्धि और करामातें दिखाने के लिए नहीं करनी है। नाम की कमाई हमें मालिक की कृपा और बख़्शिश प्राप्त करने के लिए करनी है, लोगों को करामातें दिखाकर कुल मालिक के शरीक़ बनने के लिए नहीं करनी है। इसलिए महात्मा समझाते हैं कि उस नाम की बख़्शिश को हमें अपने अन्दर

ही हज़्म करना चाहिए, इस अनमोल पदार्थ को कौड़ियों की तरह बिखेरना नहीं चाहिए। जितना हम उस मालिक की बख़्शिश को अपने अन्दर हज़्म करेंगे, उतनी ही वह हम पर और बख़्शिश व मेहर करेगा। कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

राम पदारथु पाइ कै कबीरा गांठि न खोल्ह ॥
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु ॥[291]

उस नाम रूपी दौलत को प्राप्त करके उसे अपने अन्दर इतना दबाकर रखो कि उसकी ख़ुशबू तक बाहर न जाये, क्योंकि न तो दुनिया में कोई उसका अधिकारी है, न किसी को खोटे और खरे की पहचान है और न ही उसका कोई ग्राहक है और न ही कोई उसकी क़ीमत देने को तैयार है। लोग तो बेटे-बेटियों के ग्राहक हैं, धन-दौलत के अभिलाषी हैं। वे उस नाम रूपी दौलत की क़ीमत देने को तैयार नहीं। उसकी क़ीमत क्या देनी पड़ती है? अपने आपको ही मालिक के हवाले करना पड़ता है, जिस हालत में भी वह मालिक रखे उसी हालत में रहते हुए नाम की कमाई करनी पड़ती है। कबीर साहिब फिर समझाते हैं:

सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥[292]

हमने दुनिया के सब रसायनों को देख लिया, मगर नाम के बराबर कोई रसायन नहीं है। उसकी एक रत्ती भी अगर शरीर में रच जाये तो हमारा शरीर सोना हो जाता है, मतलब इस शरीर में आने का उद्देश्य पूरा हो जाता है। इसी प्रकार गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

पारखीआ वथु समालि लई गुर सोझी होई ॥
नामु पदारथु अमुलु सा गुरमुखि पावै कोई ॥[293]

जिनको इस चीज़ की परख और क़द्र है, वे इसे बहुत सँभाल-सँभालकर रखते हैं और यह क़द्र भी सन्तों की संगति में जाकर आती है।

अगर हमें कोई क़ीमती हीरा मिल जाता है तो हम उसे किस तरह सँभाल-सँभालकर रखते हैं। रुई में लपेटकर मज़बूत पेटियों में रखते हैं, उसकी चाबी को हमेशा छाती से लगाये रखते हैं, अपने बीवी-बच्चों तक को पता नहीं देते कि वे कहीं उसे खो न दें। यह दुनिया की एक मामूली सी चीज़ है, जिसकी क़ीमत लगाई जा सकती है; लेकिन जिस नाम की कोई क़ीमत ही नहीं लगाई जा सकती, जिसे महात्मा अमूल्य और अमोलक कहते हैं, जिसे पाकर हम ख़ुद मालिक ही बन जाते हैं, हमें उसकी कितनी सँभाल करनी चाहिए, इसका अन्दाज़ा आप ख़ुद ही लगा सकते हैं। हज़रत ईसा कहते हैं, 'पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो और न अपने मोतियों को सूअरों के सामने डालो। ऐसा न हो कि वे उन्हें पैरों तले रौंद डालें और पलटकर तुम पर हमला कर दें।'[294]

यानी उस दौलत का ग्राहक साधारण तौर पर दुनिया में नहीं है, उस बहुमूल्य मोती को जानवरों के आगे मत डालो, वे उसकी क़द्र नहीं जानते। स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

प्रीत प्रतीत गुरू की करना। नाम रसायन घट में जरना॥[295]

जिस प्रकार रसायन हमारे शरीर के अन्दर रच जाता है और शरीर की सब बीमारियाँ दूर कर देता है, इसी प्रकार हमें अपने अन्दर नाम को रचाना और हज़्म करना है। हमें नाम की कमाई हमेशा परमात्मा के ग्राहक बनकर करनी है, परमात्मा से मिलने के लिए करनी है। बाल-बच्चों का प्यार प्राप्त करने के लिए नहीं करनी है और न ही कोई दुनियावी यश या पद प्राप्त करने के लिए करनी है। जितना सच्चा प्यार और इश्क़ लेकर हम उस मालिक को चाहते हैं, उतनी ही वह हम पर अपनी दया-मेहर-बख़्शिश करता है। जिस तरह पपीहा स्वाँति की बूँद के लिए तड़पता है, दिन-रात उसी की रट लगाये रहता है, उसी तरह हमारे अन्दर मालिक से मिलने व उसके दर्शन करने की तड़प होनी चाहिए। हमें यह सोचकर मालिक की भक्ति नहीं करनी चाहिए कि अगर ऐसा नहीं करेंगे तो हमारे कारोबार में घाटा पड़ जायेगा, धन-दौलत में कमी आ जायेगी या दुनिया में मान-सम्मान

खो बैठेंगे या और कोई इसी प्रकार का दुनियावी नुक़सान हो जायेगा। यह मालिक की भक्ति करने का एक बहुत घटिया तरीक़ा है। हमें मालिक की भक्ति इसलिए करनी है कि हमारे अन्दर उससे मिलने का सच्चा इश्क़ और सच्चा प्यार है। दुनियावी लाभ के लिए मालिक की भक्ति करना ऐसा ही है जैसे लोग अक्सर साँप की पूजा करते हैं। वे साँप की भक्ति इसलिए नहीं करते कि उनको साँप से प्यार है। वे तो साँप के डंक और ज़हर से बचने के लिए उसकी भक्ति करते हैं। वास्तव में धर्म की बुनियाद प्रेम है, न कि डर। इसलिए हमें अपने अन्दर मालिक का सच्चा इश्क़ और प्यार पैदा करना चाहिए।

सांसारिक इच्छाएँ

तुलसी साहिब उपदेश देते हैं:

> दिल का हुजरा साफ कर, जानां के आने के लिए।
> ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिए॥[296]

दिल तो हमारा दुनिया के पदार्थों और शक्लों के लिए भटकता है, मिलना हम मालिक से चाहते हैं, ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं? मन तो एक ही है, उसे चाहे दुनिया के प्यार में लगा लें, चाहे मालिक की भक्ति में। हमारा कोई मामूली-सा रिश्तेदार या प्यारा हमसे कहीं दूर चला जाता है, हमसे बिछुड़ जाता है, तो हम उसकी याद में किस तरह तड़पते हैं, सारी रात जागते और आँसू बहाते रहते हैं। क्या हमने कभी मालिक के विछोड़े में एक रात भी जागकर काटी है? हमारी आँखों में उस मालिक की याद में एक आँसू भी आया है? हम अपने बच्चे को बाहर खेलने के लिए आया के साथ भेज देते हैं। आया तरह-तरह से उसका मन बहलाने की कोशिश करती है। कभी उसे मीठी-मीठी बातें सुनाती है, कभी मिठाई देती है, कभी खिलौनों से दिल बहलाती है। लेकिन फिर भी अगर बच्चा माता-पिता के लिए रोना शुरू कर देता है और आया के किसी भी खिलौने से उसका मन नहीं बहलता, तो फिर माता-पिता भी उसकी तड़प बर्दाश्त नहीं कर सकते,

फ़ौरन जाकर बच्चे को छाती से लगा लेते हैं। इसी प्रकार, जब तक हम उस मालिक की रचना के साथ ही मोह या प्यार किये बैठे हैं, अपने मन को इसी में उलझाये बैठे हैं, हम इस रचना का ही हिस्सा बने रहते हैं। जब इस रचना से अपने प्यार को निकाल कर पूरी तरह से मालिक की ओर लगा देते हैं तो वह भी दया-मेहर करके हमें अपने साथ मिला लेता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि का गाहकु होवै सो लए पाए रतनु वीचारा॥[297]

जो मालिक के ग्राहक या प्यारे बनकर उसकी भक्ति करते हैं वे मालिक को ही पा लेते हैं। इसलिए हमें दुनिया की इच्छाओं और तृष्णाओं को छोड़कर उस परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। पलटू साहिब समझाते हैं:

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय।
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी॥
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी।[298]

नाम रूपी दौलत या धन को पाना इतना आसान नहीं, जितना कि लोग समझते हैं। इसे वही शख़्स प्राप्त कर सकता है, जो अपने अन्दर से कामनाओं और तृष्णाओं को निकाल देता है। तुलसी साहिब का कथन है:

एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज़्यादा हविस।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिए॥[299]

हमारा मन तो एक है और हज़ारों लाखों इच्छाएँ हम दिन-रात करते रहते हैं। पिछली इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी नहीं होती हैं कि मन और नई इच्छाएँ पैदा करना शुरू कर देता है। जो इच्छाएँ हमारी मर्ज़ी के अनुसार पूरी नहीं होतीं, वे हमारे लिए दु:ख का कारण बन जाती हैं। जब हमारे मन की यह हालत है तो परमात्मा हमारे अन्दर कैसे बस सकता है? गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

देदा दे लैदे थकि पाहि॥ जुगा जुगंतरि खाही खाहि॥[300]

परमात्मा देते-देते कभी नहीं थकता, हम दुनिया के जीव लेते-लेते थक जाते हैं। मन जो-जो इच्छाएँ करता है, उनको पूरी करने के लिए परमात्मा हमें फिर जन्म दे देता है। हम और इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं, मालिक फिर जन्म दे देता है और उस जामे में जन्म देता है, जिसमें जाकर उन इच्छाओं को अच्छी तरह पूरा किया जा सके। जिस समय हम सब इच्छाओं से तंग आकर परमात्मा से परमात्मा को माँगते हैं तो फिर परमात्मा दया मेहर करके हमें अपने साथ मिला लेता है।

महात्मा समझाते हैं, 'आसाँ परबत जेडीयाँ मौत तनावाँ हेठ।'[301] हमारी इच्छाएँ और तृष्णाएँ तो शायद हिमालय पर्वत से भी बड़ी हैं। अगर परमात्मा हमें हज़ारों साल की भी उम्र दे दे, तो भी शायद हम उनको पूरा न कर सकें। लेकिन मौत हमारे सिर पर खड़ी है, पता नहीं ज़िन्दगी के चन्द रोज़ मिलने हैं या नहीं और मौत किस वक़्त आ जाये। स्वामी जी महाराज फ़रमाते हैं:

जीव सब लोभ में भूले। काल से कोइ नहीं बचना॥
तृष्णा अग्नि जग जारा। पड़ा सब जीव को तपना॥
नहीं कोइ राह बचने की। जलें सब नर्क की अगिना॥
जलेंगे आग में निसदिन। बहुरि भोगें जनम मरना॥
भटकते वे फिरें खानी। नहीं कुछ ठीक उन लगना॥
कहूं क्या दुक्ख वह भोगें। कहन में आ नहीं सकना॥[302]

हम सब दुनिया के जीव लोभ और लालच में फँसे हुए हैं और अपनी मौत को भी भूले बैठे हैं। हौंमैं या मैं-मेरी में आकर कई प्रकार के कर्म करते हैं, कई प्रकार की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं। वे पूरी नहीं होती, यहाँ तृष्णा की अग्नि में जलते हैं और मौत के बाद नरकों की आग में जलना पड़ता है। ये इच्छाएँ हमें फिर खींचकर चौरासी के जेलख़ाने में ले आती हैं और जो-जो दुःख और मुसीबतें उन जामों में जाकर हमें भुगतनी

पड़ती हैं, उनको बयान नहीं किया जा सकता। इसलिए महात्मा हमें समझाते हैं कि हमेशा मालिक की मौज, मालिक के भाणे या हुक्म में रहना चाहिए। मालिक के भाणे में रहने का मतलब है कि मन में कोई इच्छा और तृष्णा नहीं उठानी चाहिए, जो कुछ परमात्मा बख़्शे, उसकी इच्छा समझकर स्वीकार करना चाहिए। सन्त नामदेव जी का कथन है:

जौ राजु देहि त कवन बडाई॥ जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥[303]

गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं:

जे तखति बैसालहि तउ दास तुम्हारे घासु बढावहि केतक बोला॥[304]

हे परमात्मा! अगर मुझे दुनिया का राज-पाट भी दे दे, तो भी मुझे तेरी ही महिमा गानी है, तेरी ही भक्ति करनी है। अगर मुझे दर-दर ठोकरें खानी पड़ेंगी तो मुझे कौन-सा अपने दाता का दरवाज़ा छोड़ जाना है। जिस प्रकार एक समुद्री जहाज़ के कौए का जहाज़ के अलावा और कोई ठिकाना नहीं होता, इसी प्रकार हमारी आत्मा का भी परमात्मा के सिवाय और कोई ठिकाना नहीं है।

यह बात ध्यानपूर्वक विचार करने की है कि ये इच्छाएँ और तृष्णाएँ कौन पैदा करता है? ये सब हमारा मन पैदा करता है। और हम पूरी किससे करवाना चाहते हैं? परमात्मा से। हम मन को कभी समझाने की कोशिश नहीं करते कि तू मालिक की मर्ज़ी के अनुसार अपने आपको ढालने की कोशिश कर, उसके हुक्म और उसकी मौज में रह। उलटा दिन-रात परमात्मा को समझाने की कोशिश करते हैं कि तू हमारे मन की मर्ज़ी के अनुसार चलने की कोशिश कर। भक्ति हम परमात्मा की कर रहे हैं या मन की? स्वामी जी महाराज भी यही समझाते हैं:

गुरू की मौज रहो तुम धार। गुरू की रज़ा सम्हालो यार॥
गुरू जो करें सो हितकर जान। गुरू जो कहें सो चित धर मान॥[305]

गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मनि वसाई ॥[306]

गुरुमुखों को ही मालिक की भक्ति और पूजा का सही ढंग मालूम है, क्योंकि वे भाणे में रहकर मालिक की भक्ति करते हैं। आप फिर फ़रमाते हैं:

भाणे ते सभि सुख पावै संतहु अंते नामु सखाई ॥[307]

भाणे में ही सुख और शान्ति है और अन्त में मालिक हमारी सहायता करता है। हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, 'मैं अपनी इच्छा नहीं, बल्कि अपने पिता की इच्छा चाहता हूँ जिसने कि मुझे भेजा है।'[308] एक अन्य स्थान पर कहते हैं, 'पुत्र स्वयं कुछ नहीं कर सकता, जो पिता को करते देखता है वही करता है।'[309] एक महात्मा फ़रमाते हैं, 'जिसको कछु न चाहिए वही शाहंशाह।'[310] जिसको किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, जो हमेशा मालिक के हुक्म में ही रहता है, उससे बड़ा शहंशाह कौन हो सकता है।

मुसलमानों में भी दो प्रकार के फ़क़ीर होते हैं—एक अहले-दुआ* और दूसरे अहले-रज़ा†। अहले-रज़ा का पद, अहले-दुआ से कहीं ऊँचा है। इसलिए हमें मालिक के भाणे, मालिक की मौज में रहते हुए ही नाम की कमाई करनी चाहिए।

मनुष्य जन्म का उद्देश्य

परमात्मा ने सृष्टि की रचना करके इसे चौरासी लाख योनियों में बाँटा है। ऋषियों-मुनियों ने इन चौरासी लाख योनियों का इस प्रकार हिसाब लगाया है—बीस लाख प्रकार की वनस्पति, पेड़-पौधे; ग्यारह लाख प्रकार के कीड़े-मकौड़े; दस लाख प्रकार के पक्षी; नौ लाख प्रकार के पानी के जीव, तीस लाख प्रकार के चौपाये और चार लाख प्रकार के पशु, जिन्न, भूत-प्रेत, देवी-देवता, मनुष्य आदि।

---

* **अहले दुआ**=जो फ़क़ीर मालिक से दुआ माँगने या प्रार्थना करने में विश्वास रखते हैं।

† **अहले रज़ा**=जो मालिक की रज़ा या इच्छा में प्रसन्न रहते हैं और उससे कुछ माँगते नहीं।

हम अपने कर्मों के अनुसार इस चौरासी के जेलख़ाने में फँसे हुए हैं, हमारी आत्मा परमात्मा से मिलकर ही इस जेलख़ाने से निकल सकती है और परमात्मा हमें यह मनुष्य-चोला केवल इसीलिए बख़्शता है कि हम उसकी भक्ति करके देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। अगर मनुष्य के चोले में आने का कोई लाभ है तो सिर्फ़ यही है। इस चोले को यह फ़ख़्र या गौरव प्राप्त है कि इसमें बैठकर परमात्मा से मिलाप किया जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं:

लख चउरासीह जोनि सबाई॥ माणस कउ प्रभि दीई वडिआई॥
इसु पउड़ी ते जो नरु चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइदा॥[311]

परमात्मा ने इनसान के जामे को सबसे ऊँचा रखा है। यह सीढ़ी का आख़िरी डण्डा है। अगर कोशिश करते हैं तो मकान की छत पर चले जाते हैं यानी मालिक से मिल जाते हैं, अगर पैर फिसलता है तो नीचे फिर चौरासी के जेलख़ाने में आ जाते हैं। गुरु अर्जुन देव जी समझाते हैं:

कई जनम भए कीट पतंगा॥ कई जनम गज मीन कुरंगा॥
कई जनम पंखी सरप होइओ॥ कई जनम हैवर ब्रिख जोइओ॥
मिलु जगदीस मिलन की बरीआ॥ चिरंकाल इह देह संजरीआ॥[312]

कई जन्म कीड़ों-पतंगों के पाये, कई जन्म हाथी, मछली और हिरणों के पाये; कई जन्म पक्षियों और साँपों के मिले और कई जन्म घोड़ों, पशुओं और पेड़ों-पौधों के पाये। काफ़ी समय के बाद परमात्मा ने अपनी भक्ति के लिए अब यह इनसान का जामा बख़्शा है। हमें इससे पूरा फ़ायदा उठाना चाहिए। मौलाना रूम फ़रमाते हैं:

हमचू सब्ज़ा बारहा रोईदा अम,
हफ़्त सद हफ़्ताद कालिब दीदा अम।[313]

अर्थात् वनस्पति की तरह मैं कई बार पैदा हुआ हूँ और सात सौ सत्तर शरीर मैंने देखे हैं। एक और फ़क़ीर लिखते हैं:

गाहे शजर दर बाग़-हा गाहै समर बर शाख़-हां।[314]

कई बार मैं घास और सब्ज़ी की तरह पैदा हुआ हूँ और सैकड़ों शरीर मैंने देखे हैं। कभी बाग़ में दरख़्त बना हूँ, कभी दरख़्तों पर फल बनकर लगा हूँ। ऋषियों-मुनियों ने मनुष्य-देह को 'नर-नारायणी देह' कहकर बयान किया है, मुसलमान फ़क़ीर इसे 'अश्रफ़-उल-मख़्लूकात' कहते हैं और यहूदियों का ख़याल है कि परमात्मा ने हमें अपनी ख़ुद की शक्ल पर बनाया है।[315] कबीर साहिब भी यही समझाते हैं:

कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारै बार॥
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार॥[316]

जिस तरह वृक्ष से फल पक कर नीचे गिरता है तो वह फिर वृक्ष से वापस नहीं जुड़ सकता, इसी तरह अगर हम इनसान के जामे को अब व्यर्थ गँवा बैठेंगे, तो फिर यह अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। स्वामी जी महाराज भी यही उपदेश देते हैं:

मिली नर देह यह तुम को। बनाओ काज कुछ अपना॥
पचो मत आय इस जग में। जानियो रैन का सुपना॥
देह और ग्रेह सब झूठा। भर्म में काहे को खपना॥[317]

यह इनसान का जामा परमात्मा ने हमें अपना काम करने के लिए बख़्शा है। अपना काम वही है जो हमें वापस ले जाकर परमात्मा से मिलाता है। वह काम परमात्मा की भक्ति है। यह दुनिया एक रात के सपने की तरह है। इसकी कोई असलियत नहीं है। इसे देखकर यह नहीं भूलना चाहिए कि जो कुछ भी हम आँखों से देख रहे हैं, ज़मीन-जायदाद, धन-दौलत, रिश्तेदार और यहाँ तक कि हमारा शरीर भी एक दिन हमारा साथ छोड़ देगा। इसलिए आप उपदेश देते हैं कि इस अमूल्य अवसर से लाभ उठाओ। बाल-बच्चे, दुनिया का खाना-पीना, ऐशो-इशरत आदि सब हमें पिछले जन्मों में भी मिलते आये हैं। अगर कोई ऐसी चीज़ है जो हम पहले नहीं कर सके और

केवल अब कर सकते हैं, तो वह परमात्मा की भक्ति है। लेकिन जिस मक़सद के लिए परमात्मा ने यह मौक़ा बख़्शा है, उसे हम इस देह में बैठकर बिलकुल भूल जाते हैं। विषय-विकारों, शराबों-कबाबों, क़ौमों, मज़हबों और मुल्कों के झगड़ों और इन्द्रियों के भोगों से हमें फ़ुरसत ही नहीं मिलती। हम समझते हैं 'बाबर-ब-ऐश कोश कि आलम दोबारा नेस्त' कि इनसान का जामा शायद फिर न मिले, अब ख़ूब ऐश कर लें। इस प्रकार हम इस सुनहरी मौक़े को मुफ़्त हाथ से खो बैठते हैं। हम इन्द्रियों के भोगों में इतने फँस जाते हैं कि अपनी मौत को भी भूल जाते हैं। रोज़ देखते हैं कि हमारे साथी हमारा साथ छोड़े जा रहे हैं, बल्कि हम ख़ुद उनको श्मशान भूमि में छोड़कर आते हैं और अपनी आँखों से देखते हैं कि दुनिया की कोई चीज़ उनके साथ नहीं जा रही है। लेकिन हम मन में हमेशा यही सोचते हैं कि मौत शायद औरों के लिए है, हमारे लिए नहीं। हमारे लिए तो दुनिया के सैर रंग-तमाशे हैं। गुरु नानक साहिब हमारी हालत का इस प्रकार बयान करते हैं:

धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै वीचारु॥
जंमण मरणु विसारिआ मनमुख मुगधु गवारु॥[318]

हम दुनिया के जीव हमेशा, दिन-रात पेट के धन्धों की ख़ातिर भटकते रहते हैं और उस लक्ष्य के बारे में कभी नहीं सोचते, जिसके लिए मालिक ने हमें यहाँ भेजा है। हमारे अपने घर में आग लगी हुई है और हमें लोगों की आग बुझाने की फ़िक्र लगी हुई है। अपना घर लूटा जा रहा है, हम दूसरों के घरों की चौकीदारी कर रहे हैं। हम अपना बोझ उठा नहीं सकते, पराये गधे बने बैठे हैं। अपने आपको भी धोखा दे रहे हैं और दुनिया को भी धोखा दे रहे हैं। हम कितने मनमुख, मुगध और गँवार हैं कि अपने मरण-जन्म को भी भूले बैठे हैं। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

कहूं क्या काल जग मारा। जीव सब घेर भरमाई॥
नहीं कोइ मौत से डरता। ख़ौफ़ जम का नहीं लाई॥[319]

यही कबीर साहिब का कथन है:

> क्या ले कर जनम लियो है, क्या ले कर जाओगे।
> मुट्ठी बाँध कर जनम लिया है, हाथ पसारे जाओगे॥
> यह तन है कागज़ की पुड़िया, बूँद पड़त गल जाओगे।
> कहत कबीर सुनो भाई साधो, इक नाम बिना पछताओगे॥[320]

आप समझाते हैं कि दुनिया में हम ख़ाली हाथ ही पैदा हुए हैं और ख़ाली हाथ ही यहाँ से चले जायेंगे। न कोई आज तक यहाँ कुछ साथ लेकर आया है और न कभी कोई चीज़ अपने साथ ले जा सका है। हमारा शरीर भी काग़ज़ की पुड़िया के समान है। काग़ज़ की पुड़िया पर ज़रा-सा पानी गिरे तो वह गल जाती है। इसी तरह हमारे शरीर को भी मौत के बाद अग्नि या मिट्टी के सुपुर्द हो जाना है। अगर मालिक की भक्ति नहीं करेंगे तो आख़िर मौत के समय पछताना पड़ेगा। अगर यह दुनिया की धन-दौलत किसी के साथ जाती होती तो दुनिया के लोग अब तक इसे साथ ले गये होते और हमारे हिस्से में शायद कुछ भी न आता। यह तो हमें इसलिए मिली है कि इसने कभी किसी का साथ नहीं दिया। महमूद गज़नवी ने हिन्दुस्तान पर 17 हमले किये और बहुत-सा सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात यहाँ से लूटकर ले गया। उसको प्राप्त करने के लिए उसने कितने ग़रीबों का ख़ून किया, कितनी औरतों को बेवा और बच्चों को यतीम किया। जब उसकी मौत का समय आया तो उसने अपने अहलकारों को हुक्म दिया कि जो भी मैं हिन्दुस्तान से लूटकर लाया हूँ उसको एक खेमे में लगाकर दिखाओ। जब सारी दौलत को नज़र भर देखा, तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। एक ठण्डी आह भर कर उसने सोचा कि जिस दौलत को हासिल करने के लिए मैंने इतने ज़ुल्म और अत्याचार किये, आज उसमें से मेरे साथ कोई भी चीज़ नहीं जा रही है। उसने हुक्म दिया कि मौत के बाद मेरे हाथ कफ़न से बाहर निकाल दिये जायें ताकि लोग देखें कि मैं ख़ाली हाथ जा रहा हूँ और मेरी ज़िन्दगी से सबक लें।

जो चीज़ें यहीं रह जानेवाली हैं उनके साथ हम कितना प्यार करते हैं। उनको प्राप्त करने के लिए दिन-रात भटकते फिरते हैं। 'पापा बाझहु होवै नाही मुइआ साथि न जाई॥'[321]—जो पाप किये बिना प्राप्त नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती, उस पर हम जान देते हैं और जो चीज़ वास्तव में हमारी अपनी है और जिसे हमें अपनी बनाना चाहिए, उसके बारे में कभी नहीं सोचते। हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, 'नाशवान पदार्थों के लिए मेहनत न करो, बल्कि उस पदार्थ के लिए मेहनत करो जो अनन्त जीवन तक रहेगा, जो मनुष्य का पुत्र तुम्हें देगा, क्योंकि पिता परमेश्वर ने उस पर उसके (पुत्र के) लिए मुहर लगाई है।'[322] यानी दुनिया की नाशवान धन-दौलत और पदार्थों को प्राप्त करने की कोशिश न करो, बल्कि उस नाम की दौलत को प्राप्त करो जो कभी नष्ट नहीं होती। जो दौलत यानी नाम मैं तुमको दूँगा, उस पर मेरे पिता ने मुहर लगाई हुई है। वह कभी नाश नहीं होती, क्योंकि मैं उसे मालिक की तरफ़ से तुम्हें दूँगा। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

भटक भटक नर देही पाई। इन्द्री मन मिल यहाँ मारा॥[323]

बड़ी मुश्किल से हमें यह मनुष्य का जामा मिला है। लेकिन यहाँ इस जामे में आकर मन के अधीन होकर हम इन्द्रियों के भोगों में फँसे बैठे हैं। जितना भी हमारा दुनिया से ताल्लुक या सम्बन्ध है सब हमारे शरीर के ज़रिये ही है। जब तक हम शरीर में बैठे हैं हमें ये यार-दोस्त, रिश्तेदार, भाई-बहन और दुनिया की धन-दौलत, क़ौम, मुल्क वग़ैरह सब अपने ही नज़र आते हैं या कम से कम हम इन्हें अपना बनाने की कोशिश ज़रूर करते हैं। जिस समय शरीर से हमारा साथ छूट जाता है, इन सब चीज़ों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। हमें चाहिए कि जब तक परमात्मा ने इस शरीर में बैठने का मौक़ा दिया है, इससे काम ले लें। इसमें बैठकर न तो इसे इतना दुःख देना है कि मालिक की भक्ति ही न हो सके और न ही इसे इतने सुख और आराम में रखना है कि हमारा ख़याल ऐशो-इशरत की ओर चला जाये। मालिक की भक्ति ही हमारा असली काम है और हमें वही इससे करवाना है। स्वामी जी महाराज का कथन है:

धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना॥
काम अपना करो जाई। पराये काम नहिं फँसना॥
नाम गुरु का सम्हाले चल। यही है दाम गँठ बँधना॥
जगत का रंग सब मैला। धुला ले मान यह कहना॥[324]

हमारा शरीर काल का पिंजरा है, किराये का मकान है। जितने साँस मालिक ने हमें बख़्शे हैं उनको भुगतने के बाद इसे छोड़ जायेंगे। यह शरीर कभी किसी का साथ नहीं देता। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, बादशाह, सुल्तान, शासक, तानाशाह, जिनसे दुनिया थर-थर काँपती थी, आज उनकी क़ब्रों को हम किस तरह नफ़रत भरी नज़र से देखते हैं। कभी हमारी क़ब्रों को भी लोग इसी तरह से देखेंगे। लोगों की हड्डियाँ हमारे पैरों के नीचे आकर रौंदी जा रही हैं, किसी दिन हमारी हड्डियाँ भी औरों के पैरों के नीचे आकर रौंदी जायेंगी। लोगों की ख़ाक उड़कर आज हमारी आँखों में पड़ रही है, किसी दिन हमारी ख़ाक उड़कर लोगों की आँखों में पड़ेगी।

इसलिए महात्मा हमें ग़फ़लत की नींद से बेदार करते हैं कि उस समय को अपनी आँखों के सामने रखो, जब कोई भी चीज़ तुम्हारी मदद नहीं करेगी। यह बहन-भाई, रिश्तेदार, मित्र सब हमारे आसपास ही बैठे रह जाते हैं, इन्हें यह भी पता नहीं चलता कि मौत के फ़रिश्ते किस समय और किस रास्ते से आकर हमें पकड़कर ले जाते हैं। हमारे रिश्तेदार और सगे-सम्बन्धी रोने-धोने के सिवाय और क्या कर सकते हैं और वे हमारी क्या मदद कर सकते हैं! उन सबके साथ हमारा लेन-देन का सम्बन्ध है, ग़रज़ों का प्यार है। कोई पत्नी बनकर आ गयी, कोई पति और बाल-बच्चे बनकर आ गये। उनसे हमारा जो भी हिसाब-किताब होता है, उसके पूरे हो जाने पर कभी वे हमें छोड़कर चले जाते हैं और कभी हम उनको छोड़कर चल देते हैं।

जिस तरह एक स्टेज या रंगमंच पर हरएक 'ऐक्टर' (actor) अपना-अपना पार्ट अदा करता है, कोई राजा का, कोई रानी का, कोई 'विलेन' (villain) यानी खलनायक का। इसी तरह यह दुनिया भी एक बहुत बड़ी स्टेज है और हम सब दुनिया के जीव यहाँ अपने-अपने कर्मों के अनुसार

अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं। असल में हमारा किसी के साथ कोई भी रिश्ता या सम्बन्ध नहीं है। जिस तरह नाटक के समाप्त हो जाने पर, स्टेज से उतरने के बाद न कोई राजा होता है, न कोई रानी। उसी तरह इस देह को छोड़ने के बाद हमारा भी किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जिस समय किसी को मौत आती है, उसके रिश्तेदार रोते हैं लेकिन जिस जगह जाकर वह फिर जन्म लेता है, वहाँ ख़ुशियाँ मनाई जाती हैं। आत्मा पिछले रिश्तेदारों का ग़म करे या अगले रिश्तेदारों के साथ ख़ुशी मनाये। आज जबकि हम अपने पिछले जन्मों के रिश्तेदारों को बिलकुल भूले बैठे हैं तो जिनके लिए हम आज भटकते फिरते हैं, तरसते और तड़पते हैं, उनको अगले जन्मों में क्या याद रख लेंगे। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं:

मात पिता माइआ देह सि रोगी रोगी कुटंब संजोगी ॥[325]

माता-पिता को भी हमारा साथ छोड़ देना है। जो कुछ भी हम दुनिया में देख रहे हैं, इसे भी हमारे साथ नहीं जाना है। हमारे रिश्तेदार भी रोगी हैं, यानी नाशवान हैं। यहाँ तक कि जिस शरीर में हम बैठे हुए हैं, जिससे इतना प्यार रखते हैं और जिसके बनाव-शृंगार में हम क्या-क्या नहीं करते, वह भी यहीं रह जाता है। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

धन दारा सुत नाती कहियन। यह नहिं आवें काम॥
स्वाँस दुधारा नित ही जारी। इक दिन खाली चाम॥
मशक समान जान यह देही। बहती आठों जाम॥[326]

कोई भी रिश्तेदार मौत के समय काम नहीं आता। जिस प्रकार एक तालाब में कितना भी पानी क्यों न भरा हो, उसमें एक नल लगाकर खोल दें, तो पूरा तालाब ख़ाली हो जाता है। इसी प्रकार हमारा यह शरीर साँसों का भण्डार है। जब तक हमें साँस आ रही है, हम किस तरह इस दुनिया में एक-दूसरे के लिए भाग-दौड़ कर रहे हैं। दुनिया में अपने पेट के लिए और लोगों के लिए हम क्या नहीं करते। लेकिन हम उस समय को भूल जाते हैं

जिस समय यह साँसों का भण्डार समाप्त हो जायेगा। लोग हमारी मौत पर तार भेजेंगे और टेलीफोन करेंगे, सगे-सम्बन्धी इकट्ठे होकर इस शरीर को, जिससे हमें इतना प्यार था, या तो अग्नि के सुपुर्द कर देंगे या मिट्टी में दफ़ना देंगे।

स्वामी जी महाराज एक और अच्छे उदाहरण द्वारा समझाते हैं कि जब तक एक चमड़े की मशक में हवा भरी रहती है, वह पानी के ऊपर तैरती रहती है, हम भी उसका सहारा लेकर पानी पर तैरते हैं। लेकिन जब उस मशक से हवा निकल जाती है तो वह पानी की तह में बैठ जाती है और जो उसका सहारा लेता है, वह भी ग़ोते खाने लग जाता है। इसी तरह जब तक हमारे शरीर के अन्दर साँस आ रही है, इस दुनिया के काम-काज करते हैं और लोग भी हमारा आसरा लेकर अपना वक़्त गुज़ार रहे हैं। लेकिन जब इस मशक यानी शरीर से हवा निकल जाती है तो यह शरीर भी बेकार हो जाता है और जो इसका आसरा लेकर वक़्त काट रहे हैं, वे भी रोना-पीटना शुरू कर देते हैं और घबरा जाते हैं। महात्माओं के समझाने का सिर्फ़ इतना ही मतलब है कि हम उस मौत के वक़्त को अपनी आँखों के सामने रखें, उससे पहले-पहले अपना रूहानी सफ़र तय कर लें और मंज़िले-मक़सूद पर पहुँच जायें। स्वामी जी महाराज समझाते हैं:

कुटुम्ब परिवार मतलब का। बिना धन पास नहिं आई॥[327]

हमारे जो भी रिश्तेदार और यार-दोस्त हैं, ये सब ग़रज़ों के साथी हैं। इनके मोह या प्यार में फँसकर हम मालिक को भूले बैठे हैं, इस शरीर में आने का उद्देश्य और मतलब भूले बैठे हैं। जब हमारे पास धन-दौलत नहीं रहती तो हमें अपने भी छोड़ जाते हैं।

नम्रता

सब महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि इस मनुष्य-जन्म में आकर अपनी देह के अन्दर मालिक की खोज करो। लेकिन हम देह के अन्दर मालिक को ढूँढ़ने के बजाय उलटे इस देह के ही मान और अंहकार में फँस जाते

हैं। ज़रा ग़ौर करके देखें कि हम इस शरीर में बैठकर किस चीज़ का मान और अहंकार करते हैं। क्या जवानी का मान करते हैं? हमने किसी का बुढ़ापा नहीं देखा? क्या हमें भी इस बुढ़ापे की उम्र में नहीं पहुँचना है? स्वास्थ्य और तन्दुरुस्ती का ग़रूर करते हैं? क्या कभी अस्पतालों में बीमारों की हालत नहीं देखी? रुपये-पैसे का अहंकार करते हैं? क्या बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, सेठों-साहूकारों को कंगालों की तरह सड़कों पर भटकते नहीं देखा? हम दुनिया की हुकूमत या इज़्ज़त और मान-बड़ाई का अहंकार करते हैं? क्या बड़े-बड़े लीडरों, नेताओं और तानाशाहों को फाँसी के तख़्तों पर चढ़ते नहीं सुना या गोलियों के शिकार बनते नहीं देखा? रातों-रात अचानक हुकूमत के तख़्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी उनको उठाकर जेलख़ानों में डाल देती है या तोपों का शिकार बना देती है। फिर हम ग़रूर और अहंकार किस बात का करते हैं? कबीर साहिब समझाते हैं:

लकड़ी कहै लुहार सों, तू मति जारैं मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं॥
माटी कहै कुम्हार को, क्या तू रौंदे मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदौंगी तोहिं॥[328]

लुहार लकड़ी को जला-जलाकर उसके कोयले बनाता है, लेकिन लकड़ी उससे कहती है कि कभी उस वक़्त को भी अपनी आँखों के आगे रखकर सोच, जब मैं तुझे साथ लेकर तेरे भी इसी तरह कोयले बना दूँगी। कुम्हार मिट्टी को रौंद-रौंदकर उसके बर्तन बनाता है, लेकिन मिट्टी उससे कहती है कि एक दिन मैं भी तुझे अपने साथ लेकर इसी तरह रौंद डालूँगी। स्वामी जी महाराज भी यही फ़रमाते हैं:

मन रे क्यों गुमान अब करना।
तन तो तेरा ख़ाक मिलेगा। चौरासी जा पड़ना॥[329]

महात्मा इसलिए हमें उपदेश देते हैं कि मन में हमेशा नम्रता और दीनता रखनी चाहिए। जितनी नम्रता और दीनता हमारे अन्दर होगी, उतना ही हमारा

ख़याल मालिक की भक्ति की ओर जायेगा और हमें मालिक की बख़्शिश मिलेगी। बाइबल में भी इस नम्रता और दीनता के बारे में लिखा है:

> धन्य हैं वे जो अन्तर में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।[330]
>
> जो नम्र हैं वे धन्य हैं, क्योंकि वे ही पृथ्वी के अधिकारी होंगे।[331]
>
> जो अपने आपको इस बालक के समान छोटा करेगा, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे बड़ा होगा।[332]

और फिर कहते हैं, 'मैं तुमसे सच कहता हूँ कि अगर तुम बदल कर छोटे बच्चे के समान नहीं बनते, तुम प्रभु के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकते।'[333] स्वामी जी महाराज का भी यही उपदेश है:

> दीन ग़रीबी चित में धरना। काम क्रोध से बचना॥[334]

गुरु अर्जुन साहिब प्रार्थना करते हैं:

> कहु नानक हम नीच करंमा॥ सरणि परे की राखहु सरमा॥[335]

उच्च कोटि के महात्मा होकर अपने बारे में कितने नम्र और दीनतापूर्ण शब्दों का उपयोग करते हैं। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में कई जगह अपने आपको 'लाला गोला' (सेवक और ग़ुलाम), 'दासों का दास', 'नीच करमां' कहते हैं। हमें इन महात्माओं के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए, जो धुर-धाम पहुँचकर, कुल मालिक बनकर भी दम नहीं मारते। हमारे हाथ कोई साधारण-सी भी सत्ता या हुकूमत आ जाये, तो हम इनसान को इनसान ही नहीं समझते। हमारा ज़मीन पर सीधा चलना ही मुश्किल हो जाता है। कबीर साहिब समझाते हैं:

> बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
> जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय॥

कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय॥[336]

महात्माओं का हमें समझाने का सिर्फ़ यही मतलब है कि किसी चीज़ का घमण्ड और अहंकार नहीं करना चाहिए। इनसान के जामे में बैठकर मन में नम्रता, दीनता और आजिज़ी रखनी चाहिए और नाम की कमाई करनी चाहिए, क्योंकि नाम की कमाई ही हमारा साथ देगी और तभी हमारा देह में आने का मक़सद पूरा हो सकेगा। दादू साहिब का कथन है:

क्या मुँह ले हँस बोलिए, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥[337]

यही महात्मा चरनदास जी अपनी वाणी में लिखते हैं:

हाथी घोड़े धन घना, चन्द्र मुखी बहु नारि।
नाम बिना जम लोक में, पावै दुक्ख अपार॥[338]

यही गुरु नानक देव जी कहते हैं:

बिनु नावै को संगि न साथी मुकते नामु धिआवणिआ॥[339]

परमात्मा की कृपा

जब हमारे अन्दर नम्रता और दीनता आयेगी तो हमारा ध्यान मालिक की भक्ति और प्यार की ओर जायेगा। यह केवल सन्तों की संगति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है और ऐसे सन्तों की संगति मालिक की बख़्शिश और कृपा से ही मिलती है, सच तो यह है कि मालिक बख़्शिश करे तब ही हमारा ख़याल उसकी भक्ति और प्यार की ओर जाता है। गुरु अमरदास जी फ़रमाते हैं:

हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मनि वसाई॥[340]

यानी उस मालिक को मंज़ूर होगा तब ही हम उसकी भक्ति कर सकेंगे। हम दुनिया के जीव अन्धे हैं। अन्धे की ताक़त नहीं कि वह आँखों वाले को पकड़ सके, जब तक कि आँखों वाला अन्धे को आवाज़ देकर उसे अपने पास नहीं बुलाता या अपनी अँगुली पकड़ा कर उसे अपने साथ नहीं ले चलता। हम दुनिया के जीव इस माया के जाल में फँसकर मालिक को भूलकर अन्धे और बहरे हो गये हैं। मालिक ही कृपा करे तो हमारा ख़याल उसकी भक्ति की ओर जा सकता है। गुरु अमरदास जी फिर समझाते हैं:

जीवणु मरणा सभु तुधै ताई॥ जिसु बखसे तिसु दे वडिआई॥[341]

इसी प्रकार कबीर साहिब फ़रमाते हैं:

साहिब से सब होत है, बंदे ते कछु नाहिं।
राई तें पर्बत करै, पर्बत राई नाइँ॥
ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर॥
न कछु किया न कर सके, नहिं कछु करने जोग।
जो कछु किया सो हरि किया, दूजा थापे लोग॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहौं कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं॥[342]

इसी तरह हज़रत ईसा भी बाइबल में कहते हैं, 'इसीलिए मैंने तुमसे कहा था कि कोई भी मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता, जब तक कि मेरे पिता से उसे यह बख़्शिश न मिली हो।'[343]

'कोई मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता जब तक कि पिता, जिसने मुझे भेजा है, उसे खींच न ले।'[344] यानी जीव की कोई ताक़त नहीं कि वह मालिक की ओर आये, जब तक कि मालिक ही उस पर यह बख़्शिश न करे। गुरु अर्जुन देव जी 'बारहमाहा' शुरू करने से पहले लिखते हैं:

किरति करम के वीछुड़े करि किरपा मेलहु राम॥[345]

हे परमात्मा! हम अपने कर्मों के कारण तुझसे बिछुड़े हुए हैं। हमारे अपने वश में नहीं कि तुझ तक पहुँच सकें। तू ही हम पर दया-मेहर और बख़्शिश करे तो हम तुझ तक पहुँच सकते हैं। आप फ़रमाते हैं:

> आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि॥
> साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि॥[346]

हे परमात्मा! अगर हमारे वश में हो कि तुझ तक पहुँच सकें, तो किसका दिल करता है कि तुझसे बिछुड़कर इस चौरासी के जेलख़ाने में भटके। हमारे वश में नहीं कि हम अपने आप तुझ तक पहुँच सकें।

हज़रत ईसा का कथन है, 'मैं दुनिया के लिए विनती नहीं करता, बल्कि सिर्फ़ उनके लिए करता हूँ जिन्हें तूने मुझे दिया है, क्योंकि वे तेरे हैं।'[347] यानी परमात्मा ने जो जीव मेरे सुपुर्द किये हैं, मैं उनके लिए दुआ करता हूँ, न कि सारी दुनिया के लिए। गुरु अमरदास जी ने मालिक के बारे में यहाँ तक कहा है:

> खोटे खरे तुधु आपि उपाए॥ तुधु आपे परखे लोक सबाए॥
> खरे परखि खजानै पाइहि खोटे भरमि भुलावणिआ॥[348]

हे परमात्मा! सब दुनिया के जीव तूने आप पैदा किये हैं। बुरे भी तूने पैदा किये हैं और अच्छे भी तूने ही बनाये हैं और तू ख़ुद ही दोनों को परखने बैठ गया है कि कौन अच्छा है और कौन बुरा। जिनको तू ख़ुद अपनी परख के क़ाबिल बना लेता है, उनको तू अपने ख़ज़ाने में दाख़िल कर लेता है। बाक़ी सब भ्रमों में फँसकर यहीं भूले हुए हैं।

अब सवाल पैदा हुआ कि परमात्मा दया मेहर किस प्रकार करता है। परमात्मा जब भी दया-मेहर करता है सन्तों-महात्माओं के ज़रिये ही करता है, बल्कि ख़ुद इनसान के जामे में बैठकर हमारे अन्दर अपने मिलने का शौक़ और प्यार पैदा करता है, हमसे अपनी भक्ति करवाकर अपने साथ मिला लेता है। गुरु अमरदास जी लिखते हैं:

> करमु होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरति सबदि चितु लाए॥[349]

मालिक ने कृपा की तो हमें सतगुरु की सोहबत और संगति प्राप्त हुई। उसके बाद हम पर सतगुरु की बख़्शिश हुई और उन्होंने हमारी सुरत या आत्मा को शब्द से जोड़ दिया, जिसका अभ्यास करके दुनिया से हमारा मोह निकल जाता है और हमारे अन्दर मालिक का प्यार पैदा हो जाता है। हज़रत ईसा भी कहते हैं, 'तुमने मुझे नहीं चुना, बल्कि मैंने तुम्हें चुना है और तुम्हें आदेश दिया है ताकि तुम जाकर फल लाओ।'[350] फिर फ़रमाते हैं, 'जब तक मनुष्य को परमात्मा की ओर से न दिया जाये, तब तक वह कुछ नहीं पा सकता।'[351] यानी जीव के वश में कुछ नहीं जब तक कि उस पर मालिक और गुरु की बख़्शिश न हो। इसी प्रकार गुरु अमरदास जी समझाते हैं:

आपे करता करे कराए॥ आपे सबदु गुर मंनि वसाए॥[352]

जो कुछ भी करता है वह परमात्मा ख़ुद करता है। जब वह हमें अपने साथ मिलाना चाहता है, तो सतगुरु के ज़रिये हमारे ख़याल को शब्द से जोड़ देता है। सन्त-महात्मा मालिक द्वारा भेजे जाते हैं और जिन जीवों पर मालिक की बख़्शिश होती है, उन्हीं को अपने साथ लेकर मालिक के अन्दर समा जाते हैं। हज़रत ईसा ने भी इसी का ज़िक्र किया है, 'मैं उनमें और तू मुझमें है ताकि वे पूर्ण होकर एक हो जायें और संसार जान ले कि तूने मुझे भेजा है। और उन्हें प्यार किया है जैसा कि तूने मुझे प्यार किया।'[353]

सन्तों का सन्देश

हरएक महात्मा का केवल यही उपदेश है कि परमात्मा एक है, हमारी आत्मा उस परमात्मा की अंश है, उससे मिलकर ही हम मरण-जन्म के दुःखों से बच सकते हैं। वह परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है और मनुष्य के चोले में आकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। हमारे अन्दर हमारे मन की रुकावट है जिसके कारण हम उस परमात्मा को अपने अन्दर देख नहीं सकते। यह मन की रुकावट शब्द या नाम की कमाई के द्वारा ही हमारे अन्दर से दूर होती है। वह नाम या शब्द और मालिक से मिलने का रास्ता भी ख़ुद मालिक ने ही हमारे अन्दर रखा है। सन्तों की संगति के ज़रिये ही

हम अपने अन्दर उस रास्ते को ढूँढ़ सकते हैं और नाम या शब्द से अपना ख़याल जोड़ सकते हैं।

इसी नाम या शब्द को हज़रत ईसा ने 'वर्ड' (शब्द) और 'अमर जल' कहा है। वे कहते हैं, 'जो कोई उस जल में से पियेगा, जो मैं उसे दूँगा, वह फिर कभी प्यासा न होगा। लेकिन वह जल जो मैं उसे दूँगा, उसके अन्तर में एक जल का स्रोत बन जायेगा जो अनन्त जीवन के रूप में उमड़ पड़ेगा।'[354]

गुरु नानक साहिब इसी को अमृत कहकर समझाते हैं। मुसलमान फ़क़ीर इसे 'आबे-हयात' कहते हैं, क्योंकि इसको प्राप्त करके हम हमेशा के लिए जीवित हो जाते हैं और देह के बन्धनों से बच जाते हैं। ऐसे अमृत को प्रदान करनेवाले सन्तों की संगति हमें केवल परमात्मा की दया-मेहर और बख़्शिश से प्राप्त हो सकती है। सन्त दुनिया में मालिक से मिलने की कोई नयी फ़िलॉसफ़ी, शिक्षा या रीति लेकर नहीं आते। सब सन्त उस एक ही फ़िलॉसफ़ी और सिद्धान्त को समझाते हैं। लेकिन हम उनके जाने के बाद बाहरमुखी हो जाते हैं, असलियत और सच्चाई को भूल जाते हैं। फिर कोई और महात्मा किसी और जगह आकर हमें उसी असलियत की याद दिलाता है और हमारे ख़याल को वहमों और भ्रमों से निकाल कर मालिक की सच्ची भक्ति में लगाता है। यह मालिक ने अपने मिलने का क़ुदरती क़ानून व तरीक़ा बना रखा है। वे महात्मा इस क़ुदरती क़ानून के बारे में ही याद दिलाते हैं, अपने पास से कोई नयी शिक्षा नहीं देते। हज़रत ईसा बाइबल में कहते हैं, 'क्योंकि मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा, बल्कि पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने मुझे हुक्म दिया है कि मैं क्या कहूँ और क्या समझाऊँ।'[355]

एक और स्थान पर आप कहते हैं, 'मेरा उपदेश मेरा नहीं, बल्कि मेरे भेजने वाले का है।'[356] सन्तों की शिक्षा का आधार उनका निजी अनुभव होता है। वे ग्रन्थ-पोथियाँ पढ़कर सुनी-सुनायी बातें नहीं करते। वे तो जो कुछ आँखों से देखते हैं और जो उनका अपना अनुभव होता है, उसी को बयान करते हैं। हज़रत ईसा कहते हैं, 'मैं तुझसे सच कहता हूँ कि हम जो जानते हैं वही कहते हैं और जिसे हमने देखा है, उसी की गवाही देते हैं।'[357] गुरु अर्जुन साहिब फ़रमाते हैं:

संतन की सुणि साची साखी॥ सो बोलहि जो पेखहि आखी॥[358]

गुरु नानक देव जी समझाते हैं:

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥[359]

महात्मा जो भी ज्ञान परमात्मा से लेकर आते हैं, वही हमें समझाते हैं। दादू साहिब भी यही कहते हैं:

दादू देखा दीदा सब कोइ कहत सुनीदा।[360]

इसी प्रकार तुलसी साहिब फ़रमाते हैं:

निज नैना देखा हिये आँखी, जस-जस तुलसी कहि-कहि भाखी।[361]

यानी मैंने जो कुछ आँखों से देखा है, वही समझा रहा हूँ। दुनिया के लोग तो सुनी-सुनाई बातें करते हैं।

विभिन्न सन्तों की संकलित बानी

बानी हुज़ूर स्वामी जी महाराज

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 12

अटक तू क्यों रहा जग में। भटक में क्या मिले भाई ॥ 1 ॥
खटक तू धार अब मन में। खोज सतसंग में जाई ॥ 2 ॥[1]
विरह की आग जब भड़के। दूर कर जगत की काई ॥ 3 ॥[2]
लगा लो लगन सतगुरु से। मिले फिर शब्द लौ लाई ॥ 4 ॥[3]
छुटेगा जन्म और मरना। अमर पद जाय तू पाई ॥ 5 ॥
भाग तेरा जगे सोता। नाम और धाम मिल जाई ॥ 6 ॥
कहूं क्या काल जग मारा। जीव सब घेर भरमाई ॥ 7 ॥
नहीं कोइ मौत से डरता। ख़ौफ़ जम का नहीं लाई ॥ 8 ॥
पड़े सब मोह की फाँसी। लोभ ने मार धर खाई ॥ 9 ॥
चेत कहो होय अब कैसे। गुरू के संग नहिं धाई ॥ 10 ॥
काम और क्रोध बिच बिच में। जीव से भाड़ झोंकवाई ॥ 11 ॥[4]
गुरू बिन कोइ नहीं अपना। जाल यह कौन तुड़वाई ॥ 12 ॥
कुटुम्ब परिवार मतलब का। बिना धन पास नहिं आई ॥ 13 ॥
कहाँ लग कहूं इस मन को। उन्हीं से मास नुचवाई ॥ 14 ॥
गुरू और साध कहें बहु विधि। कहन उनकी न पतियाई ॥ 15 ॥[5]
मेहर बिन क्या कोई माने। कही राधास्वामी यह गाई ॥ 16 ॥

---

1. **खटक**=फ़िक्र, अपने कल्याण की चिन्ता। 2. **काई**=मैल। 3. **लौ**=लगन। 4. **भाड़ झोंकवाई**=भट्ठी झोंकवाना यानी व्यर्थ के काम करवाना। 5. **न पतियाई**=भरोसा नहीं करता, यकीन नहीं करता।

उपदेश सतगुरु-भक्ति का

बचन 18: शब्द 9

आज सखी काज करो कुछ अपना। गुरु दर्श तको छोड़ो जग सुपना॥ 1 ॥[1]
नहिं पछितइहो सिर धुन रोइहो। जम की नगरिया अनेक दुख सहिहो॥ 2 ॥[2]
मानो बचन सुनो धर कान। सुरत लगाय सुनो धुन तान॥ 3 ॥
नहिं मर मर जन्मो चारों खान। मान मान अब मेरी कही मान॥ 4 ॥
गुरु के चरन का कर तू ध्यान। शान गुमान छोड़ अभिमान॥ 5 ॥[3]
गुरु बिन तेरा को न सहाई। नाम बिना को पार लगाई॥ 6 ॥
आज काज कर गुरु संग भाज। सूना पड़ा तेरा तख़्त और ताज॥ 7 ॥[4]
शब्द पिछान सुरत निज साज। छोड़ जगत और कुल की लाज॥ 8 ॥[5]
मन और सुरत गुरू संग माँज। नहिं फिर खुलि है तेरा पाज॥ 9 ॥[6]
कूड़ फटक ले गुरु का छाज। भोग बिलास छोड़ यह खाज॥ 10 ॥[7]
राधास्वामी कही बनाई। जो नहिं मानो भुगतो भाई॥ 11 ॥

आरती परम पुरुष राधास्वामी

बचन 6: शब्द 4

आज साज कर आरत लाई। प्रेम नगर बिच फिरी है दुहाई॥ 1 ॥
विरह व्यथा के लुट गये डेरे। मिल गये राधास्वामी बिछड़े मेरे॥ 2 ॥[8]
हिरदा थाल सुरत की बाती। शब्द जोत मैं नित्त जगाती॥ 3 ॥
आरत फेरूँ सन्मुख ठाढ़ी। प्रीत उमँग मेरी छिन छिन बाढ़ी॥ 4 ॥[9]
तन नगरी बिच बजत ढँढोरा। भागे चोर ज़ोर भया थोड़ा॥ 5 ॥[10]

---

1. **गुरु...तको**=गुरु के दर्शन करो। 2. **सिर...रोइहो**=सिर पीटकर रोओगे। 3. **शान**=अकड़, शेख़ी। 4. **भाज**=भाग। 5. **साज**=सँवार। 6. **माँज**=निर्मल कर, साफ़ कर; **खुलि...पाज**=तेरी क़लई खुल जायेगी यानी तेरी असलियत सामने आ जायेगी। 7. **छाज**=छज्जा, सूप; **खाज**=ख़ुजली। 8. **व्यथा...डेरे**=जुदाई के कष्ट दूर हो गए। 9. **ठाढ़ी**=खड़ी होकर। 10. **चोर**=काम, क्रोध आदि।

सील छिमा आय थाना गाड़ा। काम क्रोध पर पड़ गया धाड़ा॥ 6 ॥[1]
स्वामी मेहर करी अब भारी। मैं भी उन चरनन बलिहारी॥ 7 ॥
अब तो सरन पड़ी राधास्वामी। राखो सँग सदा अन्तरजामी॥ 8 ॥
मेरे और न कोई दूजा। मेरे निस दिन तुम्हरी पूजा॥ 9 ॥
तुम बिन और न कोई जानूं। छिन छिन मन में तुमको मानूं॥ 10 ॥
मैं मछली तुम नीर अपारा। केल करूँ मैं तुम्हरी लारा॥ 11 ॥[2]
मैं पपिहा तुम स्वाँति के बादल। सुख पाये दुख गये हैं रसातल॥ 12 ॥[3]
तुम चंदा मैं कमोदन हीनी। तुम्हरी लगन में निसदिन भीनी॥ 13 ॥[4]
मैं धरनी तुम गगन बिराजे। कैसे मिलूं मैं तुम सँग आजे॥ 14 ॥[5]
सुरत निरत से चढ़ कर धाऊँ। कभी न छोडूँ अस लिपटाऊँ॥ 15 ॥
मैं गुरबर्ती राधास्वामी के चरन की। लाज रखो मेरी काल से अबकी॥ 16 ॥[6]
तुम्हरे बल से भइ हूं निचिंती। अब मन में नहिं संका धरती॥ 17 ॥[7]
सूर किया स्वामी खेत जिताया। मार लिया मैंने मन और माया॥ 18 ॥[8]
ख़ाक मिला सब कपट ख़ज़ाना। भाग गया दल मोह पुराना॥ 19 ॥[9]
गढ़ त्रिकुटी अब चढ़कर लीन्हा। सुन्न शिखर पर डंका दीन्हा॥ 20 ॥[10]
सिंघ महासुन्न बीच में आया। सतगुरु कृपा ने दीन तराया॥ 21 ॥
भँवरगुफा के महल बिराजी। सतलोक चढ़ अचरज गाजी॥ 22 ॥
अलख लोक में सूरत साजी। अगम लोक को छिन में भाजी॥ 23 ॥[11]
पोहप सिंहासन क्या कहुँ महिमा। जहाँ राधास्वामी ने धारे चरना॥ 24 ॥[12]
उन चरनन पर जाय लिपटानी। आगे अकह की क्या कहुं बानी॥ 25 ॥

---

1. **थाना गाड़ा**=अड्डा जमाया; **धाड़ा**=डाका। 2. **केल**=कलोल, आनन्द; **लारा**=साथ। 3 **रसातल**=पाताल में। 4. **कमोदन**=कुमुदिनी, वह फूल जो चन्द्रमा के निकलने पर खिलता है; **हीनी**=दीन, तुच्छ; **भीनी**=सराबोर, पूरी तरह भीगी हुई। 5. **धरनी**=धरती, ज़मीन पर; **आजे**=आज, इस अवस्था में। 6. **गुरबर्ती**=गुरु की आज्ञा में चलने वाली। 7. **निचिंती**=निश्चिन्त, बेफ़िक्र। 8. **सूर**=बहादुर; **खेत**=लड़ाई का मैदान; **जिताया**=जीत दिला दी। 9. **दल मोह**=मोह आदि विकारों की फ़ौजें। 10. **सुन्न शिखर**=सुन्न मण्डल (दसम् द्वार) की चोटी। 11. **भाजी**=भागी। 12. **पोहप**=पुष्प, फूल।

अब आरत मैं कीन्ही पूरी। भाखा भेद अगम गम मूरी॥ 26 ॥[1]
राधास्वामी की चरन धूर धर। आय गई अपने मैं निज घर॥ 27 ॥[2]

आरती परम पुरुष राधास्वामी

बचन 6: शब्द 7

करूँ आरती राधास्वामी, तन मन सुरत लगाय।
थाल बना सत शब्द का, अलख जोत फहराय॥ 1 ॥
हंस सभी आरत करें, सन्मुख दर्शन पाय॥[3]
राधास्वामी दया कर, दीन्हाँ अगम लखाय॥ 2 ॥
अनहद धुन घंटा बजे, संख बजे मिरदंग॥
ओंकार मँडल बँधा, मेघनाद गरजंत॥ 3 ॥[4]
सुन्न मँडल धुन साराँगी, किंगरी बजे अनूप॥[5]
कोटि भान छबि रोम इक, ऐसा पुरुष स्वरूप॥ 4 ॥[6]
कँवलन की क्यारी बनी, भँवर करें गुंजार॥
सेत सिंहासन बैठ कर, देखें पुरुष सम्हार॥ 5 ॥[7]
बीन बाँसरी मधुर धुन, बाजें पुरुष हुज़ूर॥[8]
सुन सुन हंसा मगन होयँ, पिवें अमीरस मूर॥ 6 ॥[9]
रंग महल सतपुरुष का, शोभा अगम अपार॥
हंस जहाँ आनँद करें, देखें बिमल बहार॥ 7 ॥[10]
अब आरत पूरन भई, मन पाया बिसराम॥
राधास्वामी चरन पर, कोटि कोटि परनाम॥ 8 ॥

---

1. **भाखा...मूरी**=अगम का मूल भेद बयान किया। 2. **धर**=लेकर। 3. **हंस**=निर्मल आत्माएँ। 4. **ओंकार...बँधा**=दूसरे रूहानी मण्डल, त्रिकुटी में ओंकार की ध्वनि गूँज रही है; **मेघनाद गरजंत**=बादलों की गर्ज जैसी शब्द-धुन हो रही है। 5. **सुन्न मँडल**=तीसरा रूहानी मण्डल, दसम् द्वार; **अनूप**=अति सुन्दर। 6. **कोटि...इक**=जिसके हरएक रोम में करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है। 7. **सेत**=सफ़ेद; **सिंहासन**=सतपुरुष का सिंहासन। 8. **पुरुष हुज़ूर**=सतपुरुष के दरबार में। 9. **अमीरस मूर**=अमृत रूपी सार-रस। 10. **बिमल**=मल रहित, निर्मल।

बिनती और प्रार्थना परम पुरुष राधास्वामी

बचन 7: शब्द 1

करूँ बेनती दोउ कर जोरी। अर्ज़ सुनो राधास्वामी मोरी॥ 1 ॥[1]
सतपुरुष तुम सतगुरु दाता। सब जीवन के पितु और माता॥ 2 ॥
दया धार अपना कर लीजे। काल जाल से न्यारा कीजे॥ 3 ॥[2]
सतयुग त्रेता द्वापर बीता। काहु न जानी शब्द की रीता॥ 4 ॥
कलियुग में स्वामी दया विचारी। परगट करके शब्द पुकारी॥ 5 ॥
जीव काज स्वामी जग में आये। भौ सागर से पार लगाये॥ 6 ॥
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सतनाम सतगुरु गत चीन्हा॥ 7 ॥[3]
जगमग जोत होत उजियारा। गगन सोत पर चन्द्र निहारा॥ 8 ॥[4]
सेत सिंहासन छत्र बिराजै। अनहद शब्द ग़ैब धुन गाजै॥ 9 ॥[5]
क्षर अक्षर नि:अक्षर पारा। बिनती करे जहाँ दास तुम्हारा॥ 10 ॥[6]
लोक अलोक पाऊं सुख धामा। चरन सरन दीजे बिसरामा॥ 11 ॥[7]

चितावनी, भाग 1

बचन 14: शब्द 4

करो री कोई सतसंग आज बनाय॥ टेक॥
नर देही तुम दुर्लभ पाई। अस औसर फिर मिले न आय॥ 1 ॥
तिरिया सुत धन धाम बड़ाई। यह सुख फिर दुख मूल दिखाय॥ 2 ॥[8]
या से बचो गहो गुरु सरना। सतसंग में तुम बैठो जाय॥ 3 ॥

---

1. **दोउ...जोरी**=दोनों हाथ जोड़कर; **अर्ज़**=प्रार्थना, बिनती। 2. **न्यारा कीजे**=निकाल लीजिए। 3. **तीन**=तीन लोक; **चौथा पद**=सतलोक। 4. **गगन सोत**=गगन का स्रोत यानी दसम् द्वार। 5. **सेत**=सफ़ेद; **ग़ैब**=गुप्त। 6. **क्षर**=त्रिकुटी; **अक्षर**=सुन्न; **नि:अक्षर**=महासुन्न, भँवरगुफ़ा। 7. **लोक**=यह संसार; **अलोक**=परलोक। 8. **तिरिया**=स्त्री; **धाम**=भवन, घर-बार; **यह...दिखाय**=इन सुखों के पीछे मूल रूप में दु:ख छिपे होते हैं।

यह सब खेल रैन का सुपना। मैं तुम को अब दिया जगाय॥ 4॥
झूठी काया झूठी माया। झूठा मन जो रहा लुभाय॥ 5॥
सतसंग सच्चा सतगुरु सच्चा। नाम सचाई क्या कहुँ गाय॥ 6॥
मान बचन मेरा तू सजनी। जन्म मरन तेरा छुट जाय॥ 7॥
नभ चढ़ चलो शब्द में पेलो। राधास्वामी कहत बुझाय॥ 8॥[1]

सतसंग महिमा और भेद सतनाम का

बचन 11: शब्द 1

कहाँ लग कहूं कुटिलता मन की। कान न माने गुरु के बचन की॥ 1॥[2]
प्रेम गया और भक्ति छिपानी। बैर ईर्षा की खुली खानी॥ 2॥[3]
माया लाई छलबल अपना। काल दिया कलमल का ढकना॥ 3॥[4]
ज्ञान बुद्धि बल सतसंग भाई। क्षिमा मौज गुरु गई हिराई॥ 4॥[5]
देखो अचरज कहा न जाई। कलियुग का परभाव दिखाई॥ 5॥
हैं गुर-बैहिन और गुर-भाई। तिन में निस दिन होत लड़ाई॥ 6॥
काल दाव अपना यों खेला। सतसंग में आय कीन्हों मेला॥ 7॥
सेवा में घुस पैठ कराई। और तरह कोइ घात न पाई॥ 8॥[6]
सेवा में अस कीन्हा पेचा। मन को सब के धर धर खैंचा॥ 9॥
गुरु ताड़ें सतसंगी झींखें। काल लगाई ऐसी लीकें॥ 10॥[7]
गुरु समझावें सीख न मानें। मन मत अपनी फिर फिर ठानें॥ 11॥
गुरु को देवें दोष लगाई। फिर फिर चौरासी भरमाई॥ 12॥
इतने दिन सतसंग जो कीया। कुछ भी असर न उसका हुआ॥ 13॥

---

1. **नभ...पेलो**=अन्तर के आकाश पर चढ़कर शब्द में धँसो भाव शब्द में लीन हो जाओ। 2. **कुटिलता**=दुष्टता, चालाकी; **कान**=मर्यादा, क़ायदा। 3. **खानी**=खान, भण्डार। 4. **कलमल**=मलिनता। 5. **ज्ञान...हिराई**=इसने विवेक, बुद्धि, सत्संग, क्षमा और गुरु की मौज में रहने जैसे सब गुण खो दिये। 6. **घात**=नुक़सान पहुँचाने का मौक़ा। 7. **झींखें**=खींझते हैं, दुःखी होते हैं; **काल...लीकें**=काल ने ऐसी रीतियाँ यानी तौर-तरीक़े चला दिये हैं।

सतगुरु से अब करूँ पुकारा। काल मार मन लेव सुधारा॥ 14॥
तुम से काल ज़बर नहिं होई। काटो फंदा जम का सोई॥ 15॥
तुम्हरे चरन प्रीत होय गाढ़ी। सतसंगियन मन शुद्धता बाढ़ी॥ 16॥
हिल मिल कर सब करें अनन्दा। द्रोह घात का काटो फंदा॥ 17॥[1]
सतसंगी सब मिल कर चालें। प्रीत परस्पर पल पल पालें॥ 18॥
यही हुकुम अब सब को कीना। जो नहिं माने सो काल अधीना॥ 19॥
जो कोई माने हुकुम हमारा। पहुंचे वह सतगुरु दरबारा॥ 20॥
बुद्धि अपनी लेव सम्हारी। बचन गुरू यह मन में धारी॥ 21॥
जिन के मन को काल सम्हारा। सो नहिं मानें बचन हमारा॥ 22॥
अब मन में चिन्ता मत राखो। सतनाम अब छिन छिन भाखो॥ 23॥
दीन हीन जानो अपने को। निपट नीच मानो अपने को॥ 24॥
अब अहंकार करो क्या किस से। मौत धार दम दम में बरसे॥ 25॥
जैसे जग में महा भिखारी। दीन ग़रीबी उन सब धारी॥ 26॥
कोई उसको कुछ कह लेवे। मन को अपने जरा न देवे॥ 27॥[2]
तुम सतसंग कर क्या फल पाया। उनका सा भी मन न बनाया॥ 28॥
अब ऐसा तुम्हें करना चाहिये। अपने मन अधीनी धरिये॥ 29॥
हाहा खाओ चरन पखालो। आपस में तुम हिल मिल चालो॥ 30॥[3]
जो कोइ जिस से रूठे भाई। सोई तिसको लेय मनाई॥ 31॥
हाथ जोड़ बहु बिनती करे। करे खुशामद चरनन पड़े॥ 32॥
इतने पै जो माने नाहीं। गुनहगार सतगुरु का भाई॥ 33॥
जलन ईर्षा जिस घट आई। वह दुख कैसे जाय नसाई॥ 34॥
कर विवेक मन को समझावे। या सतगुरु की दया समावे॥ 35॥
सतगुरु दया बिना नहिं होई। बिन विवेक नहिं जावे खोई॥ 36॥
जो सतगुरु निज दया विचारें। तब यह दुरमत मन से टारें॥ 37॥

---

1. **द्रोह घात**=शत्रुता, वैर-विरोध। 2. **मन...देवे**=मन में नहीं लाता यानी मन पर असर नहीं होने देता। 3. **हाहा खाओ**=दीनता से माफ़ी माँगो; **पखालो**=धोओ।

जो कोइ दीन कपट से होई। ता का रोग कहो कस जाई ॥ 38 ॥
कपटी को ऐसा अब चाही। करे सफ़ाई कपट नसाई ॥ 39 ॥
जो बल उसका पेश न जावे। तो सतगुरु से बिनती लावे ॥ 40 ॥
खोले कपट न राखे परदा। गुरु से खोले रख रख सरधा ॥ 41 ॥
अपने औगुन उन से भाखे। बार बार बिनती कर आखे ॥ 42 ॥[1]
हे स्वामी! मेरी कपट निकारो। मैं बलहीन मोहिं तुम तारो ॥ 43 ॥
तुम्हारी दया होय जब भारी। घट से निकसे कपट हमारी ॥ 44 ॥
और उपाय न इसका कोई। बिना दया कोई जुक्ति न होई ॥ 45 ॥
मन कपटी घट घट में पैठा। सब जीवन का पकड़ा फेंटा ॥ 46 ॥[2]
कर सतसंग भौ भाव बसावे। गुरु की दया कपट नस जावे ॥ 47 ॥[3]
जो गुरू आगे कपट न खोले। निष्कपटी अपने को बोले ॥ 48 ॥
दोहरा कपट लिये है सोई। उसका जतन कभी नहिं होई ॥ 49 ॥
वह सतसंग के लायक नाहीं। वह असाध रोगी जग माहीं ॥ 50 ॥[4]
पर जो सतगुरु समरथ पावे। और चरनन पर सीस नवावे ॥ 51 ॥
पड़ा रहे सतसंग के माहीं। धीरे धीरे तो छुट जाई ॥ 52 ॥
सतसंग जल जो कोई पावे। सब मैलाई कट कट जावे ॥ 53 ॥
सतसंग महिमा कहा बखानूं। अस सम यत्न और नहिं मानूँ ॥ 54 ॥[5]
कलजुग ख़ास यत्न कोई नाहीं। बिन सतसंग संत नहिं गाई ॥ 55 ॥
कर्म धर्म तप पूजा दाना। इस करनी से नित बढ़े माना ॥ 56 ॥
और ज्यों की त्यों होय न आवे। तौ फल उलटा उसका पावे ॥ 57 ॥
याते संतन काढ़ि निकारी। सतसंग की महिमा कहि भारी ॥ 58 ॥

---

1. **भाखे**=बयान करे; **आखे**=कहे। 2. **पैठा**=घुसा हुआ; **जीवन का**=जीवों का; **पकड़ा फेंटा**=कमरबन्द पकड़ा हुआ है यानी उन्हें वश में किया हुआ है। 3. **भौ**=भय; **नस जावे**=दूर हो जाये। 4. **असाध**=जिसका इलाज न हो सके। 5. **कहा**=क्या; **अस सम**=इसके समान।

महिमा सतगुरु-स्वरूप राधास्वामी की

बचन 8: शब्द 17

काल ने जगत अजब भरमाया। मैं क्या क्या करूं बखान॥ 1॥
जो साधन थे पिछले जुग के। सो कलजुग में किये प्रमान॥ 2॥
मूरख प्रानी मन सैलानी। सो अटके जल और पाषान॥ 3॥[1]
बुद्धिमान अभिमानी जो नर। विद्या नारि के हुये ग़ुलाम॥ 4॥
बाक़ी जीव बीच के जितने। ना मूरख ना अति बुद्धिमान॥ 5॥
जप तप व्रत संजम बहु धोखे। पंच अग्नि में जले निदान॥ 6॥[2]
देखो चरित्र काल करता के। कोई सिर कोइ पैर रुंधान॥ 7॥[3]
भटक भटक भटकाया सब जग। कोइ न लगाया ठौर ठिकान॥ 8॥
ऐसी हालत देख जगत की। संत सतगुरू प्रगटे आन॥ 9॥
गुरु सेवा और नाम महातम। सतसंग सतगुरु किया बखान॥ 10॥[4]
साधन तीन सार उन बरने। और साधन सब थोथे मान॥ 11॥[5]
वेद शास्त्र और स्मृत पुराना। पढ़ना इनका बिरथा जान॥ 12॥[6]
पंडित भेख पेट के मारे। वे संतन पर करते तान॥ 13॥[7]
हित कर संत उन्हें समझावें। वे मानी नहिं मानें आन॥ 14॥[8]
उनके चाह मान और धन की। परमारथ से खाली जान॥ 15॥
वे चौरासी चक्कर मारें। फिर फिर गिरते चारों खान॥ 16॥[9]
पिछले जुग की विद्या पढ़ते। कोई न्याय वेदान्त बखान॥ 17॥
ना साधन अधिकार न परखें। पढ़ने का करते अभिमान॥ 18॥

---

1. **सैलानी**=मनमौजी, सैर तमाशे का शौक़ीन; **जल**=पानी यानी तीर्थ-स्नान; **पाषान**=पत्थर यानी मूर्ति-पूजा। 2. **पंच अग्नि**=काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी आग। 3. **कोई...रूंधान**=कई सिर पर चोटें खाते हैं तो कई पैरों तले रौंदे जाते हैं। 4. **महातम**= बड़ाई, महिमा। 5. **साधन...सार**=तीन श्रेष्ठ साधन—सत्संग, सतगुरु और नाम; **थोथे**= व्यर्थ, निष्फल, फ़ुज़ूल। 6. **स्मृत**=स्मृतियाँ। 7. **तान**=मज़ाक करते हैं, ताना कसते हैं। 8. **मानी**=अभिमानी, अहंकारी; **आन**=सन्तों की पुकार। 9. **चारों खान**=चार खानियाँ— अण्डज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज।

इस जुग की विद्या नहिं पढ़ते। तांते उलटे गिरें निदान॥ 19॥
दीन ग़रीबी मत इस जुग का। और गुरु भक्ती कर परमान॥ 20॥
ताते निरमल निश्चल चित होय। गगन चढ़ाओ शब्द निशान॥ 21॥[1]
सुरत शब्द मारग अंतरमुख। पाँच शब्द का गहो ठिकान॥ 22॥
शब्द शब्द पौड़ी पै चढ़ कर। पहुँचो सच्चखंड सतनाम॥ 23॥[2]
ताते पहले गुरु को ध्याओ। और काम सब पीछे जान॥ 24॥
गुरु की मूरत हृदे बसाओ। चंद्र चकोर प्रीत घट आन॥ 25॥
जब लग ऐसी प्रीत न होवे। तब लग साधन यही बखान॥ 26॥[3]
गुरु भक्ति जब पूरन हो ले। तब सुर्त चढ़े अधर असमान॥ 27॥[4]
गुरु भक्ति बिन शब्द में पचते। सो भी मानुष मूरख जान॥ 28॥[5]
शब्द खुलेगा गुरू मेहर से। खैंचें सुरत गुरु बलवान॥ 29॥
गुरुमुखता बिन सुरत न चढ़ती। फूटे गगन न पावे नाम॥ 30॥
गुरुमुखता है मूल सबन की। और साधन सब शाखा जान॥ 31॥
माता को जस पुत्र प्यारा। और कामी को कामिन जान॥ 32॥
मछली को जस नीर अधारा। चात्रिक को जस स्वाँति समान॥ 33॥[6]
ऐसा गुरु प्यारा जब होगा। तब कुछ आगे पंथ चलान॥ 34॥
कहना था सो सब कह दीन्हा। अब तू चाहे मान न मान॥ 35॥
यह आरत गुरुमुख की गाई। गुरुमुख होय सो करे प्रमान॥ 36॥
राधास्वामी भक्ति बताई। गुरु की भक्ति करो यह जान॥ 37॥
और भक्ति सब दूर बहाओ। क्यों पड़ते चौरासी खान॥ 38॥
गुरु भक्ति सम और न कोई। राधास्वामी किया बखान॥ 39॥
गुरु का ध्यान करो तुम निस दिन। गुरु का शब्द सुनो नित कान॥ 40॥[7]

---

1. **शब्द निशान**=शब्द का ध्वज। 2. **शब्द...सतनाम**=पहले मण्डल के शब्द को पकड़कर दूसरे मण्डल के शब्द तक पहुँचना, फिर ऐसे ही क्रमवार पाँचवें मण्डल भाव सचखण्ड के शब्द तक पहुँचना। 3. **तब...बखान**=तब तक गुरु का हुक्म माने और नाम की कमाई द्वारा गुरु से ऐसी प्रीति पैदा करने का यत्न करे। 4. **अधर असमान**=ऊपर यानी आन्तरिक रूहानी आकाश में। 5. **पचते**=लगते, खचित होते। 6. **चात्रिक**=पपीहा। 7. **निस दिन**=दिन-रात यानी हर समय।

नैन श्रवण और हिरदा तीनों। शीश महल सम निरमल जान॥ 41॥
राधास्वामी ज़ोर देय कर। गुरु भक्ती को कहें प्रमान॥ 42॥[1]

उपदेश शब्द-अभ्यास

बचन 20: शब्द 27

कोमल चित्त दया मन धारो। परमारथ का खोज लगाना॥ 1॥
इन्द्री थान विषय को त्यागो। सुर्त शब्द में नित्त लगाना॥ 2॥[2]
सार पदारथ गुरु से पाओ। चरन कँवल में प्रीत बढ़ाना॥ 3॥[3]
धारा अगम पकड़ सुर्त जोड़ो। इस सतसंग में सदा समाना॥ 4॥[4]
चली सुरत नभ द्वारा झाँका। अंडा तीन लोक दरसाना॥ 5॥[5]
परे जाय ब्रह्मण्ड समानी। सुन्न सरोवर कँवल खिलाना॥ 6॥[6]
अब तो काल कला सब हारा। मानसरोवर पैठ अन्हाना॥ 7॥[7]
अक्षर रूप निरखती चाली। छोड़ दिया अब देश बिगाना॥ 8॥[8]
सूरत साफ़ उड़ी ऊँचे को। छूट गया सब महल पुराना॥ 9॥[9]
आगे चढ़ चढ़ अधर समानी। शब्द शब्द का मर्म पिछाना॥ 10॥
संत बिना कोइ समझे नाहीं। आगे जो जो भेद दिखाना॥ 11॥
कहने में आवे नहिं पूरा। उलटा सुलटा करत बखाना॥ 12॥
बाचक अपनी उक्ति लगावें। अमल बिना नहिं बूझ बुझाना॥ 13॥[10]
संतन की गति संतहि जानें। और कहो कैसे पहिचाना॥ 14॥

---

1. **गुरु...प्रमाण**=गुरु-भक्ति को प्रमाणिक कहते हैं यानी गुरु-भक्ति को मुक्ति का सच्चा साधन मानते हैं। 2. **सुर्त**=सुरत। 3. **चरन कँवल**=गुरु के नूरी स्वरूप के चरण। 4. **इस सतसंग**=यहाँ सत्संग से अभिप्राय आन्तरिक सत्संग से है यानी सुरत का शब्द के साथ मिलाप। 5. **नभ...झाँका**=आन्तरिक आकाश का द्वार देखा; **अंडा...दरसाना**=सहसदल कँवल (अण्ड) को देखा जिसको त्रिलोकी का अण्डा कहा जाता है। 6. **सुन्न...खिलाना**=सुन्न मण्डल (दसम् द्वार) के अमृतसर (सरोवर) में खिले हुए कँवल को देखा। 7. **काल कला**=काल की सब कलाएँ, चालें, दाव, चलित्र; **अन्हाना**=नहाना। 8. **अक्षर**=दसम् द्वार; **निरखती**=देखती। 9. **सूरत**=सुरत। 10. **उक्ति**=बातें बनाते हैं, अन्दाज़े लगाते हैं; **अमल**=करनी, अभ्यास।

अपनी उक्ति चतुरता त्यागो। संत बचन को करो प्रमाना ॥ 15 ॥
वह कहते देखी निज अपनी। तू सुन सुन क्यों बुद्धि लड़ाना ॥ 16 ॥
राधास्वामी सब से कहते। संत भेद कोइ भेदी जाना ॥ 17 ॥

चितावनी, भाग 1

बचन 14: शब्द 9

क्यों फिरत भुलानी जगत में, दिन चार बसेरा ॥ 1 ॥
स्वारथ के संगी सभी, जिन तुझ को घेरा ॥ 2 ॥
मात पिता सुत इस्तरी, कोइ संग न हेरा ॥ 3 ॥[1]
बिन गुरु सतगुरु कौन है, जो करे निबेड़ा ॥ 4 ॥[2]
नाम बिना सब जीव, करें चौरासी फेरा ॥ 5 ॥
मन दुलहा गगना चढ़े, सज सूरत सेहरा ॥ 6 ॥[3]
धुन दुलहिन को पाय कर, बसे जाय त्रिकुटी देहरा ॥ 7 ॥[4]
राधास्वामी ध्यान धर, तू साँझ सबेरा ॥ 8 ॥

होली

बचन 39: शब्द 9

गुरु आन खिलाई घट में होली।
धुन नाम लई तन अंतर खोली ॥ 1 ॥
मन मार लई तिल ताला तोड़ी।[5]
सुर्त फेर लई दल अंदर जोड़ी ॥ 2 ॥[6]
जुग बाँध लई गुरु से पट फोड़ी।[7]
पद पाय गई त्रिकुटी गढ़ दौड़ी ॥ 3 ॥[8]

---

1. **कोइ...हेरा**=किसी को साथ जाते हुए नहीं देखा। 2. **निबेड़ा**=छुटकारा। 3. **सूरत**=सुरत। 4. **देहरा**=डेरा, ठिकाना। 5. **तिल**=तीसरा तिल। 6. **सुर्त**=सुरत; **दल...जोड़ी**=सहसदल कँवल में लगा दी। 7. **जुग...फोड़ी**=परदा हटाकर अन्तर में गुरु से मिल गयी। 8. **गढ़**=किला।

सुन जाय रही सुर्त घर जब मोड़ी।[1]
घर आय गई अपने भइ पोढ़ी॥ 4 ॥[2]
पंच इन्द्री पिचकारियाँ, भर उल्टी छोड़ी।
गुन तीनों की जेवरी, छिन माहिं जलो री॥ 5 ॥[3]
हौंमैं ममता छोड़ कर, चढ़ गगन चलो री।[4]
बिखरी धुनें समेट कर, सब एक करो री॥ 6 ॥
दृष्टि जोड़ नभ में धरो, तब जोत लखो री।
जोत फाड़ आगे धसो, फिर सुन्न तको री॥ 7 ॥[5]
इस सुन्न की धुन सोध लो, जस शंख बजो री।[6]
राधास्वामी एक पद, यह कह्यो भलो री॥ 8 ॥

उपदेश सतगुरु-भक्ति का

बचन 18: शब्द 1

गुरु करो खोज कर भाई। बिन गुरु कोइ राह न पाई॥ 1 ॥
जग डूबा भौजल धारा। कोइ मिला न काढ़नहारा॥ 2 ॥
जग पंडित भेख बिचारे। क्या जोगी ज्ञानी हारे॥ 3 ॥
संतन से प्रीत न धारी। क्यों उतरें भौजल पारी॥ 4 ॥
तप तीरथ बर्त पचे रे। पढ़ विद्या मान भरे रे॥ 5 ॥
भक्ति रस नेक न पाया। भक्तों की सरन न आया॥ 6 ॥
भक्ति का भेद न जाना। गुरु को सतपुरुष न माना॥ 7 ॥
गुरु सब को पार लगावें। जो जो उन चरन ध्यावें॥ 8 ॥
गुरु से तू बेमुख फिरता। मन के नित सन्मुख रहता॥ 9 ॥[7]
करमों में पचता खपता। नर देही बाद गँवाता॥ 10 ॥[8]

---

1. **सुन...रही**=सुन्न मण्डल में जा कर ठहरी। 2. **पोढ़ी**=मज़बूत। 3. **जेवरी**=रस्सी, बन्धन। 4. **हौंमैं**=हौंमैं, मैं-मेरी, अहंकार। 5. **जोत फाड़**=जोत के बीच में से गुज़र कर; **तको**=देखो। 6. **सोध लो**=छांट लो। 7. **मन...रहता**=मन के कहने में रहता है। 8. **बाद**=व्यर्थ, निष्फल।

अब चेतो समझो भाई। कर प्रीत गुरू संग आई॥ 11॥
कह कर राधास्वामी गाई। करनी कर मिले बड़ाई॥ 12॥

उपदेश शब्द-अभ्यास

बचन 20: शब्द 10

गुरु कहें खोल कर भाई। लग शब्द अनाहद जाई॥ 1॥
बिन शब्द उपाव न दूजा। काया का छुटे न कूज़ा॥ 2॥[1]
घर में घर गुरु दिखलावें। धुन शब्द पाँच बतलावें॥ 3॥
धुन में अब सुरत लगाओ। इस घर से उस घर जाओ॥ 4॥
वह घर है अगम अपारा। दसवें के पार निहारा॥ 5॥
दस द्वारा घट चढ़ खोलो। सत शब्द अधर पै तोलो॥ 6॥[2]
बिन मेहर गुरू नहिं पावे। बिन शब्द हाथ नहिं आवे॥ 7॥
सुर्त खैंच चढ़ावो गगनी। धुन शब्द सुनो यह करनी॥ 8॥[3]
मन चंचल थिर न रहावे। चित निर्मल कस होय आवे॥ 9॥
सुर्त शब्द कमाई करना। सब जतन दूर अब धरना॥ 10॥
निश्चय दृढ़ इस पर धरना। आलस कर कभी न फिरना॥ 11॥
यह सार सार सब गाया। संतन मत भाख सुनाया॥ 12॥
राधास्वामी भेद लखाया। सुन मान सार समझाया॥ 13॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 13

गुरु कहें जगत सब अंधा। कोइ गहै न घट की संधा॥ 1॥[4]
बाहर मुख भरमें सारे। अंतर मुख शब्द न धारे॥ 2॥
मन जगत भोग रस बंधा। नित करे कर्म बस धंधा॥ 3॥

---

1. **कूज़ा**=मिट्टी का बर्तन यानी शरीर। 2. **तोलो**=परखो। 3. **सुर्त**=सुरत। 4. **गहै**=ग्रहण करें, लें; **संधा**=भेद, निशानी, शब्द।

फँस मरे काल के फंदा। अब हुआ जीव अति गंदा॥ 4॥
गुरु कहैं नित समझाई। कर खोज शब्द घट जाई॥ 5॥
यह सुने न गुरु के बैना। कस खुलैं हिये के नैना॥ 6॥[1]
बिरला कोइ जिव अधिकारी। गुरु बचन करे आधारी॥ 7॥
जो बचन सम्हारे गुरु के। मन फंद लगावे छल के॥ 8॥
ज्यों त्यों कर जीव भुलावे। काल अपने खेल खिलावे॥ 9॥
गुरु भक्ति न करने पावे। बहु भाँति उपाधि लगावे॥ 10॥[2]
कभी मित्र होय भरमावे। कभी वैरी बन धमकावे॥ 11॥
कभी रोगन माहिं झुमावे। नाना बिधि जाल बिछावे॥ 12॥[3]
शब्दा रस लेन न पावे। यों जीव सदा दुख पावे॥ 13॥
गुरु मेहर करें जिस जन पर। सो बचे शब्द धुन सुन कर॥ 14॥
तब गहे शब्द रस जाँची। फिर जले न जग की आँची॥ 15॥[4]
सब बात लगी अब काँची। गुरु भक्ति मिली अब साँची॥ 16॥
राधास्वामी की लीन्ही सरनी। सो जीव लगे भौ तरनी॥ 17॥

चितावनी, भाग दूसरा

बचन 15: शब्द 21

गुरु कहें पुकार पुकार। समझ मन करलो सुमिरनियाँ॥ 1॥
स्वाँसो स्वाँस घटे तेरी पूँजी। चली जाय यह उमरनियाँ॥ 2॥
वक्त मिला यह तख़्तनशीनी। छोड़ बान अब घुरबिनियाँ॥ 3॥[5]
यह मारग अब गुरू बतावें। पकड़ गहो तुम उर धुनियाँ॥ 4॥[6]
शब्द संग तुम सुरत लगाओ। रहो नित्त गुरु मुजरनियाँ॥ 5॥[7]
दया लेव तुम हरदम उनकी। सरन पड़ो उन चरननियाँ॥ 6॥

---

1. **बैना**=बचन। 2. **उपाधि**=विघ्न, रुकावट। 3. **रोगन...झुमावे**=कभी रोगों में परेशान करता है। 4. **जाँची**=जाँच कर; **आँची**=आँच, अग्नि। 5. **तख़्तनशीनी**=राज-सिंहासन पर बैठने का; **बान**=आदत; **बान...घुरबिनियाँ**=मुर्गी की तरह कूड़ा चुगने की आदत। 6. **उर धुनियाँ**=अन्तर में शब्द की धुन। 7. **मुजरनियाँ**=हाज़िरी में।

वह तो भेद बतावें घट का। पकड़ शब्द भौ तरननियाँ॥ 7॥
लागी लगन बहुरि नहिं सूझे। सुरत अजर में जरननियाँ॥ 8॥[1]
जिन जिन संग करा गुरु पूरे। छुटा जन्म और मरननियाँ॥ 9॥
जगत जार तज सार समझ तू। मिटे चौरासी भरमनियाँ॥ 10॥[2]
सतसंग करो प्रीत घट धारो। देख रूप चढ़ दर्पनियाँ॥ 11॥[3]
गगन गिरा परखो धुन बानी। यही कमाई करननियाँ॥ 12॥[4]
पहुंचो जाय अधर में प्यारी। गाँठ खुले तब तन मनियाँ॥ 13॥[5]
या जग में कोइ सुखी न देखो। गहो गुरू के बचननियाँ॥ 14॥
दुख के जाल फँसे सब मूरख। तू क्यों उन संग फँसननियाँ॥ 15॥
मैं तू मोर तोर सब त्यागो। गहो राधास्वामी सरननियाँ॥ 16॥

महिमा दर्शन राधास्वामी

बचन 4: शब्द 8

गुरु का दरस तू देख री। तिल आसन डार॥ 1॥[6]
शब्द गुरू नित सुनो री। मिल बासन जार॥ 2॥[7]
गुरू रूप सुहावन अति लगे। घट भान उजार॥ 3॥[8]
कँवल खिलत सुख पावई। भौंरा कर प्यार॥ 4॥
गुरु ज्ञान न पाया हे सखी। जिन घट अंधियार॥ 5॥
पूरा सतगुरु ना मिला। भरमत भौ जार॥ 6॥[9]
मैं तो सतगुरु पाइया। जाऊँ बलिहार॥ 7॥
ज्यों चकोर चन्दा गहे। रहूं रूप निहार॥ 8॥
सतगुरु शब्द स्वरूप हैं। रहें अर्श मँझार॥ 9॥[10]

---

1. **अजर**=परिवर्तन रहित यानी कभी न बदलने वाली अवस्था; **जरननियाँ**=जज़्ब कर दो। 2. **जार**=जाल। 3. **दर्पनियाँ**=दर्पण, आईना। 4. **गगन गिरा**=आकाशवाणी, शब्द। 5. **अधर में**=अन्तर में। 6. **तिल...डार**=तीसरे तिल में सुरत को एकाग्र और स्थिर करके। 7. **बासन जार**=वासनाओं को जलाकर। 8. **भान**=सूर्य। 9. **जार**=जाल। 10. **अर्श मँझार**=आन्तरिक रूहानी मण्डलों में।

तू भी सुरत स्वरूप है। रहो गुरु की लार ॥ 10 ॥[1]
नैनन में गुरु रूप है। तू नैन उघार ॥ 11 ॥[2]
सरवन में गुरु शब्द है। सुन गगन पुकार ॥ 12 ॥[3]
राधास्वामी कह रहे। यह मारग सार ॥ 13 ॥[4]
जो जो मानें भाग से। सो उतरें पार ॥ 14 ॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 16

गुरु क्यों न सम्हार। तेरा नर तन बीता भर्म में ॥ 1 ॥
दारा सुत परिवार। ठगियन संग क्यों खोवही ॥ 2 ॥[5]
क्यों नहिं करत विचार। जग मिथ्या यह है सही ॥ 3 ॥
मन है बड़ा गँवार। मोह रहा कर प्यार। छूटे कैसे जार से ॥ 4 ॥
बिन गुरु चले न दाव। थाके सभी उपाय कर ॥ 5 ॥
नाम सम्हारो मीत। धीरज धर घट में रहो ॥ 6 ॥
मौज निहारो पीव। जो करिहैं सो सब भला ॥ 7 ॥[6]
तेरी बुद्धि मलीन। मन चंचल घाटा गहे ॥ 8 ॥
तू नहिं जाने भेद। भर्म जाल में फँस रहा ॥ 9 ॥
या ते कर विश्वास। गुरु बिन और न दूसरा ॥ 10 ॥
गुरु का घाट निहार। सुरत बाँध निज शब्द में ॥ 11 ॥[7]
शब्द बिना कोइ नाहिं। जो काढ़े इस फंद से ॥ 12 ॥
ता ते शब्द किवाड़। खोलो गुरु कुँजी पकड़ ॥ 13 ॥
महल माहिं धस जाय। गुरुमुख को रोकें नहीं ॥ 14 ॥
मनमुख भटका खाय। चढ़ उतरे गिर गिर पड़े ॥ 15 ॥

---

1. **लार**=साथ। 2. **नैन उघार**=आन्तरिक आँखें खोल। 3. **सरवन**=आन्तरिक कान; **गगन पुकार**=आन्तरिक आकाश में हो रही शब्द-धुन। 4. **सार**=असली, सच्चा। 5. **दारा**=स्त्री। 6. **पीव**=प्रियतम। 7. **घाट**=तट, स्थान।

ठीका ठौर न पाय। क्यों कर गुरु समझावहीं ॥ 16 ॥[1]
मन मत छोड़े नाहिं। गुरु को दोष लगावहीं ॥ 17 ॥
गुरु जो कहें उपाय। उस में मन बांधे नहीं ॥ 18 ॥
क्योंकर होय निबाह। जम धक्के खावत फिरे ॥ 19 ॥[2]
राधास्वामी कहत सुनाय। मन बैरी को मीत कर ॥ 20 ॥

महिमा सतगुरु

बचन 8: शब्द 15

गुरु चरन धूर कर अंजन। हिये नैन खुले मन मंजन ॥ 1 ॥[3]
घट तिमिर अनादि नाशन। गुरु रूप भान परकाशन ॥ 2 ॥[4]
मेरे हिरदे प्रेम बढ़ावन। पल पल में उमंग समावन ॥ 3 ॥
सुर्त चढ़े गगन गुरु पावन। सतगुरु पद शब्द सुनावन ॥ 4 ॥[5]
सो सतगुरु जग माहिं बिराजन। जग जीव अचेत चितावन ॥ 5 ॥[6]
क्या महिमा सतगुरु गावन। जिव अधम नीच किये पावन ॥ 6 ॥
मन माया ज़ोर चलावन। ठोकर दे दूर करावन ॥ 7 ॥
दासन का दास दसावन। सेवा पर तन मन वारन ॥ 8 ॥
मैं किंकर कुटिल अपावन। गुरु गोद लिया और किया अपनावन ॥ 9 ॥[7]
यह मानुष जन्म जितावन। गुरु रूप लखा मन भावन ॥ 10 ॥
यह आरत दोना गावन। राधास्वामी किया बखानन ॥ 11 ॥[8]

---

1. **ठीका ठौर**=ठीक या असली ठिकाना। 2. **निबाह**=निर्वाह, गुज़ारा। 3. **गुरु...धूर**=गुरु के नूरी स्वरूप के चरणों में से निकल रही किरणें; **अंजन**=आँखों में डालने वाला सुरमा; **हिये नैन**=अन्तर की दृष्टि; **मन मंजन**=मन निर्मल हो जाता है। 4. **घट...नाशन**=अनादि काल से चले आ रहे अँधेरे का नाश हो जाता है। 5. **सतगुरु पद**=सचखण्ड। 6. **अचेत**=ग़ाफ़िल, भूले हुए। 7. **किंकर**=तुच्छ दास, नौकर; **कुटिल**=दुष्ट; **अपावन**=अपवित्र, नापाक; **अपनावन**=अपना लिया। 8. **दोना**=एक प्रेमी का नाम।

सतगुरु-भक्ति

बचन 18: शब्द 4

गुरु चरन पकड़ दृढ़ भाई। गुरु का संग करो बनाई॥ 1॥
गुरु बचन करो आधारा। गुरु दर्श निहारो सारा॥ 2॥
गुरु की गति अगम अपारा। गुरु अस्तुति करो सँवारा॥ 3॥
गुरु राखो हिरदे माहीं। तो मिटे काल परछाहीं॥ 4॥[1]
भोगों की आसा त्यागो। मन्सा तज जग से भागो॥ 5॥
आसा गुरु शब्द लगाओ। मन्सा गुरु पद में लाओ॥ 6॥
आसा और मन्सा मोड़ी। मन इन्द्री गुरु में जोड़ी॥ 7॥
दिन रात रहे गुरु ध्याना। गुरु बिन कोई और न जाना॥ 8॥
गुरु स्वाँस गिरास न बिसरे। तू पल पल गा गुरु जस रे॥ 9॥[2]
गुरु हैं हितकारी तेरे। गुरु बिन कोइ मित्र न है रे॥ 10॥
गुरु फंद छुड़ावें जम के। गुरु मर्म लखावें सम के॥ 11॥
भौजल से पार उतारें। छिन छिन में तुझे सँवारें॥ 12॥
ज्यों निज अंडा सेवे कच्छा। त्यों गुरु राखें तेरी पच्छा॥ 13॥[3]
गुरु सम और नहीं को रक्षक। कुल कुटुम्ब सब जानो तक्षक॥ 14॥[4]
ता ते गुरु को कभी न छोड़ो। कनक कामिनी से मन मोड़ो॥ 15॥
गुरु की भक्ति सदा सुखदाई। गुरु बिन मन बुद्धि भी दुखदाई॥ 16॥
गुरु विश्वास चित्त में धरो। गुरु परशाद जगत से तरो॥ 17॥
मान मोह मद गुरु सब हरें। काम क्रोध भी तुझ से डरें॥ 18॥
लोभ लहर सब देयँ निकारी। माया ममता बाज़ी हारी॥ 19॥
तुझ से जीत सके नहिं कोई। गुरु का बल जो मन में होई॥ 20॥
गुरु से पावे नाम रसायन। घट से भागे तृष्णा डायन॥ 21॥
गुरु चरनामृत गुरु परशादी। प्रीत सहित ले मिटे उपाधी॥ 22॥[5]

---

1. **परछाहीं**=परछाईं, प्रभाव। 2. **जस**=यश, महिमा। 3. **कच्छा**=कछुआ; **पच्छा**=पक्ष, तरफ़दारी। 4. **तक्षक**=साँप यानी साँप की तरह ज़हरीले। 5. **उपाधी**=दु:ख, कष्ट।

गुरु पै तन मन दोनों वारो। हिरदे में गुरु रूप निहारो॥ 23॥
गुरु हैं दाता गुरु हैं दानी। गुरु आराधो छिन छिन प्रानी॥ 24॥
सतपुरुष सतनाम गुरू हैं। अलख रूप और अगम गुरू हैं॥ 25॥
राधास्वामी गुरु का नाम। निज पद पाय करो बिसराम॥ 26॥
गुरु सब विधि हैं अंतरजामी। गावो ध्यावो राधास्वामी॥ 27॥

महिमा सतगुरु-स्वरूप राधास्वामी की

बचन 8: शब्द 12

गुरु चरन बसे अब मन में। मैं सेऊँ दम दम तन में॥ 1॥[1]
फिर प्रीत लगी घट धुन में। चढ़ पहुंची पहिली सुन में॥ 2॥[2]
अब सील क्षमा मन छाई। गइ तपन काम दुखदाई॥ 3॥
फिर क्रोध लोभ भी भागे। अहंकार मोह सब त्यागे॥ 4॥
धुन पाँच शब्द घट जागी। मन हुआ सहज बैरागी॥ 5॥
गुरु किरपा सूर उगाना। अब हुआ जगत बेगाना॥ 6॥[3]
घट बैठी तारी लाई। बाहर की किरिया दूर बहाई॥ 7॥[4]
गुरु अद्‌भुत सुख दिखलाया। क्या महिमा जाय न गाया॥ 8॥
जग जीव अभागी सारे। नर देही योंही हारे॥ 9॥[5]
क्यों गुरु से प्रीत न करते। क्यों जम के किंकर रहते॥ 10॥[6]
मैं किस से कहूं सुनाई। फिर अपना मन समझाई॥ 11॥[7]
तू गुरुमत दृढ़ कर भाई। अब छोड़ो तात पराई॥ 12॥[8]
चल रह तू त्रिकुटी घाटी। चढ़ सुन्न शिखर की बाटी॥ 13॥[9]
महासुन्न की तोड़ो टाटी। जा भँवरगुफा की हाटी॥ 14॥[10]

---

1. **गुरु चरन**=सतगुरु के नूरी स्वरूप के चरण; **सेऊँ**=ध्यान करूँ। 2. **पहिली सुन**=सहसदल कँवल। 3. **सूर**=ज्ञान रूपी सूर्य। 4. **तारी**=ताड़ी, समाधि, ध्यान; **बाहर...किरिया**=बाहरी पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड। 5. **योंही**=यूँ ही, अकारण, व्यर्थ। 6. **किंकर**=ग़ुलाम। 7. **मैं...सुनाई**=मैं किसे सुनाऊँ, कोई नहीं सुनता। 8. **तात**=चिन्ता। 9. **सुन्न शिखर**=दसम् द्वार की चोटी; **बाटी**=बाट, रास्ता। 10. **टाटी**=पर्दा; **हाटी**=हाट, बाज़ार यानी मण्डल।

फिर सतपुरुष घर पाया। धुन बीना जाय बजाया॥ 15 ॥[1]
सुनी अलख अगम की बतियाँ। शशि सूर खरब जहाँ थकियाँ॥ 16 ॥[2]
पिया परसे राधास्वामी। कुछ कहूँ न पुरुष अनामी॥ 17 ॥[3]
मेरी आरत सब से न्यारी। कोई समझेगी पिया प्यारी॥ 18 ॥
यह भेद अथाह बखाना। बिन संत न कोई जाना॥ 19 ॥
करमी जीव जग के अंधे। सब फँसे काल के फँदे॥ 20 ॥
उन से नहिं कहना चहिये। मत गूढ़ छिपाये रहिये॥ 21 ॥[4]
सुर्त शब्द कमाई करना। सुमिरन में तन मन देना॥ 22 ॥
गुरु दर्शन बहुत निरखना। धुन अनहद नित्त परखना॥ 23 ॥
सतसंग की चाहत रखना। जब डौल बने तब करना॥ 24 ॥[5]
उपदेश किया यह टीका। राधास्वामी नाम मैं सीखा॥ 25 ॥[6]

भेद मार्ग और शोभा सतलोक

बचन 5: शब्द 4

गुरु मता अनोखा दरसा। मन सुरत शब्द जाय परसा॥ 1 ॥[7]
लीला घट देखी भारी। हुइ सुरत गगन पनिहारी॥ 2 ॥[8]
अमृत रस भर भर पीया। तन मन सब सीतल हूआ॥ 3 ॥
चोरी अब चोरन त्यागी। घर उनके अगनी लागी॥ 4 ॥[9]
साहू अब घट में जागे। पहरा दे शब्द अनुरागे॥ 5 ॥[10]

---

1. **धुन...बजाया**=वहाँ जाकर बीन की धुन सुनी। 2. **बतियाँ**=बातें, शब्द की ध्वनियाँ; **थकियाँ**=शर्माते हैं। 3. **परसे**=मिले। 4. **मत गूढ़**=गूढ़ भेद या रहस्य। 5. **डौल**=अनुकूल हालात। 6. **टीका**=सार, उत्तम। 7. **गुरु मता**=गुरुमत, गुरु का बताया हुआ मार्ग; **दरसा**=मालूम हुआ; **मन...परसा**=मन और सुरत का शब्द से मिलाप हो गया। 8. **गगन पनिहारी**=अन्तर के आकाश से अमृत का रस लाने वाली। 9. **चोरी...लागी**=(शब्द के प्रभाव से) पाँच चोर (काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार) शरीर रूपी घर से बाहर निकल गये मानो उनके घर में आग लग गयी हो। 10. **साहू**=साहूकार, घर का मालिक यानी आत्मा।

गुन गावत मन हुलसाया। धुन धावत अधर चढ़ाया॥ 6 ॥[1]
जगमग हुइ जोत उजियारी। घट खिल गइ कँवल कियारी॥ 7 ॥[2]
सुन्दर की खिड़की खोली। सुखमन में धुन नित बोली॥ 8 ॥[3]
चढ़ बंक किवाड़ी खोली। त्रिकुटी जा हुई अमोली॥ 9 ॥[4]
ज्यों फेरत पान तमोली। यों धुन घट सूरत रोली॥ 10 ॥[5]
क्या महिमा गुरु पद गाऊँ। छिन छिन में उमँग बढ़ाऊँ॥ 11 ॥[6]
सुर नर मुनि गति नहिं जानी। यह अचरज अकथ कहानी॥ 12 ॥
सुन्न में जा शब्द समानी। अद्‌भुत धुन किंगरी छानी॥ 13 ॥[7]
गई महा सुन्न के नाके। गुरु दया अचंभा ताके॥ 14 ॥[8]
फिर भँवरगुफा लगी डोरी। सोहँग जा सूरत जोड़ी॥ 15 ॥[9]
सतगुरु पद सत कर जाना। गति मति क्या कहूं बखाना॥ 16 ॥[10]
शशि सूर अनेकन पाँती। देखे और आगे जाती॥ 17 ॥[11]
लख अलख अगम दरसाना। मिला राधास्वामी नाम निशाना॥ 18 ॥
यह अजब परम पद पाया। अब तक कोई भेद न गाया॥ 19 ॥
नहिं वेद कतेब सुनाया। जोगी नहिं ज्ञानी धाया॥ 20 ॥[12]
यह वस्तु अमोलक पाई। कोइ बिरले संत बताई॥ 21 ॥[13]
मेरे राधास्वामी परम दयाला। जिन कीन्हा मोहि निहाला॥ 22 ॥
मैं आरत उनकी करता। तन मन दोउ चरनन धरता॥ 23 ॥
मैं हर दम यही पुकारूँ। मत अगम अगाध सम्हारूँ॥ 24 ॥

---

1. **हुलसाया**=ख़ुश हुआ; **धुन...चढ़ाया**=धुन को पकड़कर मन अन्तर में चढ़ाई करने लगा। 2. **जोत**=सहसदल कँवल की ज्योति। 3. **सुन्दर**=श्याम सुन्दर का स्थान यानी सहसदल कँवल; **सुखमन**=सुषम्ना, आँखों के पीछे की सूक्ष्म नाड़ी। 4. **बंक**=बंकनाल; **अमोली**=अमूल्य, अति निर्मल। 5. **ज्यों...रोली**=जैसे पनवाड़ी कैंची से पान के पत्तों का ख़राब हिस्सा काटकर फेंक देता है, उसी तरह शब्द की ध्वनि सुरत की सब मलिनताओं को दूर कर देती है। 6. **गुरु पद**=त्रिकुटी का शिखर। 7. **सुन्न**=सुन्न मण्डल, दसम् द्वार, तीसरा रूहानी मण्डल। 8. **नाके**=दरवाज़े पर। 9. **सूरत**=सुरत। 10. **सतगुरु पद**=सतलोक, सचखण्ड। 11. **पाँती**=पंक्तियाँ। 12. **कतेब**=सामी धर्मों की चार किताबें—ज़बूर, तुरैत, बाइबल और क़ुरान। 13. **कोइ...बताई**=अब तक किसी-किसी विरले सन्त ने ही वहाँ का भेद प्रकट किया है।

मेरा भाग उदय हो आया। राधास्वामी चरन धियाया॥ 25॥
जग स्वाद लगा सब फीका। राधास्वामी नाम मैं सीखा॥ 26॥
गति मति मेरी उलटी पलटी। गुरु कर दइ सूरत सुल्टी॥ 27॥[1]
मेरा काज हुआ सब पूरा। मैं राधास्वामी चरनन धूरा॥ 28॥

महिमा सतगुरु-स्वरूप राधास्वामी की

बचन 8: शब्द 11

गुरु मेरे जान पिरान, शब्द का दीन्हा दाना॥
शब्द मेरा आधार, शब्द का मर्म पिछाना॥ 1॥
क्या गुण गाऊँ शब्द, शब्द का अगम ठिकाना॥
बिना शब्द सब जीव, धुँध में फिरें भरमाना॥ 2॥
जल पाषान पूजत रहें, रहें काग़ज़ अटकाना॥
मन मत ठोकर खाय, गये चौरासी खाना॥ 3॥
बहु विधि बिपता जीव को, बिन शब्द सुनाना॥
सतगुरु की सेवा बिना, नहिं लगे ठिकाना॥ 4॥
शब्द भेद बिन सतगुरू, क्या कहें अजाना॥
मन इन्द्री बस में नहीं, तो काल चबाना॥ 5॥
राधास्वामी सरन ले, सब भाँति बचाना॥
मेहर दया छिन में करें, दें अगम ख़ज़ाना॥ 6॥

पहचान पूरे गुरु की और सच्चे परमार्थी की

बचन 13: शब्द 1

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥ 1॥[2]
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥ 2॥

---

1. **सुल्टी**=सीधी। 2. **शब्द सनेही**=शब्द का प्रेमी, शब्द-अभ्यासी; **नहिं सेई**=सेवा यानी भक्ति, अराधना नहीं करता।

और पहिचान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई॥ 3 ॥[1]
शब्द भेद लेकर तुम उन से। शब्द कमाओ तुम तन मन से॥ 4 ॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 2

गुरू का ध्यान कर प्यारे। बिना इस के नहीं छुटना॥ 1 ॥
नाम के रंग में रंग जा। मिले तोहि धाम निज अपना॥ 2 ॥
गुरू की सरन दृढ़ कर ले। बिना इस काज नहिं सरना॥ 3 ॥[2]
लाभ और मान क्यों चाहें। पड़ेगा फिर तुझे देना॥ 4 ॥
करम जो जो करेंगा तू। वही फिर भोगना भरना॥ 5 ॥
जगत के जाल से ज्यों त्यों। हटो मरदानगी करना॥ 6 ॥[3]
जिन्हों ने मार मन डाला। उन्हीं को सूरमा कहना॥ 7 ॥
बड़ा बैरी यह मन घट में। इसी का जीतना कठिना॥ 8 ॥
पड़ो तुम इसही के पीछे। और सबही जतन तजना॥ 9 ॥
गुरू की प्रीत कर पहिले। बहुरि घट शब्द को सुनना॥ 10 ॥[4]
मान दो बात यह मेरी। करें मत और कुछ जतना॥ 11 ॥
हार जब जाय मन तुझ से। चढ़ा दे सुर्त को गगना॥ 12 ॥
और सब काम जग झूठा। त्याग दे इसही को गहना॥ 13 ॥[5]
कहैं राधास्वामी समझाई। गहो अब नाम की सरना॥ 14 ॥[6]

सतगुरु-भक्ति

बचन 18: शब्द 8

गुरू की मौज रहो तुम धार। गुरू की रज़ा सम्हालो यार॥ 1 ॥[7]
गुरू जो करें सो हितकर जान। गुरू जो कहें सो चित धर मान॥ 2 ॥

---

1. **लक्ष अलक्ष**=गुण-अवगुण, रंग-रूप, जाति-पाँति, बाहरी-भेष आदि। 2. **सरना**= पूरा होना। 3. **मरदानगी**=बहादुरी। 4. **बहुरि**=फिर। 5. **गहना**=ग्रहण करना, पकड़ना। 6. **सरना**=शरण। 7. **रज़ा**=मौज, भाणा, प्रसन्नता।

शुकर की करना समझ विचार। सुख दुख देंगे हिकमत धार॥ 3॥[1]
ताड़ और मार करें सोइ प्यार। भोग सब इन्द्री रोग निहार॥ 4॥[2]
कहूं क्या दम दम शुकर गुज़ार। बिना उन और न करनेहार॥ 5॥
दुखी चित से न हो दुख लार। सुखी होना नहीं सुख जार॥ 6॥[3]
बिसारो मत उन्हें हर बार। दुख और सुख रहो उन धार॥ 7॥[4]
गुरु और शब्द ये दोउ मीत। नहीं कोइ और इन धर चीत॥ 8॥
यही सतपुरुष यही करतार। लगावें तोहि इक दिन पार॥ 9॥
बिना उन कोइ नहीं संसार। देव मन सूरत उन पर वार॥ 10॥[5]
करें वह नित्त तेरी सार। तेरे तन मन के हैं रखवार॥ 11॥[6]
शुकर कर राख हिरदे धार। मिटावें दुख सबही झाड़॥ 12॥[7]
करें क्या मन तेरा नाकार। नहीं तू छोड़ता विष धार॥ 13॥
भोग में गिरे बारम्बार। न माने कहन उन की सार॥ 14॥[8]
इसी से मिले तुझ को दंड। नहीं तू मानता मतिमंद॥ 15॥
सहो अब पड़े जैसी आय। करो फ़र्याद गुरु से जाय॥ 16॥
पकड़ फिर उन्हीं को तू धाय। करेंगे वोही तेरी सहाय॥ 17॥[9]
बिना उन और नहीं दरबार। रहो उन चरन में हुशियार॥ 18॥
गुनह तुम किये दिन और रात। गुरू की कुछ न मानी बात॥ 19॥[10]
इसी से भोगते दुख घात। बचावेंगे वही फिर तात॥ 20॥[11]
रहो राधास्वामी के तुम साथ। लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ॥ 21॥

---

1. **हिकमत धार**=दानाई से, समझदारी से, विवेकपूर्वक। 2. **निहार**=निहारो, देखो, समझो। 3. **दुखी...लार**=दुःख का स्पर्श या प्रभाव न लो यानी दुःख में दुःखी न हो; **सुखी... जार**=सुख को सुख मत समझो, जाल समझो और इस जाल में मत फँसो। 4. **उन धार**= उनका सहारा लो, उनकी शरण में रहो। 5. **वार**=वार दो, न्यौछावर कर दो। 6. **सार**= सँभाल। 7. **मिटावें...झाड़**=झाड़कर यानी एक-एक करके सभी दुःख दूर कर देंगे। 8. **सार**=असली, सच्ची, उत्तम। 9. **धाय**=दौड़कर यानी जल्दी से। 10. **गुनह**=पाप। 11. **दुख घात**=दुःखों की चोटें; **तात**=प्यारे।

महिमा सतगुरु-स्वरूप राधास्वामी की

बचन 8: शब्द 1

गुरू गुरू मैं हिरदे धरती। गुरु आरत का सामाँ करती॥ 1 ॥[1]
गुरु मेरे पूरण पुरुष बिधाता। नित चरनन पर मन मेरा राता॥ 2 ॥[2]
गुरु हैं अगम अपार अनामी। गुरु बिन दूसर और न जानी॥ 3 ॥
नहिं ब्रह्मा नहिं विष्णु महेशा। नहिं ईश्वर परमेश्वर शेषा॥ 4 ॥[3]
राम कृष्ण नहिं दस औतारी। व्यास वशिष्ठ न आदि कुमारी॥ 5 ॥[4]
ऋषि मुनि देवी देव न कोई। तीरथ बर्त धर्म नहिं होई॥ 6 ॥
जोगी जती तपी ब्रह्मचारी। जनक सनक सन्यास विचारी॥ 7 ॥[5]
आतम परमातम नहिं मानूं। अक्षर नि:अक्षर नहिं जानूं॥ 8 ॥[6]
सतनाम जानूं न अनामी। लिख ग्रन्थ सब करत बखानी॥ 9 ॥[7]
सब को करूं प्रनाम जोड़ कर। पर कोई नहिं सतगुरु समसर॥ 10 ॥
सतगुरु कृपा सबन को जाना। बिन सतगुरु कैसे पहिचाना॥ 11 ॥
सतगुरु भेद दिया इक इक का। तब जाना इन सब का ठेका॥ 12 ॥[8]
सतगुरु सब का भेद बखानें। अब किसको गुरु से बढ़ जानें॥ 13 ॥
गुरु ने सब का पद दरसाई। जस जस जिनकी गति तस गाई॥ 14 ॥
ताते सतगुरु सब के करता। सतगुरु ही हैं सब के हरता॥ 15 ॥[9]
याते सतगुरु का पद भारी। सतगुरु सम नहिं कोइ बिचारी॥ 16 ॥
जब जिव सरन गुरू की आवे। कर्म धर्म और भर्म नसावे॥ 17 ॥[10]
जो गुरु मारग देहिं लखाई। सोइ निज कर्म धर्म हुआ भाई॥ 18 ॥

---

1. **सामाँ**=सामान, तैयारी। 2. **बिधाता**=परमात्मा; **राता**=रँगा हुआ, लीन, मोहित। 3. **ईश्वर**=सहसदल कँवल का मालिक; **परमेश्वर**=त्रिकुटी का मालिक; **शेषा**=शेषनाग। 4. **दस औतारी**=दस अवतार—मत्सय, कच्छप, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि; **आदि कुमारी**=आदि माया। 5. **सनक**=ब्रह्मा के चार पुत्रों (सन, सनक, सनत्कुमार, सनन्दन) में से एक। 6. **आतम**=सहसदल कँवल का धनी; **परमातम**=त्रिकुटी का धनी, ब्रह्म; **अक्षर**=दसम् द्वार का धनी; **नि:अक्षर**=चौथे रूहानी मण्डल का धनी। 7. **करत बखानी**=बयान करते हैं। 8. **ठेका**=ठिकाना, पद। 9. **करता**=करनेवाला; **हरता**=लेनेवाला। 10. **नसावे**=भाग जाते हैं, दूर हो जाते हैं।

गुरु आज्ञा से जो शिष करई। वह करतूत भक्ति फल देई॥ 19 ॥[1]
ताते पिरथम गुरु को खोजो। शब्द बतावें सो गुरु सोधो॥ 20 ॥[2]
अस गुरु सम कोइ और न आना। गुरू मिले फिर कहा कमाना॥ 21 ॥[3]
या ते मो मत निश्चय येही। गुरु बिन दूसर और न सेई॥ 22 ॥[4]
जाके हिरदे गुरु परतीती। काल कर्म वा से नहिं जीती॥ 23 ॥
सब के सिर पर उस का डंका। काहू की उसके नहिं संका॥ 24 ॥[5]
बड़े बड़े उधरें उस संगा। गुरुमुख है इन सब से चंगा॥ 25 ॥[6]
गुरुमुख की गति सब से भारी। गुरुमुख कोटिन जीव उबारी॥ 26 ॥
कहाँ लग महिमा गुरुमुख गाऊँ। कोई न जाने किस समझाऊँ॥ 27 ॥
जग में पड़ा काल का घेरा। जीव करें चौरासी फेरा॥ 28 ॥
जो चौरासी छूटन चावें। तो गुरुमुख सेवा चित लावें॥ 29 ॥
और काम सब देहिं बहाई। शब्द गुरु की करें कमाई॥ 30 ॥[7]
कोटिन जन्म रहे कोइ काशी। वेद पाठ और तीरथ बासी॥ 31 ॥
जप तप संजम बहु विधि करई। भेख बनावे विद्या पढ़ई॥ 32 ॥
पिछलों की जो धारें टेका। जिन को कभी आँख नहिं देखा॥ 33 ॥
पोथिन में सुनी उनकी महिमा। टेक बाँध मन सब का भरमा॥ 34 ॥[8]
अब इन को जो कोइ समझावे। टेक छोड़ते जिव सा जावे॥ 35 ॥[9]
कोई शिव और कोई विष्णु की। कोई राम और कोई कृष्ण की॥ 36 ॥
कोई देवी कोई गंगा जमना। कोई मूरत कोई चारों धामा॥ 37 ॥[10]
कोई मथुरा कोई टेक मुरारी। मदन मोहन कोई कुँज बिहारी॥ 38 ॥[11]
कोई गोकुल कोई बलभाचारी। कोई कंठी माला गल धारी॥ 39 ॥
कोई अचार कोई संध्या तर्पन। गया गायत्री करें समर्पन॥ 40 ॥

---

1. **करतूत**=करनी। 2. **सोधो**=अपनाओ, धारण करो। 3. **आना**=अन्य, दूसरा; **कहा कमाना**=हुक्म में रहना। 4. **मो...येही**=मेरी यह पक्की नसीहत है; **सेई**=सेवा यानी भक्ति; **गुरु...सेई**=सिवाय गुरु के किसी दूसरे की भक्ति न करो। 5. **डंका**=हुक्म; **संका**=परवाह, डर, चिन्ता। 6. **चंगा**=उत्तम। 7. **शब्द...कमाई**=अन्तर में शब्द गुरु की भक्ति में लगो। 8. **टेक**=आसरा। 9. **जिव सा जावे**=जान जाती मालूम होती है। 10. **चारों धामा**=चार धाम—बद्रीनाथ, द्वारिका, जगन्नाथ, रामेश्वरम्। 11. **मदन मोहन कुँज बिहारी**=भगवान कृष्ण के नाम।

कोई गीता कोई भागवत पढ़ते। कथा पुरान नेम से सुनते॥ 41॥
क्या दादू क्या नानकपंथी। क्या कबीर क्या पलटू संती॥ 42॥
सब मिल करते पिछली टेका। वक्त गुरू का खोज न नेका॥ 43॥[1]
बिन गुरु वक्त भक्ति नाहिं पावे। बिना भक्ति सतलोक न जावे॥ 44॥
यह कहना उन जीवन कारन। जिनके विरह अनुराग की धारन॥ 45॥[2]
विषई संसारी और रागी। इन को टेक न चहिये त्यागी॥ 46॥[3]
इन को टेक सहारा भारी। टेक बिना कुछ नाहिं अधारी॥ 47॥
उनको नहिं उपदेश हमारा। उनको जगत कामना मारा॥ 48॥
कोइ कुटुम्ब कोइ धन आधीना। कोइ कोइ मान प्रतिष्ठा लीना॥ 49॥
मारे डर के टेक न छोड़ें। वक्त गुरू में मन नहिं जोड़ें॥ 50॥
जो अनुरागी बिरही भाई। भक्ति गुरू की उन प्रति गाई॥ 51॥
वक्त गुरू जब लग नहिं मिलई। अनुरागी का काज न सरई॥ 52॥
परिथम सीढ़ी भक्ति गुरु की। दूसर सीढ़ी सुरत नाम की॥ 53॥
जब लग गुरु भक्ती नहीं पूरी। मन मनसा यह होयँ न चूरी॥ 54॥[4]
मन चूरे बिन सुरत न निर्मल। कैसे चढ़े और लगे शब्द चल॥ 55॥
गुरु भक्ति अस कैसे आवै। सतसंग कर गुरु सेवा धावै॥ 56॥
गुरु को पल पल माहिं रिझावै। गुरु प्रसन्नता नित्य कमावै॥ 57॥
गुरु जब इसको प्यारे होई। गुरु को प्यारा जब यह होई॥ 58॥
पूरन दया गुरू जब करईं। भक्ति पदारथ जबही मिलई॥ 59॥
यह भी जोग मेहर से होगा। दया मेहर बिन जानो धोखा॥ 60॥[5]

॥ दोहा ॥

क्या हिन्दू क्या मुसलमान, क्या ईसाई जैन।
गुरु भक्ती पूरन बिना, कोइ न पावे चैन॥ 61॥

---

1. **वक्त गुरू**=वर्तमान समय के गुरु, जीवित गुरु ; **नेका**=ज़रा भी, बिल्कुल। 2. **यह... कारन**=यह उपदेश उन जीवों के लिए है; **अनुराग**=प्रेम। 3. **रागी**=सांसारिक मोह या लगाव; **इन...त्यागी**=ऐसे लोग पुरानी टेक नहीं छोड़ते। 4. **मनसा**=कामनाएँ; **होयँ न चूरी**=नाश नहीं होती, वश में नहीं आती। 5. **जोग**=मिलाप।

परिथम सीढ़ी है गुरु भक्ति। गुरु भक्ति बिन काज न रत्ती॥ 62॥
और उपाव अनेकन करते। गुरु भक्ती को मुख्य न रखते॥ 63॥
यही कसर है सब के मत में। सिद्धान्त न पावें ओछे चित में॥ 64॥[1]

॥ दोहा॥

गुरु भक्ती दृढ़ के करो, पीछे और उपाय।
बिन गुरु भक्ति मोह जग, कभी न काटा जाय॥ 65॥
मोटे बंधन जगत के, गुरु भक्ती से काट।[2]
झीने बंधन चित्त के, कटें नाम परताप॥ 66॥[3]
मोटे जब लग जायँ नहिं, झीने कैसे जायँ।
ताते सबको चाहिये, नित गुरु भक्ति कमायँ॥ 67॥
एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्तिपद, चौथे में निज धाम॥ 68॥

अब आरत गुरु करूँ सँवारा। काया थाल मन दीपक बारा॥ 69॥
भक्ति जोत और भोग अनुरागा। दृष्टि जोड़ चित चरनन लागा॥ 70॥
यों आरत अब करी बनाई। सतगुरु पूरे रहें सहाई॥ 71॥

बिनती और प्रार्थना सतगुरु

बचन 29: शब्द 3

गुरू मैं गुनहगार अति भारी॥ टेक॥[4]
काम क्रोध और छल चतुराई। इन संग है मेरी यारी॥ 1॥
लोभ मोह अहंकार ईर्षा। मान बड़ाई धारी॥ 2॥
कपटी लम्पट झूठा हिंसक। अस अस पाप करा री॥ 3॥[5]

---

1. **सिद्धान्त**=सन्तमत का मूल उपदेश। 2. **मोटे...के**=संसार के मोह के स्थूल बन्धन। 3. **झीने बंधन**=मानसिक बन्धन, सूक्ष्म कर्म। 4. **गुनहगार**=पापी। 5. **लम्पट**=विषयी, **हिंसक**=घातक, जीवों को कष्ट पहुँचाने वाला।

दुख निरादर सहा न जाई। सुख आदर अभिलाष भरा री॥ 4 ॥[1]
बिंजन स्वाद अधिक रस चाहे। मन रसना यही चाट पड़ा री॥ 5 ॥[2]
धन और कामिन चित्त बसाये। पुत्र कलित्तर आस भरा री॥ 6 ॥[3]
नाना विधि दुख पावत पापी। तो भी यह करतूत न छाँड़ी॥ 7 ॥
यह मन दुष्ट काल का चेरा। नित भरमावत निडर हुआ री॥ 8 ॥
जब जब चोट पड़ी दुक्खन की। तब डर डर कर भजन करा री॥ 9 ॥
देखो दया मेहर सतगुरु की। उसी भजन को मान लिया री॥ 10 ॥
बुधि चतुराई बचन बनावट। हार जीत की चरचा धारी॥ 11 ॥
शेख़ी बहुत प्रीत नहिं अंतर। भोले भक्तन धोख दिया री॥ 12 ॥
नर नारी बहुतक बस कीन्हे। मान प्रतिष्ठा भोग किया री॥ 13 ॥[4]
गुरु संग प्रीत कपट कुछ डर की। कभी थोड़ी कभी बहुत किया री॥ 14 ॥
कहँ लग औगुन बरनूँ अपने। याद न आवत भूल गया री॥ 15 ॥
चोर चुग़ल इन्द्री रस माता। मतलब की सब बात विचारी॥ 16 ॥
ख़ुद मतलबी निर्दई मानी। बहुतन का अपमान किया री॥ 17 ॥
कोटिन पाप किये बहुतेरे। कहूं कहाँ लग वार न पारी॥ 18 ॥[5]
हे सतगुरु अब दया विचारो। क्या मुख ले मैं करूँ पुकारी॥ 19 ॥
नहिं परतीत प्रीत नहिं रंचक। कस कस मेरा करो उबारी॥ 20 ॥[6]
मो सा कुटिल और नहिं जग में। तुम सतगुरु मोहिं लेव सुधारी॥ 21 ॥
जतन करूँ तो बन नहिं आवत। हार हार अब सरन पड़ा री॥ 22 ॥
यह भी बात कही मैं मुँह से। मन से सरना कठिन भया री॥ 23 ॥
सरना लेना यह भी कहना। झूठ हुआ मुँह का कहना री॥ 24 ॥[7]
तुम्हरी गति मति तुमहीं जानो। जस तस मेरा करो उबारी॥ 25 ॥
मैं तो नीच निपट संशय रत। लगे न चरनन प्रीत करारी॥ 26 ॥

---

1. **अभिलाष**=अभिलाषा, इच्छा। 2. **बिंजन**=व्यंजन, पकवान। 3. **कलित्तर**=पत्नी, स्त्री। 4. **प्रतिष्ठा**=इज़्ज़त। 5. **वार न पारी**=जिनकी कोई गिनती या हिसाब नहीं है। 6. **रंचक**=थोड़ी-सी भी, ज़रा-सी, रत्ती भर। 7. **सरना लेना**=शरण लेना।

मेरे रोग असाध भरे हैं। तुम बिन को अस करे दवा री॥ 27॥
जब चाहो जब छिन में टारो। मेहर दया की मौज निरारी॥ 28॥[1]
बारम्बार करूँ मैं बिनती। और प्रार्थना करूँ तुम्हारी॥ 29॥
तुम बिन और न कोई दीखे। तुमहीं हो मेरे रखवारी॥ 30॥
बुरा बुरा फिर बुरा बुरा हूं। जैसा तैसा आन पड़ा री॥ 31॥
अब तो लाज तुम्हें है मेरी। राधास्वामी खेवो बला री॥ 32॥[2]

फ़र्याद और पुकार

बचन 33: शब्द 15

गुरू मोहिं अपना रूप दिखाओ॥ टेक॥
यह तो रूप धरा तुम सर्गुण। जीव उबार कराओ॥ 1॥[3]
रूप तुम्हारा अगम अपारा। सोई अब दरसाओ॥ 2॥
देखूँ रूप मगन होय बैठूँ। अभय दान दिलवाओ॥ 3॥[4]
यह भी रूप पियारा मो को। इस ही से उसको समझाओ॥ 4॥
बिन इस रूप काज नहिं होई। क्यों कर वाहि लखाओ॥ 5॥[5]
ता ते महिमा भारी इसकी। पर वह भी लखवाओ॥ 6॥
वह तो रूप सदा तुम धारो। या ते जीव जगाओ॥ 7॥
यह भी भेद सुना मैं तुम से। सुरत शब्द मारग नित गाओ॥ 8॥
शब्द रूप जो रूप तुम्हारा। वा में भी अब सुरत पठाओ॥ 9॥[6]
डरता रहूं मौत और दुख से। निर्भय कर अब मोहिं छुड़ाओ॥ 10॥
दीनदयाल जीव हितकारी। राधास्वामी काज बनाओ॥ 11॥

---

1. **निरारी**=निराली। 2. **खेवो**=दूर करो; **बला**=आफ़त, मुसीबत। 3. **सर्गुण**=सगुण, नर स्वरूप। 4. **अभय...दिलवाओ**=निर्भय कर दो। 5. **क्यों कर**=कैसे; **वाहि**=उसको, यानी अपने शब्द-रूप को। 6. **पठाओ**=बिठाओ, लगाओ।

आरती परम पुरुष राधास्वामी

बचन 6: शब्द 11

चरन गुरु हिरदे धार रही॥ टेक॥[1]
भौ की धार कठिन अति भारी। सो अब उलट बही॥ 1॥[2]
गुरु बिन कौन सम्हारे मन को। सुरत उमँग अब शब्द गही॥ 2॥[3]
कोटिन जन्म भरमते बीते। काहु मेरी आन न बाँह गही॥ 3॥[4]
अब के सतगुरु मिले दया कर। शब्द भेद उन सार दई॥ 4॥[5]
नौ को छोड़ द्वार दस लागी। अक्षर मथ नवनीत लई॥ 5॥[6]
नौका पार चली अब गुरु बल। अगम पदार्थ लीन सही॥ 6॥
क्या क्या कहूं कहन गति नाहीं। सुरत शब्द मिल एक हुई॥ 7॥
रहन गहन की बात नियारी। संत बिना कोइ नाहिं कही॥ 8॥
सुन्न शिखर चढ़ महासुन्न लख। भँवरगुफा पर ठाट ठई॥ 9॥[7]
सतनाम सत धाम निरख धुर। अलख अगम गति पाय गई॥ 10॥
सुरत निरत सँग चली अगाड़ी। राधास्वामी राधास्वामी चरन मई॥ 11॥[8]
अब आरत सिंगार सुधारी। प्रेम उमंग भी बहुत चही॥ 12॥
काल कला सब दूर बिडारी। दयाल सरन अब आन लई॥ 13॥[9]
पचरँग बाना पहन बिराजे। शोभा धारी आज नई॥ 14॥[10]
जीव काज निज भवन छोड़ कर। जमा दूध फिर होत दही॥ 15॥
मथ मथ माखन काढ़ निकारा। बिरले गुरुमुख चाख चखी॥ 16॥
राधास्वामी दीन अवाज़ा। चढ़ो अधर निज धाम पई॥ 17॥

---

1. **चरन गुरु**=गुरु चरण। 2. **भौ...बही**=भवजल की भयंकर धारा में फँसी हुई सुरत का रुख़ जो हमेशा से नीचे की ओर था, उलटकर ऊपर यानी रूहानी मण्डलों की तरफ़ मुड़ गया। 3. **सम्हारे**=सुधारे; **गही**=पकड़ी। 4. **काहु**=किसी ने भी। 5. **शब्द...दई**=सच्चे शब्द का भेद दे दिया। 6. **अक्षर**=दसम् द्वार; **नवनीत**=मक्खन यानी सार-वस्तु। 7. **ठाट ठई**=मुक़ाम किया। 8. **अगाड़ी**=आगे की ओर; **मई**=मिल गयी, समा गयी। 9. **दूर बिडारी**=दूर कर दी। 10. **पचरँग बाना**=पाँच तत्त्वों का लिबास यानी शरीर।

वर्णन महात्म-भक्ति का

बचन 12: शब्द 2

जगत भाव भय लज्जा छोड़ो। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 1॥
जाति बरन भय लज्जा त्यागो। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 2॥
शत्रु मित्र डर दूर हटाओ। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 3॥
मात पिता डर छोड़ गँवाओ। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 4॥
जोरू लड़के मत डर इनसे। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 5॥
भाई भतीजों का डर मत कर। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 6॥
सास ससुर डर मन से छोड़ो। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 7॥
बहू जमाई इन का डर तज। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 8॥
यार आशना सब डर छोड़ो। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 9॥[1]
नातेदार कुटुम्बी जितने। इनका डर तज कर भक्ति॥ 10॥
भक्ति अंग में जब तू बरते। छोड़ झिझक इन कर भक्ति॥ 11॥[2]
जो मूरख हैं मर्म न जानें। इनका डर क्या ? कर भक्ति॥ 12॥[3]
इनका डर कुछ मत कर मन में। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 13॥
भेष भेष को देख लजावे। सो भी कच्चा कर भक्ति॥ 14॥
जब लग सब से निडर न होवे। तब लग कच्चा कर भक्ति॥ 15॥
ज़िल्लत इज़्ज़त जो कुछ होवे। मौज विचारो कर भक्ति॥ 16॥[4]
गुरु का बल हिरदे धर अपने। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 17॥
यह बिगाड़ कुछ करें न तेरा। क्यों झिझके तू कर भक्ति॥ 18॥
बिना मौज गुरु कुछ नहिं होता। सुन प्यारे तू कर भक्ति॥ 19॥
तू कच्चा यह करे कचाई। और कहूं क्या कर भक्ति॥ 20॥
करते करते पक्का होगा। और उपाव न कर भक्ति॥ 21॥
कच्ची से पक्की होय इक दिन। छोड़ कपट तू कर भक्ति॥ 22॥

---

1. **आशना**=वाक़िफ़कार, सगे-सम्बन्धी। 2. **झिझक**=डर और लज्जा। 3. **मर्म**=भेद।
4. **ज़िल्लत**=निरादर।

कपट भक्ति कुछ काम न आवे। सच्ची कच्ची कर भक्ति॥ 23॥
राधास्वामी कहत सुनाई। जैसी बने तैसी कर भक्ति॥ 24॥

चितावनी, भाग 1

बचन 14: शब्द 12

जग में घोर अंधेरा भारी। तन में तम का भंडारा॥ 1॥[1]
स्वपन जाग्रत दोनों देखी। भूल भुलइयाँ धर मारा॥ 2॥[2]
जीव अजान भया परदेसी। देस बिसर गया निज सारा॥ 3॥[3]
फिरे भटकता खान खान में। जोनि जोनि बिच झख मारा॥ 4॥
दम दम दुखी कष्ट बहु भोगे। सुने कौन अब बहु हारा॥ 5॥
करे पुकार कारगर नाहीं। पड़े नर्क में जम धारा॥ 6॥[4]
भटक भटक नर देही पाई। इन्द्री मन मिल यहाँ मारा॥ 7॥[5]
सतगुरु संत कहें बहुतेरा। राह बतावें दस द्वारा॥ 8॥
बचन न माने कहन न पकड़े। फिर फिर भरमे नौ वारा॥ 9॥
फोकट धर्म पकड़ कर जूझे। बूझे न शब्द जुगत पारा॥ 10॥[6]
पानी मथे हाथ कुछ नाहीं। क्षीर मथन आलस भारा॥ 11॥[7]
जीव अभाग कहूं मैं क्या क्या। बाहर भरमे भौ जारा॥ 12॥[8]
अंतरमुख जो शब्द कमाई। ता में मन को नहिं गारा॥ 13॥[9]
वेद शास्त्र स्मृत और पुराना। पढ़ पढ़ सब पंडित हारा॥ 14॥
बिन सतगुरु और बिना शब्द सुर्त। कोइ न उतरे भौ पारा॥ 15॥
यही बात भाखी मैं चुन कर। अब तो मानो गुरु प्यारा॥ 16॥[10]
राधास्वामी कहा बुझाई। सुरत चढ़ाओ नभ द्वारा॥ 17॥[11]

---

1 **तम**=अन्धकार। 2. **भूल भुलइयाँ**=ऐसी जगह जहाँ से ख़ुद बाहर निकलना मुश्किल हो। यहाँ इशारा संसार और आवागमन रूपी भूल-भुलइयाँ की तरफ़ है। 3. **निज**=अपना; **सारा**=सार, असली। 4. **कारगर**=असर करनेवाली। 5. **यहाँ**=मानव जन्म में। 6. **फोकट**=व्यर्थ, निःसार यानी कर्मकाण्ड पर आधारित। 7. **क्षीर**=खीर, दूध। 8. **भौ जारा**=संसार रूपी जाल में। 9. **गारा**=गलाया, लगाया, लीन किया। 10. **भाखी**=कही। 11. **नभ द्वारा**=आन्तरिक आकाश का द्वार यानी तीसरा तिल।

चितावनी, भाग दूसरा

बचन 15: शब्द 16

जोड़ो री कोई सुरत नाम से॥ टेक॥
यह तन धन कुछ काम न आवे। पड़े लड़ाई जाम से॥ 1 ॥[1]
अब तो समय मिला अति सुन्दर। सीतल हो बच घाम से॥ 2 ॥[2]
सुमिरन कर सेवा कर सतगुरु। मनहि हटाओ काम से॥ 3 ॥[3]
मन इन्द्री कुछ बस कर राखो। पियो घूँट गुरु जाम से॥ 4 ॥[4]
लगे ठिकाना मिले मुक़ामा। छूटो मन के दाम से॥ 5 ॥[5]
भजन करो छोड़ो सब आलस। निकर चलो कलि ग्राम से॥ 6 ॥[6]
दम दम करो बेनती गुरु से। वही निकारें तन चाम से॥ 7 ॥[7]
और उपाव न ऐसा कोई। रटन करो सुबह शाम से॥ 8 ॥
प्रीत लाय नित करो साध संग। हट रहो जग के ख़ासो आम से॥ 9 ॥[8]
राधास्वामी कहैं सुनाई। लगो जाय सतनाम से॥ 10 ॥

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 9

तजो मन यह दुख सुख का धाम।
लगो तुम चढ़ कर अब सतनाम॥ 1 ॥
दिना चार तन संग बसेरा। फिर छूटे यह ग्राम॥ 2 ॥
धन दारा सुत नाती कहियन। यह नहिं आवें काम॥ 3 ॥[9]
स्वाँस दुधारा नित ही जारी। इक दिन खाली चाम॥ 4 ॥
मशक समान जान यह देही। बहती आठों जाम॥ 5 ॥

---

1. **जाम**=यमराज। 2. **घाम**=गर्मी, तपिश। 3. **मनहि**=मन को। 4. **जाम**=प्याला। 5. **दाम**=जाल। 6. **कलि ग्राम**=काल का देश। 7. **तन चाम**=चमड़े के बने शरीर से। 8. **ख़ासो आम**=ख़ास और आम यानी छोटे-बड़े सभी। 9. **दारा**=स्त्री; **कहियन**=कहलाते हैं।

तू अचेत ग़ाफ़िल हो रहता। सुने न मूल कलाम॥ 6 ॥[1]
माया नारि पड़ी तेरे पीछे। क्यों नहिं छोड़त काम॥ 7 ॥
बिन गुरु दया छुटो नहिं या से। भजो गुरू का नाम॥ 8 ॥
गुरु का ध्यान धरो हिरदे में। मन को राखो थाम॥ 9 ॥
वे दयाल तेरी दया विचारें। दम दम करें सहाम॥ 10 ॥[2]
छोड़ भोग क्यों रोग बिसावे। या में नहिं आराम॥ 11 ॥
गुरु का कहना मान पियारे। तो पावे विश्राम॥ 12 ॥
दुख तेरा सब दूर करेंगे। देंगे अचल मुक़ाम॥ 13 ॥
राधास्वामी कहत सुनाई। खोज करो निज नाम॥ 14 ॥

सुरत-संवाद

बचन 26: प्रश्न चौथा

यह कि सन्तों के निज स्थान और उसके मार्ग का भेद क्या है।

तब सूरत पूछे इक बाता। स्वामी देव भेद विख्याता॥ 154 ॥[3]

॥ उत्तर ॥

तब स्वामी ने बचन सुनाया। मारग का यों भेद लखाया॥ 155 ॥
पाँच नाम का सुमिरन करो। श्याम सेत में सूरत धरो॥ 156 ॥[4]
प्रथमे सुनो गगन में बाजा। घंटा संख छाँट धुन गाजा॥ 157 ॥
सहस कँवल दल जोत लखाई। बंकनाल में जाय समाई॥ 158 ॥
बंक पार त्रिकुटी में गई। ओंकार और राद धुन लई॥ 159 ॥[5]
आगे पहुंची सुन्न मँझार। ररंकार धुन सुनी पुकार॥ 160 ॥[6]

---

1. **मूल कलाम**=सार शब्द। 2. **सहाम**=सहायता। 3. **सूरत**=सुरत; **भेद विख्याता**=ये भेद विस्तारपूर्वक समझाओ। 4. **श्याम सेत**=तीसरा तिल। 5. **राद**=बादल की गरज। 6. **सुन्न मँझार**=सुन्न मण्डल के बीच में।

किंगरी और सारंगी सुनी। मान सरोवर चढ़ चढ़ गुनी॥ 161॥
आगे महासुन्न मैदाना। जहाँ चार धुन तिमिर समाना॥ 162॥[1]
भँवर गुफा ता ऊपर देखी। सोहं बंसी बजती पेखी॥ 163॥[2]
ता के परे धाम सत नामा। बीन बजे सतलोक ठिकाना॥ 164॥
सुनत सुरत फिर आगे चढ़ी। अलख लोक में जा कर धरी॥ 165॥
कोटिन अरब सूर उजियारा। अलख पुरुष छबि अद्‌भुत धारा॥ 166॥
तहँ से अगम लोक को चली। अगम पुरुष से जाकर मिली॥ 167॥
खरबन सूर चाँद परकाशा। धुन का वहाँ की अगम बिलासा॥ 168॥
धुन का वर्णन कैसे गाऊँ। जग में कोइ दृष्टान्त न पाऊँ॥ 169॥
ता के आगे रहत अनामी। निज घर संतन बरना स्वामी॥ 170॥[3]
सुन कर सूरत अति हरखानी। चलो सुवामी मैं सब जानी॥ 171॥
बिन सतगुरु कोइ भेद न पावे। सतगुरु सो यह देश लखावे॥ 172॥
सतगुरु की महिमा अति भारी। कोई न जाने पच पच हारी॥ 173॥
जा पर कृपा दृष्टि वे करें। वह जाने और निश्चय धरे॥ 174॥
कोइ कोइ जीव करें विश्वासा। कर प्रतीत वे धारें आसा॥ 175॥
संत बचन जो सच्चा मानें। इस बानी को सो सच जानें॥ 176॥

फ़र्याद और पुकार करना सतगुरु से

बचन 33: शब्द 10

तुम धुर से चल कर आये। अब क्यों ऐसी ढील लगाये॥ 1॥[4]
जल्दी से काज सँवारो। तुम दाता देर न धारो॥ 2॥
मैं आतुर तुम्हें पुकारूं। चित में कोइ और न धारूं॥ 3॥[5]
मेरा जीवन मूर अधारा। जस सीपी स्वाँत निहारा॥ 4॥[6]

---

1. **जहाँ...समाना**=जहाँ चार धुनें अन्धकार में छिपी हैं। 2. **पेखी**=परख लिया। 3. **बरना**=बयान किया। 4. **धुर**=धुर-धाम। 5. **आतुर**=व्याकुल। 6. **मूर अधारा**=असली सहारा, असली आधार।

अब मुक्ता नाम जमाओ। मेरे जी की आस पुराओ॥ 5 ॥[1]
मन सूरत अधर चढ़ाओ। अब के मेरी खेप निबाहो॥ 6 ॥[2]
भौसागर वार न पारा। डूबे सब उसकी धारा॥ 7 ॥
है मिथ्या झूठ पसारा। धोखे को सच सा धारा॥ 8 ॥
सतगुरु बिन धोख न जाई। बिन शब्द सुरत भरमाई॥ 9 ॥
या ते तुम सरना ताकूँ। सोवत मैं क्यों कर जागूँ॥ 10 ॥
बिन मेहर जतन सब थाके। मैं कर कर बहु विधि त्यागे॥ 11 ॥
बल पौरुष मोर न चाले। मैं पड़ी काल जंजाले॥ 12 ॥[3]
बिनती अब करूँ बनाई। तुम सतगुरु करो सहाई॥ 13 ॥
मैं दीन अधीन तुम्हारी। तुम बिन अब कौन सम्हारी॥ 14 ॥
कुछ करो दिलासा मेरी। भरमों की पड़ी अँधेरी॥ 15 ॥
परकाश करो घट भाना। मिटे भर्म तिमिर अज्ञाना॥ 16 ॥[4]
तुम तज अब किस पै जाऊँ। मैं कह कह तुम्हें सुनाऊँ॥ 17 ॥
जब चाहो तब ही देना। तुम बिन मोहिं किससे लेना॥ 18 ॥
मैं द्वारे पड़ी तुम्हारे। धीरज धर रहूं सम्हारे॥ 19 ॥
मन आतुर दुख न सहारे। उठ बारंबार पुकारे॥ 20 ॥
मैं सरन दयाल तुम्हारी। कर जल्दी लो निस्तारी॥ 21 ॥[5]
घर तुम्हरे कमी न कोई। कहिं भाग ओछ मेरा होई॥ 22 ॥[6]
यह भी सब तुम्हरे हाथा। तुम चाहो करो सनाथा॥ 23 ॥[7]
अब कहँ लग करूँ पुकारी। मैं हार हार अब हारी॥ 24 ॥
तुम दाता दीन दयाला। राधास्वामी करो निहाला॥ 25 ॥
मैं आरत कीन्ह अधारी। तुम राधास्वामी सब पर भारी॥ 26 ॥[8]

---

1. **मुक्ता**=मोती; **पुराओ**=पूरी करो। 2. **सूरत**=सुरत; **अधर**=ऊपर यानी अन्तर में; **खेप निबाहो**=बेड़ा पार लगा दो। 3. **पौरुष**=योग्यता, सामर्थ्य। 4. **भाना**=भानु का, सूर्य का। 5. **निस्तारी**=निस्तारा, पार उतारा, छुटकारा। 6. **ओछ**=ओछा, खोटा। 7. **सनाथा**=सनाथ, जिसका कोई स्वामी या मालिक हो। 8. **सब...भारी**=सबसे बड़े, सबसे शक्तिशाली।

फ़र्याद और पुकार

बचन 33: शब्द 21

दर्शन की प्यास घनेरी। चित तपन समाई॥ 1 ॥[1]
जग भोग रोग सम दीखें। सतसंग में सुरत लगाई॥ 2 ॥[2]
गति अगम तुम्हारी समझी। पर दरस बिन तिरपत नहिं आई॥ 3 ॥
गुरुमुखता बन नहिं पड़ती। फिर कैसे प्रत्यक्ष पाई॥ 4 ॥[3]
तुम गुप्त रहो जीवन से। संग सब के दूर न भाई॥ 5 ॥[4]
बिन किरपा सतगुरु पूरे। निज रूप न तुम दिखलाई॥ 6 ॥
अब तरसूँ तड़पूँ बहु विधि। तुम निकट न होत रसाई॥ 7 ॥[5]
हो समरथ दाता सब के। मुझ को भी खैंच बुलाई॥ 8 ॥
मैं कैसे देखूँ तुम को। कोई जतन न अब बन आई॥ 9 ॥
घट का पट खोलो प्यारे। यह बात न कुछ कठिनाई॥ 10 ॥[6]
तुम चाहो तो छिन में कर दो। नहिं जन्म जन्म भटकाई॥ 11 ॥
अब दरस दिखादो जल्दी। मैं रहूं नित्त मुरझाई॥ 12 ॥
अब दया विचारो ऐसी। मैं रहूं चरन लौ लाई॥ 13 ॥
तुम बिन कोई और न जानूं। तुमहीं से रहुं लिपटाई॥ 14 ॥
यह आरत अद्‌भुत गाई। सूरत मेरी शब्द समाई॥ 15 ॥[7]
राधास्वामी कहत सुनाई। मैं दासन दास कहाई॥ 16 ॥

फ़र्याद और पुकार

बचन 33: शब्द 16

देख पियारे मैं समझाऊँ। रूप हमारा न्यारा॥ 1 ॥
वह तो रूप लखे नहिं कोई। जब लग देउँ न सहारा॥ 2 ॥

---

1. **घनेरी**=बहुत ज़्यादा। 2. **सम**=समान। 3. **प्रत्यक्ष**=साक्षात् दर्शन। 4. **गुप्त**=छिपे हुए; **जीवन से**=जीवों से। 5. **रसाई**=पहुँच। 6. **पट**=पर्दा। 7. **अद्‌भुत**=आश्चर्यजनक, अनोखी; **सूरत**=सुरत।

करनी करो मार मन डालो। इन्द्री रोक दुआरा॥ 3 ॥[1]
सुरत चढ़ाय गगन पर धाओ। सुन्न शिखर के पारा॥ 4 ॥[2]
सत्त पुरुष का रूप दिखाऊँ। अलख अगम दर सारा॥ 5 ॥
ता के आगे राधास्वामी। वह निज रूप हमारा॥ 6 ॥
धीरज धरो करो सतसंगत। मेहर दया से लेउँ सुधारा॥ 7 ॥
वह तो रूप दिखा कर छोड़ूँ। तुम जल्दी क्यों करो पुकारा॥ 8 ॥
तुम्हरी चिंता मैं मन धारी। तुम अचिंत रह धरो पियारा॥ 9 ॥
संशय छोड़ करो दृढ़ प्रीती। और परतीत सँवारा॥ 10 ॥[3]
यह करनी मैं आप कराऊँ। और पहुँचाऊँ धुर दरबारा॥ 11 ॥
राधास्वामी कहत सुनाई। जब जब जैसी मौज विचारा॥ 12 ॥[4]

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 10

देखो सब जग जात बहा॥ टेक॥
देख देख मैं गति या जग की। बार बार यों वर्ण कहा॥ 1 ॥[5]
चारों जुग चौरासी भोगी। अति दुख पाया नर्क रहा॥ 2 ॥
जन्म जन्म दुख पावत बीते। एक छिन कहीं न चैन लहा॥ 3 ॥[6]
पाप पुन्य बस बिपता भोगी। नहिं सतगुरु का चरन गहा॥ 4 ॥
अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो कर्म दहा॥ 5 ॥[7]
अब की चूक माफ़ नहिं होगी। नाना विधि के कष्ट सहा॥ 6 ॥
ग़फ़लत छोड़ भुलाओ जग को। नाम अमल अब घोट पिया॥ 7 ॥
मन से डरो करो गुरु सेवा। राधास्वामी भेद दिया॥ 8 ॥

---

1. **इन्द्री...दुआरा**=इन्द्रियों को वश में करके। 2. **सुन्न शिखर**=सुन्न मण्डल यानी दसम् द्वार की चोटी। 3. **सँवारा**=सँभालो, करो। 4. **जब...विचारा**=सबकुछ मौज के अनुसार होता है। 5. **वर्ण कहा**=बयान किया; वर्णन किया। 6. **लहा**=मिला। 7. **दहा**=जल जायें।

महिमा शब्द-स्वरूप सतगुरु की

बचन 9: शब्द 1

धन्य धन्य धन धन्य पियारे। क्या कहुं महिमा शब्द की॥ 1॥
जो परचे हैं शब्द से। सो जानें महिमा शब्द की॥ 2॥[1]
छिन छिन रक्षा हो रही। क्या उपमा कहुं मैं शब्द की॥ 3॥
बिन शब्द फिरें भरमातियाँ। नहिं जानी गति मति शब्द की॥ 4॥
जिन गुरु पाया शब्द का। और प्रीति करी जिन शब्द की॥ 5॥[2]
बड़ भागी वह जीव हैं। जो करें कमाई शब्द की॥ 6॥
बिना शब्द मन बस नहीं। तुम सुरत करो अब शब्द की॥ 7॥
वह क्यों आये इस जगत में। जिन मिली न पूँजी शब्द की॥ 8॥
धुन घट में हर दम हो रही। क्यों सुने न बानी शब्द की॥ 9॥
तू बैठ अकेला ध्यान धर। तो मिले निशानी शब्द की॥ 10॥
तज आलस निंद्रा काहिली। तू लगन लगा ले शब्द की॥ 11॥[3]
पाँच शब्द घट में बजें। यह निर्णय कर ले शब्द की॥ 12॥
गुरु ज्ञान बताया शब्द का। तू होजा ध्यानी शब्द की॥ 13॥
मैं शब्द शब्द बहुतक कहा। कोई न माने शब्द की॥ 14॥
जन्म अकारथ खो दिया। जो चढ़े न घाटी शब्द की॥ 15॥[4]
राधास्वामी कह कह चुप हुए। बिन भाग न धारा शब्द की॥ 16॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 18

धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना॥ 1॥
काम अपना करो जाई। पराये काम नहिं फँसना॥ 2॥

---

1. **जो परचे...से**=जिन्होंने सुरत को शब्द से जोड़ लिया है। 2. **जिन...का**=जिनको शब्द का भेद देनेवाला गुरु मिल गया है। 3. **काहिली**=सुस्ती, ग़फ़लत। 4. **अकारथ**=बेकार, व्यर्थ, फ़ुज़ूल।

नाम गुरु का सम्हाले चल। यही है दाम गँठ बँधना॥ 3॥
जगत का रंग सब मैला। धुला ले मान यह कहना॥ 4॥
भोग संसार कोइ दिन के। सहज में त्यागते चलना॥ 5॥
सरन सतगुरु गहो दृढ़ कर। करो यह काज पिल रहना॥ 6॥[1]
सुरत मन थाम अब घट में। पकड़ धुन ध्यान धर गगना॥ 7॥
फँसे तुम जाल में भारी। बिना इस जुक्ति नहिं खुलना॥ 8॥
गुरु अब दया कर कहते। मान यह बात चित धरना॥ 9॥
भटक में क्यों उमर खोते। कहीं नहिं ठीक तुम लगना॥ 10॥
बसो तुम आय नैनन में। सिमट कर एक यहँ होना॥ 11॥
दुई यहँ दूर हो जावे। दृष्टि जोत में धरना॥ 12॥
श्याम तज सेत को गहना। सुरत को तान धुन सुनना॥ 13॥[2]
बंक के द्वार धस बैठो। तिरकुटी जाय कर लेना॥ 14॥[3]
सुन्न चढ़ जा धसो भाई। सुरत से मानसर न्हाना॥ 15॥[4]
महासुन चौक अँधियारा। वहाँ से जा गुफा बसना॥ 16॥[5]
लोक चौथे चलो सज के। गहो वहँ जाय धुन बीना॥ 17॥[6]
अलख और अगम के पारा। अजब इक महल दिखलाना॥ 18॥
वहीं राधास्वामी से मिलना। हुआ मन आज अति मगना॥ 19॥

महिमा शब्द

बचन 9: शब्द 9

धुन सुन कर मन समझाई॥ टेक॥
कोटि जतन से यह नहिं माने। धुन सुन कर मन समझाई॥ 1॥
जोगी जुक्ति कमावें अपनी। ज्ञानी ज्ञान कराई॥ 2॥

---

1. **पिल रहना**=पूरी तरह लगना, दृढ़तापूर्वक करना। 2. **श्याम**=काला; **सेत**=सफ़ेद।
3. **बंक**=बंकनाल। 4. **सुन्न**=सुन्न मण्डल, दसम् द्वार; **मानसर**=मानसरोवर, अमृतसर।
5. **गुफा**=भँवरगुफ़ा। 6. **गहो**=ग्रहण करो, पकड़ो।

तपसी तप कर थाक रहे हैं। जती रहे जत लाई॥ 3 ॥[1]
ध्यानी ध्यान मानसी लावें। वह भी धोक्खा खाई॥ 4 ॥[2]
पंडित पढ़ पढ़ वेद बखानें। विद्या बल सब जाई॥ 5 ॥
बुद्धि चतुरता काम न आवे। आलिम रहे पछताई॥ 6 ॥[3]
और अमल का दख़ल नहीं है। अमल शब्द लौ लाई॥ 7 ॥[4]
गुरू मिले जब धुन का भेदी। शिष्य विरह धर आई॥ 8 ॥
सुरत शब्द की होय कमाई। तब मन कुछ ठहराई॥ 9 ॥
हिर्स हवस से हाथ न आवे। तन मन देव चढ़ाई॥ 10 ॥[5]
बुल्हवसी और कपटी जन को। नेक न धुन पतियाई॥ 11 ॥[6]
यह धुन है धुर लोक अधर की। कोइ पकड़ें संत सिपाही॥ 12 ॥[7]
मन को मार करें असवारी। गगन कोट वह लेयँ घिराई॥ 13 ॥[8]
खाई सुन्न पार मैदाना। महासुन्न नाका परमाना॥ 14 ॥[9]
भँवरगुफा का फाटक तोड़ा। शीश महल सतगुरु दिखलाई॥ 15 ॥
अद्‌भुत लीला अजब वहाँ की। किरन किरन सूरज दरसाई॥ 16 ॥
सूरज सूरज जोत निरारी। चन्द्र चन्द्र कोटिन छबि छाई॥ 17 ॥
घट अकाश औघट परकाशा। लख अकाश कोटिन परसाई॥ 18 ॥[10]
यह लीला कुछ अजब पेच की। उलट पलट कोइ गुरुमुख पाई॥ 19 ॥[11]

---

1. **जती**=इन्द्रियों का दमन करनेवाले; **जत लाई**=इन्द्रियों के दमन द्वारा प्रभु को प्राप्त करने में सफ़ल न हो सके। 2. **ध्यान मानसी**=मानसिक ध्यान यानी मन ही मन किया गया ध्यान। 3. **आलिम**=विद्वान। 4. **अमल**=साधना या अभ्यास; **अमल शब्द**=शब्द-अभ्यास। 5. **हिर्स हवस से**=देखा-देखी पैदा हुई इच्छा, कामना। 6. **बुल्हवसी**=देखा-देखी इच्छा या कामना करने वाले, लालची; **नेक**=बिल्कुल, ज़रा भी; **पतियाई**=परतीति, भरोसा। 7. **धुर...की**=सबसे ऊँचे आन्तरिक मण्डल की; **कोइ...सिपाही**=मन-इन्द्रियों से लड़ाई जीतने वाला कोई सूरमा अभ्यासी ही इसे पकड़ सकता है। 8. **गगन कोट**=आकाश रूपी किला। 9. **सुन्न**=सुन्न स्थान, दसम् द्वार; **नाका**=हद, सीमा। 10. **परसाई**=दिखायी। 11. **पेच की**=किस्म की, प्रकार की; **उलट पलट**=ध्यान को संसार से उलटा कर अन्तर में लगाना।

कहाँ लग बरनूँ भेद अगाधा। जो कोई लावे सुन्न समाधा॥ 20 ॥[1]
समझ बूझ गूँगे गुड़ खाई।[2]
अकथ अकह की बात निराली। क्योंकर कहूँ बनाई॥ 21 ॥
राधास्वामी राज़ छिपे को। परगट कर सरसाई॥ 22 ॥[3]

निर्णय शब्द अथवा नाम का

बचन 10: शब्द 1

रेखता

नाम निर्णय करूँ भाई। दुधा विधि भेद बतलाई॥ 1 ॥[4]
वर्ण धुनआत्मक गाऊँ। दोऊ का भेद दरसाऊँ॥ 2 ॥[5]
वर्ण कहु चाहे कहु अक्षर। जो बोला जाय रसना कर॥ 3 ॥[6]
लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया॥ 4 ॥
लखायक है यही धुन का। बिना गुरु फल नहीं किनका॥ 5 ॥[7]
मिलें गुरु नाम धुन भेदी। सुरत धुन धुनी संग बेधी॥ 6 ॥[8]
एकता नाम और नामी। करावें जो मिलें स्वामी॥ 7 ॥
नाम वर्णात्मक गाया। नामी धुनआत्मक पाया॥ 8 ॥
वर्ण से सुरत मन माँजो। बहुरि चढ़ गगन धुन साधो॥ 9 ॥
धुनी धुन एक कर जानो। सुरत से शब्द पहिचानो॥ 10 ॥
शब्द और सुरत भये एका। नाम धुनआत्मक देखा॥ 11 ॥[9]
गुरू बिन और बिना करनी। मिले कस कहो यह रहनी॥ 12 ॥[10]
चाह अनुराग जिस होई। भाग बड़ गुरुमुखी सोई॥ 13 ॥[11]

---

1. **अगाधा**=अथाह। 2. **गूँगे...खाई**=जो अनुभव बयान न किया जा सके। 3. **सरसाई**=दिखलाया। 4. **दुधा**=दो प्रकार का। 5. **वर्ण**=वर्णात्मक। 6. **रसना कर**=ज़बान द्वारा। 7. **किनका**=कण-मात्र, बहुत थोड़ा। 8. **सुरत...बेधी**=शब्द-धुन ने सुरत को परमात्मा से मिला दिया। 9. **देखा**=अनुभव किया। 10. **करनी**=शब्द का अभ्यास; **रहनी**=अवस्था। 11. **अनुराग**=प्रेम।

नाम नामी दोऊ गाया। अभेदी भेद समझाया॥ 14 ॥[1]
गुरू की मौज में सब कुछ। जिसे चाहें करें गुरुमुख॥ 15 ॥
गुरुमुख होय तन धन से। करे फिर प्रीत निज मन से॥ 16 ॥
लगे तब जाय सुन धुन से। गये तब तीन गुन तन से॥ 17 ॥[2]
वर्ण धुन भेद दोउ बरना। वाच और लक्ष इन कहना॥ 18 ॥[3]
वाच वर्णात्मक जानो। लक्ष धुन धुनी पहिचानो॥ 19 ॥
वर्ण में भेष जग भूला। मर्म धुन संत कोइ तोला॥ 20 ॥[4]
वर्ण जप जप पचें भेषी। मिले कुछ फल नहीं नेकी॥ 21 ॥[5]
भेद धुन का नहीं पाया। नाम फल हाथ नहिं आया॥ 22 ॥
जपें नित सहस और लाखा। खुले नहिं नेक उन आँखा॥ 23 ॥[6]
तिमर संसार नहिं जावे। मोह मद काम भरमावे॥ 24 ॥[7]
धुनी धुन भेद नहिं चीन्हा। सुरत और शब्द नहिं लीन्हा॥ 25 ॥
मिला नहिं गुरू धुन भेदी। लखावे धुन मिटे खेदी॥ 26 ॥[8]
काल ने बुद्धि उन छेदी। मुफ़्त नर देह उन दे दी॥ 27 ॥[9]
दया कर संत गोहरावें। ज़रा नहिं चित्त में लावें॥ 28 ॥[10]
पाँच धुन भेद बतलावें। सुरत की राह दिखलावें॥ 29 ॥
धुनों के नाम दरसावें। रूप अस्थान कह गावें॥ 30 ॥
सुरत का जोग लखवावें। जीव नहिं कहन उन मानें॥ 31 ॥
सुरत ले गगन चढ़वावें। पिंड में सार बतलावें॥ 32 ॥
चढ़े ब्रहमंड तब परखे। सहसदल मध्य कुछ निरखे॥ 33 ॥
बंक चढ़ तिरकुटी धावे। सुन्न दस द्वार गति पावे॥ 34 ॥
महासुन जाय हरखानी। भँवर में जा सुनी बानी॥ 35 ॥

1. **अभेदी...समझाया**=यह भेद समझाया कि नाम और नामी दो होते हुए भी एक हैं। 2. **सुन धुन**=सुन्न मण्डल की शब्द-धुन; **तीन गुन**=रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण। 3. **वाच**=प्रकट; **लक्ष**=गुप्त। 4. **मर्म**=भेद; **तोला**=जाँचा, परखा। 5. **नेकी**=ज़रा भी। 6. **सहस**=हज़ार; **लाखा**=लाख; **नेक**=ज़रा भी। 7. **तिमर**=तिमिर, अन्धेरा; **मद**=अहं। 8. **धुन भेदी**=शब्द धुन का भेद जानने वाला; **खेदी**=ख़ेद, दुःख। 9. **छेदी**=बिगाड़ दी। 10. **गोहरावें**=पुकार कर कहते हैं।

अमर पद मूल जा देखा। बीन धुन का मिला लेखा॥ 36॥
अलख और अगम भी पेखा। नाम का मूल अब देखा॥ 37॥
कहूं क्या खोल राधास्वामी। सैन यह समझ परमानी॥ 38॥

महिमा सतगुरु

बचन 8: शब्द 10

प्रेमी सुनो प्रेम की बात॥ टेक॥
सेवा करो प्रेम से गुरु की। और दर्शन पर बल बल जात॥ 1॥[1]
बचन प्यारे गुरु के ऐसे। जस माता सुत तोतरि बात॥ 2॥[2]
जस कामी को कामिन प्यारी। अस गुरुमुख को गुरु का गात॥ 3॥[3]
खाते पीते चलते फिरते। सोवत जागत बिसर न जात॥ 4॥
खटकत रहे भाल ज्यों हियरे। दरदी के ज्यों दर्द समात॥ 5॥[4]
ऐसी लगन गुरू संग जां की। वह गुरुमुख परमारथ पात॥ 6॥[5]
जब लग गुरु प्यारे नहिं ऐसे। तब लग हिरसी जानो जात॥ 7॥[6]
मनमुख फिरे किसी का नाहीं। कहो क्योंकर परमारथ पात॥ 8॥
राधास्वामी कहत सुनाई। अब सतगुरु का पकड़ो हाथ॥ 9॥

वर्णन महात्म-भक्ति का

बचन 12: शब्द 1

भक्ति महातम सुन मेरे भाई। सब संतन ने किया बखान॥ 1॥[7]
यही मता गुरु-मत पहिचानो। और मते सब झूठ भुलान॥ 2॥

---

1. **बल...जात**=क़ुर्बान हो जाओ। 2. **जस...बात**=जैसे माता अपने बच्चे की तोतली बातों पर ख़ुश होती है, क़ुर्बान जाती है। 3. **गात**=स्वरूप। 4. **खटकत...हियरे**=भाले की चुभन की तरह खटकता रहता है। 5. **पात**=प्राप्त करता है। 6. **हिरसी**=वह व्यक्ति जिसके प्यार के पीछे सांसारिक तृष्णाएँ छिपी हों। 7. **महातम**=बड़ाई, महत्ता, महिमा।

बिना भक्ति थोथे सब मानो। छिलका है मींगी की हान॥ 3 ॥[1]
ताते भक्ति दृढ़ कर पकड़ो। और सयानप तजो निदान॥ 4 ॥
भक्ति इश्क़ प्रेम ये तीनों। नाम भेद है रूप समान॥ 5 ॥
भक्ति भाव यह गुरु-मत जानो। और मते सब मन मत ठान॥ 6 ॥
प्रेम रूप आतम परमातम। भक्ति रूप सतनाम बखान॥ 7 ॥
भक्ति और भगवंत एक हैं। प्रेम रूप तू सतगुरु जान॥ 8 ॥
प्रेम रूप तेरा भी भाई। सब जीवन को यों ही मान॥ 9 ॥
एक भेद यामें पहिचानो। कहीं बुंद कहीं लहर समान॥ 10 ॥
कहीं सिंध सम करे प्रकाशा। कहीं सोत और पोत कहान॥ 11 ॥[2]
कहीं इच्छा परबल होय बैठी। कहीं हुई माया बलवान॥ 12 ॥
एक ठिकाने माया थोड़ी। सिन्ध प्रताप शुद्ध हुई आन॥ 13 ॥[3]
सोत पोत में माया नाहीं। वहाँ प्रेम ही प्रेम रहान॥ 14 ॥[4]
वह भंडार प्रेम का भारी। जाका आदि न अंत दिखान॥ 15 ॥
बिना संत पहुंचे नहिं कोई। सतगुरु संत किया अस्थान॥ 16 ॥
प्रेम भक्ति की ऐसी महिमा। ग्रहण करो यह अमृत खान॥ 17 ॥
तांते पहिले करो भक्ति गुरु। पीछे पाओ नाम निशान॥ 18 ॥
आरत कर कर गुरू रिझाओ। पाओ उन से प्रेम निधान॥ 19 ॥
राधास्वामी कहत सुनाई। मिला तुझे अब भक्ति दान॥ 20 ॥

उपदेश शब्द-अभ्यास

बचन 20: शब्द 5

भजन कर मगन रहो मन में॥ टेक॥
जो जो चोर भजन के प्रानी। सो सो दुख सहें॥ 1 ॥

---

1. **मींगी...हान**=गिरी खो गयी है। 2. **सिंध**=समुद्र; **सोत...पोत**=स्रोत या भण्डार। 3. **एक... आन**=उच्च रूहानी मण्डलों (दसम् द्वार और भँवरगुफ़ा) में माया तो है मगर प्रेम के समुद्र में मिली होने के कारण उसका प्रभाव नाममात्र है। 4. **सोत पोत**=स्रोत, निज भण्डार यानी अनामी।

आलस नींद सतावे उनको। नित नित भर्म बहें॥ 2॥
काम क्रोध के धक्के खावें। लोभ नदी में डूब मरें॥ 3॥
गुरु संग प्रीत करें नहिं पूरी। नाम न डोर गहें॥ 4॥
तृष्णा अग्नि जलें निस बासर। नर्कन माहिं पड़े॥ 5॥[1]
संतन साथ विरोध बढ़ावें। उलटी बात कहें॥ 6॥
सतसंग महिमा मूल न जानें। भेड़ चाल में नित्त पचें॥ 7॥
धन और मान भोग रस चाहें। रोग सोग में आन फसें॥ 8॥
भाग हीन मत हीन पराणी। नर देही बरबाद करें॥ 9॥
ऐसी दशा माहिं नित बरतें। हम क्योंकर समझाय सकें॥ 10॥
साध गुरू का कहा न मानें। मनमत अपनी ठानठनें॥ 11॥[2]
खर कूकर सम वे नर जानो। बिरथा उदर भरें॥ 12॥[3]
जमपुर जाय बहुत पछतावें। वहाँ फिर उनकी कौन सुने॥ 13॥
जन्म जन्म चौरासी भोगें। यह शरीर फिर नाहिं धरें॥ 14॥
दुर्लभ देह मिली यह औसर। ऐसी कर जो बात बने॥ 15॥
सतगुरु सरन पकड़ ले अबकी। तो सब काज सरें॥ 16॥[4]
हित का बचन दया कर बोलें। तू नहिं कान सुने॥ 17॥[5]
अंधा बहरा फिरे जगत में। कुल कुटुम्ब तेरी हानि करें॥ 18॥
कर सतसंग मान यह कहना। कान आँख फिर दोऊ खुलें॥ 19॥
देखे घट में जोत उजाला। सुने गगन में अजब धुनें॥ 20॥
सुन्न जाय तिरबेनी न्हावे। हीरे मोती लाल चुने॥ 21॥[6]
महासुन्न में सुरत चढ़ावे। तब सतगुरु तेरे संग चलें॥ 22॥
भँवरगुफा की बंसी बाजी। महाकाल भी सीस धुने॥ 23॥[7]

---

1. **निस बासर**=दिन-रात। 2. **मनमत...ठानठनें**=अपने मन की मति पर अड़े रहते हैं। 3. **खर**=गधा; **कूकर**=कुत्ता; **उदर**=पेट। 4. **सरें**=बनें, पूरे हों। 5. **हित**=भला। 6. **सुन्न**=सुन्न मण्डल, दसम् द्वार; **तिरबेनी**=त्रिवेणी, मानसरोवर। 7. **सीस धुने**=सिर पटकता है।

अब चढ़ गई पुरुष दरबारा। वहाँ जाय धुन बीन गुने॥ 24 ॥[1]
ले दुरबीन चली आगे को। अलख अगम का भेद भने॥ 25 ॥[2]
यहाँ से आगे चली उमँग से। तब राधास्वामी चरन मिलें॥ 26 ॥
मिला अधार पार घर पाया। लीला वहाँ की कहे न बने॥ 27 ॥

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 3

मत देख पराये औगुन। क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन॥ 1 ॥
पर जीव सतावे खिन खिन। छोड़ अपने औगुन गिन गिन॥ 2 ॥[3]
मक्खी सम मत कर भिन भिन। नहिं खावे चोट तू छिन छिन॥ 3 ॥[4]
देखा कर सब के तू गुन। सुख मिले बहुत तोहि पुन पुन॥ 4 ॥[5]
मैं कहूं तोहि अब गुन गुन। तू मान बचन मेरा सुन सुन॥ 5 ॥[6]
गति गाई मैं यह हंसन। यों वर्ण सुनाई संतन॥ 6 ॥
अब कान धरो इन बचनन। नहिं रोवोगे सिर धुन धुन॥ 7 ॥
यह बात कही मैं चुन चुन। कर राधास्वामी चरन स्पर्शन॥ 8 ॥[7]

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 15

मन रे क्यों गुमान अब करना॥ टेक॥[8]
तन तो तेरा ख़ाक मिलेगा। चौरासी जा पड़ना॥ 1 ॥
दीन ग़रीबी चित में धरना। काम क्रोध से बचना॥ 2 ॥

---

1. **गुने**=परखे। 2. **दुरबीन**=दूर तक देखने की शक्ति; **भने**=प्रकट करती है। 3. **पर**=पराये; **खिन खिन**=पल-पल, बार-बार। 4. **छिन छिन**=क्षण-क्षण, बार-बार। 5. **पुन पुन**=बार-बार। 6. **गुन गुन**=विचार करके। 7. **चरन स्पर्शन**=चरणों को स्पर्श कर। 8. **गुमान**=अहंकार।

प्रीत प्रतीत गुरू की करना। नाम रसायन घट में जरना॥ 3 ॥[1]
मन मलीन के कहे न चलना। गुरु का वचन हिये विच रखना॥ 4 ॥
यह मतिमंद गहे नहिं सरना। लोभ बढ़ाय उदर को भरना॥ 5 ॥[2]
तुम मानो मत इसका कहना। इसके संग जगत बिच गिरना॥ 6 ॥
इस मूरख को समझ पकड़ना। गुरु के चरन कभी न विसरना॥ 7 ॥
गुरु का रूप नैन में धरना। सुरत शब्द से नभ पर चढ़ना॥ 8 ॥[3]
राधास्वामी नाम सुमिरना। जो वह कहें चित में धरना॥ 9 ॥

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 5

मित्र तेरा कोई नहीं संगियन में। पड़ा क्यों सोवे इन ठगियन में॥ 1 ॥
चेत कर प्रीत करो सतसंग में। गुरू फिर रंग दें नाम अरँग में॥ 2 ॥[4]
धन सम्पत तेरे काम न आवे। छोड़ चलो यह छिन में॥ 3 ॥
आगे रैन अंधेरी भारी। काज करो कुछ दिन में॥ 4 ॥
यह देही फिर हाथ न आवे। फिरो चौरासी बन में॥ 5 ॥
गुरु सेवा कर गुरू रिझाओ। आओ तुम इस ढंग में॥ 6 ॥
गुरु बिन तेरा और न कोई। धार बचन यह मन में॥ 7 ॥
जगत जाल में फँसो न भाई। निस दिन रहो भजन में॥ 8 ॥
साध गुरू का कहना मानो। रहो उदास जगत में॥ 9 ॥
छल वल छोड़ो और चतुराई। क्यों तुम पड़ो कुगति में॥ 10 ॥[5]
सुमिरन करो गुरू को सेवो। चल रहो आज गगन में॥ 11 ॥
कल की ख़बर काल फिर लेगा। वहाँ तुम जलो अगिन में॥ 12 ॥

---

1. **जरना**=जज़्ब करना, हज़्म करना। 2. **गहे नहिं**=नहीं पकड़ता; **सरना**=शरण; **उदर**=पेट। 3. **नभ**=आकाश। 4. **अरँग**=बिना रंग यानी मिलावट के भाव विशुद्ध, निर्मल। 5. **कुगति**=खोटी यानी बुरी चाल।

अबही समझ देर मत करियो। ना जानूँ क्या होय इस पन में ॥ 13 ॥[1]
यों समझाय कहें राधास्वामी। मानो एक बचन में ॥ 14 ॥

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 13

मिली नर देह यह तुम को। बनाओ काज कुछ अपना ॥ 1 ॥
पचो मत आय इस जग में। जानियो रैन का सुपना ॥ 2 ॥[2]
देह और ग्रेह सब झूठा। भर्म में काहे को खपना ॥ 3 ॥[3]
जीव सब लोभ में भूले। काल से कोइ नहीं बचना ॥ 4 ॥
तृष्णा अग्नि जग जारा। पड़ा सब जीव को तपना ॥ 5 ॥
नहीं कोइ राह बचने की। जले सब नर्क की अगिना ॥ 6 ॥
जलेंगे आग में निसदिन। बहुरि भोगें जनम मरना ॥ 7 ॥[4]
भटकते वे फिरें खानी। नहीं कुछ ठीक उन लगना ॥ 8 ॥[5]
कहूं क्या दुख वह भोगें। कहन में आ नहीं सकना ॥ 9 ॥
दया कर संत और सतगुरु। बतावें नाम का जपना ॥ 10 ॥
न माने जुक्ति यह उनकी। सुरत और शब्द का गहना ॥ 11 ॥[6]
बिना सतगुरु बिना करनी। छुटे नहिं खान का फिरना ॥ 12 ॥
कहाँ लग मैं कहूँ उनको। कोई नहिं मानता कहना ॥ 13 ॥
हुये मनमुख फिरें दुख में। वचन गुरु का नहीं माना ॥ 14 ॥
पुजावें आप को जग में। गुरू की सेव नहिं करना ॥ 15 ॥
फ़िकर नहिं जीव का अपने। पड़ेगा नर्क में फुकना ॥ 16 ॥
समझ कर धार लो मन में। कहें राधास्वामी निज बचना ॥ 17 ॥

---

1. **पन**=उस हालत में, तो फिर। 2. **पचो मत**=लिप्त न हो, मत उलझो। 3. **ग्रेह**=गृह, घर, संसार। 4. **बहुरि**=फिर, बार-बार। 5. **ठीक**=ठिकाना। 6. **गहना**=ग्रहण करना, पकड़ना।

चितावनी, भाग 3

उपदेश सतगुरु-भक्ति का

बचन 16: शब्द 1

यह तन दुर्लभ तुमने पाया। कोटि जन्म भटका जब खाया॥ 1॥
अब या को बिरथा मत खोवो। चेतो छिन छिन भक्ति कमावो॥ 2॥
भक्ति करो तो गुरु की करना। मारग शब्द गुरु से लेना॥ 3॥
शब्द मारगी गुरू न होवे। तो झूठी गुरुवाई लेवे॥ 4॥
गुरू सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥ 5॥
शब्द कहा मैं गगन शिखर का। शब्द कहा मैं सुन्न शहर का॥ 6॥[1]
शब्द कहा मैं भँवर डगर का। शब्द कहा मैं अगम नगर का॥ 7॥[2]
गुरु पहिचान ख़ूब मैं गाई। धोखा या में कुछ न रहाई॥ 8॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा॥ 9॥
और पहिचान करो मत कोई। लक्ष अलक्ष न देखो सोई॥ 10॥[3]
शब्द भेद लेकर तुम उनसे। शब्द कमाओ तुम तन मन से॥ 11॥
अपने जीव की कुछ दया पालो। चौरासी का फेर बचा लो॥ 12॥[4]
नहिं नर्कन में अति दुख पइहो। अग्नि कुंड में छिन छिन दहिहो॥ 13॥[5]
यह सुख चार दिनों का भाई। फिर दुख सदा होय दुखदाई॥ 14॥
बार बार मैं कहूँ चिताई। दया तुम्हारी मोहिं सताई॥ 15॥
मेरे मन करुणा अस आई। चेतो तुम गुरु होयँ सहाई॥ 16॥[6]
बिन गुरु और न पूजो कोई। दर्शन कर गुरु पद नित सेई॥ 17॥[7]
गुरु पूजा में सब की पूजा। जस समुद्र सब नदी समाजा॥ 18॥
देवी देवा ईश महेशा। सूरज शेष और गौर गनेशा॥ 19॥

---

1. **गगन शिखर**=त्रिकुटी का शिखर; **सुन्न शहर**= दसम् द्वार। 2. **भँवर डगर**=भँवरगुफ़ा; **अगम नगर**=अगम लोक। 3. **लक्ष अलक्ष**=गुण, अवगुण। 4. **दया पालो**=दया करो। 5. **दहिहो**=जलोगे। 6. **करुणा**=दया; **अस**=ऐसी। 7. **सेई**=सेवा करो।

ब्रह्म और पारब्रह्म सतनामा। तीन लोक और चौथा धामा॥ 20 ॥
गुरु सेवा में सब की सेवा। रंचक भर्म न मानो भेवा॥ 21 ॥[1]
ताते बार बार समझाऊँ। गुरु की भक्ति छिन छिन गाऊँ॥ 22 ॥
गुरुमुख होय गुरु आज्ञा बरते। गुरु बरती इक छिन में तरते॥ 23 ॥[2]
गुरु महिमा मैं कहाँ लग गाऊँ। गुरु समान कोइ और न पाऊँ॥ 24 ॥
गुरु अस्तुत है सब मत माहीं। गुरु से बेमुख ठौर न पाई॥ 25 ॥[3]
भोग बिलास हुकूमत जग की। धन और हाकिम के बस रहती॥ 26 ॥
हाकिम सेवा तुम कस करते। धन और मान बड़ाई लेते॥ 27 ॥
आज्ञा उसकी अस सिर धरते। खान पान निंद्रा भी तजते॥ 28 ॥[4]
सो धन जोड़ किया क्या भाई। जगत लाज में दिया उड़ाई॥ 29 ॥
सो जग की गति पहिले भाखी। चार दिनां फिर है नहिं बाकी॥ 30 ॥
सो धन कारण हाकिम सेवा। ऐसी करते क्या कहुं भेवा॥ 31 ॥[5]
गुरु सेवा जो सदा सहाई। ताको ऐसी पीठ दिखाई॥ 32 ॥[6]
दिन नहिं पक्ष मास नहिं बरसा। कभी न दर्शन को मन तरसा॥ 33 ॥[7]
कहो कैसे तुम्हरा उद्धारा। नर्क निवास दुख चौ धारा॥ 34 ॥
उस दुख में कहो कौन सहाई। गुरु से प्रीत न करी बनाई॥ 35 ॥
जो इसकी परतीत न लाओ। तो मन अपना यों समझाओ॥ 36 ॥
रोग दुख नित प्रती सताई। मौत पियादे हैं यह भाई॥ 37 ॥
मृत्यु होन में नहिं कुछ संसा। वह तो करे सकल जिव हिंसा॥ 38 ॥
यह हिंसा तुम पर भी आवे। इक दिन काल सीस पर धावे॥ 39 ॥
उस दिन का कुछ करो उपाई। धन हाकिम कुछ काम न आई॥ 40 ॥
पर जो समझवार तुम होते। तो धन से कुछ कारज लेते॥ 41 ॥
कारज लेना यह है भाई। गुरु सेवा में ख़र्च कराई॥ 42 ॥

---

1. **रंचक...भेवा**=इसमें रत्ती भर (रंचक) संशय (भर्म) या भेद (भेवा) न करो। 2. **आज्ञा बरते**=हुक्म माने; **गुरु बरती**=गुरु के हुक्म में रहनेवाले। 3. **अस्तुत**=स्तुति यानी गुण-गान; **ठौर**=ठिकाना। 4. **अस**=ऐसे, इस तरह। 5. **भेवा**=भेद। 6. **पीठ दिखाई**=मुँह मोड़ लिया। 7. **पक्ष**=पन्द्रह दिन।

गुरु नहिं भूखा तेरे धन का। उन पै धन है भक्ति नाम का॥ 43॥
पर तेरा उपकार करावें। भूखे प्यासे को दिलवावें॥ 44॥
उनकी मेहर मुफ़्त तू पावे। जो उनको प्रसन्न करावे॥ 45॥
उनका खुश होना है भारी। सतपुरुष निज किरपा धारी॥ 46॥
गुरु प्रसन्न होयँ जा ऊपर। वही जीव है सब के ऊपर॥ 47॥
गुरु राज़ी तो करता राज़ी। कर्म काल की चले न बाज़ी॥ 48॥
गुरु की आन सभी मिल मानें। शुकदेव नारद ब्यास बखानें॥ 49॥[1]
ताते गुरु को लेव रिझाई। औरन रीझे कुछ न भलाई॥ 50॥
गुरु प्रसन्न और सब रूठे। तो भी उसका रोम न टूटे॥ 51॥
औरन को प्रसन्न जो करता। गुरु से द्रोह घात जो रखता॥ 52॥[2]
गुरु की निन्दा से नहिं डरता। गुरु को मानुष रूप समझता॥ 53॥
सो नरकी जानो अपघाती। उस संग दूत करें उतपाती॥ 54॥[3]
याते समझो बूझो भाई। गुरु को प्रसन्न करो बनाई॥ 55॥
कुल कुटुम्ब कुछ काम न आई। और बिरादरी करे न सहाई॥ 56॥
यह तो चार दिना के संगी। इन निज स्वारथ में बुधि रंगी॥ 57॥
लज्जा डर इन का मत करो। गुरु भक्ति में अब चित धरो॥ 58॥
गुरु सहायता यहाँ वहाँ करें। उनसे करता भी कुछ डरे॥ 59॥
कुल कुटुम्ब से कुछ नहिं सरे। इन के संग नर्क में पड़े॥ 60॥
कार्य मात्र बरतो इन माहीं। बहुत मोह में बहु दुख पाई॥ 61॥
ताते सतसंग सतगुरु सेवो। नाम पदारथ दम दम लेवो॥ 62॥
गुरु समान और नाम समाना। तीसर सतसंग और न जाना॥ 63॥
इन से सब कारज होयँ पूरे। कर्म काट पहुंचो घर मूरे॥ 64॥[4]
यह कहना मेरा अब मानो। नहीं अंत को पड़े पछतानो॥ 65॥
धन और मान काम नहिं आवे। हुकुम हाकिमी सभी नसावे॥ 66॥
ता ते कुछ भक्ती कर लीजे। यह भी सुफल कमाई कीजे॥ 67॥

---

1. **आन**=बड़ाई, महानता। 2. **द्रोह घात**=वैर-विरोध। 3. **अपघाती**=आत्मघाती; **करें उतपाती**=उत्पात करते हैं, सज़ा देते हैं। 4. **घर मूरे**=मूल घर, असली घर, सचखण्ड।

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 14

यहाँ तुम समझ सोच कर चलना॥ टेक॥
यह तो राह बड़ी अति टेढ़ी। मन के साथ न पड़ना॥ 1॥
भौजल धार बहे अति गहरी। बिन गुरु कैसे पार उतरना॥ 2॥
गुरु से प्रीत करो तुम ऐसी। जस कामी कामिन संग धरना॥ 3॥
संग करो चेटक चित राखो। मन से गुरु के चरन पकड़ना॥ 4॥[1]
छल बल कपट छोड़ कर बरतो। गुरु के बचन समझना॥ 5॥
डरते रहो काल के भय से। ख़बर नहीं कब मरना॥ 6॥
स्वाँसो स्वाँस होश कर बौरे। पल पल नाम सुमिरना॥ 7॥
यहाँ की ग़फ़लत बहुत सतावे। फिर आगे कुछ नहिं बन पड़ना॥ 8॥
जो कुछ बने सो अभी बनाओ। फिर का कुछ न भरोसा धरना॥ 9॥
जग सुख की कुछ चाह न राखो। दुख में इसके दुखी न रहना॥ 10॥
दुख की घड़ी ग़नीमत जानो। नाम गुरू का छिन छिन भजना॥ 11॥[2]
सुख में ग़ाफ़िल रहत सदा नर। मन तरंग में दम दम बहना॥ 12॥[3]
ता ते चेत करो सतसंगत। दुख सुख नदियाँ पार उतरना॥ 13॥
अपना रूप लखो घट भीतर। फिर आगे को सूरत भरना॥ 14॥
राधास्वामी कहें बुझाई। शब्द गुरू से जाकर मिलना॥ 15॥

आरती

बचन 1: शब्द 2

राधास्वामी धरा नर रूप जगत में। गुरु होय जीव चिताये॥ 1॥
जिन जिन माना बचन समझ के। तिनको संग लगाये॥ 2॥

---

1. **चेटक**=चाह, लगन, ख़्वाहिश। 2. **ग़नीमत**=अच्छी, उत्तम, लाभदायक। 3. **ग़ाफ़िल**=अचेत, भूला हुआ।

कर सतसँग सार रस पाया। पी पी तृप्त अघाये॥ 3॥
गुरु सँग प्रीत करी उन ऐसी। जस चकोर चन्दाये॥ 4॥
गुरु बिन कल नहिं पड़त घड़ी इक। दम दम मन अकुलाये॥ 5॥
जब गुरु दर्शन मिलें भाग से। मगन होत जस बछड़ा गाये॥ 6॥
ऐसी प्रीत लगी जिन गुरुमुख। सो सो गुरु अपनाये॥ 7॥
तन की लगन भोग इन्द्री के। छिन में सब बिसराये॥ 8॥[1]
गुरु की मूरत बसी हिये में। आठ पहर गुरु संग रहाये॥ 9॥
अस गुरु भक्ति करी जिन पूरी। ते ते नाम समाये॥ 10॥
स्वाँति बूँद जस रटत पपीहा। अस धुन नाम लगाये॥ 11॥[2]
नाम प्रताप सुरत अब जागी। तब घट शब्द सुनाये॥ 12॥
शब्द पाय गुरु शब्द समानी। सुन्न शब्द सत शब्द मिलाये॥ 13॥[3]
अलख शब्द और अगम शब्द ले। निज पद राधास्वामी आये॥ 14॥
पूरा घर पूरी गति पाई। अब कुछ आगे कहा न जाये॥ 15॥[4]

महिमा शब्द

बचन 9: शब्द 5

शब्द बिना सारा जग अंधा। काटे कौन मोह का फंदा॥ 1॥[5]
शब्द बिना बिरथा सब धंधा। शब्द बिना जिव बंधन बंधा॥ 2॥
शब्दहि सूर शब्द ही चंदा। शब्द बिना जिव रहता गंदा॥ 3॥[6]
शब्द बिना सबही मतिमंदा। शब्दहि नासिह शब्दहि पंदा॥ 4॥[7]
शब्द कमावे मिले अनंदा। शब्द बिना सबही की निन्दा॥ 5॥

---

1. **बिसराये**=भूल गये, छूट गये। 2. **अस**=ऐसी। 3. **गुरु शब्द**=शब्द गुरु, त्रिकुटी में गुरु का स्वरूप 'शब्द-गुरु' कहलाता है; **सुन्न शब्द**=दसम् द्वार का शब्द; **सत शब्द**=सचखण्ड का शब्द। 4. **पूरा घर**=सच्चा घर। 5. **शब्द...अंधा**=शब्द के बिना लोग प्रभु को नहीं देख पाते, इसलिए उन्हें अन्धा कहा गया है; **फंदा**=जाल। 6. **शब्दहि...चंदा**=सूर्य और चन्द्रमा शब्द द्वारा बनाये गये। 7. **नासिह**=उपदेशक; **पंदा**=उपदेश।

तातेे शब्दहि शब्द कमाओ। शब्द बिना कोइ और न ध्याओ ॥ 6 ॥
शब्द भेद तुम गुरु से पाओ। शब्द माहिं फिर जाय समाओ ॥ 7 ॥
शब्द अधर में करे उजारा। शब्द नगर तुम झाँको द्वारा ॥ 8 ॥[1]
शब्द रहे सबही से न्यारा। शब्द करे सब जीव गुज़ारा ॥ 9 ॥[2]
शब्द जानियो सब का सारा। शब्द मानियो होय उबारा ॥ 10 ॥[3]
शब्द कमाई कर हे मीत। शब्द प्रताप काल को जीत ॥ 11 ॥
शब्द घाट तू घट में देख। शब्दहि शब्द पीव को पेख ॥ 12 ॥[4]
शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे ॥ 13 ॥
शब्द बिना सब झूठा ज्ञान। शब्द बिना सब थोथा ध्यान ॥ 14 ॥[5]
शब्द छोड़ मत अरे अजान। राधास्वामी कहें बखान ॥ 15 ॥

सतगुरु-भक्ति

बचन 18: शब्द 6

सतगुरु कहें करो तुम सोई। मन के कहे चलो मत कोई ॥ 1 ॥
यह भौ में ग़ोते दिलवावे। सतगुरु से बेमुख करवावे ॥ 2 ॥
काल चक्र में डाल घुमावे। मोह जाल में बहुत फँसावे ॥ 3 ॥
मित्र न जानो बैरी पूरा। गुरु भक्ति से डारे दूरा ॥ 4 ॥
दारा सुत सम्पति परिवारा। डारे काम क्रोध की धारा ॥ 5 ॥[6]
इन्द्री भोग बास भरमावे। भक्ति विवेक नाश करवावे ॥ 6 ॥[7]
सतगुरु प्रीतम मिलें न जब तक। कभी न छूटें मन के कौतुक ॥ 7 ॥[8]
छल बल मन के कहँ लग बरनूँ। ऋषी मुनी कोइ जाने न मरमूँ ॥ 8 ॥[9]

---

1. **अधर में**=अन्तर में; **शब्द...द्वारा**=दसवाँ दरवाज़ा खुलने पर शब्द के रूहानी मण्डल दिखाई देंगे। 2. **शब्द...गुज़ारा**=शब्द ही सब जीवों का आधार है। 3. **सारा**=सार, मूल तत्त्व; **उबारा**=मुक्ति, उद्धार। 4. **शब्दहि शब्द**=एक मण्डल के शब्द के सहारे से दूसरे मण्डल के शब्द तक पहुँचना; **पीव**=पिया, प्रियतम। 5. **थोथा**=बेकार, व्यर्थ। 6. **दारा**=स्त्री। 7. **बास**=वासना; **विवेक**=ठीक-ग़लत, भले-बुरे आदि का ज्ञान। 8. **कौतुक**=खेल, छल-कपट। 9. **मरमूँ**=मर्म, भेद।

ता ते सतगुरु खोजो निज के। बिन सतगुरु कोइ चले न बच के॥ 9॥
सतगुरु सम प्रीतम नहिं कोई। मन मलीन को धोवें वोही॥ 10॥
मेरा भाग उदय हुआ भारी। सतगुरु की मैं हुइ अति प्यारी॥ 11॥
जगत जीव कहा जानें महिमा। वेद कतेब न जानें मरमा॥ 12॥[1]
ज्ञानी जोगी सब थक हारे। सतगुरु महिमा कोइ न विचारे॥ 13॥
ता ते सतगुरु सरन पुकारूँ। आरत उनकी नित प्रति धारूँ॥ 14॥
आरत करूँ प्रेम से जबही। कुल परिवार तरे मेरा तब ही॥ 15॥
आरत बिधि अब करूँ सिंगारा। राधास्वामी मेरे हुए दयारा॥ 16॥[2]
राधास्वामी परम दयाल। कर आरत उन हुआ निहाल॥ 17॥

सतगुरु-भक्ति

बचन 18: शब्द 5

सतगुरु का नाम पुकारो। सतगुरु को हियरे धारो॥ 1॥[3]
सतगुरु का करो भरोसा। फिर करो न कुछ अफ़सोसा॥ 2॥
सतगुरु तोहि छिन छिन पोसें। हँगता तेरी सब विधि खोसें॥ 3॥[4]
तू कर उन चरनन होशें। सतगुरु से मत कर रोसें॥ 4॥[5]
सतगुरु गति अब सुन मो से। कहि जात न रंचक मुँह से॥ 52॥[6]
दसवें में खैचें नौ से। फिर एक करें तोहि दो से॥ 6॥
शब्दा रस तोहि पिलावें। जमपुर से फेर बचावें॥ 7॥
घर अगम तोहि दरसावें। मारग सब तोहि लखावें॥ 8॥
जो संगत उनकी करते। सो जग से कभी न डरते॥ 9॥

---

1. **कहा जानें**=क्या जाने, नहीं जानता; **कतेब**=सामी धर्मों की किताबें—तुरैत, ज़बूर, बाइबल, क़ुरान। 2. **सिंगारा**=शृंगार से, अच्छी तरह से, ख़ूबसूरती से; **दयारा**=दयाल। 3. **सतगुरु...पुकारो**=सतगुरु द्वारा दिये गये नाम का सुमिरन करो। 4. **पोसें**=पोषण करें, परवरिश करें; **हँगता**=अहंकार; **खोसें**=दूर करें। 5. **होशें**=होश कर, ध्यान दे; **मत... रोसें**=मत रूठ, गिला-शिकवा न कर। 6. **रंचक**=ज़रा-सी भी, थोड़ी-सी भी।

जो बेमुख गुरु से फिरते। सो भौ सागर में गिरते॥ 10॥
चौरासी चक्कर खावें। फिर जन्म जन्म दुख पावें॥ 11॥
तुम सोचो अपने मन में। कोइ नाहिं गुरू सम जग में॥ 12॥
जिन जिन गुरु भक्ति धारी। सो पहुंचे निज दरबारी॥ 13॥
गुरु भक्ति न जिन को प्यारी। तिन जीती बाज़ी हारी॥ 14॥
गुरु चरनन आशिक़ होना। यह बात बड़ी क्या कहना॥ 15॥
गुरु लगें जिसे अति प्यारे। तिन कुल कुटुम्ब सब तारे॥ 16॥
धन मात पिता उन जन के। जिन भक्ति करी कुल तज के॥ 17॥
जिन सही मलामत जग की। तिन मिली रास सुख घर की॥ 18॥[1]
जो कुल लाज जगत से डरे। गुरु भक्ति से वह पुनि गिरे॥ 19॥
सूरा रण से कभी न टरे। सती सदा मुरदे संग जरे॥ 20॥
रण छोड़े कायर कहलाय। सती फिरे नीच घर जाय॥ 21॥
पपिहा अपना पन नहिं त्यागे। जले पतंगा जोती आगे॥ 22॥[2]
मछली को जैसे जल धारा। गुरुमुख को सतगुरु अस प्यारा॥ 23॥
जिन पर बख़्शिश गुरु की होई। गुरुमुख ऐसा बिरला कोई॥ 24॥
राधास्वामी कही बनाय। सेवक को गुरु दिया जगाय॥ 25॥

पहचान परमार्थी की

बचन 13: शब्द 4

सतगुरु खोजो री प्यारी। जगत में दुर्लभ रतन यही॥ 1॥
जिन पर मेहर दया सतगुरु की। उनको दर्श दई॥ 2॥
दर्श पाय सतलोक सिधारी। सतनाम पद कीन सही॥ 3॥
सही नाम पाया सतगुरु से। बिन सतगुरु सब जीव बही॥ 4॥
जीव पड़े चौरासी भरमें। खान पान मद मान लई॥ 5॥

1. **मलामत**=फटकार, अपमान; **रास**=राशि, सम्पति, भण्डार। 2. **पन**=प्रण, निश्चय, संकल्प।

मान मनी का रोग पसरिया। बड़े बने जिन मार सही ॥ 6 ॥
छोटा रहे चित्त से अंतर। शब्द माहिं तब सुरत गई ॥ 7 ॥
शब्द बिना सारा जग अन्धा। बिन सतगुरु सब भर्म मई ॥ 8 ॥
शब्द भेद और शब्द कमाई। जिन जिन कीन्ही सार लई ॥ 9 ॥
शब्द रता सतगुरु पहिचानो। हम यह पूरा पता दई ॥ 10 ॥
खोलो आँख निकट ही देखो। अब क्या खोलूँ खोल कही ॥ 11 ॥
आगे भाग तुम्हारा प्यारी। नहिं परखो तो जून रही ॥ 12 ॥
कहना था सोई कह डाला। राधास्वामी खूब कही ॥ 13 ॥

महिमा सतगुरु

बचन 8: शब्द 13

सतगुरु सरन गहो मेरे प्यारे। कर्म जगात चुकाय ॥ 1 ॥[1]
भूल भरम में सब जग पचता। अचरज बात न काहु सहाय ॥ 2 ॥[2]
भागहीन सब जग माया बस। यह निरमल गति कोइ न पाय ॥ 3 ॥
जिन पर दया आदि करता की। सो यह अमृत पीवन चाहि ॥ 4 ॥
कहाँ लग महिमा कहुँ इस गति की। बिरले गुरुमुख चीन्हत ताहि ॥ 5 ॥
बिन गुरु चरन और नहिं भावे। इस आनँद में रहे समाय ॥ 6 ॥
दर्शन करत पिंड सुध भूली। फिर घर बाहर सुधि क्या आय ॥ 7 ॥[3]
ऐसी सुरत प्रेम रंग भीनी। तिनकी गति क्या कहूँ सुनाय ॥ 8 ॥[4]
जोग बैराग ज्ञान सब रूखे। यह रस उन में दीखे न ताय ॥ 9 ॥[5]
बड़ भागी कोइ बिरला प्रेमी। तिन यह न्यामत मिली अधिकाय ॥ 10 ॥[6]
राधास्वामी कहत सुनाई। यह आरत कोई गुरुमुख गाय ॥ 11 ॥

---

1. **जगात**=कर, महसूल, टैक्स। 2. **पचता**=प्रवृत्त, लिप्त, ग्रस्त; **अचरज...सहाय**=यह रहस्यमय बात किसी को अच्छी नहीं लगती। 3. **पिंड**=शरीर। 4. **भीनी**=भीगी हुई, रँगी हुई। 5. **ताय**=उसको, प्रेमी को। 6. **न्यामत**=उच्चतम पदार्थ।

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 19

समझ कर चल जगत खोटा। मान मद त्याग मन मोटा॥ 1॥
खुदी को छोड़ नहिं टोटा। भक्ति कर खाय क्यों सोटा॥ 2॥[1]
करो सतसंग गुरु केरा। सुरत से लो गगन झोटा॥ 3॥[2]
मगन होय बैठ फिर घट में। फ़तह कर तिरकुटी कोटा॥ 4॥[3]
कुटुम्ब संग चार दिन नाता। मोह संग क्यों पड़ा लोटा॥ 5॥[4]
करो कुछ भजन अंतर में। गहो गुरु चरन की ओटा॥ 6॥[5]
गुरू बिन कोइ नहीं संगी। उन्हीं सँग बैठ मन घोटा॥ 7॥[6]
करेंगे काज वह तेरा। उतारें पाप की पोटा॥ 8॥[7]
मिले तब नाम की रंगत। शब्द की सेज जा लोटा॥ 9॥[8]
भाग तेरा बड़ा जागा। हुआ मन अर्श का तोता॥ 10॥
उठा फिर जाग इक छिन में। जुगन जुग से पड़ा सोता॥ 11॥
जगत को देख तू मथ कर। नहीं कुछ सार है थोथा॥ 12॥
उलट कर दिल मथो अपना। अमोलक वक्त क्यों खोता॥ 13॥
गुरू ने अब करी किरपा। दिया अब काल को ग़ोता॥ 14॥
कहें राधास्वामी यह तुम को। चलो सतलोक दूँ न्योता॥ 15॥[9]

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 12

सुन रे मन अनहद बैन। घट में मठ निरखो नैन॥ 1॥[10]
गुरु शब्द गहो उपदेशा। रस पी पी करो प्रवेशा॥ 2॥

---

1. **खुदी**=अहंकार; **टोटा**=घाटा, नुक़सान। 2. **केरा**=का; **गगन झोटा**=गगन में झूला लो। 3. **कोटा**=कोट, किला। 4. **लोटा**=लोटता यानी लिप्त होता है। 5. **ओटा**=ओट, शरण। 6. **मन घोटा**=मन को घोटो यानी मन को वश में करो। 7. **पोटा**=पोटली, गठरी। 8. **लोटा**=लेटना। 9. **न्योता**=निमन्त्रण, बुलावा। 10. **बैन**=शब्द; **मठ**=मन्दिर; **निरखो**=देखो।

चक्कर अब फेरो आई। धुन शब्द तभी खुल जाई॥[1]
बिन नाम नहीं गति पाई। सतगुरु यों कहैं बुझाई॥ 4॥
सतसंग अब करो बनाई। गुरु गहो आन सरनाई॥ 5॥
जग भोग रोग सम जानो। धन माल चाह दुख मानो॥ 6॥
भौ सागर फाट अपारा। डूबे सब उसकी धारा॥ 7॥[2]
गुरु बिन कोइ पार न पाया। बिन नाम न धीरज आया॥ 8॥
अब सुरत सम्हालो आई। जो शब्द हाथ लग जाई॥ 9॥
मन इन्द्री तन भरमाई। दुख सुख में गये भुलाई॥ 10॥
हौं हौं कर जन्म बिताई। करता की बूझ न आई॥ 11॥[3]
अब सोच करो तुम मन में। कुछ रोको मन निज तन में॥ 12॥
राधास्वामी कहत बुझाई। तब सुरत शब्द घर पाई॥ 13॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 7

सुरत क्यों हुई दिवानी। तेरी बिरथा बैस बिहानी॥ 1॥[4]
जग भोग रोग दिन बीते। तू जाय दोऊ कर रीते॥ 2॥[5]
जमपुर होय धूमा धामी। तू पड़े चौरासी खानी॥ 3॥[6]
वहाँ कौन सहाई तेरा। तू बचन मान अब मेरा॥ 4॥
कर गुरु से हित चित लाई। सुन मान बचन गुरु भाई॥ 5॥
सूरत जा शब्द मिलाई। कर निस दिन यही कमाई॥ 6॥
तेरा भाग बढ़त नित जावे। फिर काल न तोहि सतावे॥ 7॥
रस अगम शब्द का पावे। मन भोग सहज छुट जावे॥ 8॥
चढ़ चढ़ नभ ऊपर धावे। दल सहस कँवल गति पावे॥ 9॥

---

1. **फेरो**=उलटो। 2. **फाट**=पाट, चौड़ाई। 3. **हौं हौं कर**=मैं-मेरी यानी अहंकार में खोकर। 4. **बैस**=उम्र, आयु; **बिहानी**=व्यतीत हो गयी। 5. **कर रीते**=ख़ाली हाथ। 6. **धूमा धामी**=शोर।

तिल मोड़े बिजली चमके। सुन शब्द अनाहद धमके॥ 10॥
फिर चाँद सुरज दोउ दरसें। सुखमन मन सूरत परसें॥ 11॥[1]
गुरु मूरत अजब दिखाई। शोभा कुछ कही न जाई॥ 12॥
नर रूप दिखावें तब ही। मन खैंच चढ़ावें जब ही॥ 13॥
दे मदद बढ़ावें आगे। मन जुग जुग सोया जागे॥ 14॥
चढ़ बंक चले त्रिकुटी में। फिर सुन्न तके सरवर में॥ 15॥[2]
जहँ शोभा हंसन भारी। वह भूमि लगे अति प्यारी॥ 16॥
धुन किंगरी बजे करारी। सुन सुरत हुई मतवारी॥ 17॥
फिर लगे महासुन तारी। जहँ दीप अचिंत सम्हारी॥ 18॥[3]
लख भँवर गुफा हुई न्यारी। जहँ सेत सूर उजियारी॥ 19॥[4]
चौथे पद करी तयारी। धुन बीन सुनी अति भारी॥ 20॥
लख अलख अगम्म लखा री। हुई राधास्वामी रूप निहारी॥ 21॥
महिमा उनकी क्या कहुं भारी। मुझ गरीब की बहुत सुधारी॥ 22॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 5

सुरत धुन धार री, तज भोग निकाम॥ टेक॥[5]
दारा सुत धन मान बड़ाई। यह सब थोथा काम॥ 1॥
लोक प्रतिष्ठा जगत बड़ाई। इन में नहिं आराम॥ 2॥
सतगुरु भक्ति नाम रस पीवे। तौ पावें तू अविचल धाम॥ 3॥
तन मन साथ करो अब संगत। तब मिले नाम सतनाम॥ 4॥
सुरत चढ़ाय चलो ऊपर को। होत जहाँ धुन आठों जाम॥ 5॥[6]
नर की देह सुफल होय तेरी। मिले शब्द बिसराम॥ 6॥

---

1. **चाँद...दरसें**=जहाँ पर चाँद और सूरज दोनों इकट्ठे दिखाई देते हैं; **सूरत**=सुरत। 2. **बंक**=बंकनाल; **तके**=देखे; **सरवर**=मानसरोवर। 3. **तारी**=ध्यान; **दीप अचिंत**= महासुन्न मण्डल का एक द्वीप। 4. **सेत सूर**=सफ़ेद सूर्य। 5. **धार री**=धारण करो; **निकाम**=निकम्मे, बेकार। 6. **आठों जाम**=आठों पहर यानी निरन्तर, लगातार।

स्वाँस नक़ारा कूच पुकारा। बजे सुबह से शाम ॥ 7 ॥[1]
राधास्वामी नाव लगाई। भौ उतरो बिन दाम ॥ 8 ॥

भेद काल मत व दयाल मत का

बचन 22: शब्द 2

सुरत बुन्द सत सिंध तज। आई दसवें द्वार ॥ 1 ॥[2]
वहाँ से उतरी पिंड में। बसी आय नौ वार ॥ 2 ॥[3]
मन इन्द्री सम्बन्ध कर। पड़ी जगत की लार ॥ 3 ॥[4]
जन्म जन्म दुख में रही। बही चौरासी धार ॥ 4 ॥
सुध भूली घर आदि की। सतपुरुष दरबार ॥ 5 ॥
नर देही जब जब मिली। किया न सतगुरु प्यार ॥ 6 ॥
संशय रोग भरमत रही। क्यों कर उतरे पार ॥ 7 ॥
सतगुरु संत दया करी। आये धर औतार ॥ 8 ॥
बहु विधि अब समझावहीं। मारग शब्द पुकार ॥ 9 ॥
काल बिछाया जाल अस। गुप्त किया मत सार ॥ 10 ॥[5]
करम भरम पाखंड का। कीन्हा बहुत पसार ॥ 11 ॥
विद्या रस ज्ञानी ठगे। बाचक अति अहंकार ॥ 12 ॥
जड़ चेतन ग्रन्थी बँधे। थोथा करें विचार ॥ 13 ॥[6]
सुरत शब्द की राह को। करें न अंगीकार ॥ 14 ॥
मन बैरी धोखा दिया। तजे न मूल विकार ॥ 15 ॥
इन की संगत मत करो। यह मारें घेरा डार ॥ 16 ॥
खोजी कोइ कोइ होयगा। बादी सब संसार ॥ 17 ॥[7]

---

1. **स्वाँस...पुकारा**=साँसों का आना-जाना नगाड़े की तरह यह कह रहा है कि इस संसार से कूच कर जाना है। 2. **सत सिंध**=चेतनता का सच्चा समुद्र। 3. **बसी...वार**=नौ द्वारों में फँस गयी। 4. **लार**=साथ। 5. **मत सार**=सन्तमत का साराँश। 6. **ग्रन्थी**=गाँठ। 7. **बादी**=वाद-विवाद या बहस करनेवाले।

रोज़गारी भेखी सभी। मानी मान अधार॥ 18 ॥[1]
राधास्वामी गाइया। इन से रहो हुशियार॥ 19 ॥
संत सरन दृढ़ कर गहो। काल बड़ा बरियार॥ 20 ॥[2]
सुरत न पावे शब्द रस। तब लग रहे ख़ुवार॥ 21 ॥[3]
ता ते सतगुरु संग कर। पहुंचो निज घर बार॥ 22 ॥

गुरु और नाम-भक्ति

बचन 19: शब्द 6

सुरत सुन बात री। तेरा धनी बसे आकाश॥ 1 ॥[4]
तजो संग जार री। तू देख पिया परकाश॥ 2 ॥
चलो गुरू की लार री। तू पावे अजर निवास॥ 3 ॥[5]
गहो सरन कोई साध री। जो मिले शब्द घर बास॥ 4 ॥
तन पिंजरा यह काल का। क्यों करें पराई आस॥ 5 ॥
दस इन्द्री के भोग की। तेरे पड़ी गले में फाँस॥ 6 ॥
नौ द्वारन में बँध रही। अब चैन नहीं इक स्वाँस॥ 7 ॥
दसवीं खिड़की खोल री। कर परम बिलास॥ 8 ॥
सतगुरु पूरे कह रहे। तू मान बचन विश्वास॥ 9 ॥
राधास्वामी नाम भज। होयँ कर्म सब नाश॥ 10 ॥

चितावनी, भाग 2

बचन 15: शब्द 19

सोता मन कस जागे भाई। सो उपाव मैं करूँ बखान॥ 1 ॥
तीरथ करे बर्त भी राखे। विद्या पढ़ के हुए सुजान॥ 2 ॥

---

1. **मानी**=अभिमानी, अहंकारी। 2. **गहो**=ग्रहण करो, पकड़ो; **बरियार**=बलवान।
3. **ख़ुवार**=भटकती है, परेशान रहती है, ज़लील होती है। 4. **धनी**=मालिक, स्वामी।
5. **लार**=साथ; **अजर**=जरा (बुढ़ापा) रहित, परिवर्तन रहित।

जप तप संजम बहु बिधि धारे। मौनी हुए निदान॥ 3॥
अस उपाव हम बहुतक कीन्हे। तो भी यह मन जगा न आन॥ 4॥
खोजत खोजत सतगुरु पाये। उन यह जुक्ति कही परमान॥ 5॥
सतसंग करो संत को सेवो। तन मन करो क़ुरबान॥ 6॥
सतगुरु शब्द सुनो गगना चढ़। चेत लगाओ अपना ध्यान॥ 7॥
जागत जागत अब मन जागा। झूठा लगा जहान॥ 8॥
मन की मदद मिली सूरत को। दोनों अपने महल समान॥ 9॥[1]
बिना शब्द यह मन नहिं जागे। करो चाहे कोइ अनेक विधान॥ 10॥
यही उपाव छाँट कर गाया। और उपाव न कर परमान॥ 11॥
बिरथा बैस बितावें अपनी। लगे न कभी ठिकान॥ 12॥[2]
संत बिना सब भटके डोलें। बिना संत नहिं शब्द पिछान॥ 13॥
शब्द शब्द मैं शब्दहि गाऊँ। तू भी सुरत लगा दे तान॥ 14॥
घर पावे चौरासी छूटे। जन्म मरन की होवे हान॥ 15॥[3]
राधास्वामी कहें बुझाई। बिना संत सब भटके खान॥ 16॥

उपदेश शब्द-अभ्यास

बचन 20: शब्द 19

हंसनी क्यों पीवे तू पानी॥ टेक॥
सागर क्षीर भरा घट भीतर। पीवो सूरत तानी॥ 1॥[4]
जग को जार धसो नभ अंदर। मंदर परख निशानी॥ 2॥[5]
गुरु मूरत तू धार हिये में। मन के संग क्यों फिरत निमानी॥ 3॥

---

1. **सूरत**=सुरत; **समान**=समा जायें; **दोनों...समान**=दोनों अपने-अपने स्रोत में समा गए यानी मन, त्रिकुटी में और आत्मा, सचखण्ड में। 2. **बैस**=उम्र, जीवन। 3. **घर**=निज घर, सचखण्ड; **जन्म...हान**=जन्म-मरण ख़त्म हो जायेगा। 4. **क्षीर**=दूध; **सूरत**=सुरत। 5. **मंदर...निशानी**=अन्दरूनी निशानियों द्वारा अन्दर के महल की जानकारी लो।

तेरा काज करें गुरु पूरे। सुन ले अनहद बानी॥ 4॥
कर्म भर्म बस सब जग बौरा। तू क्यों होत दिवानी॥ 5॥
सुरत सम्हार करो सतसंगत। क्यों विष अमृत सानी॥ 6॥[1]
तेरा धाम अधर में प्यारी। क्यों धर संग बंधानी॥ 7॥[2]
जल्दी करो चढ़ो ऊँचे को। राधास्वामी कहत बखानी॥ 8॥

उपदेश शब्द-अभ्यास

बचन 20: शब्द 20

हंसनी छानो दूध और पानी॥ टेक॥
छोड़ो नीर पियो पय सारा। निस दिन रहो अघानी॥ 1॥[3]
जुक्ति जतन से घट में बैठो। सूरत शब्द समानी॥ 2॥[4]
खान पान निद्रा तज आलस। सुन ले अधर कहानी॥ 3॥[5]
फिर औसर नहिं हाथ पड़ेगा। भरमो चारों खानी॥ 4॥
गुरु का कहना मान सखी री। देत सिखापन जानी॥ 5॥[6]
पाँचो इन्द्री उलटी तानो। इच्छा मार भवानी॥ 6॥[7]
मन को साध चढ़ो गगनापुर। सुनो अनाहद बानी॥ 7॥
शोर होत तेरे घट के भीतर। तू क्यों रहे अलसानी॥ 8॥[8]
राधास्वामी टेरत तो को। कह कर अमृत बानी॥ 9॥[9]

---

1. **क्यों...सानी**=अमृत में विष को क्यों घोल रही हो यानी विकारों में लिप्त क्यों हो रही हो। 2. **धर**=धरती यानी देही। 3. **पय**=दूध, अमृत; **सारा**=सार वस्तु; **अघानी**=तृप्त। 4. **सूरत**=सुरत। 5. **अधर कहानी**=अन्दर की कहानी, शब्द। 6. **सिखापन**=शिक्षा; **जानी**=जानकर, समझकर, ज्ञानपूर्वक। 7. **भवानी**=भव+आनी, संसार में लानेवाली; **इच्छा...भवानी**=संसार में लानेवाली इच्छा या आशा-मनसा को मार दो, निकाल दो। 8. **अलसानी**=आलस्य करती है। 9. **टेरत**=पुकारते हैं।

बारहमासा

आसाढ़ मास पहला

बचन 38: शब्द 1

हाल दुख सुख सहने जीव का संसार में मन और माया के संग भरम कर और वर्णन कष्ट और क्लेश का जो कि बिना सतगुरु और नाम भक्ति के अन्त समय में जमदूतों के हाथ से सहता है।

प्रथम असाढ़ मास जग छाया। आसा धर जिव गर्भ समाया॥ 1 ॥[1]
आस आड़ ले जीव भुलाया। घर को भूल दुख अति पाया॥ 2 ॥[2]
कर्म वेग ने बाहर डाला। माया कीन्हा बहु जंजाला॥ 3 ॥[3]
बाल अवस्था अति दुख पावे। बेदन भारी नित्त सतावे॥ 4 ॥[4]
मुख बोले ना सैन चलावे। काहू दुख अपना न जनावे॥ 5 ॥[5]
दुख में रोवे अति बिल्लावे। मात पिता बुधि काम न आवे॥ 6 ॥[6]
दुख कुछ है औषध कुछ करिहैं। उलट पलट संतापे दे हैं॥ 7 ॥[7]
बालपना अति दुख में बीता। भई किशोर खेल मति लीता॥ 8 ॥[8]
मात पिता चाहें पढ़वाना। यह रहे निस दिन खेल दिवाना॥ 9 ॥
मार पीट पितु मात घनेरी। वह भी दुख की भारी ढेरी॥ 10 ॥[9]
यह भी दिन दुख ग़फ़लत बीते। सुख न पाया रहे अब रीते॥ 11 ॥[10]
तरुन अवस्था आवन लागी। मन तरंग अब छिन छिन जागी॥ 12 ॥[11]

---

1. **आसा धर**=आशा-तृष्णा के कारण। 2. **आस...ले**=आशा पूर्ति के धोखे में 3. **वेग**=ज़ोर, बहाव; **कर्म...जंजाला**=कर्मों के प्रभाव के कारण जीव माता के गर्भ से बाहर आकर माया के जंजाल में फँस गया। 4. **बेदन**=वेदना, दु:ख, पीड़ा। 5. **सैन चलावे**=इशारा करें; **काहू**=किसी को; **जनावे**=बतावे। 6. **बिल्लावे**=फूट-फूट कर रोता है। 7. **संतापे**=संताप, दु:ख। 8. **भई किशोर**=लड़कपन में; **खेल...लीता**=ध्यान खेल-कूद में लग गया। 9. **घनेरी**=बहुत। 10. **ग़फ़लत**=लापरवाही; **रीते**=ख़ाली, कोरे। 11. **तरुन अवस्था**=जवानी; **तरंग**=लहर।

चाह उठी तब करी सगाई। ब्याह हुआ घर नारी आई॥ 13॥
नारि देख मन अति हरषाना। बेड़ी भारी सो नहिं जाना॥ 14॥[1]
मात पिता का हक़ सब भूले। दिन और रात नारि संग झूले॥ 15॥
घटती चली लगन पितु माता। नारि पुत्र संग मन अति राता॥ 16॥[2]
फ़िकर पड़ा उद्यम का जबही। दर दर भरमे दुख अति सहही॥ 17॥[3]
स्वान समान करी गति अपनी। धन का सुमिरन धन की जपनी॥ 18॥[4]
धन पाया तो हुआ अनंदा। अन मिलते पड़ा दुख का फंदा॥ 19॥[5]
गृह कारज अब नित्त सतावें। कुल और जाति बहुत भरमावें॥ 20॥[6]
सब का बोझ भार सिर लीन्हा। अब तड़पे जस जल बिन मीना॥ 21॥
मूरख ने यह भार उठाया। अब दुक्खन से बहु घबराया 22॥
भरमत फिरे सुख के कारन। सुख नहिं मिला हुआ दुख दारुन॥ 23॥[7]
किये अपने को बहु पछतावे। पर अब कछू पेश नहिं जावे॥ 24॥
कल कलेश बहु वर्षन लागे। वर्षा ऋतु असाढ़ अब जागे॥ 25॥[8]
मोर पपीहा भर्म त्रास के। रोग सोग दुख मोह आस के॥ 26॥[9]
बोलन लागे चहुंदिस घेरी। उमड़ी घटा मानो रात अँधेरी॥ 27॥[10]
भक्ति चन्द्रमा सूरज ज्ञाना। छिप गये दोनों घोर समाना॥ 28॥[11]
अज्ञान अँधेरा अति घट छाया। लोक गया परलोक गँवाया॥ 29॥
यह भी बीते दुख में सब दिन। वृद्ध अवस्था आई छिन छिन॥ 30॥

---

1. **हरषाना**=हर्षित हुआ, ख़ुश हुआ; **बेड़ी**=बन्धन। 2. **लगन**=प्रीति; **राता**=लीन। 3. **उद्यम**=रोज़गार। 4. **स्वान**=कुत्ता; **गति**=हालत। 5. **अन मिलते**=न मिलने पर। 6. **गृह कारज**=घर के काम-काज। 7. **सुक्ख के कारन**=सुखों की तलाश में; **दारुन**=कठिन। 8. **कल...लागे**=दु:खों की बरसात शुरू हो गयी; **वर्षा...जागे**=जैसे आषाड़ में बरसात का मौसम शुरू हो जाता है। 9. **मोर...आस के**=भ्रम और भय, मोर और पपीहे की तरह नाचने लगे तथा मोह और आशा-तृष्णा के कारण बीमारी, शोक और अन्य अनेक कष्ट सहने पड़े। 10. **उमड़ी**=उमड़ आयी, छा गयी। 11. **भक्ति...समाना**=भक्ति रूपी चन्द्रमा और ज्ञान रूपी सूर्य दोनों छिप गये और घोर अन्धेरा छा गया।

दोहा

वृद्धाई बादल उमड, घेर लिया तन खंड।[1]
लोभ नदी बाढ़न लगी, तृष्णा अति परचंड॥ 31 ॥[2]
बुद्धि हीन बल छीन होय, वर्षा तन से होत।
नैन नीर मुख नासिका, बहन लगे जस सोत॥ 32 ॥[3]

सावन मास दूसरा

बचन 38: शब्द 2

सावन आया मास दूसरा। सास मरी घर आया ससुरा॥ 1 ॥[4]
काली घटा श्याम मन हूआ। श्याम कंज में यह मन मूआ॥ 2 ॥[5]
गरजे बादल चमके बिजली। मनसा मोड़ी आसा बदली॥ 3 ॥[6]
सुरत निरत की झड़ियाँ लागीं। धुन अनंत शब्दन से चालीं॥ 4 ॥[7]
वृद्ध अवस्था चेतन लागी। काल आय जब सिर पर गाजी॥ 5 ॥[8]
जमपुर से अब सतगुरु राखें। बहुतक जीव मौत दर ताकें॥ 6 ॥[9]
काल घटा जब आकर छाई। धारा मौत अधिक बर्षाई॥ 7 ॥[10]
जीव अनेक रहे घबराई। काया गढ़ उन दीन्ह ढवाई॥ 8 ॥[11]
जमपुर जाय जीव पछतावें। जम के दूत तिन बहुत सतावें॥ 9 ॥
नाना कष्ट देंहैं पल पल में। फिर फाँसी डालें गल गल में॥ 10 ॥

---

1. **वृद्धाई**=वृद्ध अवस्था; **तन खंड**=शरीर रूपी धरती। 2. **बाढ़न लगी**=बाढ़ आ गयी; **परचंड**=बढ़ गयी, तेज़ हो गयी। 3. **सोत**=झरना। 4. **सास...ससुरा**=सास यानी माया मरी, तो मन (ससुरा) ने अपने घर यानी ब्रह्म की तरफ़ रुख़ कर लिया। 5. **काली...हूआ**=दुनिया के भोग भोगकर मन काला (श्याम) हो चुका था; **श्याम कंज**=सहसदल कँवल; **मन मूआ**=मन के विकार मर गये यानी नष्ट हो गये। 6. **मनसा...बदली**=आशा-मनसा का रुख़ बदल गया। 7. **चालीं**=जारी हो गयीं। 8. **वृद्ध...गाजी**=वृद्ध अवस्था में जब मृत्यु सिर पर मंडराने लगती है तो परमात्मा या सतगुरु की याद आती है। 9. **दर ताकें**=दरवाज़ा देखते हैं। 10. **काल घटा**=मौत की घटा। 11. **काया गढ़**=शरीर रूपी किला।

कुम्भी नर्क माहिं दें ग़ोते। जीव सहें दुख अति कर रोते॥ 11 ॥[1]
वे निरदई दया नहिं लावें। अति त्रास से जिव मुरझावें॥ 12 ॥
अगिन खंभ से फिर लिपटावें। हाय हाय कर तब चिल्लावें॥ 13 ॥[2]
सुने न कोई मुश्किल भारी। सर्पन माला ले गल डारी॥ 14 ॥
मार मार चहुं दिस से होई। पति गति अपनी सब विधि खोई॥ 15 ॥
नर्कन में अति त्रास दिखावें। फिर चौरासी ले पहुंचावें॥ 16 ॥[3]
गुरु भक्ती बिन यह गति पाई। नर देही सब बाद गँवाई॥ 17 ॥[4]
जो जो भजन भक्ति से चूके। तिन के मुख जम पल पल थूके॥ 18 ॥
ऐसी कुगति होयगी सब की। जो नहिं धारें सतगुरु अब की॥ 19 ॥[5]
सतगुरु बिना कोई नहिं बाचे। नाम बिना चौरासी नाचे॥ 20 ॥[6]
धन्य भाग हम सतगुरु पाया। चढ़ी सुरत मन गगन समाया॥ 21 ॥[7]
सुन्न मंडल जाय झूला झूली। सावन मास लिया फल मूली॥ 22 ॥[8]
सखियाँ सब मिल गावन लागीं। माया ममता देखत भागीं॥ 23 ॥[9]
सभी सुहागिन झूलें घर घर। पिया अपने को हिरदे धर धर॥ 24 ॥
पिया बिमुख तरसें बहु नारी। जिनके पति परदेश सिधारी॥ 25 ॥[10]
तिनको सावन काला नागा। डस डस खावे लागे आगा॥ 26 ॥[11]
बाहर वर्षा रिमझिम होई। घट में उनके अग्नि समोई॥ 27 ॥[12]
अग्नि लगी मानो तन मन फूँका। उनके भावें पड़ गया सूखा॥ 28 ॥[13]
तीज त्योहार कछू नहिं भावे। मन में दुख, नहिं हर्ष समावे॥ 29 ॥
पिया बिन सावन कैसा आया। जेठ तपन जस जीव जलाया॥ 30 ॥

---

1. **कुम्भी नर्क**=घड़े की शक्ल जैसा नरक जो नीचे से खुला और ऊपर से बहुत तंग होता है। उसमें गन्दगी भरी होती है और जीव को उसमें डाल दिया जाता है जब जीव दम घुटने के कारण उसमें से सिर बाहर निकालता है तो यमदूत उसे पीट कर उसका सिर वापस कुम्भ में डाल देते हैं। 2. **खंभ**=खंभा। 3. **त्रास दिखावें**=भयभीत करते हैं, दुःख देते हैं। 4. **बाद**=व्यर्थ, फ़ुजूल। 5. **कुगति**=दुर्दशा; **धारें**=(गुरु) धारना, गुरु से दीक्षा लेना, गुरु की शरण लेना; **अब की**=इस जन्म में यानी मनुष्य जन्म में। 6. **चौरासी नाचे**=आवागवन में नाचता यानी भटकता है। 7. **गगन**=त्रिकुटी का आकाश, आन्तरिक आकाश। 8. **सुन्न मंडल**=दसम् द्वार; **फल मूली**=सार पदार्थ। 9. **ममता**=मोह। 10. **सिधारी**=गये हुए हैं। 11. **आगा**=आग। 12. **समोई**=समायी हुई है। 13. **भावे**=लिये।

॥ दोहा ॥

जीव जले विरह अग्नि में, क्योंकर सीतल होय।
बिन वर्षा पिया बचन के, गई तरावत खोय ॥ 31 ॥[1]
जिन को कंत मिलाप है, तिन मुख बरसत नूर।[2]
घट सीतल हिरदा सुखी, बाजे अनहद तूर ॥ 32 ॥[3]

भादों मास तीसरा

बचन 38: शब्द 3

चेतावनी जीवों को कि मनमत कर्म और धर्म और जप-तप और मूर्ति-पूजा और तीर्थ-व्रत से जीव की चौरासी नहीं छूटेगी जब तक कि सन्त सतगुरु और साध का संग और उनसे भेद नाम का लेकर अंतरमुख अभ्यास न करेंगे और वर्णन जुक्ति और भेद सुरत शब्द मार्ग का

भादों मास तीसरा जारी। दौं लागी सब जग को भारी ॥ 1 ॥[4]
तीन ताप का बड़ा पसारा। इक इक जीव घेर कर मारा ॥2 ॥[5]
काम क्रोध मद लोभ सतावें। माया ममता आग लगावें ॥ 3 ॥
जल जल जीव पड़े घबरावें। छूटन की कोइ जुगत न पावें ॥ 4 ॥
कोई कर्म कोइ धर्म सम्हारे। कोइ विद्या कोइ जप तप धारे ॥ 5 ॥[6]
कोइ मंदिर जा मूरत पूजे। कोइ तीरथ कोइ बर्त में जूझे ॥ 6 ॥[7]
यह सब भूले भटका खावें। कोई न इनकी भूल मिटावें ॥ 7 ॥
क्या पंडित क्या भेख गृहस्ती। यह सब बसे काल की बस्ती ॥ 8 ॥[8]
चौरासी में बहु भरमावें। नर्क स्वर्ग के धक्के खावें ॥ 9 ॥
जो कोइ उन से कहे समझाई। उल्टी मानें करें लड़ाई ॥ 10 ॥

---

1. **तरावत**=नमी, शीतलता, मन की शाँति। 2. **कंत**=पति, प्रियतम, सतगुरु। 3. **घट**=अन्तर में। 4. **दौं**=आग, आशा-तृष्णा और विकारों की आग। 5. **तीन ताप**=आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक; **पसारा**=प्रसार, फैलाव। 6. **सम्हारे**=अपनाये; **धारे**=धारण करता है। 7. **जूझे**=जूझता है, खपता है। 8. **काल की बस्ती**=त्रिलोकी।

कलजुग कर्म धर्म नहिं कोई। नाम बिना उद्धार न होई॥ 11 ॥[1]
नाम भेद है अति कर झीना। बिन सतगुरु काहू नहिं चीन्हा॥ 12 ॥[2]
जपने में सब गये भुलाई। नाम अगम कोइ भेद न पाई॥ 13 ॥
जो सतगुरु पूरे मिल जाते। तो वे भेद नाम का गाते॥ 14 ॥[3]
नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूँढ़ें तिरलोकी माहीं॥ 15 ॥[4]
तीन लोक में नाम न पावें। चौथे लोक में संत बतावें॥ 16 ॥[5]
तीन लोक में बसता काल। चौथे में रहे नाम दयाल॥ 17 ॥
सोई नाम संतन से पावे। बिना संत नहिं नाम समावे॥ 18 ॥
अब मारग का भेद बताऊँ। आँख खुले तो भेद लखाऊँ॥ 19 ॥[6]
पहिले सुर्ती नैन जमावे। घेर फेर घट भीतर लावे॥ 20 ॥[7]
विरह होय तो यह बन आवे। मेहनत करे तो कुछ फल पावे॥ 21 ॥
देखे तिल पिल जोत समावे। अनहद सुन मन बस में आवे॥ 22 ॥[8]
मन बस होय तो सूरत जागे। निरख अकाश आत्मा पागे॥ 23 ॥[9]
शब्द पकड़ परमातम निरखे। आतम जाय परमातम परखे॥ 24 ॥[10]
परमातम से आगे जाई। सुन्न महल में बैठक पाई॥ 25 ॥[11]
सुन्न के परे महासुन्न लेखा। महासुन्न पर खिड़की देखा॥ 26 ॥
खिड़की आगे चौक अपारा। चौक परे निरखा सत द्वारा॥ 27 ॥[12]
सतपुरुष सतनाम कहाई। सतलोक निज पाया आई॥ 28 ॥
यह मारग संतन ने भाखा। भेद प्रगट कुछ गोय न राखा॥ 29 ॥[13]
लोक वेद बस जो जिव होई। सो परतीत न लावे कोई॥ 30 ॥[14]

---

1. **उद्धार**=मुक्ति। 2. **झीना**=सूक्ष्म, बारीक; **चीन्हा**=समझा। 3. **गाते**=बताते, समझाते। 4. **चौथे पद**=चौथा पद, सतलोक। 5. **तीन लोक**=त्रिलोकी। 6. **आँख...लखाऊँ**= यह भेद आन्तरिक आँख खुलने पर सामने आयेगा। 7. **सुर्ती...जमावे**=सुरत को दोनों आँखों के मध्य एकाग्र करें। 8. **देखे तिल**=तीसरे तिल में देखो; **पिल**=धस कर; **बस**= काबू। 9. **निरख**=देखकर; **पागे**=मगन हो। 10. **आतम**=सहसदल कँवल; **परमातम**= ब्रह्म, त्रिकुटी। 11. **सुन्न महल**=दसम् द्वार; **बैठक पाई**=ठिकाना बना लिया। 12. **निरखा**= देखा; **सत द्वारा**=सचखण्ड का दरवाज़ा। 13. **भाखा**=बयान किया; **गोय**=गुप्त। 14. **लोक वेद**=वेदों के अनुसार कर्म-धर्म करने वाले; **सो...कोई**=उनको सन्त-मार्ग पर यक़ीन नहीं होता।

॥ दोहा ॥

लोक वेद में जो पड़े, नाग पाँच डस खायँ।[1]
जन्म जन्म दुख में रहें, रोवें और चिल्लायँ॥ 31 ॥
जिन सतगुरु के बचन की, करी नहीं परतीत।
नहिं संगत करी संत की, वे रोवें सिर पीट॥ 32 ॥

क्वार मास चौथा

बचन 38: शब्द 4

आसक्त होना जीवों का मन और इन्द्रियों के भोगों में और भूलना अपने सत्तकुल को और प्रगट होना सतपुरुष दयाल का संत सतगुरु रूप धारन करके वास्ते उनके उद्धार के और उपदेश करना सुरत शब्द मार्ग का

क्वार महीना चौथा आया। जिव भौ सागर वार रहाया॥ 1 ॥[2]
पार न जावे वार रहावे। साध संत संग प्रीत न लावे॥ 2 ॥
जगत भोग में रहे अधीना। रोग सोग दुख सुख मलीना॥ 3 ॥[3]
ज्ञान वैराग भक्ति नहिं धारी। मोह राग हंकार पचा री॥ 4 ॥[4]
क्वारी सुरत करे व्यभिचारा। मन इन्द्री संग फिरती लारा॥ 5 ॥[5]
काम क्रोध में भरमत डोले। जड़ चेतन की गाँठ न खोले॥ 6 ॥[6]
सतसंग करे न सतगुरु सेवे। भाव भक्ति में मन नहिं देवे॥ 7 ॥
काल चक्र का पड़ा हिंडोला। ऊँच नीच खावे झकझोला॥ 8 ॥[7]

---

1. **नाग पाँच**=पाँच विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। 2. **भौ सागर वार**=भवसागर के इस ओर यानी भवसागर में। 3. **मलीना**=मलिन। 4. **राग**=सांसारिक प्रीति; **पचा**=डूबा हुआ। 5. **व्यभिचारा**=विषय-भोग; **लारा**=लाल यानी लिप्त, रँगी हुई। 6. **जड़...गाँठ**=मन और आत्मा की गाँठ। 7. **हिंडोला**=झूला; **झकझोला**=झटके।

जन्म अनेक झूलते बीते। जम झोटन के सहे फ़ज़ीते॥ 9 ॥[1]
धर्मराय नित करे ख़ुवारी। नर्कन में भोगे दुख भारी॥ 10 ॥[2]
कर्म भार सिर ऊपर लादा। घेरे फिरे काल का प्यादा॥ 11 ॥[3]
प्यादों के संग इज़्ज़त ख़ोती। सतनाम कुल की थी गोती॥ 12 ॥
गोत लजाया जाति गँवाई। तो भी मन में लाज न आई॥ 13 ॥[4]
लाज करी तो मन के कुल की। सुध भूली सब अपने कुल की॥ 14 ॥[5]
कुल इसका है सब से ऊँचा। संत बिना कोइ जहाँ न पहुंचा॥ 15 ॥
शेष महेश रहे सब नीचे। ब्रह्म और पारब्रह्म रहे बीचे॥ 16 ॥[6]
सतपुरुष को लज्जा आई। संत औतार धरा जग माहीं॥ 17 ॥
संत रूप धर जिव उपदेशें। बानी नाव बना जिव खेवें॥ 18 ॥[7]
सुरत अजान न बूझे बानी। फिर फिर डूबे कहा न मानी॥ 19 ॥
भौसागर में ग़ोते खावे। मनमत ठान चौरासी धावे॥ 20 ॥[8]
संत बतावें सत की रीत। यह नहिं माने कुछ परतीत॥ 21 ॥[9]
बिन परतीत रीत नहिं पावे। जन्म जन्म चौरासी जावे॥ 22 ॥
चौरासी से संत बचावें। उनका बचन न मन ठहरावे॥ 23 ॥[10]
मन के रंग फिरे बहुरंगी। ढंग न सीखे बड़ी कुढंगी॥ 24 ॥[11]
साध संत का ढंग नहिं सीखे। भोगे दुख रस चाखे फीके॥ 25 ॥[12]
रस फीके संसार के सबही। अंतर का रस अगम न लेही॥ 26 ॥[13]
स्वाँति बदरिया अंतर बरसे। सुरत लगावे तो मन सरसे॥ 27 ॥[14]
शरद चन्द्रमा अंतर दरसे। सुन्न की धुन्न जाय जब परसे॥ 28 ॥[15]

1. **फ़ज़ीते**=मुसीबतें, कष्ट। 2. **ख़ुवारी**=दुर्गति। 3. **काल का प्यादा**=यमदूत। 4. **गोत लजाया**=वंश यानी ख़ानदान को लज्जित किया। 5. **सुध**=याद। 6. **शेष**=शेषनाग; **महेश**=शिवजी। 7. **बानी नाव**=बचनों की नाव; **खेवें**=पार लगावें। 8. **मनमत ठान**=मनमत में पड़कर। 9. **रीत**=रीति, तरीक़ा, साधन। 10. **न...ठहरावे**=मन में धारण नहीं करती। 11. **बहुरंगी**=अनेक अवस्थाओं में विचरण करने वाली; **कुढंगी**=उलटे ढंग वाली, उलटी मत वाली। 12. **ढंग**=तरीक़ा, साधन। 13. **अगम**=अति उत्तम। 14. **स्वाँति**=अमृत की बूँद; **बदरिया**=बादल; **सरसे**=खिले, प्रसन्न हो। 15. **शरद चन्द्रमा**=पूर्णिमा का चाँद; **सुन्न...परसे**=जब दसम् द्वार की शब्द धुन को पकड़ती है।

मोती चुने मानसरवर के। भोगे भोग मराल नगर के॥ 29 ॥[1]
जो संतन के बचन सम्हाले। जाय त्रिबेनी होय निहाले॥ 30 ॥[2]

॥ दोहा ॥

होय निहाल सुन्दर लखे, सुने किंगरी नाद।[3]
नाद सुरत होवत मगन, फिर खोजत पद आद॥ 31 ॥[4]
संत दया सतगुरु मया, पाया आद अनाद॥[5]
गति मति कहते ना बने, सुरत भई बिस्माद॥ 32 ॥[6]

कातिक मास पाँचवाँ

बचन 38: शब्द 5

वर्णन कँवलों का अंदर काया के और बड़ाई संत मते की

कातिक मास पाँचवाँ चला। सुरत शब्द गुरु चेला मिला॥ 1 ॥[7]
तक काया कँवलन विधि भाखी। कँवल दुवादस काया राखी॥ 2 ॥[8]
प्रथमे कँवल गनेश बिलासा। कँवल दूसरे ब्रह्मा बासा॥ 3 ॥
कँवल तीसरे विष्णु प्रकाशा। चतुर्थ कँवल शिव शक्ति निवासा॥ 4 ॥
आतम कँवल पाँचवाँ होई। छठा कँवल परमातम सोई॥ 5 ॥
कँवल सातवें काल बसेरा। जोत निरंजन का वहाँ डेरा॥ 6 ॥[9]
कँवल आठवाँ त्रिकुटी माहीं। सूरज ब्रह्म बसे तेहि ठाहीं॥ 7 ॥[10]

---

1. **मानसरवर**=मानसरोवर, दसम् द्वार का अमृतसर; **मराल नगर**=हँसों का देश, दसम् द्वार। 2. **त्रिबेनी**=त्रिवेणी, इड़ा, पिंगला और सुष्मना का संगम, मानसरोवर। 3. **सुन्दर**=सुन्न+दर यानी सुन्न का दरवाज़ा; **किंगरी नाद**=किंगरी जैसी शब्द धुन, दसम् द्वार की शब्द धुन। 4. **आद**=आदि, मूल। 5. **मया**=कृपा। 6. **बिस्माद**=वह अद्‌भुत अवस्था जो बयान से बाहर है। 7. **सुरत...मिला**=सुरत रूपी शिष्य को शब्द रूपी गुरु मिल गया। 8. **तक...राखी**=काया के बारह कँवलों (कँवलन) को बयान किया जा रहा है। 9. **कँवल सातवें**=सातवाँ कँवल यानी सहसदल कँवल जो सन्तमत में पहली रूहानी मंज़िल है; **जोत...डेरा**=इसका मालिक जोत निरंजन है, जिसे काल भगवान भी कहते हैं। 10. **सूरज...ठाहीं**=उस मण्डल के सूर्य की रोशनी लाल है और ब्रह्मा उस मण्डल का धनी है।

नवाँ कँवल है दसवें द्वारे। पारब्रह्म जहँ बसे निरारे॥ 8 ॥[1]
महासुन्न में कँवल अचिंता। कँवल दसम का वहाँ बरतंता॥ 9 ॥[2]
कँवल इकादश भँवरगुफा पर। द्वादस कँवल सत्तपद अंतर॥ 10 ॥[3]
खट चक्कर यह पिंड सँवारा। तीन चक्र ब्रह्मंड अधारा॥ 11 ॥[4]
तीन कँवल जो ऊपर रहे। संत बिना कोइ बरन न कहे॥ 12 ॥[5]
षष्ट कँवल तक जोगी आसन। नवें कँवल जोगेश्वर बासन॥ 13 ॥[6]
पिंड ब्रह्मंड का इतना लेखा। योगी ज्ञानी यहाँ तक देखा॥ 14 ॥
आगे का कोई भेद न जाने। तीन कँवल सो संत बखाने॥ 15 ॥
कोइ छ: तक कोइ नौ तक भाखे। सर्व मते इन भीतर थाके॥ 16 ॥
बड़ा संत मत सब से आगे। संत कृपा से कोइ कोइ जागे॥ 17 ॥
जो पहुंचे द्वादस अस्थाना। सोई कहिये संत सुजाना॥ 18 ॥[7]
संतन का मत सब से ऊँचा। जो परखे सोई धुर पहुंचा॥ 19 ॥
पहुंचे की क्या करूँ बड़ाई। सब मत उसके नीचे आई॥ 20 ॥
जो मन में परतीत न देखे। तो कबीर गुरु बानी पेखे॥ 21 ॥[8]
तुलसी साहब का मत जोई। पलटू जगजीवन कहें सोई॥ 22 ॥
इन संतन का देऊँ प्रमाना। इनकी बानी साख बखाना॥ 23 ॥[9]
जोग ज्ञान मत इनहूं भाखा। पुनि संतन मत ऊँचा राखा॥ 24 ॥
जोगी और वेदान्ती भाई। संतन मत परतीत न लाई॥ 25 ॥

---

1. **निरारे**=न्यारा। 2. **अचिंता**=अचिंत पुरुष का; **बरतंता**=वृत्तान्त, हाल, वर्णन। 3. **इकादश**=एक+दस यानी ग्यारहवाँ कँवल; **द्वादस कँवल**=दो+दस यानी बारहवाँ कँवल; **सत्तपद अंतर**=सच्चे पद यानी सचखण्ड में। 4. **खट...सँवारा**=गणेश चक्र यानी पहले कँवल से लेकर दोनों आँखों के बीच में स्थित दो दल कँवल यानी छठे चक्र तक की रचना को पिण्ड कहा है। 5. **तीन...कहे**=दसवें, ग्याहरवें और बारहवें कँवल का हाल सिर्फ़ सन्तों ने ही बयान किया है। 6. **षष्ट...आसन**=छटे चक्र तक पहुँचने वाले साधक को योगी और नौवें चक्र यानी कँवल तक पहुँचने वाले साधक को योगेश्वर कहते हैं। 7. **द्वादस अस्थाना**=बारहवें कँवल यानी सतलोक में। 8. **गुरु बानी**=ग्रन्थ साहिब की वाणी जिसमें गुरु साहिबान की वाणी के साथ और बहुत से महात्माओं की वाणी शामिल है। 9. **साख**=साक्षी, प्रमाण।

वेद कतेब न पहुंचे तहँ हीं। थके बीच में रस्ते माहीं॥ 26 ॥[1]
बार बार कह कर समझाऊँ। संतन का मत ऊँचा गाऊं॥ 27 ॥
जो परतीत न लावे या की। जानो काल ग्रसी बुधि वा की॥ 28 ॥[2]
वे कहा जानें मत संतन को। एक मिलावें काँच रतन को॥ 29 ॥[3]
उनसे यह मत खोल न कहिये। सैन जनाय मौन गहि रहिये॥ 30 ॥[4]

॥ दोहा ॥

संत मता सब से बड़ा, यह निश्चय कर जान।
सूफ़ी और वेदान्ती, दोनों नीचे मान॥ 31 ॥
संत दिवाली नित करें, सतलोक के माहिं।
और मते सब काल के, योंही धूल उड़ायँ॥ 32 ॥

अगहन मास छठा

बचन 38: शब्द 6

महिमा सतगुरु की और विधि सतसंग और भक्ति
की और चढ़ कर पहुंचना सुरत का सत्तलोक में
उन की मेहर और दया से

आया मास अगहन अब छठा। अघ की हानि हुई मल घटा॥ 1 ॥[5]
मन हुआ निर्मल चित हुआ निश्चल। काम क्रोध गये इन्द्री निष्फल॥ 2 ॥
धरन छोड़ सुर्त चढ़ी अकाशा। शब्द पाय आई महाकाशा॥ 3 ॥[6]

---

1. **वेद कतेब**=चारों वेद और चारों मज़हबी किताबें—तुरैत, ज़बूर, बाइबल और क़ुरान यानी सब की सब धार्मिक पुस्तकें। 2. **ग्रसी**=ग्रस ली यानी वश में कर ली। 3. **वे...को**=ऐसे लोगों के लिए सन्तों और दूसरे लोगों में कोई फ़र्क़ नहीं जैसे एक अनजान के लिये शीशे और हीरे में फ़र्क़ नहीं होता। 4. **सैन...रहिये**=अगर कोई इशारे से समझ जाये तो समझा दो, वरना ख़ामोशी बेहतर है। 5. **अगहन**=पंजाब में इस मास को 'मगहर' कहते हैं; **अघ**=पाप। 6. **धरन**=धरती।

शब्द संग नित करे बिलासा। देखे अचरज बिमल तमाशा॥ 4 ॥[1]
छोड़ा यह घर पकड़ा वह घर। खोया जग को पाया सतगुरु॥ 5 ॥
जब से सतगुरु सरना लीन्हा। सतनाम धुन घट में चीन्हा॥ 6 ॥
धन सतगुरु धन उनकी संगत। जिन प्रताप पाई मैं यह गत॥ 7 ॥
कर सतसंग काज किया पूरा। पाप नसे मानो खाया धतूरा॥ 8 ॥[2]
पाप पुन्य दोउ गये नसाई। भक्ति भाव जिव हृदय समाई॥ 9 ॥
अब यह सतसंग गुरु का पावे। हिल मिल चरन माहिं लिपटावे॥ 10 ॥
चरन सेव चरनामृत पीवे। गुरु परशादी खा नित जीवे॥ 11 ॥
दर्शन करे बचन पुनि सुने। फिर सुन सुन नित मन में गुने॥ 12 ॥
गुन गुन छाँट लेय उन सारा। सार धार तिस करे अहारा॥ 13 ॥[3]
कर अहार पुष्ट हुआ भाई। जग भौ लाज अब गई नसाई॥ 14 ॥[4]
गुरु भक्ती जानों इश्क़ गुरू का। मन में धसा सुरत में पक्का॥ 15 ॥
पक पक घट में गाड़ा थाना। थान गाड़ अब हुआ दिवाना॥ 16 ॥[5]
गुरु का रूप लगे अस प्यारा। कामिन पति मीना जल धारा॥ 17 ॥[6]
सतसंग करना ऐसा चहिये। सतसंग का फल येही सही है॥ 18 ॥[7]
सतसंग सतसंग मुख से गावें। करें नित्त फल कछू न पावें॥ 19 ॥
सतसंग महिमा है अति भारी। पर कोइ जीव मिले अधिकारी॥ 20 ॥
अधिकारी बिन प्रगट नहीं फल। सतसंग तौ कीन्हा सब चल चल॥ 21 ॥
चल चल आये सतगुरु आगे। बचन न पकड़ा दरस न लागे॥ 22 ॥
सतसंग और सतगुरु क्या करें। सो जिव भौजल कैसे तरें॥ 23 ॥
पत्थर पानी लेखा बरता। जल मिसरी सम मेल न करता॥ 24 ॥[8]
बाहर का संग जब अस होई। सतगुरु सम प्रीतम नहिं कोई॥ 25 ॥[9]

---

1. **बिमल**=निर्मल, पवित्र। 2. **धतूरा**=एक प्रकार का ज़हर। 3. **सारा**=सार तत्त्व, सार पदार्थ। 4. **भौ**=भय, डर; **लाज**=शर्म, लज्जा। 5. **गाड़ा थाना**=अड्डा जमा लिया। 6. **कामिन...धारा**=जैसे स्त्री के लिए अपना पति, जैसे मछली के लिए जल की धारा। 7. **चहिये**=चाहिए। 8. **पत्थर...करता**=पत्थर की तरह पानी में पड़ा रहा, मिश्री की तरह जल में न घुला। 9. **अस**=ऐसा।

तब अंतर का सतसंग धारे। सुरत चढ़े असमान पुकारे॥ 26॥
बोले अर्श और गरजे गगना। बैठा कुरसी मन हुआ मगना॥ 27॥
ला-मुक़ाम पाया लाहूत। छोड़ा नासूत मलकूत जबरूत॥ 28॥[1]
हाहूत का जाय खोला द्वारा। हूतलहूत और हूत सम्हारा॥ 29॥[2]
हूत मुक़ाम फ़क़ीर अख़ीरी। रूह सुरत जहाँ देती फेरी॥ 30॥[3]

॥ दोहा॥

अल्लाहू त्रिकुटी लखा, जाय लखा हा सुन्न।
शब्द अनाहू पाइया, भँवरगुफा की धुन्न॥ 31॥
हक़्क़ हक़्क़ सतनाम धुन, पाई चढ़ सचखंड।
संत फक़र बोली जुगल, पद दोउ एक अखंड॥ 32॥[4]

पूस मास सातवाँ

बचन 38: शब्द 7

वर्णन स्वरूप सुरत और शब्द का और उपदेश
सतगुरु भक्ति और सतसंग का जो कि मुख्य उपाय
प्राप्ति मेहर और दया का है

पूस महीना जाड़ा भारी। कर्म भर्म ज्यों फूस जला री॥ 1॥[5]
जल जल ढेर हुआ जब भारी। प्रेम पवन से तुरत उड़ा री॥ 2॥[6]

---

1. **ला-मुक़ाम**=समय और स्थान की सीमा से परे का मुकाम; **लाहूत**=दसम् द्वार; **नासूत**=पिण्ड के छः चक्र; **मलकूत**=सहसदल कँवल; **जबरूत**=त्रिकुटी। 2. **हाहूत**=महासुन्न; **हूतलहूत**=भँवरगुफ़ा; **हूत**=सचखण्ड। 3. **रूह...फ़ेरी**=आत्मा सत्तपुरुष की परिक्रमा करती है और अति प्रसन्न होती है। 4. **संत...अखंड**=अलग-अलग महात्माओं की बोली ज़रूर अलग-अलग है, लेकिन वे जिस अखंड देश की बात करते हैं, वह एक है। 5. **पूस महीना**=पंजाब में इसे पोह का महीना कहते हैं; **जाड़ा**=सर्दी। 6. **तुरत**=तुरन्त, एकदम।

मोह सीत ने चित को घेरा। सूर विवेक किया घट फेरा॥ 3 ॥[1]
फेरा करत भक्ति गुरु जागी। सुरत भई अनहद अनुरागी॥ 4 ॥[2]
राग भोग सब दूर निकारा। विमल विरह वैराग सम्हारा॥ 5 ॥[3]
सहज जोग गुरु दिया बताई। सुरत शब्द मारग लखवाई॥ 6 ॥[4]
झीनी सुरत रूप नहिं दरसे। परसे शब्द जाय मन घर से॥ 7 ॥[5]
सुन्न शिखर जाय रूप दिखाना। गगन मंडल के पार ठिकाना॥ 8 ॥[6]
रूप सुरत का दरसा ऐसा। बिन अनुभव क्यों कर कहूं कैसा॥ 9 ॥
अनुभव से वह जाना जाई। शब्द बिना अनुभव नहिं पाई॥ 10 ॥
सुरत शब्द दोउ अनुभव रूपा। तू तो पड़ा भर्म के कूपा॥ 11 ॥[7]
करनी करकर सुरत चढ़ाओ। शब्द मिले अनुभव घर पाओ॥ 12 ॥[8]
बिना शब्द अनुभव नहिं होई। अनुभव बिन समझे नहिं कोई॥ 13 ॥
सुरत शब्द दोउ रूप अमोला। सुन्न चढ़े जिन निज कर तोला॥ 14 ॥[9]
ताते करनी गुरू बताई। सतगुरु दया लेव संग भाई॥ 15 ॥[10]
मेहर दया करनी करवाई। करनी कर बहु मेहर बढ़ाई॥ 16 ॥
करनी मेहर संग दोउ चलते। तब फल पूरा चढ़ चढ़ लेते॥ 17 ॥
अस संजोग मौज से होई। मौज उपाव नहीं अब कोई॥ 18 ॥[11]
पच पच थक थक सब ही हारे। मौज बिना क्या करें बिचारे॥ 19 ॥
इक उपाय कुछ मन में आया। पर थोड़ा सा चित्त समाया॥ 20 ॥
जब जब संत जगत में आवें। ढूंढ भाल उनके ढिंग जावें॥ 21 ॥[12]

---

1. **मोह सीत**=मोह की ठण्डक; **सूर विवेक**=विवेक रूपी सूर्य; **घट**=अन्तर में। 2. **अनहद अनुरागी**=अनहद शब्द की प्रेमी। 3. **राग**=सांसारिक प्रेम; **विमल**=निर्मल। 4. **सहज जोग**=वह साधन जिससे सहज की प्राप्ति हो। 5. **झीनी**=सूक्ष्म; **परसे...से**= आत्मा शब्द के मिलाप से मन के घर यानी त्रिकुटी को पार कर जाती है। 6. **सुन्न शिखर**=सुन्न मण्डल यानी दसम् द्वार की चोटी; **गगन मंडल**=त्रिकुटी। 7. **भर्म के कूपा**=भ्रम के कुँए में। 8. **करनी**=अभ्यास, सुरत-शब्द का अभ्यास। 9. **दोउ**=दोनों का; **अमोला**=अनमोल; **सुन्न**=सुन्न मण्डल, दसम द्वार; **निज...तोला**=अपने आप को पहचाना। 10. **ताते**=इसलिए; **संग**=साथ। 11. **अस...होई**=ऐसा संयोग (गुरु से मिलाप और शब्द की कमाई) गुरु की मौज और दया मेहर से होता है। 12. **ढिंग**=पास।

जाय करें नित सेवा दर्शन। हाज़िर रहें गिरें उन चरनन॥ 22॥
नित्त हाज़िरी उनकी करते। मन से दीन लीन होय रहते॥ 23॥[1]
पर यह बात बड़ी अति झीनी। संत करावें निंदा अपनी॥ 24॥[2]
निन्दा चौकीदार बिठाई। कोई जीव धसने नहिं पाई॥ 25॥
बिरला जीव होय अनुरागी। निंदा से वह छिन छिन भागी॥ 26॥[3]
निंदा सुन सुन चित नहिं धारे। संतन की यह जुगत विचारे॥ 27॥[4]
जस जाने तस मन समझावे। संतन सन्मुख ज्यों त्यों आवे॥ 28॥
ऐसी दृढ़ता जाकर होई। तो फिर संत मौज करें सोई॥ 29॥[5]
संत मौज फिर कोइ न टारे। ईश्वर परमेश्वर सब हारे॥ 30॥

॥ दोहा॥

संत डारिया बीज, घट धरती जेहि जीव के।[6]
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को॥ 31॥[7]
कोई काल के माहिं, वह बीजा अंकुर गहे।[8]
जब जब आवें संत, अंकूरी उन संग रहे॥ 32॥[9]

॥ सोरठा॥

वह सींचें निज पौद, होय भक्त वह पेड़ सम।[10]
फल लागें अति से सरस, भोगें सतगुरु मेहर से॥ 33॥[11]

---

1. **दीन**=विनम्र; **लीन**=मगन। 2. **झीनी**=सूक्ष्म, विचित्र, अजब। 3. **अनुरागी**=प्रेमी; **निंदा...भागी**=वह सन्तों की निन्दा से दूर भागते हैं यानी बचकर रहते हैं। 4. **निंदा...धारे**=अगर सन्तों की निन्दा सुन भी लें तो भी मन पर उसका असर नहीं होने देते। 5. **दृढ़ता**=विश्वास, भरोसा; **मौज**=दया; **सोई**=उन पर। 6. **बीज**=नाम रूपी बीज; **घट धरती**=हृदय रूपी धरती। 7. **को...को**=किसी में ऐसी ताक़त नहीं जो गुरु के नाम को जला दे। 8. **कोई...माहिं**=समय पाकर; **अंकुर गहे**=अंकुरित होता है, फलीभूत होता है। 9. **अंकूरी**=सन्तों का चिताया संस्कारी जीव। 10. **निज पौद**=अपना लगाया हुआ पौधा, यानी अपना चिताया हुआ जीव। 11. **अति से सरस**=बहुत रसीले।

कारज कीन्हा पूर, संत धूर हिरदे धरी।[1]
सूर हुआ मन चूर, नूर तूर घट में प्रगट॥ 34 ॥[2]

माघ मास आठवाँ

बचन 38: शब्द 8

वर्णन लीला और विलास मुक़ामात का और उनके रास्ते का अंतर में

माघ महीना अति रस भरा। काया बन मन गुलशन हरा॥ 1 ॥[3]
चमन चमन फुलवारी खिली। बाग़ बाग़ नहरें अब चलीं॥ 2 ॥[4]
गुरु भक्ति और पौद प्रेम की। क्यारी धीरज दया नेम की॥ 3 ॥
अस अस लीला देखी घट में। मन माली सींचे छिन छिन में॥ 4 ॥
नैनन आगे पचरंग फूल। पल पल निरखत तिल तिल झूल॥ 5 ॥[5]
तत्त्व पृथ्वी भिन्न होय दरसा। ऋतु बसंत फूली मन सरसा॥ 6 ॥[6]
झलक जोत और उमंड घटा की। रिमझिम बरसे बूंद अमी की॥ 7 ॥
सहस धार दल सहस कँवल में। उठें तरंगें फैलें मन में॥ 8 ॥
मन चढ़ चला महल अपने में। उल्टा पहुंचा गगन मंडल में॥ 9 ॥
गगन मंडल लीला इक न्यारी। शब्द गुरू की खिल रही क्यारी॥ 10 ॥[7]
मूल नाम और शाखा धुन की। फूली जहँ फुलवार त्रिगुन की॥ 11 ॥[8]
यह लीला घट माहिं निहारी। महिमा नाम कहा कहूं भारी॥ 12 ॥

---

1. **संत धूर**=सन्तों की चरण-धूलि (यहाँ इशारा आन्तरिक चरण धूलि की ओर है)। 2. **सूर... प्रगट**=घट में शब्द का प्रकाश हो गया और मन, जो अभी तक बहुत बलवान था, उसका घमण्ड चूर-चूर हो गया। 3. **काया...हरा**=काया रूपी वन में मन रूपी बाग़ हरा-भरा हो गया। 4. **चमन**=बग़ीचा। 5. **पचरंग फूल**=पाँच तत्त्वों के रंगों वाली फुलवाड़ी के फूल; **झूल**=झूलती है। 6. **तत्त्व...दरसा**=सुरत पृथ्वी तत्त्व यानी शरीर से अलग हो गयी; **सरसा**=खिल गया। 7. **गगन मंडल**=त्रिकुटी। 8. **मूल...की**=नाम रूपी जड़ पर शब्द रूपी शाखा और सत, तम और रज—तीन गुणों के फूल खिले।

सरगुन नाम और सरगुन रूपा। वहाँ तक देखा मन का सूता॥ 13 ॥[1]
अब आगे सूरत चढ़ चाली। पैठी जाय सुखमना नाली॥ 14 ॥[2]
सुखमन में निज मन दरसाना। निज मन आगे निरगुन जाना॥ 15 ॥[3]
यह निरगुन वह सरगुन देखा। दोनों घाट भिन्न कर पेखा॥ 16 ॥[4]
अब आगे पाँजी इक गाऊँ। गंधर्प नाल के मध्य चढ़ाऊँ॥ 17 ॥[5]
नाल भुवंगन बायें त्यागी। दहने नाल धुन्धरी जागी॥ 18 ॥[6]
जागत नाल काल मुख मूंदा। घाट अठासी नाका रूँधा॥ 19 ॥[7]
सिंह पौल ढिंग झँझरी निरखी। सेत पदमनी जाली परखी॥ 20 ॥[8]
सुन्न ताल जहँ धुन भंडारा। छजली कजली दीप निहारा॥ 21 ॥[9]
सागर नागर जाकर झाँका। कुरम शेष अक्षर जहाँ थाका॥ 22 ॥[10]
जहाँ सुरंगी दीप झरोखा। सुरत अड़ी जाय द्वारा रोका॥ 23 ॥[11]
संदली चंदली चौकी डारी। सुरत मंडली पाट खुला री॥ 24 ॥[12]
कुंडल दीप छबीली रमना। दामिन दीप सोत का झरना॥ 25 ॥[13]

---

1. **सरगुन...सूता**=सर्गुण नाम और सर्गुण स्वरूप तीन गुणों पर आधारित है और मन की रचना यहाँ तक है। 2. **पैठी**=धँसी; **सुखमना नाली**=सुषम्ना नाड़ी, बीच का रास्ता। 3. **निज मन**=मन का असली रूप, ब्रह्मण्डी या कारण मन; **निरगुन**=गुणों से ऊपर। 4. **यह...देखा**=यहाँ त्रिकुटी के पार यानी दसम् द्वार में अपना निर्गुण रूप देखा और इससे पहले का सर्गुण रूप भी। 5. **पाँजी**=रास्ता। 6. **जागी**=जाग्रत हुई, प्रकट हुई। 7. **जागत...रूँधा**= इस (धुन्धर नाल) के जाग्रत होने पर काल का मुँह बन्द हो गया और वह अट्ठासी हज़ार द्वीपों वाले मण्डल में रुक गया। 8. **सिंह...परखी**=मन के दरवाज़े पर झँझरी देखी और उस जाली (झँझरी) के बीच में से सफ़ेद कँवल देखा। 9. **सुन्न...निहारा**=दसम् द्वार के ताल (मानसरोवर) में जहाँ से ब्रह्मण्ड और पिण्ड की धुनें उठती हैं, छजली और कजली नामक द्वीप दिखाई दिये। 10. **नागर**=एक सागर का नाम; **कुरम**=सत्तपुरुष की सोलह कलाओं में से एक; **शेष**=शेषनाग, सहसदल कँवल का धनी; **अक्षर**=दसम् द्वार का धनी; **जहाँ थाका**=यहाँ से आगे न जा सके। 11. **जहाँ... झरोखा**=जहाँ एक झरोखे में से रंग-बिरंगे द्वीप नज़र आते हैं; **सुरत...रोका**=सुरत को वहाँ पहुँचकर रुकना पड़ा। 12. **सुरत...री**=आत्माओं की मण्डली पर से पर्दा उठ गया यानी वे नज़र आने लगी। 13. **कुंडल...झरना**=कुण्डल द्वीप की रचना बहुत मनमोहक है। वहाँ नदियाँ हैं, झरने हैं और बिजली की चमक के नज़ारे हैं।

नीलम कुंड रतन नल पाल। महाकाल रचिया जहाँ जाल॥ 26 ॥[1]
कंकन घाटी सुरत झुमाई। जाल काल सब दूर पड़ाई॥ 27 ॥[2]
सेत धरन जहाँ लाल अकासा। हंस छावनी देख बिलासा॥ 28 ॥[3]
यह पाँजी निरखी निज धामी। बिमल दीप बैठे जहाँ स्वामी॥ 29 ॥[4]
पोहप नगर जहाँ अमृत धाम। हंस बसें पावें विश्राम॥ 30 ॥[5]

॥ दोहा ॥

बैठक स्वामी अद्‌भुती, राधा निरख निहार।
और न कोइ लख सके, शोभा अगम अपार॥ 31 ॥
गुप्त रूप जहाँ धारिया, राधास्वामी नाम।
बिना मेहर नहिं पावई, जहाँ कोई बिसराम॥ 32 ॥

फागुन मास नवाँ

बचन 38: शब्द 9

उतरना सुरत का बीच नौ द्वार के और फँस जाना
मन और इन्द्रियों का संग करके भोगों में और फिर
आना सतपुरुष दयाल का संत सतगुरु रूप धार कर
और पहुँचाना सुरत का निज घर में शब्द मार्ग की
कमाई से और वर्णन भेद रास्ते और मुक़ामात का

फागुन मास रंगीला आया। धूम धाम जग में फैलाया॥ 1 ॥
घर घर बाजे गाजे लाया। झाँझ मजीरा डफ़ बजाया॥ 2 ॥[6]

1. **नीलम...जाल**=वहाँ नीलम के कुंड और रत्नों के झरने और सरोवर हैं, जहाँ महाकाल ने अपना जाल बिछा रखा है। 2. **कंकन...पड़ाई**=कंगन की शक्ल की घाटी में जाकर सुरत ने महाकाल के जाल को तोड़ दिया। 3. **सेत धरन**=सफ़ेद धरती। 4. **यह... स्वामी**=यहाँ से निज धाम का रास्ता दिखाई दिया जहाँ एक अति पवित्र द्वीप में, जिसे विमल द्वीप कहते हैं, स्वामी यानी कुल-मालिक बैठा है। 5. **पोहप**=पुष्प, फूल। 6. **झाँझ, मजीरा, डफ़**=संगीत में बजाये जाने वाले साज़ों के नाम।

यह नर देही फागुन मास। सुरत सखी आई करन बिलास॥ 3 ॥[1]
मन इन्द्री संग खेली फाग। उत से सोई इत को जाग॥ 4 ॥[2]
जग में आ संजोग मिलाया। लोक लाज कुल चाल चलाया॥ 5 ॥
भोग रोग परिवार बँधानी। फगुआ खेली होली ठानी॥ 6 ॥
धूल उड़ाई छानी ख़ाक। पाप पुन्य संग हुई नापाक॥ 7 ॥
इच्छा गुन संग मैली भई। रंग तरंग बासना गही॥ 8 ॥[3]
फल पाया भुगती चौरासी। काल देस जहँ बहुत तिरासी॥ 9 ॥[4]
आस त्रास माहिं अति फँसी। देख देख तिस माया हँसी॥ 10 ॥[5]
हँस हँस माया जाल बिछाया। निकसन की कोइ राह न पाया॥ 11 ॥[6]
तब संतन चित दया समाई। सतलोक से पुनि चलि आई॥ 12 ॥
ज्यों त्यों चौरासी से काढ़ा। नर देही में फिर ले डाला॥ 13 ॥[7]
चरन प्रताप सरन में आई। तब सतगुरु अतिकर समझाई॥ 14 ॥
तुझको फिर कर फागुन आया। सम्हल खेलियो हम समझाया॥ 15 ॥[8]
सुरत कहे सुनो संत सुवामी। कस खेलूँ कहो अंतरजामी॥ 16 ॥
तब सतगुरु इक भेद लखाया। सुरत जोग मारग बतलाया॥ 17 ॥[9]
सुरत चली अब खेलन होली। कर सिंगार बैठ धुन डोली॥ 18 ॥[10]
विरह अनुराग रंग घट लीन्हा। मन को संग ले तन तज दीन्हा॥ 19 ॥[11]
शब्द गुरू से पहले खेली। गगन चौक चढ़ त्रिकुटी ले ली॥ 20 ॥
त्रिकुटी माहिं बहुत दिन खेली। ओंकार संग कीन्हा मेली॥ 21 ॥[12]

---

1. **सुरत...बिलास**=आत्मा यहाँ सच्ची ख़ुशी प्राप्त करने यानी परमात्मा से मिलकर सुहागिन होने आयी थी। 2. **फाग**=होली; **उत...जाग**=परमात्मा की तरफ़ से बेख़बर हो गयी और दुनिया की ओर जाग पड़ी यानी दुनिया के झमेलों में उलझ गयी। 3. **इच्छा गुन**=सांसारिक इच्छाएं और तीन गुण— सत, रज, तम; **बासना**=मन की वासनाएँ। 4. **तिरासी**=डर गयी, भयभीत हो गयी। 5. **आस त्रास**=आशा और निराशा का चक्र। 6. **निकसन की**=निकलने की। 7. **काढ़ा**=निकाला। 8. **तुझको...आया**=अब फिर होली खेलने का समय यानी मनुष्य जन्म मिला है; **सम्हल**=सह्यंभल कर यानी सोच-समझकर। 9. **सुरत जोग**=सुरत-शब्द योग। 10. **कर...डोली**=गुरु भक्ति रूपी शृंगार करके, शब्द धुन रूपी डोली में बैठकर। 11. **विरह...दीन्हा**=हृदय में विरह और प्यार का रंग भरकर मन को साथ ले लिया और शरीर को त्याग डाला। 12. **ओंकार**=दूसरे रूहानी मण्डल त्रिकुटी का धनी।

लाल गुलाल रूप सुर्त पाया। तब सतगुरु सुन्न शब्द सुनाया॥ 22 ॥[1]
आगे बढ़ी चढ़ी ऊँचे को। उलट न देखे अब नीचे को॥ 23 ॥
चल चल पहुंची सतलोक में। फगुवा माँगे सतनाम से॥ 24 ॥
गई जहाँ से फिर वहीं आई। पद में अपने आन समाई॥ 25 ॥
रंग रंग नित खेलत होली। जो होना था सो अब हो ली॥ 26 ॥[2]
छोड़ा पिंडा छोड़ा अंडा। खंड खंड कीन्हा ब्रह्मंडा॥ 27 ॥[3]
निज घर अपने जाकर बसी। सत्त शब्द धुन बीना रसी॥ 28 ॥[4]
हंस रूप अब धारा असली। देह रूप धर बहुतक फँसली॥ 29 ॥[5]
काल निरंजन तोड़ी पसली। हो गइ सतनाम गल हँसली॥ 30 ॥[6]

॥ दोहा ॥

जब आवे सुर्त देह में, देह रूप ले ठान।
जब चढ़ उलटे सुन्न को, हंस रूप पहिचान॥ 31 ॥
सुरत रूप अति अचरजी, वर्णन किया न जाय।
देह रूप मिथ्या तजा, सत्त रूप हो जाय॥ 32 ॥[7]

चैत मास दसवाँ

बचन 38: शब्द 10

चैत महीना आया चेत। बाँधा सतगुरु भौ में सेत॥ 1 ॥[8]
जीव चिताये जो थे वार। भौसागर से कीन्हे पार॥ 2 ॥[9]

---

1. **सुर्त**=सुरत। 2. **हो ली**=हो गयी यानी बन गयी। 3. **पिंडा**=पिण्ड, शरीर, आँखों तक के छः चक्र; **अंडा**=अण्ड; **खंड...कीन्हा**=टुकड़े-टुकड़े किया, जीत लिया, पार कर लिया; **ब्रह्मंडा**=ब्रह्मण्ड। 4. **सत्त....रसी**=सतशब्द यानी बीन की धुन में समा गयी। 5. **हंस...फँसली**=जो बहुत देर तक देह में फँसी हुई थी, उसने अपना निर्मल आत्मिक स्वरूप प्राप्त कर लिया। 6. **हो...हँसली**=सत्तपुरुष के गले का हार बन गयी। 7. **मिथ्या**=नाशवान, झूठा। 8. **चेत**=होश; **बाँधा...सेत**=सतगुरु ने भवसागर में पुल बाँध दिया। 9. **वार**=इस ओर यानी भवसागर के अन्दर; **पार**=भवसागर से पार।

भौसागर अति गहिर गंभीर। सतगुरु पूरे बाँधी धीर॥ 3 ॥[1]
तन मन धन की लई जगात। शिष्य उतारे गहिकर हाथ॥ 4 ॥[2]
सुरत बहे थी नौ की धार। ताहि चढ़ाया गगन मँझार॥ 5 ॥[3]
गगन जाय धुन शब्द सिहारी। देखा रूप जोत अति भारी॥ 6 ॥[4]
जोत निहारे देखे तारा। बंक नाल का खोला द्वारा॥ 7 ॥[5]
संख सुना और धुन ओंकारा। शब्द गुरू का घाट निहारा॥ 8 ॥[6]
छोड़ा मन अब चेती सूरत। त्रिकुटी चढ़ निरखी गुरु मूरत॥ 9 ॥[7]
गुरु चेला मिल आगे चाली। मानसरोवर शब्द सम्हाली॥ 10 ॥[8]
हंसन साथ करी जाय यारी। सुरत सखी हुइ सबकी प्यारी॥ 11 ॥
सुन्न शहर में कुछ दिन बसी। फिर चढ़ ऊपर आगे धसी॥ 12 ॥[9]
महासुन्न इक नगर अपारा। कहूं कहा अचरज बिस्तारा॥ 13 ॥
धुन जहाँ चार गुप्त अति झीनी। संत बिना कोइ परख न चीन्ही॥ 14 ॥[10]
अचिंत दीप तहं दायें रहता। सहज दीप दस पालंग बसता॥ 15 ॥[11]
महिमा दीप कहा कहुं भारी। संतोष दीप तहाँ बायें सँवारी॥ 16 ॥
तहँ इक झिरना अजब रचानी। सुरत निरत से गही निशानी॥ 17 ॥[12]
देख निशान मध्य को धाई। भँवरगुफा की गली समाई॥ 18 ॥
तिस आगे मैदान दिखाना। सतलोक जहाँ पुरुष पुराना॥ 19 ॥[13]
निज पद पाय पुरुष से मिली। देख गली आगे फिर चली॥ 20 ॥[14]
अलख लोक में किया बसेरा। अगम लोक जाय डाला डेरा॥ 21 ॥
शोभा वहाँ की क्या कह गाऊँ। अरब खरब शशि सूर लजाऊं॥ 22 ॥

---

1. **बाँधी धीर**=धीरज बँधाया, हौसला दिया। 2. **जगात**=महसूल, टैक्स, कर; **गहिकर हाथ**=हाथ पकड़ कर, सहारा देकर, शरण में लेकर। 3. **नौ की**=नौ द्वारों की। 4. **सिहारी**=पकड़ ली, संभाल ली। 5. **बंक नाल**=टेढ़ा रास्ता। 6. **धुन ओंकारा**=त्रिकुटी की शब्द धुन; **घाट**=स्थान। 7. **छोड़ा...सूरत**=मन को पीछे छोड़कर सुरत को अपने आप की होश या पहचान आ गयी। 8. **मानसरोवर**=दसम् द्वार में स्थित अमृत का सरोवर। 9. **सुन्न शहर**=दसम् द्वार। 10. **झीनी**=सूक्ष्म। 11. **पालंग**=माप की एक ईकाई जो पूरी त्रिलोकी के बराबर है। 12. **तहँ...निशानी**=वहाँ एक अद्‌भुत झरना है जिसे आत्मा निरत की मदद से देखती है। 13. **पुराना**=आदि का। 14. **निज पद**=अपना असली पद, सतपद, सचखण्ड।

अब अनाम जहाँ रूप न नामा। संत करें जाय वहाँ विश्रामा॥ 23॥

सुरत चेत पाया बिसमाद। नहिं जहाँ बानी नहिं जहाँ नाद॥ 24॥[1]

आदि न अंत अनंत अपार। संतन का वह निज दरबार॥ 25॥

संत सभी वा घर से आवें। काल देश से जीव चितावें॥ 26॥

जो चेते तिस ले पहुंचावें। सुरत शब्द मारग बतलावें॥ 27॥

जीव चेत जो माने कहना। ता को फिर दुख सुख नहिं सहना॥ 28॥

मानो बचन करो कुछ करनी। सुरत निरत की धारो रहनी॥ 29॥

सतसंग करो गहो गुरु रंग। सुरत चढ़ाओ गगन उमंग॥ 30॥[2]

॥ दोहा ॥

सतगुरु संत दया करी, भेद बताया गूढ़।[3]
अब सुन जीव न चेतई, तो जानो अति मूढ़॥ 31॥[4]
भौसागर धारा अगम, खेवटिया गुरु पूर।
नाव बनाई शब्द की, चढ़ बैठे कोइ सूर॥ 32॥[5]

बैसाख मास ग्यारहवाँ

बचन 38: शब्द 11

वर्णन भेद काल मत और दयाल मत का
और प्रगट होना सत्तलोक का और रचना
तीन लोक की और सबब फैलने काल मत
का और गुप्त होना संत मते का

बैसाख महीना सिर पर आया। साख गई जिव हुआ पराया॥ 1॥[6]

काल पक्ष सब जीवन धारी। पुरुष दयाल की सुद्धि बिसारी॥ 2॥[7]

---

1. **बिसमाद**=हैरत, अद्‌भुत अवस्था; **बानी**=शब्द; **नाद**=शब्द या शब्द धुन। 2. **उमंग**=उत्साह और प्रेम से। 3. **गूढ़**=गहरा। 4. **मूढ़**=मूर्ख। 5. **सूर**=सूरमा, बहादुर। 6. **साख**=विश्वास, भरोसा। 7. **पक्ष**=तरफ़दारी; **जीवन**=जीवों ने।

सुरत देश अपना बिसराना। काल देश इन अपना जाना॥ 3॥
काल रची तिरलोकी सारी। दयाल रचा सतलोक सम्हारी॥ 4॥
तीन लोक काल का थाना। चौथा लोक दयाल अस्थाना॥ 5॥[1]
काल दिया जीवन को धोका। चौथे पद से सब को रोका॥ 6॥[2]
दयाल पुरुष का भेद न दीना। कर्मकांड में जीव अधीना॥ 7॥
अपनी पूजा सब विधि गाई। जीव चले चौरासी भाई॥ 8॥
त्रैगुन रसरी जीव बँधाना। ब्रह्मा विष्णु महेश पुजाना॥ 9॥[3]
देवी देवा पत्थर पानी। पाप पुन्य में जीव उरझानी॥ 10॥[4]
काल धरे जग दस औतारा। कला दिखाय जीव धर मारा॥ 11॥[5]
आपहि राम आप हुआ रावन। आपहि कंस आप जसुनन्दन॥ 12॥[6]
आपहि बल और आपहि बावन। आपहि कच्छ मच्छ धर धारन॥ 13॥[7]
परसराम और नरसिंह देख। प्रहलाद भक्त होय बाँधी टेक॥ 14॥
खंभ फाड़ बाहर होय निकला। रक्षक कला दिखाई सकला॥ 15॥[8]
चाँद सूर्य और गौर गनेशा। पुजवाये और राहु होय ग्रसा॥ 16॥[9]
अस अस कला अनंत असंखा। कहाँ लग बरनूँ भेद सबन का॥ 17॥[10]
काल लिया सब लोकन घेरी। दयाल पुरुष कोइ मर्म न हेरी॥ 18॥[11]
काल कला परचंड दिखाई। जीव चले सब उसकी राही॥ 19॥
संतन का कोइ भेद न जाना। संत मता रहा गुप्त छिपाना॥ 20॥
संत मता खुल कर अब गाऊँ। देकर कान सुनो समझाऊँ॥ 21॥
नहिं पताल नहिं मृत्त अकाशा। पाँच तत्त्व नहिं तिरगुन स्वाँसा॥ 22॥[12]

---

1. **थाना**=स्थान। 2. **धोका**=धोखा; **चौथे पद**=चौथा पद, सतलोक। 3. **त्रैगुन रसरी**=तीन गुणों की रस्सी से। 4. **उरझानी**=फँस गए। 5. **दस औतारा**=दस अवतार। 6. **जसुनन्दन**=यशोदानन्दन, यशोदा का बेटा यानी भगवान कृष्ण। 7. **बल**=राजा बलि; **बावन**=वामन अवतार; **कच्छ**=कच्छ अवतार; **मच्छ**=मत्स्य अवतार; **धर धारन**=पृथ्वी को धारण करने वाला शूकर अवतार। 8. **रक्षक कला**=रक्षा करने वाली शक्ति; **सकला**=सकल, पूर्ण, सारी। 9. **गौर**=गौरी, पार्वती; **राहु...ग्रसा**=राहु बनकर ग्रस लिया। 10. **असंखा**=असंख्य, अनगिनत। 11. **मर्म न हेरी**=भेद नहीं जानता। 12. **मृत्त**=मृत्यु लोक; **तिरगुन**=तीन गुण; **स्वाँसा**=लेश-मात्र।

नहिं शिव शक्ति न पुरुष प्रकिरती। जोत निरंजन नहिं परकिरती॥ 23 ॥[1]
तारा मंडल सूर न चंदा। पिंड ब्रह्मंड रचा नहिं अंडा॥ 24 ॥[2]
कुरम न शेष नहीं ओंकारा। माया ब्रह्म न ईश्वर धारा॥ 25 ॥[3]
आतम परमातम नहिं दोई। सुन्न महासुन्न रचा न सोई॥ 26 ॥[4]
अल्ला ख़ुदा रसूल न होते। पीर मुरीद न दादा पोते॥ 27 ॥[5]
वेद पुरान क़ुरान न कहते। मसजिद काबा बांग न देते॥ 28 ॥
नहिं त्रिकाल सन्ध्या न नमाज़ा। तीरथ बर्त नेम नहिं रोज़ा॥ 29 ॥[6]
कर्मी शरई थे नहिं भाई। जोगी ज्ञानी खोज न पाई॥ 30 ॥[7]

॥ दोहा ॥

तपसी हबसी ज़ाहिदा, नहिं आबिद माबूद।[8]
क़ुतुब पैग़म्बर औलिया, कोई न थे मौजूद॥ 31 ॥[9]
स्वर्ग नर्क दोज़ख़ इरम, अर्ज़ समा नहिं होय।[10]
मुसलमान हिन्दू नहिं, जैन न ईसा कोय॥ 32 ॥

जेठ मास बारहवाँ

बचन 38: शब्द 12

जेठ महीना जेठा भारी। जीवन हिरदे तपन करारी॥ 1 ॥[11]
संत दयाल जीव हितकारी। भेद कहें अब निज कर भारी॥ 2 ॥

---

1. **जोत निरंजन**=पहले रूहानी मण्डल (सहसदल कँवल) का धनी। 2. **अंडा**=अंड। 3. **कुरम, शेष**=अकाल पुरुष की सोलह कलाओं में से दो के नाम; **ओंकारा**=ओंकार, दूसरे रूहानी मण्डल त्रिकुटी का धनी; **ईश्वर**=पहले रूहानी मण्डल सहसदल कँवल का धनी यानी निरंजन। 4. **आतम**=सहसदल कँवल का धनी; **परमातम**=त्रिकुटी का धनी; **दोई**=दोनों; **सुन्न**=सुन्न मण्डल, तीसरा रूहानी मण्डल दसम् द्वार। 5. **रसूल**=पैग़म्बर। 6. **त्रिकाल**=तीन वक़्त की; **रोज़ा**=व्रत। 7. **कर्मी**=कर्मकाण्ड करने वाले; **शरई**=शरीअत पर चलने वाले। 8. **तपसी**=तप करने वाले; **हबसी**=प्राणों (हबस=प्राण) की साधना (प्राणायाम) करने वाले; **ज़ाहिदा**=ज़ाहिद, जती, परहेज़गार; **आबिद**=भक्त; **माबूद**=भगवंत। 9. **क़ुतुब पैग़म्बर, औलिया**=फ़क़ीरों के दर्जे। 10. **दोज़ख़**=नर्क; **इरम**=स्वर्ग; **अर्ज़**=पृथ्वी; **समा**=आसमान, आकाश। 11. **करारी**=तेज़।

नहिं ख़ालिक़ मख़लूक़ न ख़िलक़त। कर्ता कारन काज न दिक़्क़त॥ 3 ॥[1]
दृष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसत। वाच लक्ष नहिं पद न पदारथ॥ 4 ॥[2]
ज़ात सिफ़ात न अव्वल आख़िर। गुप्त न परगट बातिन ज़ाहिर॥ 5 ॥[3]
राम रहीम करीम न केशो। कुछ नहिं कुछ नहिं कुछ नहिं था सो॥ 6 ॥[4]
सिमृति शास्त्र न गीता भागवत। कथा पुरान न वक्ता कीरत॥ 7 ॥[5]
सेवक सेव न दास न स्वामी। नहिं सतनाम न नाम अनामी॥ 8 ॥[6]
कहाँ लग कहूं नहीं था कोई। चार लोक रचना नहिं होई॥ 9 ॥
जो कुछ था सो अब कह भाखूँ। उनमुन सुन्न बिसमाधी राखूँ॥ 10 ॥[7]
हैरत हैरत हैरत होई। हैरत रूप धरा इक सोई॥ 11 ॥[8]
उनमुन रूप सदा वह रहता। उनमुन दशा सदा वहि बरता॥ 12 ॥
वा की गति कोई नहिं जाने। वह अपनी गति आप बखाने॥ 13 ॥
संत रूप होय जग में आया। अपना भेद आप उन गाया॥ 14 ॥[9]
आपहि आप न दूसर कोई। उठी मौज परगट सत सोई॥ 15 ॥
तीन देश मौज ने रचे। अगम अलख सतनाम होय हँसे॥ 16 ॥
धुन धधकार उठी इक भारी। सात सुरत रचना उन धारी॥ 17 ॥[10]
सांचा बन जामन पुन दीन्हा। सुरत परस्पर रचना कीन्हा॥ 18 ॥[11]

---

1. **ख़ालिक़**=पैदा करने वाला; **मख़लूक़**=पैदा किया हुआ, रचना, सृष्टि; **ख़िलक़त**= जीवात्माएँ; **कारन**=कारण, सृष्टि का कारण; **दिक़्क़त**=कठिनाई। 2. **दृष्टा**=देखने वाला; **दृष्टि**=देखने की शक्ति; **वाच**=वाच्य यानी जिसका वर्णन किया जा सके; **लक्ष**=लक्ष्य, पोशीदा, गुप्त। 3. **ज़ात**=हस्ती, अस्तित्व; **सिफ़ात**=गुण; **अव्वल आख़िर**=पहला और आख़िरी; **बातिन**=आन्तरिक; **ज़ाहिर**=बाहरी। 4. **रहीम, करीम, केशो**=परमात्मा के गुणों पर आधारित उसके अलग-अलग नाम। 5. **वक्ता**=वचन करने वाला, वाचक ; **कीरत**= कीर्ति, यश। 6. **सेव**=सेव्य, पूज्य जिस की सेवा या पूजा की जाये। 7. **भाखूँ**=बयान करूँ ; **उनमुन**=अपने में लीन; **सुन्न**=सुन्न अवस्था में; **बिसमाधी**=विस्मादी अवस्था यानी वह अद्‌भुत अवस्था जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। 8. **हैरत**= आश्चर्यमय, हैरानी भरा, विस्मादी। 9. **गाया**=बयान किया, प्रकट किया। 10. **धुन धधकार**=ज़ोर की धुन या आवाज़। 11. **जामन**=जाग लगाया।

सोहं सुरत आदि यों बोली। सोहं सोहं सम्पट खोली॥ 19 ॥[1]
सहज धीर जामन तहां दीन्हा। ओं सोहं गर्भ धुन चीन्हा॥ 20 ॥
मूल सुरत जहां पर प्रगटाई। मूल द्वार पर बैठी आई॥ 21 ॥[2]
शांत सुरत तहं कीन्ह बिलासा। हंस रचे कर दीप निवासा॥ 22 ॥[3]
दीपन शोभा क्या कहुं भारी। हंस कुतूहल करें अपारी॥ 23 ॥[4]
पुरुष दरस और लीला न्यारी। देख देख अनुभव गति धारी॥ 24 ॥
जुग केते और मुद्दत केती। कही न जावे उनकी गिनती॥ 25 ॥[5]
रचना सत्य सत्य वह देशा। नहिं व्यापे जहाँ काल कलेशा॥ 26 ॥
हंस सभा समरथ तहँ बैठे। लीला देखें रहें इकट्ठे॥ 27 ॥
कँवल द्वार दल धारा निकसी। श्याम रूप अचरज होय दरसी॥ 28 ॥[6]
पुरुष देख अचरज लौलीना। सेत माहिं जस श्याम नगीना॥ 29 ॥[7]
सब हंसन मिल अर्ज़ी कीन्हा। कौन कला यह हम नहिं चीन्हा॥ 30 ॥[8]
पुरुष कहा तुम करो विलासा। यह कल रचिहै और तमाशा॥ 31 ॥[9]

॥ दोहा ॥

हंसन मन अचरज भया, कहा करे विस्तार।
पुरुष सेव नित ही करै, मन कुछ औरहि धार॥ 32 ॥[10]
धारा वह बढ़ती चली, कला न रोकी ताहि।[11]
पुरुष मौज ऐसी हुई, बोली कला बनाय॥ 33 ॥

---

1. **सम्पट**=सम्पुट, कली। 2. **मूल सुरत**=आदि सुरत; **मूल द्वार**=यह मूल द्वार सचखण्ड के नीचे का है, जहाँ से नीचे की सारी रचना हुई। 3. **हंस**=निर्मल आत्माएँ। 4. **कुतूहल**=कौतूहल, लीला, विलास। 5. **केते, केती**=कितने ही, अनेक; **मुद्दत**=समय। 6. **कँवल द्वार**=भँवर गुफा और महासुन्न के बीच का द्वार। 7. **सेत**=सफ़ेद; **श्याम**=काला। 8. **अर्ज़ी**=अर्ज़, विनती; **चीन्हा**=पहचाना, समझा। 9. **कल**=काल रूपी कला; **रचिहै**=रचेगा। 10. **पुरुष...धार**=(काल) हमेशा सतपुरुष की सेवा में रहता था लेकिन उसके मन में एक दबी हुई ख़्वाहिश थी। 11. **कला...ताहि**=उसने काल रूपी कला को न रोका।

रचना रचूँ और मैं न्यारी। यह रचना मोहिं लगे न प्यारी ॥ 34 ॥
तीन लोक रचना मैं करूँ। राज पाय ध्यान तुम धरूँ ॥ 35 ॥
पुरुष कला को दिया निकासी। निकस कला कीन्हा अति त्रासी ॥ 36 ॥[1]
पुरुष दया कर जुगत बनाई। कला दूसरी और उपाई ॥ 37 ॥
पीत वर्ण वह कला सिंगारी। दीन्ही आज्ञा पुरुष निहारी ॥ 38 ॥[2]
एक काल कुछ अंस दयाली। दोनों मिल कीन्हा कुछ ख़्याली ॥ 39 ॥[3]
आये मानसरोवर तीरा। अक्षर की देखी वहँ लीला ॥ 40 ॥[4]
लीला देख कला चित त्रासा। तब अक्षर ने दिया दिलासा ॥ 41 ॥[5]

॥ दोहा ॥

जोत निरंजन दोउ कला, मिल कर उत्पति कीन।[6]
पांच तत्त्व और चार खान, रच लीन्हे गुन तीन ॥ 42 ॥
गुन तीनों मिल जगत का, किया बहुत विस्तार।
ऋषी मुनी नर देव अदेव, रच बाढ़ो हंकार ॥ 43 ॥[7]

॥ सोरठा ॥

ब्रह्मा विष्णु महेष, और चौथी जोती मिली।
भर्म जाल की फांस, जीव न पावें निज गली ॥ 44 ॥[8]
आप निरंजन हुए न्यारे। भार सृष्टि सब इन पर डारे ॥ 45 ॥
दीप रचा इक अपना न्यारा। ता में कीन्हा बहु विस्तारा ॥ 46 ॥
पालँग आठ दीप परमाना। जोग आरंभ कीन विधि नाना ॥ 47 ॥

---

1. **पुरुष**=सतपुरुष; **पुरुष...त्रासी**=सतपुरुष ने उस कला यानी काल को वहाँ से निकाल दिया और उसने भय और डर फैला दिया। 2. **पीत वर्ण**=पीले रंग की; **दीन्ही... निहारी**= सतपुरुष ने उसे निकलने की आज्ञा दी। 3. **ख़्याली**=ख़याल, विचार। 4. **मानसरोवर**= दसम् द्वार में स्थित अमृत का सरोवर; **अक्षर**=अक्षर पुरुष, दसम् द्वार का धनी। 5. **त्रासा**=त्रास, भय। 6. **जोत निरंजन**=पहले रूहानी मण्डल (सहसदल कँवल) का धनी। 7. **अदेव**=राक्षस। 8. **निज गली**=अपने असली घर, सचखण्ड का रास्ता।

स्वाँस खैंच निज सुन्न चढ़ाये। धुन प्रगटी और वेद उपाये॥ 48॥
वेद मिले ब्रह्मा को आये। देख वेद ब्रह्मा हरखाये॥ 49॥
मुख चारों से धुन उच्चारी। ताते वेद हुए पुनि चारी॥ 50॥
ऋषि मुनि मिल फिर किया पसारा। कर्म धर्म और भर्म सम्हारा॥ 51॥
सिमृत शास्तर बहु विधि रचे। कर्म धर्म में सब मिल पचे॥ 52॥[1]
खोज निरंजन किनहुं न पाया। वेदहु नेति नेति गुहराया॥ 53॥[2]

॥ दोहा॥

दर्श निरंजन ना मिला, किया ज्ञान अनुमान।[3]
फिर आगे सतपुरुष का, क्यों कर करें प्रमान॥ 54॥
ताते यह मत संत का, रहा गुप्त जग माहिं।
गुन तीनों मानें नहीं, जीवहु मानें नाहिं॥ 55॥[4]

॥ सोरठा॥

संत पुकारें भेद, वेद पशू मानें नहीं।[5]
अब क्या करें उपाय, जीव पड़े सब भर्म में॥ 56॥
तिरलोकी का नाथ कहाया। सो भी उनके हाथ न आया॥ 57॥
स्वर्ग नर्क चौरासी फेरा। जन्म जन्म पड़े काल के घेरा॥ 58॥
कोइ कोइ चेतन माहिं समाने। सो भी फिर जनमे भौ आने॥ 59॥[6]
चौथा लोक संत दरबारा। निश्चय ता का काहू न धारा॥ 60॥[7]
संत दया अपने चित धरें। जीव न मानें तो क्या करें॥ 61॥

---

1. **पचे**=परेशान हुए। 2. **नेति**=न इति, इतना ही नहीं; **गुहराया**=वर्णन किया। 3. **अनुमान**=अन्दाज़ा। 4. **गुन...नाहिं**=तीन गुणों की हद में क़ैद जीव इन बातों को नहीं समझते। 5. **वेद**=ज्ञान; **पशू**=अज्ञानी लोग; **वेद...नहीं**=अज्ञानी लोग ज्ञान की बात नहीं मानते। 6. **कोइ...समाने**=कुछ लोग व्यापक चैतन्य में समा गये; **भौ**=भवसागर में, संसार में। 7. **चौथा लोक**=सतलोक।

भेद बतावें बानी कहें। देह धरें और जग में रहें॥ 62॥
जीव चितावें किरपा धार। बहुत उठावें जीवन भार॥ 63॥[1]
तौ भी कोइ परतीत न लावे। चौथा पद आसा नहिं धारे॥ 64॥
बारह मास बखान पुकारे। कह कह कर अब हम भी हारे॥ 65॥
हार जीत कुछ हमरे नाहीं। मूरख पर इक तान चलाई॥ 66॥[2]
सत्य सत्य सत्य मैं कही। अब कहने को कुछ नहिं रही॥ 67॥
राधास्वामी नाम उचारो। भक्ति भाव अब मन मैं धारो॥ 68॥
संतन की जिन मन परतीत। और धारी जिन सतसंग रीत॥ 69॥
सतसंग करे नित्त जो आई। उन प्रति यह बानी हम गाई॥ 70॥

1. **जीवन भार**=जीवों के कर्मों का भार। 2. **तान चलाई**=ताना कसा।

श्री आदि ग्रन्थ में से चुने हुए शब्द

बानी गुरु नानक देव जी

मारू सोलहे महला 1*

असुर सघारण रामु हमारा॥ घटि घटि रमईआ रामु पिआरा॥[1]
नाले अलखु न लखीऐ मूले गुरमुखि लिखु वीचारा हे॥
गुरमुखि साधू सरणि तुमारी॥ करि किरपा प्रभि पारि उतारी॥
अगनि पाणी सागरु अति गहरा गुरु सतिगुरु पारि उतारा हे॥
मनमुख अंधुले सोझी नाही॥ आवहि जाहि मरहि मरि जाही॥
पूरबि लिखिआ लेखु न मिटई जम दरि अंधु खुआरा हे॥
इकि आवहि जावहि घरि वासु न पावहि॥ किरत के बाधे पाप कमावहि॥
अंधुले सोझी बूझ न काई लोभु बुरा अहंकारा हे॥
पिर बिनु किआ तिसु धन सीगारा॥ पर पिर राती खसमु विसारा॥
जिउ बेसुआ पूत बापु को कहीऐ तिउ फोकट कार विकारा हे॥
प्रेत पिंजर महि दूख घनेरे॥ नरकि पचहि अगिआन अंधेरे॥
धरम राइ की बाकी लीजै जिनि हरि का नामु विसारा हे॥

---

1. **असुर सघारण**=राक्षसों (विकारों) का नाश करनेवाला।

* श्री आदि ग्रन्थ में छः गुरु साहिबान और तीस अन्य सन्तों-महात्माओं की बानी दर्ज है। दूसरे सन्तों-महात्माओं ने अपनी बानी अपने-अपने नाम से रची है, परन्तु गुरु साहिबान ने अपनी बानी की रचना 'नानक' नाम से की है। प्रत्येक गुरु की बानी को अलग से दर्शाने के लिए श्री आदि ग्रन्थ में महला संकेत का प्रयोग इस तरह से किया गया है:

महला 1 - गुरु नानक देव जी	**महला 4 - गुरु रामदास जी**
महला 2 - गुरु अंगद देव जी	**महला 5 - गुरु अर्जुन देव जी**
महला 3 - गुरु अमरदास जी	**महला 9 - गुरु तेग़ बहादुर जी**

सूरजु तपै अगनि बिखु झाला॥ अपतु पसू मनमुखु बेताला॥
आसा मनसा कूड़ु कमावहि रोगु बुरा बुरिआरा हे॥
मसतकि भारु कलर सिरि भारा॥ किउ करि भवजलु लंघसि पारा॥[1]
सतिगुरु बोहिथु आदि जुगादी राम नामि निसतारा हे॥[2]
पुत्र कलत्र जगि हेतु पिआरा॥ माइआ मोहु पसरिआ पासारा॥
जम के फाहे सतिगुरि तोड़े गुरमुखि ततु बीचारा हे॥
कूड़ि मुठी चालै बहु राही॥ मनमुखु दाझै पड़ि पड़ि भाही॥[3]
अंम्रित नामु गुरू वड दाणा नामु जपहु सुख सारा हे॥
सतिगुरु तुठा सचु द्रिड़ाए॥ सभि दुख मेटे मारगि पाए॥
कंडा पाइ न गडई मूले जिसु सतिगुरु राखणहारा हे॥[4]
खेहू खेह रलै तनु छीजै॥ मनमुखु पाथरु सैलु न भीजै॥
करण पलाव करे बहुतेरे नरकि सुरगि अवतारा हे॥
माइआ बिखु भुइअंगम नाले॥ इनि दुबिधा घर बहुते गाले॥[5]
सतिगुर बाझहु प्रीति न उपजै भगति रते पतीआरा हे॥
साकत माइआ कउ बहु धावहि॥ नामु विसारि कहा सुखु पावहि॥
त्रिहु गुण अंतरि खपहि खपावहि नाही पारि उतारा हे॥
कूकर सूकर कहीअहि कूड़िआरा॥ भउकि मरहि भउ भउ भउ हारा॥
मनि तनि झूठे कूड़ु कमावहि दुरमति दरगह हारा हे॥
सतिगुरु मिलै त मनूआ टेकै॥ राम नामु दे सरणि परेकै॥
हरि धनु नामु अमोलकु देवै हरि जसु दरगह पिआरा हे॥
राम नामु साधू सरणाई॥ सतिगुर बचनी गति मिति पाई॥
नानक हरि जपि हरि मन मेरे हरि मेले मेलणहारा हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1028

---

1. **मसतकि...भारा**=सिर पर कर्मों के कल्लर का भार है। 2. **निसतारा**=उद्धार, पार उतारा, छुटकारा। 3. **मनमुखु...भाही**=मनमुख ईर्ष्या और विकारों की आग में पड़ कर जलता है। 4. **न गडई**=नहीं चुभता; **मूले**=कभी भी, बिल्कुल ही; **कंडा...हे**=जिस पर सतगुरु की दया हो जाती है उसके पाँव में फिर कभी भी दु:खों का काँटा नहीं चुभता। 5. **माइआ...भुइअंगम**=माया रूपी साँप का ज़हर।

भैरउ असटपदीआ महला 1 घरु 2

आतम महि रामु राम महि आतमु चीनसि गुर बीचारा ॥[1]
अंम्रित बाणी सबदि पछाणी दुख काटै हउ मारा ॥
नानक हउमै रोग बुरे ॥
जह देखां तह एका बेदन आपे बखसै सबदि धुरे ॥[2] रहाउ ॥
आपे परखे परखणहारै बहुरि सूलाकु न होई ॥[3]
जिन कउ नदरि भई गुरि मेले प्रभ भाणा सचु सोई ॥
पउणु पाणी बैसंतरु रोगी रोगी धरति सभोगी ॥[4]
मात पिता माइआ देह सि रोगी रोगी कुटंब संजोगी ॥
रोगी ब्रहमा बिसनु सरुद्रा रोगी सगल संसारा ॥[5]
हरि पदु चीनि भए से मुकते गुर का सबदु वीचारा ॥
रोगी सात समुंद सनदीआ खंड पताल सि रोगि भरे ॥
हरि के लोक सि साचि सुहेले सरबी थाई नदरि करे ॥
रोगी खट दरसन भेखधारी नाना हठी अनेका ॥
बेद कतेब करहि कह बपुरे नह बूझहि इक एका ॥
मिठ रसु खाइ सु रोगि भरीजै कंद मूलि सुखु नाही ॥
नामु विसारि चलहि अन मारगि अंत कालि पछुताही ॥[6]
तीरथि भरमै रोगु न छूटसि पड़िआ बादु बिबादु भइआ ॥
दुबिधा रोगु सु अधिक वडेरा माइआ का मुहताजु भइआ ॥
गुरमुखि साचा सबदि सलाहै मनि साचा तिसु रोगु गइआ ॥
नानक हरि जन अनदिनु निरमल जिन कउ करमि नीसाणु पइआ ॥[7]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1153

---

1. **आतम...बीचारा**=इस बात की पहचान गुरु के उपदेश पर चलकर होती है कि आत्मा में परमात्मा और परमात्मा में आत्मा है। 2. **बेदन**=पीड़ा; **सबदि धुरे**=धुरधाम के शब्द द्वारा। 3. **सूलाकु**=सोने-चाँदी को परखने के लिए अग्नि में तपाया जाता है; **आपे...होई**=जिनको प्रभु अपने साथ मिला लेता है, उन्हें दोबारा आवागमन के दु:खों की अग्नि में नहीं तपाया जाता। 4. **रोगी...सभोगी**=धरती और इसके सब भोग पदार्थ नाशवान हैं। 5. **सरुद्रा**=शिव सहित। 6. **अन मारगि**=किसी अन्य मार्ग पर। 7. **करमि**=कृपा द्वारा; **नीसाणु**=चिन्ह, निशान; **नानक... पइआ**=जिन पर उसकी दया या रहमत का निशान लगा हुआ है वे सदा निर्मल रहते हैं।

मारू सोलहे महला 1

आपे करता पुरखु बिधाता॥ जिनि आपे आपि उपाइ पछाता॥
आपे सतिगुरु आपे सेवकु आपे स्रिसटि उपाई हे॥
आपे नेड़ै नाही दूरे॥ बूझहि गुरमुखि से जन पूरे॥
तिन की संगति अहिनिसि लाहा गुर संगति एह वडाई हे॥
जुगि जुगि संत भले प्रभ तेरे॥ हरि गुण गावहि रसन रसेरे॥[1]
उसतति करहि परहरि दुखु दालदु जिन नाही चिंत पराई हे॥[2]
ओइ जागत रहहि न सूते दीसहि॥ संगति कुल तारे साचु परीसहि॥[3]
कलिमल मैलु नाही ते निरमल ओइ रहहि भगति लिव लाई हे॥
बूझहु हरि जन सतिगुर बाणी॥ एहु जोबनु सासु है देह पुराणी॥
आजु कालि मरि जाईऐ प्राणी हरि जपु जपि रिदै धिआई हे॥
छोडहु प्राणी कूड़ कबाड़ा॥ कूड़ु मारे कालु उछाहाड़ा॥[4]
साकत कूड़ि पचहि मनि हउमै दुहु मारगि पचै पचाई हे॥
छोडिहु निंदा ताति पराई॥ पड़ि पड़ि दझहि साति न आई॥[5]
मिलि सतसंगति नामु सलाहहु आतम रामु सखाई हे॥
छोडहु काम क्रोधु बुरिआई॥ हउमै धंधु छोडहु लंपटाई॥
सतिगुर सरणि परहु ता उबरहु इउ तरीऐ भवजलु भाई हे॥
आगै बिमल नदी अगनि बिखु झेला॥ तिथै अवरु न कोई जीउ इकेला॥[6]
भड़ भड़ अगनि सागरु दे लहरी पड़ि दझहि मनमुख ताई हे॥
गुर पहि मुकति दानु दे भाणै॥ जिनि पाइआ सोई बिधि जाणै॥
जिन पाइआ तिन पूछहु भाई सुखु सतिगुर सेव कमाई हे॥

---

1. **रसन**=रसना, जिह्वा; **हरि...रसेरे**=वे प्रेमपूर्वक हरि के गुण गाते हैं। 2. **दालदु**=ग़रीबी, दरिद्रता। 3. **परीसहि**=परोसते हैं, बाँटते हैं। 4. **कूड़ु...उछाहाड़ा**=झूठे अर्थात् माया में लिप्त लोगों को काल उछल कर (ख़ुशी से) मारता है। 5. **ताति**=जलन, ईर्ष्या; **दझहि**=जलते हैं। 6. **आगै...झेला**=वहाँ आग की नदी में से ज़हर भरी लपटें उठ रही हैं।

गुर बिनु उरझि मरहि बेकारा॥ जमु सिरि मारे करे खुआरा॥[1]
बाधे मुकति नाही नर निंदक डूबहि निंद पराई हे॥
बोलहु साचु पछाणहु अंदरि॥ दूरि नाही देखहु करि नंदरि॥[2]
बिघनु नाही गुरमुखि तरु तारी इउ भवजलु पारि लंघाई हे॥[3]
देही अंदरि नामु निवासी॥ आपे करता है अबिनासी॥
ना जीउ मरै न मारिआ जाई करि देखै सबदि रजाई हे॥
ओहु निरमलु है नाही अंधिआरा॥ ओहु आपे तखति बहै सचिआरा॥
साकत कूड़े बंधि भवाईअहि मरि जनमहि आई जाई हे॥[4]
गुर के सेवक सतिगुर पिआरे॥ ओइ बैसहि तखति सु सबदु वीचारे॥
ततु लहहि अंतरगति जाणहि सतसंगति साचु वडाई हे॥
आपि तरै जनु पितरा तारे॥ संगति मुकति सु पारि उतारे॥
नानकु तिस का लाला गोला जिनि गुरमुखि हरि लिव लाई हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1025

मारू सोलहे महला 1

कामु क्रोधु परहरु पर निंदा॥ लबु लोभु तजि होहु निचिंदा॥[5]
भ्रम का संगलु तोड़ि निराला हरि अंतरि हरि रसु पाइआ॥
निसि दामनि जिउ चमकि चंदाइणु देखै॥ अहिनिसि जोति निरंतरि पेखै॥[6]
आनंद रूपु अनूपु सरूपा गुरि पूरै देखाइआ॥
सतिगुर मिलहु आपे प्रभु तारे॥ ससि घरि सूरु दीपकु गैणारे॥[7]
देखि अदिसटु रहहु लिव लागी सभु त्रिभवणि ब्रहमु सबाइआ॥[8]

---

1. **उरझि**=उलझ कर, फँस कर। 2. **देखहु...नंदरि**=दृष्टि को अन्तर्मुख कर के उसे अन्दर ही ढूँढ़ो। 3. **बिघनु**=रुकावट, बाधा। 4. **साकत...भवाईअहि**=मनमुखों को आवागमन के चक्र में डाला जाता है। 5. **निचिंदा**=निश्चिन्त। 6. **दामनि**=बिजली; **चमकि चंदाइणु**=चाँद का प्रकाश; **पेखै**=देखे। 7. **ससि**=चाँद; **सूरु**=सूर्य; **दीपकु**=दीपक; **गैणारे**=आकाश, गगन मण्डल। 8. **अदिसटु**=जो दिखाई न दे, अलख; **त्रिभवणि**=तीन लोक; **सभु...सबाइआ**=तब तुम्हें सब जगह प्रभु ही दिखाई देगा।

अंम्रित रसु पाए त्रिसना भउ जाए॥ अनभउ पदु पावै आपु गवाए॥
ऊची पदवी ऊचो ऊचा निरमल सबदु कमाइआ॥
अद्रिसट अगोचरु नामु अपारा॥ अति रसु मीठा नामु पिआरा॥
नानक कउ जुगि जुगि हरि जसु दीजै हरि जपीऐ अंतु न पाइआ॥
अंतरि नामु परापति हीरा॥ हरि जपते मनु मन ते धीरा॥[1]
दुघट घट भउ भंजनु पाईऐ बाहुड़ि जनमि न जाइआ॥[2]
भगति हेति गुर सबदि तरंगा॥ हरि जसु नामु पदारथु मंगा॥[3]
हरि भावै गुर मेलि मिलाए हरि तारे जगतु सबाइआ॥
जिनि जपु जपिओ सतिगुर मति वा के॥ जमकंकर कालु सेवक पग ता के॥[4]
ऊतम संगति गति मिति ऊतम जगु भउजलु पारि तराइआ॥
इहु भवजलु जगतु सबदि गुर तरीऐ॥ अंतर की दुबिधा अंतरि जरीऐ॥
पंच बाण ले जम कउ मारै गगनंतरि धणखु चड़ाइआ॥[5]
साकत नरि सबद सुरति किउ पाईऐ॥ सबद सुरति बिनु आईऐ जाईऐ॥
नानक गुरमुखि मुकति पराइणु हरि पूरै भागि मिलाइआ॥
निरभउ सतिगुरु है रखवाला॥ भगति परापति गुर गोपाला॥
धुनि अनंद अनाहदु वाजै गुर सबदि निरंजनु पाइआ॥
निरभउ सो सिरि नाही लेखा॥ आपि अलेखु कुदरति है देखा॥
आपि अतीतु अजोनी संभउ नानक गुरमति सो पाइआ॥[6]
अंतर की गति सतिगुरु जाणै॥ सो निरभउ गुर सबदि पछाणै॥
अंतरु देखि निरंतरि बूझै अनत न मनु डोलाइआ॥
निरभउ सो अभ अंतरि वसिआ॥ अहिनिसि नामि निरंजन रसिआ॥[7]
नानक हरि जसु संगति पाईऐ हरि सहजे सहजि मिलाइआ॥

---

1. **मनु...धीरा**=मन स्थिर हो जाता है। 2. **दुघट...जाइआ**=जिसे कठिन काम को सुगम करनेवाला प्रभु मिल जाता है उसे दोबारा जन्म नहीं लेना पड़ता। 3. **भगति...तरंगा**=मेरी यह प्रबल इच्छा है कि मेरे हृदय में प्रभु भक्ति के लिए गुरु के नाम का प्रेम पैदा हो। 4. **पग**=पाँव, पैर। 5. **पंच बाण**=पाँच शब्द रूपी बाण; **गगनंतरि...चड़ाइआ**=आन्तरिक आकाश रूपी धनुष पर शब्द रूपी बाण चढ़ाया। 6. **संभउ**=अपने आप से आप, स्वयंभू। 7. **अभ**=हृदय।

अंतरि बाहरि सो प्रभु जाणै॥ रहै अलिपतु चलते घरि आणै॥[1]
ऊपरि आदि सरब तिहु लोई सचु नानक अंम्रित रसु पाइआ॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1041

मारू सोलहे महला 1

कुदरति करनैहार अपारा॥ कीते का नाही किहु चारा॥
जीअ उपाइ रिजकु दे आपे सिरि सिरि हुकमु चलाइआ॥
हुकमु चलाइ रहिआ भरपूरे॥ किसु नेड़ै किसु आखां दूरे॥
गुपत प्रगट हरि घटि घटि देखहु वरतै ताकु सबाइआ॥
जिस कउ मेले सुरति समाए॥ गुर सबदी हरि नामु धिआए॥
आनद रूप अनूप अगोचर गुर मिलिऐ भरमु जाइआ॥
मन तन धन ते नामु पिआरा॥ अंति सखाई चलणवारा॥
मोह पसार नही संगि बेली बिनु हरि गुर किनि सुखु पाइआ॥
जिस कउ नदरि करे गुरु पूरा॥ सबदि मिलाए गुरमति सूरा॥
नानक गुर के चरन सरेवहु जिनि भूला मारगि पाइआ॥[3]
संत जनां हरि धनु जसु पिआरा॥ गुरमति पाइआ नामु तुमारा॥
जाचिकु सेव करे दरि हरि कै हरि दरगह जसु गाइआ॥
सतिगुरु मिलै त महलि बुलाए॥ साची दरगह गति पति पाए॥
साकत ठउर नाही हरि मंदर जनम मरै दुखु पाइआ॥
सेवहु सतिगुर समुंदु अथाहा॥ पावहु नामु रतनु धनु लाहा॥
बिखिआ मलु जाइ अंम्रित सरि नावहु गुर सर संतोखु पाइआ॥
सतिगुर सेवहु संक न कीजै॥ आसा माहि निरासु रहीजै॥
संसा दूख बिनासनु सेवहु फिरि बाहुड़ि रोगु न लाइआ॥
साचे भावै तिसु वडीआए॥ कउनु सु दूजा तिसु समझाए॥
हरि गुर मूरति एका वरतै नानक हरि गुर भाइआ॥

---

1. **अलिपतु**=निर्लेप; **चलते...आणै**=चंचल मन को स्थिर करे। 2. **तिहु लोई**=तीन लोक। 3. **सरेवहु**=सेवा करो, पूजा करो।

वाचहि पुसतक वेद पुरानां॥ इक बहि सुनहि सुनावहि कानां॥
अजगर कपटु कहहु किउ खुल्है बिनु सतिगुर ततु न पाइआ॥[1]
करहि बिभूति लगावहि भसमै॥ अंतरि क्रोधु चंडालु सु हउमै॥
पाखंड कीने जोगु न पाईऐ बिनु सतिगुर अलखु न पाइआ॥
तीरथ वरत नेम करहि उदिआना॥ जतु सतु संजमु कथहि गिआना॥[2]
राम नाम बिनु किउ सुखु पाईऐ बिनु सतिगुर भरमु न जाइआ॥
निउली करम भुइअंगम भाठी॥ रेचक कुंभक पूरक मन हाठी॥
पाखंड धरमु प्रीति नही हरि सउ गुर सबद महा रसु पाइआ॥
कुदरति देखि रहे मनु मानिआ॥ गुर सबदी सभु ब्रहमु पछानिआ॥
नानक आतम रामु सबाइआ गुर सतिगुर अलखु लखाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ.1042

रागु आसा महला 1 असटपदीआ घरु 2 इकतुकी

गुरु सेवे सो ठाकुर जानै॥ दूखु मिटै सचु सबदि पछानै॥
रामु जपहु मेरी सखी सखैनी॥ सतिगुरु सेवि देखहु प्रभु नैनी॥ रहाउ॥
बंधन मात पिता संसारि॥ बंधन सुत कंनिआ अरु नारि॥[3]
बंधन करम धरम हउ कीआ॥ बंधन पुतु कलतु मनि बीआ॥
बंधन किरखी करहि किरसान॥ हउमै डंनु सहै राजा मंगै दान॥
बंधन सउदा अणवीचारी॥ तिपति नाही माइआ मोह पसारी॥
बंधन साह संचहि धनु जाइ॥ बिनु हरि भगति न पवई थाइ॥[4]
बंधन बेदु बादु अहंकार॥ बंधनि बिनसै मोह विकार॥
नानक राम नाम सरणाई॥ सतिगुरि राखे बंधु न पाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 416

1. **अजगर**=बहुत बड़ा; **कपटु**=कपाट, दरवाज़ा। 2. **उदिआना**=जंगल में। 3. **नारि**=स्त्री। 4. **संचहि धनु**=माया इकट्ठी करना।

वार मलार की सलोक महला 1

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥
दीप लोअ पाताल तह खंड मंडल हैरानु॥[1]
तार घोर बाजिंत्र तह साचि तखति सुलतानु॥[2]
सुखमन कै घरि रागु सुनि सुंनि मंडलि लिव लाइ॥
अकथ कथा बीचारीऐ मनसा मनहि समाइ॥
उलटि कमलु अंम्रिति भरिआ इहु मनु कतहु न जाइ॥
अजपा जापु न वीसरै आदि जुगादि समाइ॥
सभि सखीआ पंचे मिले गुरमुखि निज घरि वासु॥
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1291

मारू सोलहे महला 1

घरि रहु रे मन मुगध इआने॥ रामु जपहु अंतरगति धिआने॥
लालच छोडि रचहु अपरंपरि इउ पावहु मुकति दुआरा हे॥
जिसु बिसरिऐ जमु जोहणि लागै॥ सभि सुख जाहि दुखा फुनि आगै॥[3]
राम नामु जपि गुरमुखि जीअड़े एहु परम ततु वीचारा हे॥
हरि हरि नामु जपहु रसु मीठा॥ गुरमुखि हरि रसु अंतरि डीठा॥
अहिनिसि राम रहहु रंगि राते एहु जपु तपु संजमु सारा हे॥
राम नामु गुर बचनी बोलहु॥ संत सभा महि इहु रसु टोलहु॥
गुरमति खोजि लहहु घरु अपना बहुड़ि न गरभ मझारा हे॥
सचु तीरथि नावहु हरि गुण गावहु॥ ततु वीचारहु हरि लिव लावहु॥
अंत कालि जमु जोहि न साकै हरि बोलहु रामु पिआरा हे॥
सतिगुरु पुरखु दाता वड दाणा॥ जिसु अंतरि साचु सु सबदि समाणा॥

---

1. **लोअ**=लोक। 2. **तार...बाजिंत्र**=शब्द की प्रबल ध्वनि गूँजती है। 3. **जिसु...लागै**=जिसे भुलाने से यम के वश में पड़ जाते हैं।

जिस कउ सतिगुरु मेलि मिलाए तिसु चूका जम भै भारा हे॥
पंच ततु मिलि काइआ कीनी॥ तिस महि राम रतनु लै चीनी॥
आतम रामु रामु है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे॥
सत संतोखि रहहु जन भाई॥ खिमा गहहु सतिगुर सरणाई॥
आतमु चीनि परातमु चीनहु गुर संगति इहु निसतारा हे॥
साकत कूड़ कपट महि टेका॥ अहिनिसि निंदा करहि अनेका॥
बिनु सिमरन आवहि फुनि जावहि ग्रभ जोनी नरक मझारा हे॥
साकत जम की काणि न चूकै॥ जम का डंडु न कबहू मूकै॥[1]
बाकी धरम राइ की लीजै सिरि अफरिओ भारु अफारा हे॥[2]
बिनु गुर साकतु कहहु को तरिआ॥ हउमै करता भवजलि परिआ॥
बिनु गुर पारु न पावै कोई हरि जपीऐ पारि उतारा हे॥
गुर की दाति न मेटै कोई॥ जिसु बखसे तिसु तारे सोई॥
जनम मरण दुखु नेड़ि न आवै मनि सो प्रभु अपर अपारा हे॥
गुर ते भूले आवहु जावहु॥ जनमि मरहु फुनि पाप कमावहु॥
साकत मूड़ अचेत न चेतहि दुखु लागै ता रामु पुकारा हे॥
सुखु दुखु पुरब जनम के कीए॥ सो जाणै जिनि दातै दीए॥[3]
किस कउ दोसु देहि तू प्राणी सहु अपणा कीआ करारा हे॥[4]
हउमै ममता करदा आइआ॥ आसा मनसा बंधि चलाइआ॥
मेरी मेरी करत किआ ले चाले बिखु लादे छार बिकारा हे॥
हरि की भगति करहु जन भाई॥ अकथु कथहु मनु मनहि समाई॥
उठि चलता ठाकि रखहु घरि अपुनै दुखु काटे काटणहारा हे॥
हरि गुर पूरे की ओट पराती॥ गुरमुखि हरि लिव गुरमुखि जाती॥
नानक राम नामि मति ऊतम हरि बखसे पारि उतारा हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1030

---

1. **काणि**=डर। 2. **अफरिओ भारु**=असहनीय भार; **सिरि...हे**=सिर पर असहनीय भार पड़ जाता है। 3. **जिनि दातै**=जिस दाता ने। 4. **करारा**=कड़ा, सख़्त; **सहु...हे**=उनका कड़ा फल तुझे ख़ुद ही भोगना पड़ेगा।

मलार महला 1 असटपदीआ घरु 1

चकवी नैन नींद नहि चाहै बिनु पिर नींद न पाई॥
सूरु चर्है प्रिउ देखै नैनी निवि निवि लागै पांई॥
पिर भावै प्रेमु सखाई॥
तिसु बिनु घड़ी नही जगि जीवा ऐसी पिआस तिसाई॥
सरवरि कमलु किरणि आकासी बिगसै सहजि सुभाई॥
प्रीतम प्रीति बनी अभ ऐसी जोती जोति मिलाई॥
चात्रिकु जल बिनु प्रिउ प्रिउ टेरै बिलप करै बिललाई॥[1]
घनहर घोर दसौ दिसि बरसै बिनु जल पिआस न जाई॥
मीन निवास उपजै जल ही ते सुख दुख पुरबि कमाई॥
खिनु तिलु रहि न सकै पलु जल बिनु मरनु जीवनु तिसु तांई॥
धन वांढी पिरु देस निवासी सचे गुर पहि सबदु पठाईं॥[2]
गुण संग्रहि प्रभु रिदै निवासी भगति रती हरखाई॥
प्रिउ प्रिउ करै सभै है जेती गुर भावै प्रिउ पाईं॥
प्रिउ नाले सद ही सचि संगे नदरी मेलि मिलाई॥
सभ महि जीउ जीउ है सोई घटि घटि रहिआ समाई॥
गुर परसादि घर ही परगासिआ सहजे सहजि समाई॥
अपना काजु सवारहु आपे सुखदाते गोसांईं॥
गुर परसादि घर ही पिरु पाइआ तउ नानक तपति बुझाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1273

मारू सोलहे महला 1

जह देखा तह दीन दइआला॥ आइ न जाई प्रभु किरपाला॥
जीआ अंदरि जुगति समाई रहिओ निरालमु राइआ॥[3]

---

1. **टेरै**=पुकारता है; **बिलप**=विलाप करता है। 2. **धन...निवासी**=आत्मा रूपी स्त्री विदेश में है जबकि उसका पति प्रभु अपने देश में है। 3. **जुगति**=युक्ति; **निरालमु**=निर्लेप; **राइआ**=प्रभु।

जगु तिस की छाइआ जिसु बापु न माइआ॥ ना तिसु भैण न भराउ कमाइआ॥
ना तिसु ओपति खपति कुल जाती ओहु अजरावरु मनि भाइआ॥[1]
तू अकाल पुरखु नाही सिरि काला॥ तू पुरखु अलेख अगंम निराला॥[2]
सत संतोखि सबदि अति सीतलु सहज भाइ लिव लाइआ॥
त्रै वरताइ चउथै घरि वासा॥ काल बिकाल कीए इक ग्रासा॥[3]
निरमल जोति सरब जगजीवनु गुरि अनहद सबदि दिखाइआ॥
ऊतम जन संत भले हरि पिआरे॥ हरि रस माते पारि उतारे॥
नानक रेण संत जन संगति हरि गुर परसादी पाइआ॥
तू अंतरजामी जीअ सभि तेरे॥ तू दाता हम सेवक तेरे॥
अंम्रित नामु क्रिपा करि दीजै गुरि गिआन रतनु दीपाइआ॥
पंच ततु मिलि इहु तनु कीआ॥ आतम राम पाए सुखु थीआ॥
करम करतूति अंम्रित फलु लागा हरि नाम रतनु मनि पाइआ॥[4]
ना तिसु भूख पिआस मनु मानिआ॥ सरब निरंजनु घटि घटि जानिआ॥
अंम्रित रसि राता केवल बैरागी गुरमति भाइ सुभाइआ॥
अधिआतम करम करे दिनु राती॥ निरमल जोति निरंतरि जाती॥[5]
सबदु रसालु रसन रसि रसना बेणु रसालु वजाइआ॥[6]
बेणु रसाल वजावै सोई॥ जा की त्रिभवण सोझी होई॥
नानक बूझहु इह बिधि गुरमति हरि राम नामि लिव लाइआ॥
ऐसे जन विरले संसारे॥ गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे॥[7]
आपि तरहि संगति कुल तारहि तिन सफल जनमु जगि आइआ॥
घरु दरु मंदरु जाणै सोई॥ जिसु पूरे गुर ते सोझी होई॥

---

1. **ओपति**=उत्पत्ति; **खपति**=प्रलय; **अजरावरु**=एक रस रहनेवाला, जो न बूढ़ा हो और न मरे, अजर, अमर। 2. **नाही...काला**=तेरे सिर पर काल नहीं है, तू अकाल है। 3. **त्रै... वासा**=उस प्रभु ने त्रिलोकी की रचना का पसारा तीन गुणों में किया है। वह स्वयं चौथे लोक में विराजमान है; **बिकाल**=महाकाल; **ग्रासा**=ग्रास, निवाला। 4. **करतूति**=करनी। 5. **अधिआतम**=आत्मा-सम्बन्धी। 6. **रसालु**=रसों का घर; **रसन...रसना**=रसों से रसित जिह्वा; **बेणु**=बाँसुरी। 7. **निरारे**=निर्लेप, माया से रहित।

काइआ गड़ महल महली प्रभु साचा सचु साचा तखतु रचाइआ॥
चतुर दस हाट दीवे दुइ साखी॥ सेवक पंच नाही बिखु चाखी॥[1]
अंतरि वसतु अनूप निरमोलक गुरि मिलिऐ हरि धनु पाइआ॥
तखति बहै तखतै की लाइक॥ पंच समाए गुरमति पाइक॥
आदि जुगादी है भी होसी सहसा भरमु चुकाइआ॥
तखति सलामु होवै दिनु राती॥ इहु साचु वडाई गुरमति लिव जाती॥
नानक रामु जपहु तरु तारी हरि अंति सखाई पाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1038

रागु सूही महला 1

जा तू ता मै सभु को तू साहिबु मेरी रासि जीउ॥[2]
तुधु अंतरि हउ सुखि वसा तूं अंतरि साबासि जीउ॥[3]
भाणै तखति वडाईआ भाणै भीख उदासि जीउ॥[4]
भाणै थल सिरि सरु वहै कमलु फुलै आकासि जीउ॥[5]
भाणै भवजलु लंघीऐ भाणै मंझि भरीआसि जीउ॥[6]
भाणै सो सहु रंगुला सिफति रता गुणतासि जीउ॥[7]
भाणै सहु भीहावला हउ आवणि जाणि मुईआसि जीउ॥[8]

---

1. **चतुर...हाट**=चौदह लोक; **दीवे...साखी**=दो दीपक (सूर्य और चाँद) साक्षी हैं; **सेवक... चाखी**=पाँचों के सेवक यानी पाँच शब्दों के मार्ग पर चलने वाले पर माया रूपी विष का असर नहीं होता। 2. **जा...जीउ**=अगर तू है तो मेरे लिए सबकुछ है, तू ही मेरी सच्ची सम्पत्ति है। 3. **तुधु...जीउ**=मुझे सच्चा सुख और सच्ची बड़ाई तभी मिल सकती है यदि मैं सदा तुझमें लीन रहूँ। 4. **भाणै...जीउ**=तेरे भाणे अथवा हुक्म से राज-सिंहासन अथवा ऊँचे पद का सम्मान प्राप्त होता है, भाणे से ही भीख माँगनी पड़ती है। 5. **भाणै...जीउ**= भाणे द्वारा ही मरुस्थल में नदियाँ बहने लगती हैं तथा आकाश में फूल खिल जाते हैं। 6. **भाणै...जीउ**=भाणे द्वारा ही संसार रूपी सागर को पार किया जा सकता है तथा भाणे द्वारा ही लोग इसमें डूब जाते हैं। 7. **भाणै...जीउ**=भाणे द्वारा ही प्रभु सुन्दर एवं गुणों का भण्डार प्रतीत होता है। 8. **भाणै...जीउ**=भाणे द्वारा ही प्रभु डरावना लगने लगता है, भाणे द्वारा ही जीव आवागमन में फँसा रहता है।

तू सहु अगमु अतोलवा हउ कहि कहि ढहि पईआसि जीउ॥
किआ मागउ किआ कहि सुणी मै दरसन भूख पिआसि जीउ॥
गुर सबदी सहु पाइआ सचु नानक की अरदासि जीउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 762

सोरठि महला 1 घरु 1 चउपदे

जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए सो अंम्रितु गुर पाही जीउ॥[1]
छोडहु वेसु भेख चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ॥
मन रे थिरु रहु मतु कत जाही जीउ॥
बाहरि ढूढत बहुतु दुखु पावहि घरि अंम्रितु घट माही जीउ॥ रहाउ॥
अवगुण छोडि गुणा कउ धावहु करि अवगुण पछुताही जीउ॥
सर अपसर की सार न जाणहि फिरि फिरि कीच बुडाही जीउ॥[2]
अंतरि मैलु लोभ बहु झूठे बाहरि नावहु काही जीउ॥
निरमल नामु जपहु सद गुरमुखि अंतर की गति ताही जीउ॥
परहरि लोभु निंदा कूड़ु तिआगहु सचु गुर बचनी फलु पाही जीउ॥
जिउ भावै तिउ राखहु हरि जीउ जन नानक सबदि सलाही जीउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 598

प्रभाती असटपदीआ महला 1 बिभास

दुबिधा बउरी मनु बउराइआ॥ झूठै लालचि जनमु गवाइआ॥
लपटि रही फुनि बंधु न पाइआ॥ सतिगुरि राखे नामु द्रिड़ाइआ॥
ना मनु मरै न माइआ मरै॥
जिनि किछु कीआ सोई जाणै सबदु वीचारि भउ सागरु तरै॥ रहाउ॥
माइआ संचि राजे अहंकारी॥ माइआ साथि न चलै पिआरी॥
माइआ ममता है बहु रंगी॥ बिनु नावै को साथि न संगी॥

---

1. **जिसु...जीउ**=जिस नाम रूपी अमृत के ख़ज़ाने की प्राप्ति के लिए तुम संसार में आये हो, वह नाम रूपी अमृत सतगुरु से प्राप्त होता है। 2. **सर अपसर**=भला-बुरा।

जिउ मनु देखहि पर मनु तैसा॥ जैसी मनसा तैसी दसा॥
जैसा करमु तैसी लिव लावै॥ सतिगुरु पूछि सहज घरु पावै॥
रागि नादि मनु दूजै भाइ॥ अंतरि कपटु महा दुखु पाइ॥
सतिगुरु भेटै सोझी पाइ॥ सचै नामि रहै लिव लाइ॥
सचै सबदि सचु कमावै॥ सची बाणी हरि गुण गावै॥
निज घरि वासु अमर पदु पावै॥ ता दरि साचै सोभा पावै॥
गुर सेवा बिनु भगति न होई॥ अनेक जतन करै जे कोई॥
हउमै मेरा सबदे खोई॥ निरमल नामु वसै मनि सोई॥
इसु जग महि सबदु करणी है सारु॥ बिनु सबदै होरु मोहु गुबारु॥
सबदे नामु रखै उरि धारि॥ सबदे गति मति मोख दुआरु॥
अवरु नाही करि देखणहारो॥ साचा आपि अनूपु अपारो॥
राम नाम ऊतम गति होई॥ नानक खोजि लहै जनु कोई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1342

मारू काफी महला 1 घरु 2

ना भैणा भरजाईआ ना से ससुड़ीआह॥
सचा साकु न तुटई गुरु मेले सहीआह॥
बलिहारी गुर आपणे सद बलिहारै जाउ॥
गुर बिनु एता भवि थकी गुरि पिरु मेलिमु दितमु मिलाइ॥ रहाउ॥
फुफी नानी मासीआ देर जेठानड़ीआह॥
आवनि वंञनि ना रहनि पूर भरे पहीआह॥
मामे तै मामाणीआ भाइर बाप न माउ॥
साथ लडे तिन नाठीआ भीड़ घणी दरीआउ॥
साचउ रंगि रंगावलो सखी हमारो कंतु॥
सचि विछोड़ा ना थीऐ सो सहु रंगि रवंतु॥
सभे रुती चंगीआ जितु सचे सिउ नेहु॥
सा धन कंतु पछाणिआ सुखि सुती निसि डेहु॥
पतणि कूके पातणी वंञहु ध्रुकि विलाड़ि॥

पारि पवंदड़े डिठु मै सतिगुर बोहिथि चाड़ि॥
हिकनी लदिआ हिकि लदि गए हिकि भारे भर नालि॥
जिनी सचु वणंजिआ से सचे प्रभ नालि॥
ना हम चंगे आखीअह बुरा न दिसै कोइ॥
नानक हउमै मारीऐ सचे जेहड़ा सोइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1015

मारू असटपदीआ महला 1 घरु 1

बिखु बोहिथा लादिआ दीआ समुंद मंझारि॥[1]
कंधी दिसि न आवई ना उरवारु न पारु॥
वंझी हाथि न खेवटू जलु सागरु असरालु॥[2]
बाबा जगु फाथा महा जालि॥
गुर परसादी उबरे सचा नामु समालि॥ रहाउ॥
सतिगुरू है बोहिथा सबदि लंघावणहारु॥
तिथै पवणु न पावको ना जलु ना आकारु॥
तिथै सचा सचि नाइ भवजल तारणहारु॥
गुरमुखि लंघे से पारि पए सचे सिउ लिव लाइ॥
आवा गउणु निवारिआ जोती जोति मिलाइ॥
गुरमती सहजु ऊपजै सचे रहै समाइ॥
सपु पिड़ाई पाईऐ बिखु अंतरि मनि रोसु॥[3]
पूरबि लिखिआ पाईऐ किस नो दीजै दोसु॥
गुरमुखि गारड़ु जे सुणे मंने नाउ संतोसु॥
मागरमछु फहाईऐ कुंडी जालु वताइ॥[4]
दुरमति फाथा फाहीऐ फिरि फिरि पछोताइ॥
जंमण मरणु न सुझई किरतु न मेटिआ जाइ॥

1. **बोहिथा**=जहाज़। 2. **असरालु**=भयानक। 3. **पिड़ाई**=पिटारी; **रोसु**=रोष, क्रोध।
4. **वताइ**=फैला कर।

हउमै बिखु पाइ जगतु उपाइआ सबदु वसै बिखु जाइ॥
जरा जोहि न सकई सचि रहै लिव लाइ॥[1]
जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ॥
धंधै धावत जगु बाधिआ ना बूझै वीचारु॥
जंमण मरणु विसारिआ मनमुख मुगधु गवारु॥
गुरि राखे से उबरे सचा सबदु वीचारि॥
सूहटु पिंजरि प्रेम कै बोलै बोलणहारु॥[2]
सचु चुगै अंम्रितु पीऐ उडै त एका वार॥
गुरि मिलिऐ खसमु पछाणीऐ कहु नानक मोख दुआरु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1009

रागु बिलावलु महला 1 चउपदे घरु 1

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा॥[3]
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा॥
मनु बेधिआ दइआल सेती मेरी माई॥ कउणु जाणै पीर पराई॥[4]
हम नाही चिंत पराई॥[5] रहाउ॥
अगम अगोचर अलख अपारा चिंता करहु हमारी॥
जलि थलि महीअलि भरिपुरि लीणा घटि घटि जोति तुम्हारी॥
सिख मति सभ बुधि तुम्हारी मंदिर छावा तेरे॥[6]
तुझ बिनु अवरु न जाणा मेरे साहिबा गुण गावा नित तेरे॥
जीअ जंत सभि सरणि तुम्हारी सरब चिंत तुधु पासे॥
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 795

---

1. **जरा...सकई**=उस पर बुढ़ापे का असर नहीं होता। 2. **सूहटु**=तोता। 3. **मनु...नावा**=मेरा मन मंदिर है और तन दरवेश है और मैं अपने अन्दर ही नाम रूपी तीर्थ पर स्नान करता हूँ। 4. **बेधिआ**=बिंधा हुआ; **सेती**=के साथ। 5. **हम...पराई**=मुझे परमात्मा के सिवाय और किसी का ख़याल नहीं। 6. **सिख...तेरे**=शिक्षा, ज्ञान, बुद्धि और सब स्थान तुम्हारे बनाये हुए हैं।

रागु सिरीरागु महला 1 घरु 1

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ ॥
कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ ॥[1]
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ ॥
मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ॥ रहाउ ॥
धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ ॥
मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ ॥[2]
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ ॥
गुपतु परगटु होइ बैसा लोकु राखै भाउ ॥[3]
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥
सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ ॥
हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ ॥[4]
मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 14

सिरीरागु महला 1 घरु 1 असटपदीआ

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी वीचारु ॥[5]
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु ॥
जिउ भावै तिउ राखु तूं मै हरि नामु अधारु ॥
मन रे साची खसम रजाइ ॥
जिनि तनु मनु साजि सीगारिआ तिसु सेती लिव लाइ ॥ रहाउ ॥
तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ ॥
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ ॥[6]

---

1. **कुंगू**=केसर। 2. **करे...पसाउ**=नाज़-नख़रा करे। 3. **होइ बैसा**=हो जाऊँ। 4. **वाउ**=व्यर्थ। 5. **बेधिआ**=बिँध गया, वश में आ गया। 6 **समधा**=समिधा, हवन या यज्ञ में जलाने की लकड़ी।

हरि नामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ॥
अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ॥
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ॥
हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ॥
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु॥[1]
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु॥
राम नामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु॥
मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार॥
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर॥
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु॥
सभु को ऊचा आखीऐ नीचु न दीसै कोइ॥
इकनै भांडे साजिऐ इकु चानणु तिहु लोइ॥[2]
करमि मिलै सचु पाईऐ धुरि बखस न मेटै कोइ॥
साधु मिलै साधू जनै संतोखु वसै गुर भाइ॥
अकथ कथा वीचारीऐ जे सतिगुर माहि समाइ॥
पी अंम्रितु संतोखिआ दरगहि पैधा जाइ॥[3]
घटि घटि वाजै किंगुरी अनदिनु सबदि सुभाइ॥
विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ॥
नानक नामु न वीसरै छूटै सबदु कमाइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 62

रागु सिरीरागु महला 1 घरु 1

वणजु करहु वणजारिहो वखरु लेहु समालि॥[4]
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि॥
अगै साहु सुजाणु है लैसी वसतु समालि॥
भाई रे रामु कहहु चितु लाइ॥

1. **दतु**=दान; **हैवर**=घोड़े; **गैवर**=हाथी। 2. **तिहु लोइ**=तीन लोक। 3. **दरगहि...जाइ**=सम्मानपूर्वक प्रभु के दरबार में पहुँच जाता है। 4. **वखरु**=वस्तु।

हरि जसु वखरु लै चलहु सहु देखै पतीआइ॥ रहाउ॥
जिना रासि न सचु है किउ तिना सुखु होइ॥
खोटै वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ॥
फाही फाथे मिरग जिउ दूखु घणो नित रोइ॥
खोटे पोतै ना पवहि तिन हरि गुर दरसु न होइ॥[1]
खोटे जाति न पति है खोटि न सीझसि कोइ॥[2]
खोटे खोटु कमावणा आइ गइआ पति खोइ॥
नानक मनु समझाईऐ गुर कै सबदि सालाह॥
राम नाम रंगि रतिआ भारु न भरमु तिनाह॥
हरि जपि लाहा अगला निरभउ हरि मन माह॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 22

रागु आसा महला 1 असटपदीआ घरु 2

सभि जप सभि तप सभ चतुराई। ऊझड़ि भरमै राहि न पाई॥
बिनु बूझे को थाइ न पाई। नाम बिहूणै माथे छाई॥
साच धणी जगु आइ बिनासा। छूटसि प्राणी गुरमुखि दासा॥ रहाउ॥
जगु मोहि बाधा बहुती आसा। गुरमती इकि भए उदासा॥
अंतरि नामु कमलु परगासा। तिन्ह कउ नाही जम की त्रासा॥[3]
जगु त्रिअ जितु कामणि हितकारी। पुत्र कलत्र लगि नामु विसारी॥
बिरथा जनमु गवाइआ बाजी हारी। सतिगुरु सेवे करणी सारी॥
बाहरहु हउमै कहै कहाए। अंदरहु मुकतु लेपु कदे न लाए॥
माइआ मोहु गुर सबदि जलाए। निरमल नामु सद हिरदै धिआए॥
धावतु राखै ठाकि रहाए। सिख संगति करमि मिलाए॥
गुर बिनु भूलो आवै जाए। नदरि करे संजोगि मिलाए॥
रूड़ो कहउ न कहिआ जाई। अकथ कथउ नह कीमति पाई॥

---

1. **खोटे**=मनमुख; **पोतै**=ख़ज़ाने में; **खोटे...पवहि**=खोटे सिक्के ख़ज़ाने में दाख़िल नहीं हो सकते। 2. **खोटि**=जिसमें खोट है; **खोटि...कोइ**=जिसमें खोट है, वह सफल नहीं हो सकता। 3. **त्रासा**=भय, त्रास।

सभ दुख तेरे सूख रजाई। सभि दुख मेटे साचै नाई॥
कर बिनु वाजा पग बिनु ताला। जे सबदु बुझै ता सचु निहाला॥
अंतरि साचु सभे सुख नाला। नदरि करे राखै रखवाला॥
त्रिभवण सूझै आपु गवावै। बाणी बूझै सचि समावै॥
सबदु वीचारे एक लिव तारा। नानक धंनु सवारणहारा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 412

मारू सोलहे महला 1

सरणि परे गुरदेव तुमारी॥ तू समरथु दइआलु मुरारी॥
तेरे चोज न जाणै कोई तू पूरा पुरखु बिधाता हे॥
तू आदि जुगादि करहि प्रतिपाला॥ घटि घटि रूपु अनूपु दइआला॥
जिउ तुधु भावै तिवै चलावहि सभु तेरो कीआ कमाता हे॥
अंतरि जोति भली जगजीवन॥ सभि घट भोगै हरि रसु पीवन॥
आपे लेवै आपे देवै तिहु लोई जगत पित दाता हे॥
जगतु उपाइ खेलु रचाइआ॥ पवणै पाणी अगनी जीउ पाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे सो दसवा गुपतु रहाता हे॥
चारि नदी अगनी असराला॥ कोई गुरमुखि बूझै सबदि निराला॥
साकत दुरमति डूबहि दाझहि गुरि राखे हरि लिव राता हे॥
अपु तेजु वाइ प्रिथमी आकासा॥ तिन महि पंच ततु घरि वासा॥[1]
सतिगुर सबदि रहहि रंगि राता तजि माइआ हउमै भ्राता हे॥
इहु मनु भीजै सबदि पतीजै॥ बिनु नावै किआ टेक टिकीजै॥
अंतरि चोरु मुहै घरु मंदरु इनि साकति दूतु न जाता हे॥
दुंदर दूत भूत भीहाले॥ खिंचोताणि करहि बेताले॥[2]
सबद सुरति बिनु आवै जावै पति खोई आवत जाता हे॥
कूड़ु कलरु तनु भसमै ढेरी॥ बिनु नावै कैसी पति तेरी॥
बाधे मुकति नाही जुग चारे जमकंकरि कालि पराता हे॥

---

1. **अपु...आकासा**=जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी और आकाश। 2. **दुंदर**=झगड़ालू; **भीहाले**=भयानक, डरावने।

जम दरि बाधे मिलहि सजाई॥ तिसु अपराधी गति नही काई॥
करण पलाव करे बिललावै जिउ कुंडी मीनु पराता हे॥[1]
साकतु फासी पड़ै इकेला॥ जम वसि कीआ अंधु दुहेला॥
राम नाम बिनु मुकति न सूझै आजु कालि पचि जाता हे॥
सतिगुर बाझु न बेली कोई॥ ऐथै ओथै राखा प्रभु सोई॥
राम नामु देवै करि किरपा इउ सललै सलल मिलाता हे॥
भूले सिख गुरू समझाए॥ उझड़ि जादे मारगि पाए॥
तिसु गुर सेवि सदा दिनु राती दुख भंजन संगि सखाता हे॥
गुर की भगति करहि किआ प्राणी॥ ब्रहमै इंद्रि महेसि न जाणी॥
सतिगुरु अलखु कहहु किउ लखीऐ जिसु बखसे तिसहि पछाता हे॥
अंतरि प्रेमु परापति दरसनु॥ गुरबाणी सिउ प्रीति सु परसनु॥
अहिनिसि निरमल जोति सबाई घटि दीपकु गुरमुखि जाता हे॥[2]
भोजन गिआनु महा रसु मीठा॥ जिनि चाखिआ तिनि दरसनु डीठा॥
दरसनु देखि मिले बैरागी मनु मनसा मारि समाता हे॥
सतिगुरु सेवहि से परधाना॥ तिन घट घट अंतरि ब्रहमु पछाना॥
नानक हरि जसु हरि जन की संगति दीजै जिन सतिगुरु हरि प्रभु जाता हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1031

रागु गउड़ी असटपदीआ महला 1 गउड़ी गुआरेरी

हठु करि मरै न लेखै पावै॥ वेस करै बहु भसम लगावै॥
नामु बिसारि बहुरि पछुतावै॥
तूं मनि हरि जीउ तूं मनि सूख॥ नामु बिसारि सहहि जम दूख॥ रहाउ॥
चोआ चंदन अगर कपूरि॥ माइआ मगनु परम पदु दूरि॥
नामि बिसारिऐ सभु कूड़ो कूरि॥
नेजे वाजे तखति सलामु॥ अधकी त्रिसना विआपै कामु॥
बिनु हरि जाचे भगति न नामु॥

---

1. **कुंडी...हे**=कुंडी में फँसी मछली की भाँति तड़पता है। 2. **अहिनिसि**=दिन-रात।

वादि अहंकारि नाही प्रभ मेला॥ मनु दे पावहि नामु सुहेला॥
दूजै भाइ अगिआनु दुहेला॥
बिनु दम के सउदा नही हाट॥ बिनु बोहिथ सागर नही वाट॥
बिनु गुर सेवे घाटे घाटि॥
तिस कउ वाहु वाहु जि वाट दिखावै॥ तिस कउ वाहु वाहु जि सबदु सुणावै॥
तिस कउ वाहु वाहु जि मेलि मिलावै॥
वाहु वाहु तिस कउ जिस का इहु जीउ॥ गुर सबदी मथि अंम्रितु पीउ॥
नाम वडाई तुधु भाणै दीउ॥
नाम बिना किउ जीवा माइ॥ अनदिनु जपतु रहउ तेरी सरणाइ॥
नानक नामि रते पति पाइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 226

मारू सोलहे महला 1

हरि धनु संचहु रे जन भाई॥ सतिगुर सेवि रहहु सरणाई॥[1]
तसकरु चोरु न लागै ता कउ धुनि उपजै सबदि जगाइआ॥[2]
तू एकंकारु निरालमु राजा॥ तू आपि सवारहि जन के काजा॥[3]
अमरु अडोलु अपारु अमोलकु हरि असथिर थानि सुहाइआ॥
देही नगरी ऊतम थाना॥ पंच लोक वसहि परधाना॥
ऊपरि एकंकारु निरालमु सुंन समाधि लगाइआ॥
देही नगरी नउ दरवाजे॥ सिरि सिरि करणैहारै साजे॥
दसवै पुरखु अतीतु निराला आपे अलखु लखाइआ॥
पुरखु अलेखु सचे दीवाना॥ हुकमि चलाए सचु नीसाना॥[4]
नानक खोजि लहहु घरु अपना हरि आतम राम नामु पाइआ॥
सरब निरंजन पुरखु सुजाना॥ अदलु करे गुर गिआन समाना॥[5]
कामु क्रोधु लै गरदनि मारे हउमै लोभु चुकाइआ॥

---

1. **संचहु**=संग्रह करो, इकट्ठा करो। 2. **तसकरु**=चोर। 3. **निरालमु**=निर्लेप।
4. **नीसाना**=सत्य यानी सतनाम के पास जाने का चिन्ह, परवाना (Passport)।
5. **अदलु**=न्याय, इंसाफ़; **गुर...समाना**=गुरु के ज्ञान द्वारा हर जगह समाया हुआ नज़र आता है।

सचै थानि वसै निरंकारा॥ आपि पछाणै सबदु वीचारा॥
सचै महलि निवासु निरंतरि आवण जाणु चुकाइआ॥
ना मनु चलै न पउणु उडावै॥ जोगी सबदु अनाहदु वावै॥[1]
पंच सबद झुणकारु निरालमु प्रभि आपे वाइ सुणाइआ॥[2]
भउ बैरागा सहजि समाता॥ हउमै तिआगी अनहदि राता॥
अंजनु सारि निरंजनु जाणै सरब निरंजनु राइआ॥
दुख भै भंजनु प्रभु अबिनासी॥ रोग कटे काटी जम फासी॥
नानक हरि प्रभु सो भउ भंजनु गुरि मिलिऐ हरि प्रभु पाइआ॥
कालै कवलु निरंजनु जाणै॥ बूझै करमु सु सबदु पछाणै॥[3]
आपे जाणै आपि पछाणै सभु तिस का चोजु सबाइआ॥
आपे साहु आपे वणजारा॥ आपे परखे परखणहारा॥
आपे कसि कसवटी लाए आपे कीमति पाइआ॥
आपि दइआलि दइआ प्रभि धारी॥ घटि घटि रवि रहिआ बनवारी॥
पुरखु अतीतु वसै निहकेवलु गुर पुरखै पुरखु मिलाइआ॥
प्रभु दाना बीना गरबु गवाए॥ दूजा मेटै एकु दिखाए॥
आसा माहि निरालमु जोनी अकुल निरंजनु गाइआ॥[4]
हउमै मेटि सबदि सुखु होई॥ आपु वीचारे गिआनी सोई॥
नानक हरि जसु हरि गुण लाहा सतसंगति सचु फलु पाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1039

बानी गुरु अंगद देव जी

वार माझ की तथा सलोक महला 2

अखी बाझहु वेखणा विणु कंना सुनणा॥
पैरा बाझहु चलणा विणु हथा करणा॥

---

1. **वावै**=बजाता है। 2. **सबद...निरालमु**=शब्द की निराली ध्वनि; **प्रभि...सुणाइआ**=शब्द की निराली ध्वनि प्रभु स्वयं ही बजाता और सुनाता है। 3. **कालै कवलु**=सहसदल कँवल; **बूझै करमु**=जो मालिक (प्रभु) की दया (मेहर) को जान लेता है। 4. **अकुल**=जिसका कुल नहीं।

जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा॥
नानक हुकमु पछाणि कै तउ खसमै मिलणा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 139

आसा की वार सलोकु महला 2

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु॥[1]
इकन्हा भाणै कढि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि॥[2]
नानक गुरमुखि जाणीऐ जा कउ आपि करे परगासु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 463

वार सूही की सलोक महला 2

किस ही कोई कोइ मंञु निमाणी इकु तू॥[3]
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 791

सारंग की वार सलोक महला 2

गुरु कुंजी पाहू निवलु मनु कोठा तनु छति॥[4]
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुंजी हथि॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1237

वार सूही की सलोक महला 2

जां सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ॥
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 792

---

1. **समाइ**=लीन कर लेता है (शब्द में)। 2. **किसै...रासि**=सत्य मार्ग पर किसको लायेगा।
3. **मंञु**=मैं। 4. **पाहू**=पास; **निवलु**=ताला (कुफ़ल)। 5. **उघड़ै**=खुलता।

वार सूही की सलोक महला 2

जिनी चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार॥[1]
चलण सार न जाणनी काज सवारणहार॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 787

आसा की वार सलोक महला 2

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार॥[2]
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अंधार॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 463

वार माझ की सलोक महला 2

दिसै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ॥[3]
रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लगै धाइ॥[4]
भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ॥[5]
नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 139

वार सूही की सलोक महला 2

नानक तिना बसंतु है जिन्ह घरि वसिआ कंतु॥
जिन के कंत दिसापुरी से अहिनिसि फिरहि जलंत॥[6]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 791

वार सूही की सलोक महला 2

राति कारणि धनु संचीऐ भलके चलणु होइ॥
नानक नालि न चलई फिरि पछुतावा होइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 787

---

1. **विथार**=फैलाव, विस्तार। 2. **उगवहि**=उदय हों। 3. **साउ**=स्वाद। 4. **रुहला**=पिंगला (अंगहीन)। 5. **लोइण**=आँखें, नेत्र। 6. **दिसापुरी**=विदेश।

वार मलार की सलोक महला 2

सावणु आइआ हे सखी कंतै चिति करेहु ॥
नानक झूरि मरहि दोहागणी जिन्ह अवरी लागा नेहु ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1280

वार मलार की सलोक महला 2

सावणु आइआ हे सखी जलहरु बरसनहारु ॥[1]
नानक सुखि सवनु सोहागणी जिन्ह सह नालि पिआरु ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1280

आसा की वार सलोक महला 2

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥
हउमै किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥[2]
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि ॥[3]
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जे आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 466

बानी गुरु अमरदास जी

रागु माझ असटपदीआ महला 3 घरु 1

आपु वंञाए ता सभ किछु पाए॥ गुर सबदी सची लिव लाए ॥[4]
सचु वणंजहि सचु संघरहि सचु वापारु करावणिआ ॥[5]
हउ वारी जीउ वारी हरि गुण अनदिनु गावणिआ ॥

---

1. **जलहरु**=जलधर, बादल। 2. **किथहु**=कहाँ से। 3. **पइऐ...फिराहि**=कर्मों के लेख अनुसार जीव आवागमन में रहता है। 4. **वंञाए**=खोये। 5. **संघरहि**=इकट्ठा करते हैं।

हउ तेरा तूं ठाकुरु मेरा सबदि वडिआई देवणिआ॥ रहाउ॥
वेला वखत सभि सुहाइआ॥ जितु सचा मेरे मनि भाइआ॥
सचे सेविऐ सचु वडिआई गुर किरपा ते सचु पावणिआ॥
भाउ भोजनु सतिगुरि तुठै पाए॥ अन रसु चूकै हरि रसु मंनि वसाए॥[1]
सचु संतोखु सहज सुखु बाणी पूरे गुर ते पावणिआ॥
सतिगुरु न सेवहि मूरख अंध गवारा॥ फिरि ओइ किथहु पाइनि मोख दुआरा॥
मरि मरि जंमहि फिरि फिरि आवहि जम दरि चोटा खावणिआ॥
सबदै सादु जाणहि ता आपु पछाणहि॥ निरमल बाणी सबदि वखाणहि॥
सचे सेवि सदा सुखु पाइनि नउ निधि नामु मंनि वसावणिआ॥
सो थानु सुहाइआ जो हरि मनि भाइआ॥ सतसंगति बहि हरि गुण गाइआ॥
अनदिनु हरि सालाहहि साचा निरमल नादु वजावणिआ॥
मनमुख खोटी रासि खोटा पासारा॥ कूड़ु कमावनि दुखु लागै भारा॥
भरमे भूले फिरनि दिन राती मरि जनमहि जनमु गवावणिआ॥
सचा साहिबु मै अति पिआरा॥ पूरे गुर कै सबदि अधारा॥
नानक नामि मिलै वडिआई दुखु सुखु सम करि जानणिआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 115

रागु माझ असटपदीआ महला 3 घरु 1

इसु गुफा महि अखुट भंडारा॥ तिसु विचि वसै हरि अलख अपारा॥
आपे गुपतु परगटु है आपे गुर सबदी आपु वंञावणिआ॥[2]
हउ वारी जीउ वारी अंम्रित नामु मंनि वसावणिआ॥
अंम्रित नामु महा रसु मीठा गुरमती अंम्रितु पीआवणिआ॥ रहाउ॥
हउमै मारि बजर कपाट खुलाइआ॥ नामु अमोलकु गुर परसादी पाइआ॥

---

1. **भाउ...पाए**=सतगुरु के प्रसन्न होने पर प्रेम रूपी भोजन प्राप्त होता है। 2. **आपु**= आपाभाव, अहम्, अहंकार; **गुर...वंञावणिआ**=जो लोग गुरु के उपदेश पर चलकर आपा भाव यानी अहम् त्याग देते हैं उन्हें हर जगह प्रभु व्याप्त दिखायी देता है।

बिनु सबदै नामु न पाए कोई गुर किरपा मंनि वसावणिआ॥
गुर गिआन अंजनु सचु नेत्री पाइआ॥ अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ॥
जोती जोति मिली मनु मानिआ हरि दरि सोभा पावणिआ॥
सरीरहु भालणि को बाहरि जाए॥ नामु न लहै बहुतु वेगारि दुखु पाए॥
मनमुख अंधे सूझै नाही फिरि घिरि आइ गुरमुखि वथु पावणिआ॥
गुर परसादी सचा हरि पाए॥ मनि तनि वेखै हउमै मैलु जाए॥
बैसि सुथानि सद हरि गुण गावै सचै सबदि समावणिआ॥[1]
नउ दर ठाके धावतु रहाए॥ दसवै निज घरि वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिआ॥
बिनु सबदै अंतरि आनेरा॥ न वसतु लहै न चूकै फेरा॥
सतिगुर हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही गुरु पूरै भागि मिलावणिआ॥
गुपतु परगटु तूं सभनी थाई॥ गुर परसादी मिलि सोझी पाई॥
नानक नामु सलाहि सदा तूं गुरमुखि मंनि वसावणिआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 124

रागु गउड़ी गुआरेरी महला 3 असटपदीआ

इसु जुग का धरमु पड़हु तुम भाई॥ पूरै गुरि सभ सोझी पाई॥
ऐथै अगै हरि नामु सखाई॥
राम पड़हु मनि करहु बीचारु॥ गुर परसादी मैलु उतारु॥ रहाउ॥
वादि विरोधि न पाइआ जाइ॥ मनु तनु फीका दूजै भाइ॥
गुर कै सबदि सचि लिव लाइ॥
हउमै मैला इहु संसारा॥ नित तीरथि नावै न जाइ अहंकारा॥
बिनु गुर भेटे जमु करे खुआरा॥
सो जनु साचा जि हउमै मारै॥ गुर कै सबदि पंच संघारै॥
आपि तरै सगले कुल तारै॥
माइआ मोहि नटि बाजी पाई॥ मनमुख अंध रहे लपटाई॥

---

1. **बैसि**=बैठकर; **सुथानि**=उत्तम स्थान पर भाव सत्संग में।

गुरमुखि अलिपत रहे लिव लाई॥
बहुते भेख करै भेखधारी॥ अंतरि तिसना फिरै अहंकारी॥
आपु न चीनै बाजी हारी॥
कापड़ पहिरि करे चतुराई॥ माइआ मोहि अति भरमि भुलाई॥
बिनु गुर सेवे बहुतु दुखु पाई॥
नामि रते सदा बैरागी॥ ग्रिही अंतरि साचि लिव लागी॥
नानक सतिगुरु सेवहि से वडभागी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 230

रागु माझ असटपदीआ महला 3 घरु 1

करमु होवै सतिगुरू मिलाए॥ सेवा सुरति सबदि चितु लाए॥
हउमै मारि सदा सुखु पाइआ माइआ मोहु चुकावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी सतिगुर कै बलिहारणिआ॥
गुरमती परगासु होआ जी अनदिनु हरि गुण गावणिआ॥ रहाउ॥
तनु मनु खोजे ता नाउ पाए॥ धावतु राखै ठाकि रहाए॥
गुर की बाणी अनदिनु गावै सहजे भगति करावणिआ॥
इसु काइआ अंदरि वसतु असंखा॥ गुरमुखि साचु मिलै ता वेखा॥
नउ दरवाजे दसवै मुकता अनहद सबदु वजावणिआ॥
सचा साहिबु सची नाई॥ गुर परसादी मंनि वसाई॥[1]
अनदिनु सदा रहै रंगि राता दरि सचै सोझी पावणिआ॥
पाप पुंन की सार न जाणी॥ दूजै लागी भरमि भुलाणी॥
अगिआनी अंधा मगु न जाणै फिरि फिरि आवण जावणिआ॥
गुर सेवा ते सदा सुखु पाइआ॥ हउमै मेरा ठाकि रहाइआ॥
गुर साखी मिटिआ अंधिआरा बजर कपाट खुलावणिआ॥
हउमै मारि मंनि वसाइआ॥ गुर चरणी सदा चितु लाइआ॥
गुर किरपा ते मनु तनु निरमलु निरमल नामु धिआवणिआ॥

---

1. **नाई**=नाम।

जीवणु मरणा सभु तुधै ताई॥ जिसु बखसे तिसु दे वडिआई॥
नानक नामु धिआइ सदा तूं जंमणु मरणु सवारणिआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 109

रागु सूही महला 3 घरु 1 असटपदीआ

काइआ कामणि अति सुआल्हिउ पिरु वसै जिसु नाले॥[1]
पिर सचे ते सदा सुहागणि गुर का सबदु सम्हाले॥
हरि की भगति सदा रंगि राता हउमै विचहु जाले॥
वाहु वाहु पूरे गुर की बाणी॥ पूरे गुर ते उपजी साचि समाणी॥ रहाउ॥
काइआ अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला॥
काइआ अंदरि जगजीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला॥
काइआ कामणि सदा सुहेली गुरमुखि नामु सम्हाला॥
काइआ अंदरि आपे वसै अलखु न लखिआ जाई॥
मनमुखु मुगधु बूझै नाही बाहरि भालणि जाई॥
सतिगुरु सेवे सदा सुखु पाए सतिगुरि अलखु दिता लखाई॥
काइआ अंदरि रतन पदारथ भगति भरे भंडारा॥
इसु काइआ अंदरि नउ खंड प्रिथमी हाट पटण बाजारा॥
इसु काइआ अंदरि नामु नउ निधि पाईऐ गुर कै सबदि वीचारा॥
काइआ अंदरि तोलि तुलावै आपे तोलणहारा॥
इहु मनु रतनु जवाहर माणकु तिस का मोलु अफारा॥[2]
मोलि कित ही नामु पाईऐ नाही नामु पाईऐ गुर बीचारा॥
गुरमुखि होवै सु काइआ खोजै होर सभ भरमि भुलाई॥
जिस नो देइ सोई जनु पावै होर किआ को करे चतुराई॥
काइआ अंदरि भउ भाउ वसै गुर परसादी पाई॥
काइआ अंदरि ब्रहमा बिसनु महेसा सभ ओपति जितु संसारा॥[3]

---

1. **कामणि**=स्त्री; **सुआल्हिउ**=सुन्दर। 2. **तिस...अफारा**=वह अमूल्य, अमोलक है।
3. **सभ...संसारा**=जिन्होंने सारे संसार की रचना की है।

सचै आपणा खेलु रचाइआ आवा गउणु पासारा॥
पूरै सतिगुरि आपि दिखाइआ सचि नामि निसतारा॥
सा काइआ जो सतिगुरु सेवै सचै आपि सवारी॥
विणु नावै दरि ढोई नाही ता जमु करे खुआरी॥
नानक सचु वडिआई पाए जिस नो हरि किरपा धारी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 754

प्रभाती महला 3 बिभास

गुर परसादी वेखु तू हरि मंदरु तेरै नालि॥
हरि मंदरु सबदे खोजीऐ हरि नामो लेहु सम्हालि॥
मन मेरे सबदि रपै रंगु होइ॥[1]
सची भगति सचा हरि मंदरु प्रगटी साची सोइ॥ रहाउ॥
हरि मंदरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ॥
मनमुख मूलु न जाणनी माणसि हरि मंदरु न होइ॥
हरि मंदरु हरि जीउ साजिआ रखिआ हुकमि सवारि॥
धुरि लेखु लिखिआ सु कमावणा कोइ न मेटणहारु॥
सबदु चीन्हि सुखु पाइआ सचै नाइ पिआर॥
हरि मंदरु सबदे सोहणा कंचनु कोटु अपार॥
हरि मंदरु एहु जगतु है गुर बिनु घोरंधार॥
दूजा भाउ करि पूजदे मनमुख अंध गवार॥
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै देह जाति न जाइ॥[2]
साचि रते से उबरे दुखीए दूजै भाइ॥[3]
हरि मंदर महि नामु निधानु है ना बूझहि मुगध गवार॥
गुर परसादी चीन्हिआ हरि राखिआ उरि धारि॥

---

1. **सबदि...होइ**=शब्द में लीन होने से ही भक्ति का सच्चा रंग चढ़ता है। 2. **तिथै...जाइ**=वहाँ शरीर और जाति साथ नहीं जाते। 3. **साचि...उबरे**=जो सच्चे नाम की कमाई में लग गये, उनका उद्धार हो गया।

गुर की बाणी गुर ते जाती जि सबदि रते रंगु लाइ॥
पवितु पावन से जन निरमल हरि कै नामि समाइ॥
हरि मंदरु हरि का हाटु है रखिआ सबदि सवारि॥
तिसु विचि सउदा एकु नामु गुरमुखि लैनि सवारि॥
हरि मंदर महि मनु लोहटु है मोहिआ दूजै भाइ॥[1]
पारसि भेटिऐ कंचनु भइआ कीमति कही न जाइ॥
हरि मंदर महि हरि वसै सरब निरंतरि सोइ॥[2]
नानक गुरमुखि वणजीऐ सचा सउदा होइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1346

सिरीरागु महला 3 घरु 1 असटपदीआ

गुरमुखि क्रिपा करे भगति कीजै बिनु गुर भगति न होइ॥
आपै आपु मिलाए बूझै ता निरमलु होवै कोइ॥
हरि जीउ सचा सची बाणी सबदि मिलावा होइ॥
भाई रे भगतिहीणु काहे जगि आइआ॥
पूरे गुर की सेव न कीनी बिरथा जनमु गवाइआ॥ रहाउ॥
आपे हरि जगजीवनु दाता आपे बखसि मिलाए॥
जीअ जंत ए किआ वेचारे किआ को आखि सुणाए॥
गुरमुखि आपे दे वडिआई आपे सेव कराए॥
देखि कुटंबु मोहि लोभाणा चलदिआ नालि न जाई॥
सतिगुरु सेवि गुण निधानु पाइआ तिस की कीम न पाई॥
प्रभु सखा हरि जीउ मेरा अंते होइ सखाई॥
पेईअड़ै जगजीवनु दाता मनमुखि पति गवाई॥
बिनु सतिगुर को मगु न जाणै अंधे ठउर न काई॥
हरि सुखदाता मनि नही वसिआ अंति गइआ पछुताई॥

---

1. **लोहटु**=लोहे की मैल। 2. **सरब...सोइ**=वह सर्वव्यापक है, सब में बस रहा है।

पेईअड़ै जगजीवनु दाता गुरमति मंनि वसाइआ॥
अनदिनु भगति करहि दिनु राती हउमै मोहु चुकाइआ॥
जिसु सिउ राता तैसो होवै सचे सचि समाइआ॥
आपे नदरि करे भाउ लाए गुर सबदी बीचारि॥
सतिगुरु सेविऐ सहजु ऊपजै हउमै त्रिसना मारि॥
हरि गुणदाता सद मनि वसै सचु रखिआ उर धारि॥
प्रभु मेरा सदा निरमला मनि निरमलि पाइआ जाइ॥
नामु निधानु हरि मनि वसै हउमै दुखु सभु जाइ॥
सतिगुरि सबदु सुणाइआ हउ सद बलिहारै जाउ॥
आपणै मनि चिति कहै कहाए बिनु गुर आपु न जाई॥
हरि जीउ भगति वछलु सुखदाता करि किरपा मंनि वसाई॥
नानक सोभा सुरति देइ प्रभु आपे गुरमुखि दे वडिआई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 64

रागु आसा महला 3 असटपदीआ

घरै अंदरि सभु वथु है बाहरि किछु नाही॥
गुर परसादी पाईऐ अंतरि कपट खुलाही॥
सतिगुर ते हरि पाईऐ भाई॥
अंतरि नामु निधानु है पूरै सतिगुरि दीआ दिखाई॥ रहाउ॥
हरि का गाहकु होवै सो लए पाए रतनु वीचारा॥
अंदरु खोलै दिब दिसटि देखै मुकति भंडारा॥
अंदरि महल अनेक हहि जीउ करे वसेरा॥[1]
मन चिंदिआ फलु पाइसी फिरि होइ न फेरा॥
पारखीआ वथु समालि लई गुर सोझी होई॥
नामु पदारथु अमुलु सा गुरमुखि पावै कोई॥
बाहरु भाले सु किआ लहै वथु घरै अंदरि भाई॥

---

1. **वसेरा**=ठिकाना, निवास।

भरमे भूला सभु जगु फिरै मनमुखि पति गवाई॥
घरु दरु छोडे आपणा पर घरि झूठा जाई॥
चोरै वांगू पकड़ीऐ बिनु नावै चोटा खाई॥
जिन्ही घरु जाता आपणा से सुखीए भाई॥
अंतरि ब्रहमु पछाणिआ गुर की वडिआई॥
आपे दानु करे किसु आखीऐ आपे देइ बुझाई॥
नानक नामु धिआइ तूं दरि सचै सोभा पाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 425

मारू सोलहे महला 3

जगजीवनु साचा एको दाता॥ गुर सेवा ते सबदि पछाता॥
एको अमरु एका पतिसाही जुगु जुगु सिरि कार बणाई हे॥[1]
सो जनु निरमलु जिनि आपु पछाता॥ आपे आइ मिलिआ सुखदाता॥
रसना सबदि रती गुण गावै दरि साचै पति पाई हे॥
गुरमुखि नामि मिलै वडिआई॥ मनमुखि निंदकि पति गवाई॥
नामि रते परम हंस बैरागी निज घरि ताड़ी लाई हे॥
सबदि मरै सोई जनु पूरा॥ सतिगुरु आखि सुणाए सूरा॥
काइआ अंदरि अंम्रित सरु साचा मनु पीवै भाइ सुभाई हे॥[2]
पड़ि पंडितु अवरा समझाए॥ घर जलते की खबरि न पाए॥
बिनु सतिगुर सेवे नामु न पाईऐ पड़ि थाके सांति न आई हे॥
इकि भसम लगाइ फिरहि भेखधारी॥ बिनु सबदै हउमै किनि मारी॥
अनदिनु जलत रहहि दिनु राती भरमि भेखि भरमाई हे॥
इकि ग्रिह कुटंब महि सदा उदासी॥ सबदि मुए हरि नामि निवासी॥
अनदिनु सदा रहहि रंगि राते भै भाइ भगति चितु लाई हे॥
मनमुखु निंदा करि करि विगुता॥ अंतरि लोभु भउकै जिसु कुता॥[3]

---

1. **अमरु**=हुक्म; **सिरि कार**=सरकार, हुकूमत। 2. **भाइ सुभाई**=प्रेम भाव से। 3. **मनमुखु... विगुता**=मनमुख निंदा करने में खोया रहता है, परेशान रहता है; **अंतरि...कुता**=जिनके अन्दर लोभ रूपी कुत्ता भौंकता रहता है।

जमकालु तिसु कदे न छोडै अंति गइआ पछुताई हे॥
सचै सबदि सची पति होई॥ बिनु नावै मुकति न पावै कोई॥
बिनु सतिगुर को नाउ न पाए प्रभि ऐसी बणत बणाई हे॥
इकि सिध साधिक बहुतु वीचारी॥ इकि अहिनिसि नामि रते निरंकारी॥[1]
जिस नो आपि मिलाए सो बूझै भगति भाइ भउ जाई हे॥
इसनानु दानु करहि नही बूझहि॥ इकि मनूआ मारि मनै सिउ लूझहि॥[2]
साचै सबदि रते इक रंगी साचै सबदि मिलाई हे॥
आपे सिरजे दे वडिआई॥ आपे भाणै देइ मिलाई॥
आपे नदरि करे मनि वसिआ मेरै प्रभि इउ फुरमाई हे॥
सतिगुरु सेवहि से जन साचे॥ मनमुख सेवि न जाणनि काचे॥
आपे करता करि करि वेखै जिउ भावै तिउ लाई हे॥
जुगि जुगि साचा एको दाता॥ पूरै भागि गुर सबदु पछाता॥
सबदि मिले से विछुड़े नाही नदरी सहजि मिलाई हे॥
हउमै माइआ मैलु कमाइआ॥ मरि मरि जंमहि दूजा भाइआ॥
बिनु सतिगुर सेवे मुकति न होई मनि देखहु लिव लाई हे॥
जो तिसु भावै सोई करसी॥ आपहु होआ ना किछु होसी॥
नानक नामु मिलै वडिआई दरि साचै पति पाई हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1045

सिरीरागु महला 3 घरु 1

जगि हउमै मैलु दुखु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ॥
मलु हउमै धोती किवै न उतरै जे सउ तीरथ नाइ॥
बहु बिधि करम कमावदे दूणी मलु लागी आइ॥
पड़िऐ मैलु न उतरै पूछहु गिआनीआ जाइ॥
मन मेरे गुर सरणि आवै ता निरमलु होइ॥

---

1. **इकि...निरंकारी**=कुछ दिन-रात निराकार प्रभु के नाम के रंग में रँगे रहते हैं।
2. **लूझहि**=लड़ते हैं।

मनमुख हरि हरि करि थके मैलु न सकी धोइ॥ रहाउ॥
मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ॥
मनमुख मैले मैले मुए जासनि पति गवाइ॥
गुर परसादी मनि वसै मलु हउमै जाइ समाइ॥
जिउ अंधेरै दीपकु बालीऐ तिउ गुर गिआनि अगिआनु तजाइ॥
हम कीआ हम करहगे हम मूरख गावार॥[1]
करणै वाला विसरिआ दूजै भाइ पिआरु॥[2]
माइआ जेवडु दुखु नही सभि भवि थके संसारु॥
गुरमती सुखु पाईऐ सचु नामु उर धारि॥
जिस नो मेले सो मिलै हउ तिसु बलिहारै जाउ॥
ए मन भगती रतिआ सचु बाणी निज थाउ॥
मनि रते जिहवा रती हरि गुण सचे गाउ॥
नानक नामु न वीसरै सचे माहि समाउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 39

मारू महला 3 घरु 5 असटपदी

जिस नो प्रेमु मंनि वसाए॥ साचै सबदि सहजि सुभाए॥
एहा वेदन सोई जाणै अवरु कि जाणै कारी जीउ॥
आपे मेले आपि मिलाए॥ आपणा पिआरु आपे लाए॥
प्रेम की सार सोई जाणै जिस नो नदरि तुमारी जीउ॥ रहाउ॥
दिब द्रिसटि जागै भरमु चुकाए॥ गुर परसादि परम पदु पाए॥
सो जोगी इह जुगति पछाणै गुर कै सबदि बीचारी जीउ॥
संजोगी धन पिर मेला होवै॥ गुरमति विचहु दुरमति खोवै॥
रंग सिउ नित रलीआ माणै अपणे कंत पिआरी जीउ॥

1-2. **हम...पिआरु**=जो लोग कहते हैं, हमने इस प्रकार किया है, हम इस प्रकार करेंगे, वे सभी मूर्ख हैं क्योंकि वे उस सच्चे कर्ता (परमेश्वर) को भुलाकर माया यानी सांसारिक शक्लों-पदार्थों के मोह और प्यार में फँस गये हैं।

सतिगुर बाझहु वैदु न कोई॥ आपे आपि निरंजनु सोई॥
सतिगुर मिलिऐ मरै मंदा होवै गिआन बीचारी जीउ॥
एहु सबदु सारु जिस नो लाए॥ गुरमुखि त्रिसना भुख गवाए॥
आपण लीआ किछू न पाईऐ करि किरपा कल धारी जीउ॥
अगम निगमु सतिगुरू दिखाइआ॥ करि किरपा अपनै घरि आइआ॥
अंजन माहि निरंजनु जाता जिन कउ नदरि तुमारी जीउ॥
गुरमुखि होवै सो ततु पाए॥ आपणा आपु विचहु गवाए॥
सतिगुर बाझहु सभु धंधु कमावै वेखहु मनि वीचारी जीउ॥
इकि भ्रमि भूले फिरहि अहंकारी॥ इकना गुरमुखि हउमै मारी॥
सचै सबदि रते बैरागी होरि भरमि भुले गावारी जीउ॥
गुरमुखि जिनी नामु न पाइआ॥ मनमुखि बिरथा जनमु गवाइआ॥
अगै विणु नावै को बेली नाही बूझै गुर बीचारी जीउ॥
अंम्रित नामु सदा सुखदाता॥ गुरि पूरै जुग चारे जाता॥
जिसु तू देवहि सोई पाए नानक ततु बीचारी जीउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1016

रागु माझ असटपदीआ महला 3 घरु 1

तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी॥ बिनु नावै सभ भरमि भुलाणी॥[1]
गुर सेवा ते हरि नामु पाइआ बिनु सतिगुर कोइ न पावणिआ॥
हउ वारी जीउ वारी हरि सेती चितु लावणिआ॥
हरि सचा गुर भगती पाईऐ सहजे मंनि वसावणिआ॥ रहाउ॥
सतिगुरु सेवे ता सभ किछु पाए॥ जेही मनसा करि लागै तेहा फलु पाए॥
सतिगुरु दाता सभना वथू का पूरै भागि मिलावणिआ॥[2]
इहु मनु मैला इकु न धिआए॥ अंतरि मैलु लागी बहु दूजै भाए॥

---

1. **खाणी**=चारों खानी—अण्डज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज; **बाणी**=चारों बाणी—परा (योगी-जन नाभि से जो हिलोर उठाते हैं), पश्यन्ति (हृदय में कहा हुआ शब्द), मध्यमा (कण्ठ द्वारा कहा हुआ शब्द), बैखरी (मुख से उच्चारण किया हुआ शब्द)। 2. **वथू का**=वस्तुओं का।

तटि तीरथि दिसंतरि भवै अहंकारी होरु वधेरै हउमै मलु लावणिआ ॥
सतिगुरु सेवे ता मलु जाए॥ जीवतु मरै हरि सिउ चितु लाए॥
हरि निरमलु सचु मैलु न लागै सचि लागै मैलु गवावणिआ॥
बाझु गुरू है अंध गुबारा॥ अगिआनी अंधा अंधु अंधारा॥
बिसटा के कीड़े बिसटा कमावहि फिरि बिसटा माहि पचावणिआ॥
मुकते सेवे मुकता होवै॥ हउमै ममता सबदे खोवै॥
अनदिनु हरि जीउ सचा सेवी पूरै भागि गुरु पावणिआ॥
आपे बखसे मेलि मिलाए॥ पूरे गुर ते नामु निधि पाए॥
सचै नामि सदा मनु सचा सचु सेवे दुखु गवावणिआ॥
सदा हजूरि दूरि न जाणहु॥ गुर सबदी हरि अंतरि पछाणहु॥
नानक नामि मिलै वडिआई पूरे गुर ते पावणिआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 116

रागु सूही महला 3 घरु 10

दुनीआ न सालाहि जो मरि वंञसी॥
लोका न सालाहि जो मरि खाकु थीई॥
वाहु मेरे साहिबा वाहु॥
गुरमुखि सदा सलाहीऐ सचा वेपरवाहु॥ रहाउ॥
दुनीआ केरी दोसती मनमुख दझि मरंनि॥
जम पुरि बधे मारीअहि वेला न लाहंनि॥
गुरमुखि जनमु सकारथा सचै सबदि लगंनि॥
आतम रामु प्रगासिआ सहजे सुखि रहंनि॥
गुर का सबदु विसारिआ दूजै भाइ रचंनि॥
तिसना भुख न उतरै अनदिनु जलत फिरंनि॥
दुसटा नालि दोसती नालि संता वैरु करंनि॥
आपि डुबे कुटंब सिउ सगले कुल डोबंनि॥

निंदा भली किसै की नाही मनमुख मुगध करंनि॥
मुह काले तिन निंदका नरके घोरि पवंनि॥
ए मन जैसा सेवहि तैसा होवहि तेहे करम कमाइ॥
आपि बीजि आपे ही खावणा कहणा किछू न जाइ॥
महा पुरखा का बोलणा होवै कितै परथाइ॥
ओइ अंम्रित भरे भरपूर हहि ओना तिलु न तमाइ॥
गुणकारी गुण संघरै अवरा उपदेसेनि॥
से वडभागी जि ओना मिलि रहे अनदिनु नामु लएनि॥
देसी रिजकु संबाहि जिनि उपाई मेदनी॥
एको है दातारु सचा आपि धणी॥
सो सचु तेरै नालि है गुरमुखि नदरि निहालि॥
आपे बखसे मेलि लए सो प्रभु सदा समालि॥
मनु मैला सचु निरमला किउ करि मिलिआ जाइ॥
प्रभु मेले ता मिलि रहै हउमै सबदि जलाइ॥
सो सहु सचा वीसरै ध्रिगु जीवणु संसारि॥
नदरि करे ना वीसरै गुरमती वीचारि॥
सतिगुरु मेले ता मिलि रहा साचु रखा उर धारि॥
मिलिआ होइ न वीछुड़ै गुर कै हेति पिआरि॥
पिरु सालाही आपणा गुर कै सबदि वीचारि॥
मिलि प्रीतम सुखु पाइआ सोभावंती नारि॥
मनमुख मनु न भिजई अति मैले चिति कठोर॥
सपै दुधु पीआईऐ अंदरि विसु निकोर॥
आपि करे किसु आखीऐ आपे बखसणहारु॥
गुर सबदी मैलु उतरै ता सचु बणिआ सीगारु॥
सचा साहु सचे वणजारे ओथै कूड़े ना टिकंनि॥
ओना सचु न भावई दुख ही माहि पचंनि॥
हउमै मैला जगु फिरै मरि जंमै वारो वार॥

पइऐ किरति कमावणा कोइ न मेटणहार॥
संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु॥
सचु सलाही सचु मनि दरि सचै सचिआरु॥
गुर पूरे पूरी मति है अहिनिसि नामु धिआइ॥
हउमै मेरा वड रोगु है विचहु ठाकि रहाइ॥
गुरु सालाही आपणा निवि निवि लागा पाइ॥
तनु मनु सउपी आगै धरी विचहु आपु गवाइ॥
खिंचोताणि विगुचीऐ एकसु सिउ लिव लाइ॥
हउमै मेरा छडि तू ता सचि रहै समाइ॥
सतिगुर नो मिले सि भाइरा सचै सबदि लगंनि॥
सचि मिले से न विछुड़हि दरि सचै दिसंनि॥
से भाई से सजणा जो सचा सेवंनि॥
अवगण विकणि पल्हरनि गुण की साझ करंन्हि॥
गुण की साझ सुखु ऊपजै सची भगति करेनि॥
सचु वणंजहि गुर सबद सिउ लाहा नामु लएनि॥
सुइना रुपा पाप करि करि संचीऐ चलै न चलदिआ नालि॥
विणु नावै नालि न चलसी सभ मुठी जमकालि॥
मन का तोसा हरि नामु है हिरदै रखहु सम्हालि॥
एहु खरचु अखुटु है गुरमुखि निबहै नालि॥
ए मन मूलहु भुलिआ जासहि पति गवाइ॥
इहु जगतु मोहि दूजै विआपिआ गुरमती सचु धिआइ॥
हरि की कीमति ना पवै हरि जसु लिखणु न जाइ॥
गुर कै सबदि मनु तनु रपै हरि सिउ रहै समाइ॥
सो सहु मेरा रंगुला रंगे सहजि सुभाइ॥
कामणि रंगु ता चड़ै जा पिर कै अंकि समाइ॥
चिरी विछुंने भी मिलनि जो सतिगुरु सेवंनि॥
अंतरि नव निधि नामु है

खानि खरचनि न निखुटई हरि गुण सहजि रवंनि॥
ना ओइ जनमहि ना मरहि ना ओइ दुख सहंनि॥
गुरि राखे से उबरे हरि सिउ केल करंनि॥
सजण मिले न विछुड़हि जि अनदिनु मिले रहंनि॥
इसु जग महि विरले जाणीअहि नानक सचु लहंनि॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 755

रागु सूही महला 3 घरु 1 असटपदीआ

नामै ही ते सभु किछु होआ बिनु सतिगुर नामु न जापै॥
गुर का सबदु महा रसु मीठा बिनु चाखे सादु न जापै॥
कउडी बदलै जनमु गवाइआ चीनसि नाही आपै॥
गुरमुखि होवै ता एको जाणै हउमै दुखु न संतापै॥
बलिहारी गुर अपणे विटहु जिनि साचे सिउ लिव लाई॥
सबदु चीन्हि आतमु परगासिआ सहजे रहिआ समाई॥ रहाउ॥
गुरमुखि गावै गुरमुखि बूझै गुरमुखि सबदु बीचारे॥
जीउ पिंडु सभु गुर ते उपजै गुरमुखि कारज सवारे॥
मनमुखि अंधा अंधु कमावै बिखु खटे संसारे॥
माइआ मोहि सदा दुखु पाए बिनु गुर अति पिआरे॥
सोई सेवकु जे सतिगुर सेवे चालै सतिगुर भाए॥
साचा सबदु सिफति है साची साचा मंनि वसाए॥
सची बाणी गुरमुखि आखै हउमै विचहु जाए॥
आपे दाता करमु है साचा साचा सबदु सुणाए॥
गुरमुखि घाले गुरमुखि खटे गुरमुखि नामु जपाए॥[1]
सदा अलिपतु साचै रंगि राता गुर कै सहजि सुभाए॥
मनमुखु सद ही कूड़ो बोलै बिखु बीजै बिखु खाए॥
जमकालि बाधा त्रिसना दाधा बिनु गुर कवणु छडाए॥[2]

---

1. **गुरमुखि घाले**=गुरुमुख नाम की कमाई करता है। 2. **दाधा**=जला हुआ।

सचा तीरथु जितु सत सरि नावणु गुरमुखि आपि बुझाए॥
अठसठि तीरथ गुर सबदि दिखाए तितु नातै मलु जाए॥
सचा सबदु सचा है निरमलु ना मलु लगै न लाए॥
सची सिफति सची सालाह पूरे गुर ते पाए॥
तनु मनु सभु किछु हरि तिसु केरा दुरमति कहणु न जाए॥
हुकमु होवै ता निरमलु होवै हउमै विचहु जाए॥
गुर की साखी सहजे चाखी त्रिसना अगनि बुझाए॥
गुर कै सबदि राता सहजे माता सहजे रहिआ समाए॥
हरि का नामु सति करि जाणै गुर कै भाइ पिआरे॥
सची वडिआई गुर ते पाई सचै नाइ पिआरे॥
एको सचा सभ महि वरतै विरला को वीचारे॥
आपे मेलि लए ता बखसे सची भगति सवारे॥
सभो सचु सचु सचु वरतै गुरमुखि कोई जाणै॥
जंमण मरणा हुकमो वरतै गुरमुखि आपु पछाणै॥
नामु धिआए ता सतिगुरु भाए जो इछै सो फलु पाए॥
नानक तिस दा सभु किछु होवै जि विचहु आपु गवाए॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 753

मारू सोलहे महला 3

निहचलु एकु सदा सचु सोई॥ पूरे गुर ते सोझी होई॥
हरि रसि भीने सदा धिआइनि गुरमति सीलु संनाहा हे॥[1]
अंदरि रंगु सदा सचिआरा॥ गुर कै सबदि हरि नामि पिआरा॥
नउ निधि नामु वसिआ घट अंतरि छोडिआ माइआ का लाहा हे॥
रईअति राजे दुरमति दोई॥ बिनु सतिगुर सेवे एकु न होई॥
एकु धिआइनि सदा सुखु पाइनि निहचलु राजु तिनाहा हे॥

---

1. **सीलु**=शील, उत्तम आचरण; **संनाहा**=लोहे की पोशाक, कवच।

आवणु जाणा रखै न कोई॥ जंमणु मरणु तिसै ते होई॥
गुरमुखि साचा सदा धिआवहु गति मुकति तिसै ते पाहा हे॥
सचु संजमु सतिगुरू दुआरै॥ हउमै क्रोधु सबदि निवारै॥
सतिगुरु सेवि सदा सुखु पाईऐ सीलु संतोखु सभु ताहा हे॥
हउमै मोहु उपजै संसारा॥ सभु जगु बिनसै नामु विसारा॥
बिनु सतिगुर सेवे नामु न पाईऐ नामु सचा जगि लाहा हे॥
सचा अमरु सबदि सुहाइआ॥ पंच सबद मिलि वाजा वाइआ॥
सदा कारजु सचि नामि सुहेला बिनु सबदै कारजु केहा हे॥
खिन महि हसै खिन महि रोवै॥ दूजी दुरमति कारजु न होवै॥
संजोगु विजोगु करतै लिखि पाए किरतु न चलै चलाहा हे॥
जीवन मुकति गुर सबदु कमाए॥ हरि सिउ सद ही रहै समाए॥
गुर किरपा ते मिलै वडिआई हउमै रोगु न ताहा हे॥
रस कस खाए पिंडु वधाए॥ भेख करै गुर सबदु न कमाए॥[1]
अंतरि रोगु महा दुखु भारी बिसटा माहि समाहा हे॥[2]
बेद पड़हि पड़ि बादु वखाणहि॥ घट महि ब्रहमु तिसु सबदि न पछाणहि॥
गुरमुखि होवै सु ततु बिलोवै रसना हरि रसु ताहा हे॥
घरि वथु छोडहि बाहरि धावहि॥ मनमुख अंधे सादु न पावहि॥[3]
अन रस राती रसना फीकी बोले हरि रसु मूलि न ताहा हे॥
मनमुख देही भरमु भतारो॥ दुरमति मरै नित होइ खुआरो॥[4]
कामि क्रोधि मनु दूजै लाइआ सुपनै सुखु न ताहा हे॥
कंचन देही सबदु भतारो॥ अनदिनु भोग भोगे हरि सिउ पिआरो॥
महला अंदरि गैर महलु पाए भाणा बुझि समाहा हे॥[5]
आपे देवै देवणहारा॥ तिसु आगै नही किसै का चारा॥
आपे बखसे सबदि मिलाए तिस दा सबदु अथाहा हे॥

---

1. **रस...वधाए**=नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन खा-खा कर शरीर को बढ़ाता है।
2. **बिसटा**=मल, गन्दगी। 3. **वथु**=सार-वस्तु। 4. **भतारो**=भर्तार, पति। 5. **महला... पाए**=शरीर के अन्दर ही निजघर यानी सचखण्ड को प्राप्त कर लेता है।

जीउ पिंडु सभु है तिसु केरा॥ सचा साहिबु ठाकुरु मेरा॥
नानक गुरबाणी हरि पाइआ हरि जपु जापि समाहा हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1057

सिरीरागु महला 3 घरु 1

सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चलहि बाह लुडाइ॥[1]
आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसहि जाइ॥[2]
जिनी सखीं कंतु पछाणिआ हउ तिन कै लागउ पाइ॥
तिन ही जैसी थी रहा सतसंगति मेलि मिलाइ॥
मुंधे कूड़ि मुठी कूड़िआरि॥
पिरु प्रभु साचा सोहणा पाईऐ गुर बीचारि॥ रहाउ॥
मनमुखि कंतु न पछाणई तिन किउ रैणि विहाइ॥
गरबि अटीआ त्रिसना जलहि दुखु पावहि दूजै भाइ॥[3]
सबदि रतीआ सोहागणी तिन विचहु हउमै जाइ॥
सदा पिरु रावहि आपणा तिना सुखे सुखि विहाइ॥
गिआन विहूणी पिर मुतीआ पिरमु न पाइआ जाइ॥[4]
अगिआन मती अंधेरु है बिनु पिर देखे भुख न जाइ॥
आवहु मिलहु सहेलीहो मै पिरु देहु मिलाइ॥
पूरै भागि सतिगुरु मिलै पिरु पाइआ सचि समाइ॥
से सहीआ सोहागणी जिन कउ नदरि करेइ॥
खसमु पछाणहि आपणा तनु मनु आगै देइ॥

---

1. **सुणि...लुडाइ**=हे जीवात्मा, तू मस्ती से बाहें हिलाकर क्यों चलती है? 2. **आपणा... जाइ**=तूने अपने प्रियतम को नहीं पहचाना, आगे जाकर क्या मुँह दिखायेगी? 3. **गरबि... जलहि**=(मनमुख आत्मा) अहंकार से भरी होने के कारण तृष्णा की अग्नि में जलती है। 4. **गिआन...जाइ**=अज्ञानी नारियाँ अपने प्रियतम से बिछुड़ी हुई हैं। उन्हें अपने प्रियतम का प्रेम प्राप्त नहीं होता।

घरि वरु पाइआ आपणा हउमै दूरि करेइ॥
नानक सोभावंतीआ सोहागणी अनदिनु भगति करेइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 37

रामकली महला 3 असटपदीआ

हरि की पूजा दुलंभ है संतहु कहणा कछू न जाई॥[1]
संतहु गुरमुखि पूरा पाई नामो पूज कराई॥ रहाउ॥
हरि बिनु सभु किछु मैला संतहु किआ हउ पूज चड़ाई॥
हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मनि वसाई॥
पूजा करै सभु लोकु संतहु मनमुखि थाइ न पाई॥[2]
सबदि मरै मनु निरमलु संतहु एह पूजा थाइ पाई॥
पवित पावन से जन साचे एक सबदि लिव लाई॥[3]
बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई॥
गुरमुखि आपु पछाणै संतहु राम नामि लिव लाई॥
आपे निरमलु पूज कराए गुर सबदी थाइ पाई॥
पूजा करहि परु बिधि नही जाणहि दूजै भाइ मलु लाई॥
गुरमुखि होवै सु पूजा जाणै भाणा मनि वसाई॥[4]
भाणे ते सभि सुख पावै संतहु अंते नामु सखाई॥
अपणा आपु न पछाणहि संतहु कूड़ि करहि वडिआई॥
पाखंडि कीनै जमु नही छोडै लै जासी पति गवाई॥
जिन अंतरि सबदु आपु पछाणहि गति मिति तिन ही पाई॥
एहु मनूआ सुंन समाधि लगावै जोती जोति मिलाई॥
सुणि सुणि गुरमुखि नामु वखाणहि सतसंगति मेलाई॥
गुरमुखि गावै आपु गवावै दरि साचै सोभा पाई॥
साची बाणी सचु वखाणै सचि नामि लिव लाई॥

---

1. **दुलंभ**=दुर्लभ। 2. **थाइ**=ठिकाना। 3. **पवित**=पवित्र। 4. **भाणा**=रज़ा, जो अकाल पुरुष को भाये।

भै भंजनु अति पाप निखंजनु मेरा प्रभु अंति सखाई॥[1]
सभु किछु आपे आपि वरतै नानक नामि वडिआई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 910

मारू सोलहे महला 3

हुकमी सहजे स्रिसटि उपाई। करि करि वेखै अपणी वडिआई॥
आपे करे कराए आपे हुकमे रहिआ समाई हे॥
माइआ मोहु जगतु गुबारा। गुरमुखि बूझै को वीचारा॥
आपे नदरि करे सो पाए आपे मेलि मिलाई हे॥
आपे मेले दे वडिआई। गुर परसादी कीमति पाई॥
मनमुखि बहुतु फिरै बिललादी दूजै भाइ खुआई हे॥[2]
हउमै माइआ विचे पाई। मनमुख भूले पति गवाई॥
गुरमुखि होवै सो नाइ राचै साचै रहिआ समाई हे॥
गुर ते गिआनु नाम रतनु पाइआ॥ मनसा मारि मन माहि समाइआ॥[3]
आपे खेल करे सभि करता आपे देइ बुझाई हे॥
सतिगुरु सेवे आपु गवाए। मिलि प्रीतम सबदि सुखु पाए॥
अंतरि पिआरु भगती राता सहजि मते बणि आई हे॥[4]
दूख निवारणु गुर ते जाता। आपि मिलिआ जगजीवनु दाता॥
जिस नो लाए सोई बूझै भउ भरमु सरीरहु जाई हे॥
आपे गुरमुखि आपे देवै। सचै सबदि सतिगुरु सेवै॥
जरा जमु तिसु जोहि न साकै साचे सिउ बणि आई हे॥[5]
त्रिसना अगनि जलै संसारा। जलि जलि खपै बहुतु विकारा॥
मनमुखु ठउर न पाए कबहू सतिगुर बूझ बुझाई हे॥[6]
सतिगुरु सेवनि से वडभागी। साचै नामि सदा लिव लागी॥

---

1. **निखंजनु**=नाश करनेवाला। 2. **खुआई**=ख़्वार होते हैं। 3. **मनसा**=वासना, मन की लालसाएँ। 4. **सहजि**=बिना यत्न के। 5. **जरा...साकै**=बुढ़ापा और यम उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। 6. **ठउर**=ठिकाना।

अंतरि नामु रविआ निहकेवलु त्रिसना सबदि बुझाई हे ॥[1]
सचा सबदु सची है बाणी। गुरमुखि विरलै किनै पछाणी॥
सचै सबदि रते बैरागी आवणु जाणु रहाई हे ॥[2]
सबदु बुझै सो मैलु चुकाए। निरमल नामु वसै मनि आए॥[3]
सतिगुरु अपणा सद ही सेवहि हउमै विचहु जाई हे॥
गुर ते बूझै ता दरु सूझै। नाम विहूणा कथि कथि लूझै॥[4]
सतिगुर सेवे की वडिआई त्रिसना भूख गवाई हे॥
आपे आपि मिलै ता बूझै। गिआन विहूणा किछू न सूझै॥
गुर की दाति सदा मन अंतरि बाणी सबदि वजाई हे॥
जो धुरि लिखिआ सु करम कमाइआ। कोइ न मेटै धुरि फुरमाइआ॥
सतसंगति महि तिन ही वासा जिन कउ धुरि लिखि पाई हे॥
अपणी नदरि करे सो पाए। सचै सबदि ताड़ी चितु लाए॥
नानक दासु कहै बेनंती भीखिआ नामु दरि पाई हे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1043

बानी गुरु रामदास जी

बिलावलु महला 4 असटपदीआ घरु 11

अंतरि पिआस उठी प्रभ केरी सुणि गुर बचन मनि तीर लगईआ॥
मन की बिरथा मन ही जाणै अवरु कि जाणै को पीर परईआ॥
राम गुरि मोहनि मोहि मनु लईआ॥
हउ आकल बिकल भई गुर देखे हउ लोट पोट होइ पईआ॥ रहाउ॥
हउ निरखत फिरउ सभि देस दिसंतर मै प्रभ देखन को बहुतु मनि चईआ॥
मनु तनु काटि देउ गुर आगै जिनि हरि प्रभ मारगु पंथु दिखईआ॥

---

1. **रविआ**=बसा हुआ; **निहकेवलु**=पवित्र, शुद्ध। 2. **रहाई हे**=समाप्त हो जाता है। 3. **चुकाए**=दूर करता है। 4. **नाम विहूणा**=नाम से ख़ाली; **लूझै**=वाद-विवाद और झगड़ा करता है।

कोई आणि सदेसा देइ प्रभ केरा रिद अंतरि मनि तनि मीठ लगईआ॥
मसतकु काटि देउ चरणा तलि जो हरि प्रभु मेले मेलि मिलईआ॥
चलु चलु सखी हम प्रभु परबोधह गुण कामण करि हरि प्रभु लहीआ॥
भगति वछलु उआ को नामु कहीअतु है सरणि प्रभू तिसु पाछै पईआ॥
खिमा सीगार करे प्रभ खुसीआ मनि दीपक गुर गिआनु बलईआ॥
रसि रसि भोग करे प्रभु मेरा हम तिसु आगै जीउ कटि कटि पईआ॥
हरि हरि हारु कंठि है बनिआ मनु मोतीचूरु वड गहन गहनईआ॥[1]
हरि हरि सरधा सेज विछाई प्रभु छोडि न सकै बहुतु मनि भईआ॥
कहै प्रभु अवरु अवरु किछु कीजै सभु बादि सीगारु फोकट फोकटईआ॥[2]
कीओ सीगारु मिलण कै ताई प्रभु लीओ सुहागनि थूक मुखि पईआ॥
हम चेरी तू अगम गुसाई किआ हम करह तेरै वसि पईआ॥[3]
दइआ दीन करहु रखि लेवहु नानक हरि गुर सरणि समईआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 835

रागु सूही असटपदीआ महला 4 घरु 2

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु पिआरा हउ तिसु पहि आपु वेचाई॥
दरसनु हरि देखण कै ताई॥
क्रिपा करहि ता सतिगुरु मेलहि हरि हरि नामु धिआई॥
जे सुखु देहि त तुझहि अराधी दुखि भी तुझै धिआई॥ रहाउ॥
जे भुख देहि त इत ही राजा दुख विचि सूख मनाई॥
तनु मनु काटि काटि सभु अरपी विचि अगनी आपु जलाई॥
पखा फेरी पाणी ढोवा जो देवहि सो खाई॥
नानकु गरीबु ढहि पइआ दुआरै हरि मेलि लैहु वडिआई॥
अखी काढि धरी चरणा तलि सभ धरती फिरि मत पाई॥[4]
जे पासि बहालहि ता तुझहि अराधी जे मारि कढहि भी धिआई॥

---

1. **मोतीचूरु**=एक प्रकार का गहना। 2. **बादि**=व्यर्थ, फ़ुजूल; **सीगारु**=शृंगार भाव गुण और बड़ाइयाँ। 3. **चेरी**=दासी। 4. **चरणा तलि**=पैरों के नीचे।

जे लोकु सलाहे ता तेरी उपमा जे निंदै त छोडि न जाई॥
जे तुधु वलि रहै ता कोई किहु आखउ तुधु विसरिऐ मरि जाई॥
वारि वारि जाई गुर ऊपरि पै पैरी संत मनाई॥
नानकु विचारा भइआ दिवाना हरि तउ दरसन कै ताई॥
झखड़ु झागी मीहु वरसै भी गुरु देखण जाई॥[1]
समुंदु सागरु होवै बहु खारा गुरसिखु लंघि गुर पहि जाई॥
जिउ प्राणी जल बिनु है मरता तिउ सिखु गुर बिनु मरि जाई॥
जिउ धरती सोभ करे जलु बरसै तिउ सिखु गुर मिलि बिगसाई॥[2]
सेवक का होइ सेवकु वरता करि करि बिनउ बुलाई॥
नानक की बेनंती हरि पहि गुर मिलि गुर सुखु पाई॥
तू आपे गुरु चेला है आपे गुर विचु दे तुझहि धिआई॥[3]
जो तुधु सेवहि सो तूहै होवहि तुधु सेवक पैज रखाई॥
भंडार भरे भगती हरि तेरे जिसु भावै तिसु देवाई॥
जिसु तूं देहि सोई जनु पाए होर निहफल सभ चतुराई॥
सिमरि सिमरि सिमरि गुरु अपुना सोइआ मनु जागाई॥
इकु दानु मंगै नानकु वेचारा हरि दासनि दासु कराई॥
जे गुरु झिड़के त मीठा लागै जे बखसे त गुर वडिआई॥
गुरमुखि बोलहि सो थाइ पाए मनमुखि किछु थाइ न पाई॥
पाला ककरु वरफ वरसै गुरसिखु गुर देखण जाई॥
सभु दिनसु रैणि देखउ गुरु अपुना विचि अखी गुर पैर धराई॥
अनेक उपाव करी गुर कारणि गुर भावै सो थाइ पाई॥
रैणि दिनसु गुर चरण अराधी दइआ करहु मेरे साई॥
नानक का जीउ पिंडु गुरू है गुर मिलि त्रिपति अघाई॥
नानक का प्रभु पूरि रहिओ है जत कत तत गोसाई॥[4]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 757

---

1. **झखड़ु झागी**=बड़ी तेज़ हवा, तूफ़ान। 2. **बिगसाई**=प्रसन्न होता है। 3. **गुर विचु दे**=गुरु के ज़रिये। 4. **जत कत**=यहाँ-वहाँ, हर जगह।

गउड़ी की वार महला 4

गुर सतिगुर का जो सिखु अखाए सु भलके उठि हरि नामु धिआवै॥
उदमु करे भलके परभाती इसनानु करे अंम्रित सरि नावै॥
उपदेसि गुरू हरि हरि जपु जापै सभि किलविख पाप दोख लहि जावै॥
फिरि चड़ै दिवसु गुरबाणी गावै बहदिआ उठदिआ हरि नामु धिआवै॥
जो सासि गिरासि धिआए मेरा हरि हरि सो गुरसिखु गुरू मनि भावै॥
जिस नो दइआलु होवै मेरा सुआमी तिसु गुरसिख गुरू उपदेसु सुणावै॥
जनु नानकु धूड़ि मंगै तिसु गुरसिख की जो आपि जपै अवरह नामु जपावै॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 305

रागु गूजरी महला 4 चउपदे घरु 1

गुरमुखि सखी सहेली मेरी मो कउ देवहु दानु हरि प्रान जीवाइआ॥
हम होवह लाले गोले गुरसिखा के जिन्हा
अनदिनु हरि प्रभु पुरखु धिआइआ॥
मैरै मनि तनि बिरहु गुरसिख पग लाइआ॥[1]
मेरे प्रान सखा गुर के सिख भाई मो
कउ करहु उपदेसु हरि मिलै मिलाइआ॥ रहाउ॥
जा हरि प्रभ भावै ता गुरमुखि मेले जिन्ह वचन गुरू सतिगुर मनि भाइआ॥
वडभागी गुर के सिख पिआरे हरि निरबाणी निरबाण पदु पाइआ॥
सतसंगति गुर की हरि पिआरी जिन हरि हरि नामु मीठा मनि भाइआ॥
जिन सतिगुर संगति संगु न पाइआ से भागहीण पापी जमि खाइआ॥
आपि क्रिपालु क्रिपा प्रभु धारे हरि आपे गुरमुखि मिलै मिलाइआ॥
जनु नानकु बोले गुण बाणी गुरबाणी हरि नामि समाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 493

1. **मैरै...लाइआ**=मेरे हृदय में गुरु के शिष्यों के चरण-स्पर्श करने की तीव्र इच्छा है।

गउड़ी बैरागणि महला 4 चउपदे

जिउ जननी सुतु जणि पालती राखै नदरि मझारि॥[1]
अंतरि बाहरि मुखि दे गिरासु खिनु खिनु पोचारि॥[2]
तिउ सतिगुरु गुरसिख राखता हरि प्रीति पिआरि॥
मेरे राम हम बारिक हरि प्रभ के है इआणे॥
धंनु धंनु गुरू गुरु सतिगुरु पाधा जिनि हरि उपदेसु दे कीए सिआणे॥ रहाउ॥
जैसी गगनि फिरंती ऊडती कपरे बागे वाली॥[3]
ओह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे नित हिरदै सारि समाली॥[4]
तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की गुरु सिख रखै जीअ नाली॥
जैसे काती तीस बतीस है विचि राखै रसना मास रतु केरी॥[5]
कोई जाणहु मास काती कै किछु हाथि है सभ वसगति है हरि केरी॥
तिउ संत जना की नर निंदा करहि हरि राखै पैज जन केरी॥
भाई मत कोई जाणहु किसी कै किछु हाथि है सभ करे कराइआ॥
जरा मरा तापु सिरति सापु सभु हरि कै वसि है[6]
कोई लागि न सकै बिनु हरि का लाइआ॥
ऐसा हरि नामु मनि चिति निति धिआवहु
जन नानक जो अंती अउसरि लए छडाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 168

गउड़ी बैरागणि महला 4 चउपदे

जिसु मिलिऐ मनि होइ अनंदु सो सतिगुरु कहीऐ॥
मन की दुबिधा बिनसि जाइ हरि परम पदु लहीऐ॥

---

1. **जिउ...मझारि**=जिस प्रकार माता पुत्र को जन्म देकर उसका लालन-पालन करती है तथा उस पर सदा अपनी नज़र रखती है। 2. **अंतरि...पोचारि**=अन्दर-बाहर जाती हुई उसे ग्रास (भोजन, दूध आदि) देती है तथा प्यार के साथ उसका लालन-पालन करती है। 3-4. **जैसी...समाली**=श्वेत परों वाली कूंज आकाश में उड़ती रहती है, परन्तु अपना ध्यान पीछे दूर छोड़कर आये बच्चों में रखती है। 5. **जैसे...केरी**=जिस प्रकार बत्तीस दाँतों की कैंची के बीच में मांस की बनी जिह्वा सलामत रहती है। 6. **जरा...है**=बुढ़ापा (जरा), मृत्यु, ताप, आधे सिर की पीड़ा आदि सब परमात्मा के वश में हैं।

मेरा सतिगुरु पिआरा कितु बिधि मिलै॥
हउ खिनु खिनु करी नमसकारु मेरा गुरु पूरा किउ मिलै॥ रहाउ॥
करि किरपा हरि मेलिआ मेरा सतिगुरु पूरा॥
इछ पुंनी जन केरीआ ले सतिगुर धूरा॥
हरि भगति द्रिड़ावै हरि भगति सुणै तिसु सतिगुर मिलीऐ॥
तोटा मूलि न आवई हरि लाभु निति द्रिड़ीऐ॥
जिस कउ रिदै विगासु है भाउ दूजा नाही॥
नानक तिसु गुर मिलि उधरै हरि गुण गावाही॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 168

रागु गोंड चउपदे महला 4 घरु 1

जे मनि चिति आस रखहि हरि ऊपरि ता मन चिंदे अनेक अनेक फल पाई॥
हरि जाणै सभु किछु जो जीइ वरतै प्रभु घालिआ किसै का इकु तिलु न गवाई॥
हरि तिस की आस कीजै मन मेरे जो सभ महि सुआमी रहिआ समाई॥
मेरे मन आसा करि जगदीस गुसाई॥
जो बिनु हरि आस अवर काहू की कीजै सा निहफल आस सभ बिरथी जाई॥ रहाउ॥
जो दीसै माइआ मोह कुटंबु सभु मत तिस की आस लगि जनमु गवाई॥
इन्ह कै किछु हाथि नही कहा करहि इहि बपुड़े इन्ह का वाहिआ कछु न वसाई॥
मेरे मन आस करि हरि प्रीतम अपुने की जो तुझु तारै तेरा कुटंबु सभु छडाई॥
जे किछु आस अवर करहि परमित्री मत तूं जाणहि तेरै कितै कंमि आई॥
इह आस परमित्री भाउ दूजा है खिन महि झूठु बिनसि सभ जाई॥
मेरे मन आसा करि हरि प्रीतम साचे की जो तेरा घालिआ सभु थाइ पाई॥
आसा मनसा सभ तेरी मेरे सुआमी जैसी तू आस करावहि तैसी को आस कराई॥
किछु किसी कै हथि नाही मेरे सुआमी ऐसी मेरै सतिगुरि बूझ बुझाई॥
जन नानक की आस तू जाणहि हरि दरसनु देखि हरि दरसनि त्रिपताई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 859

रामकली महला 4 घरु 1

जे वड भाग होवहि वडभागी ता हरि हरि नामु धिआवै॥
नामु जपत नामे सुखु पावै हरि नामे नामि समावै॥
गुरमुखि भगति करहु सद प्राणी॥
हिरदै प्रगासु होवै लिव लागै गुरमति हरि हरि नामि समाणी॥ रहाउ॥
हीरा रतन जवेहर माणक बहु सागर भरपूरु कीआ॥
जिसु वड भागु होवै वड मसतकि तिनि गुरमति कढि कढि लीआ॥
रतनु जवेहरु लालु हरि नामा गुरि काढि तली दिखलाइआ॥
भागहीण मनमुखि नही लीआ त्रिण ओलै लाखु छपाइआ॥
मसतकि भागु होवै धुरि लिखिआ ता सतगुरु सेवा लाए॥
नानक रतन जवेहर पावै धनु धनु गुरमति हरि पाए॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 880

गउड़ी की वार सलोक महला 4

जो निंदा करे सतिगुर पूरे की सु अउखा जग महि होइआ॥
नरक घोरु दुख खूहु है ओथै पकड़ि ओहु ढोइआ॥[1]
कूक पुकार को न सुणे ओहु अउखा होइ होइ रोइआ॥
ओनि हलतु पलतु सभु गवाइआ लाहा मूलु सभु खोइआ॥[2]
ओहु तेली संदा बलदु करि नित भलके उठि प्रभि जोइआ॥
हरि वेखै सुणै नित सभु किछु तिदू किछु गुझा न होइआ॥
जैसा बीजे सो लुणै जेहा पुरबि किनै बोइआ॥[3]
जिसु क्रिपा करे प्रभु आपणी तिसु सतिगुर के चरण धोइआ॥
गुर सतिगुर पिछै तरि गइआ जिउ लोहा काठ संगोइआ॥
जन नानक नामु धिआइ तू जपि हरि हरि नामि सुखु होइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 309

1. **ढोइआ**=उसमें धकेला गया। 2. **हलतु पलतु**=लोक-परलोक। 3. **लुणै**=काटता है।

सिरीरागु महला 4 घरु 1

नामु मिलै मनु त्रिपतीऐ बिनु नामै ध्रिगु जीवासु ॥[1]
कोई गुरमुखि सजणु जे मिलै मै दसे प्रभु गुणतासु ॥
हउ तिसु विटहु चउ खंनीऐ मै नाम करे परगासु ॥[2]
मेरे प्रीतमा हउ जीवा नामु धिआइ ॥
बिनु नावै जीवणु ना थीऐ मेरे सतिगुर नामु द्रिड़ाइ ॥ रहाउ ॥
नामु अमोलकु रतनु है पूरे सतिगुर पासि ॥
सतिगुर सेवै लगिआ कढि रतनु देवै परगासि ॥
धंनु वडभागी वड भागीआ जो आइ मिले गुर पासि ॥
जिना सतिगुरु पुरखु न भेटिओ से भागहीण वसि काल ॥
ओइ फिरि फिरि जोनि भवाईअहि विचि विसटा करि विकराल ॥[3]
ओना पासि दुआसि न भिटीऐ जिन अंतरि क्रोधु चंडाल ॥[4]
सतिगुरु पुरखु अंम्रित सरु वडभागी नावहि आइ ॥
उन जनम जनम की मैलु उतरै निरमल नामु द्रिड़ाइ ॥
जन नानक उतम पदु पाइआ सतिगुर की लिव लाइ ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 40

बसंतु हिंडोल महला 4 घरु 2

मनु खिनु खिनु भरमि भरमि बहु धावै तिलु घरि नही वासा पाईऐ ॥
गुरि अंकसु सबदु दारू सिरि धारिओ घरि मंदरि आणि वसाईऐ ॥
गोबिंद जीउ सतसंगति मेलि हरि धिआईऐ ॥
हउमै रोगु गइआ सुखु पाइआ हरि सहजि समाधि लगाईऐ ॥ रहाउ ॥
घरि रतन लाल बहु माणक लादे मनु भ्रमिआ लहि न सकाईऐ ॥
जिउ ओडा कूपु गुहज खिन काढै तिउ सतिगुरि वसतु लहाईऐ ॥[5]

---

1. **जीवासु**=जीवन। 2. **खंनीऐ**=बलिहार जाता हूँ, क़ुर्बान होता हूँ। 3. **विकराल**=भयानक। 4. **ओना...भिटीऐ**=उनके निकट कभी न जाओ। 5. **ओडा**=वे लोग जो ज़मीन में दबे हुए पुराने कुएँ का पता लगा लेते हैं; **काढै**=खोदकर निकालता है।

जिन ऐसा सतिगुरु साधु न पाइआ ते ध्रिगु ध्रिगु नर जीवाईऐ॥
जनमु पदारथु पुंनि फलु पाइआ कउडी बदलै जाईऐ॥
मधुसूदन हरि धारि प्रभ किरपा करि किरपा गुरू मिलाईऐ॥
जन नानक निरबाण पदु पाइआ मिलि साधू हरि गुण गाईऐ॥[1]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1179

कलिआन महला 4 असटपदीआ

राम गुरु पारसु परसु करीजै॥
हम निरगुणी मनूर अति फीके मिलि सतिगुर पारसु कीजै॥ रहाउ॥[2]
सुरग मुकति बैकुंठ सभि बांछहि निति आसा आस करीजै॥[3]
हरि दरसन के जन मुकति न मांगहि मिलि दरसन त्रिपति मनु धीजै॥[4]
माइआ मोहु सबलु है भारी मोहु कालख दाग लगीजै॥
मेरे ठाकुर के जन अलिपत है मुकते जिउ मुरगाई पंकु न भीजै॥
चंदन वासु भुइअंगम वेड़ी किव मिलीऐ चंदनु लीजै॥[5]
काढि खड़गु गुर गिआनु करारा बिखु छेदि छेदि रसु पीजै॥
आनि आनि समधा बहु कीनी पलु बैसंतर भसम करीजै॥
महा उग्र पाप साकत नर कीने मिलि साधू लूकी दीजै॥[6]
साधू साध साध जन नीके जिन अंतरि नामु धरीजै॥
परस निपरसु भए साधू जन जनु हरि भगवानु दिखीजै॥
साकत सूतु बहु गुरझी भरिआ किउ करि तानु तनीजै॥[7]
तंतु सूतु किछु निकसै नाही साकत संगु न कीजै॥
सतिगुर साधसंगति है नीकी मिलि संगति रामु रवीजै॥

---

1. **निरबाण पदु**=निर्वाण पद, मोक्ष। 2. **मनूर**=पिघले हुए लोहे की मैल। 3. **बांछहि**=इच्छा करते हैं। 4. **धीजै**=धैर्य करता है। 5. **चंदन...वेड़ी**=चंदन के वृक्ष (नाम) को सांप (मन) ने घेरा डाला हुआ है। 6. **महा उग्र**=अति भारी, बहुत बुरे, निकृष्ट; **लूकी**=जला दो। 7. **साकत...तनीजै**=मनमुख का धागा बहुत उलझा होता है, उससे कपड़ा नहीं बुना जा सकता।

हरि हरि हरि हरि हरि जन ऊतम किआ उपमा तिन्ह दीजै ॥
राम नाम तुलि अउरु न उपमा जन नानक क्रिपा करीजै ॥[1]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1323

कलिआन महला 4 असटपदीआ

रामा हम दासन दास करीजै ॥
जब लगि सासु होइ मन अंतरि साधू धूरि पिवीजै ॥ रहाउ ॥
संकरु नारदु सेखनाग मुनि धूरि साधू की लोचीजै ॥[2]
भवन भवन पवितु होहि सभि जह साधू चरन धरीजै ॥
तजि लाज अहंकारु सभु तजीऐ मिलि साधू संगि रहीजै ॥
धरम राइ की कानि चुकावै बिखु डुबदा काढि कढीजै ॥
भरमि सूके बहु उभि सुक कहीअहि मिलि साधू संगि हरीजै ॥[3]
ता ते बिलमु पलु ढिल न कीजै जाइ साधू चरनि लगीजै ॥[4]
राम नाम कीरतन रतन वथु हरि साधू पासि रखीजै ॥
जो बचनु गुर सति सति करि मानै तिसु आगै काढि धरीजै ॥
संतहु सुनहु सुनहु जन भाई गुरि काढी बाह कुकीजै ॥[5]
जे आतम कउ सुखु सुखु नित लोड़हु तां सतिगुर सरनि पवीजै ॥
जे वड भागु होइ अति नीका तां गुरमति नामु द्रिड़ीजै ॥
सभु माइआ मोहु बिखमु जगु तरीऐ सहजे हरि रसु पीजै ॥
माइआ माइआ के जो अधिकाई विचि माइआ पचै पचीजै ॥[6]
अगिआनु अंधेरु महा पंथु बिखड़ा अहंकारि भारि लदि लीजै ॥
नानक राम रम रमु रम रम रामै ते गति कीजै ॥
सतिगुरु मिलै ता नामु द्रिड़ाए राम नामै रलै मिलीजै ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1326

---

1. **तुलि**=बराबर, समान। 2. **लोचीजै**=चाहते हैं। 3. **भरमि...हरीजै**=भ्रम में पड़े व्यक्ति सूखे हुए वृक्ष के समान हैं, साधु-संगति से वे भी हरे हो जाते हैं। 4. **बिलमु**=विलम्ब, देर। 5. **काढी...कुकीजै**=भुजा उठाकर ज़ोर से पुकारता है। 6. **माइआ...अधिकाई**=माया से बहुत अधिक प्यार करनेवाला।

मारू सोलहे महला 4

सचा आपि सवारणहारा॥ अवर न सूझसि बीजी कारा॥[1]
गुरमुखि सचु वसै घट अंतरि सहजे सचि समाई हे॥
सभना सचु वसै मन माही॥ गुर परसादी सहजि समाही॥
गुरु गुरु करत सदा सुखु पाइआ गुर चरणी चितु लाई हे॥
सतिगुरु है गिआनु सतिगुरु है पूजा॥ सतिगुरु सेवी अवरु न दूजा॥
सतिगुर ते नामु रतन धनु पाइआ सतिगुर की सेवा भाई हे॥
बिनु सतिगुर जो दूजै लागे॥ आवहि जाहि भ्रमि मरहि अभागे॥
नानक तिन की फिरि गति होवै जि गुरमुखि रहहि सरणाई हे॥
गुरमुखि प्रीति सदा है साची॥ सतिगुर ते मागउ नामु अजाची॥[2]
होहु दइआलु क्रिपा करि हरि जीउ रखि लेवहु गुर सरणाई हे॥
अंम्रित रसु सतिगुरू चुआइआ॥ दसवै दुआरि प्रगटु होइ आइआ॥
तह अनहद सबद वजहि धुनि बाणी सहजे सहजि समाई हे॥
जिन कउ करतै धुरि लिखि पाई॥ अनदिनु गुरु गुरु करत विहाई॥
बिनु सतिगुर को सीझै नाही गुर चरणी चितु लाई हे॥[3]
जिसु भावै तिसु आपे देइ॥ गुरमुखि नामु पदारथु लेइ॥[4]
आपे क्रिपा करे नामु देवै नानक नामि समाई हे॥
गिआन रतनु मनि परगटु भइआ॥ नामु पदारथु सहजे लइआ॥
एह वडिआई गुर ते पाई सतिगुर कउ सद बलि जाई हे॥
प्रगटिआ सूरु निसि मिटिआ अंधिआरा॥[5]
अगिआनु मिटिआ गुर रतनि अपारा॥
सतिगुर गिआनु रतनु अति भारी करमि मिलै सुखु पाई हे॥
गुरमुखि नामु प्रगटी है सोइ॥ चहु जुगि निरमलु हछा लोइ॥

---

1. **सूझसि**=सूझता; **बीजी**=दूसरा; **कारा**=कार्य। 2. **अजाची**=अतुल्य, अमूल्य। 3. **बिनु... नाही**=सतगुरु की सहायता के बिना किसी का कार्य सिद्ध नहीं होता। 4. **पदारथु**=मूल वस्तु, सार पदार्थ। 5. **सूरु**=सूर्य।

अंतरि रतन जवेहर माणक गुर किरपा ते लीजै॥
मेरा ठाकुरु वडा वडा है सुआमी हम किउ करि मिलह मिलीजै॥
नानक मेलि मिलाए गुरु पूरा जन कउ पूरनु दीजै॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1324

कलिआन महला 4 असटपदीआ

रामा रम रामो सुनि मनु भीजै॥[1]
हरि हरि नामु अंम्रितु रसु मीठा गुरमति सहजे पीजै॥ रहाउ॥
कासट महि जिउ है बैसंतरु मथि संजमि काढि कढीजै॥[2]
राम नामु है जोति सबाई ततु गुरमति काढि लईजै॥[3]
नउ दरवाज नवे दर फीके रसु अंम्रितु दसवे चुईजै॥
क्रिपा क्रिपा किरपा करि पिआरे गुर सबदी हरि रसु पीजै॥
काइआ नगरु नगरु है नीको विचि सउदा हरि रसु कीजै॥[4]
रतन लाल अमोल अमोलक सतिगुर सेवा लीजै॥
सतिगुरु अगमु अगमु है ठाकुरु भरि सागर भगति करीजै॥[5]
क्रिपा क्रिपा करि दीन हम सारिंग इक बूंद नामु मुखि दीजै॥[6]
लालनु लालु लालु है रंगनु मनु रंगन कउ गुर दीजै॥
राम राम राम रंगि राते रस रसिक गटक नित पीजै॥[7]
बसुधा सपत दीप है सागर कढि कंचनु काढि धरीजै॥[8]
मेरे ठाकुर के जन इनहु न बाछहि हरि मागहि हरि रसु दीजै॥[9]
साकत नर प्रानी सद भूखे नित भूखन भूख करीजै॥
धावतु धाइ धावहि प्रीति माइआ लख कोसन कउ बिथि दीजै॥[10]

---

1. **रामा रम**=राम नाम का जाप करके, राम नाम में समाकर। 2. **कासट**=लकड़ी; **बैसंतरु**=अग्नि; **मथि**=रगड़कर; **संजमि**=युक्ति से। 3. **सबाई**=सबमें। 4. **नीको**=सुन्दर, उत्तम। 5. **भरि सागर**=समुद्र भर कर यानी बहुत अधिक। 6. **सारिंग**=पपीहा। 7. **रसिक**=रस लेनेवाला; **गटक**=गटा-गट पीना। 8. **बसुधा**=धरती, पृथ्वी; **सपत**=सात। 9. **न बाछहि**=नहीं चाहते। 10. **लख...दीजै**=उनसे लाख कोस दूर रहो।

नामे नामि रते सुखु पाइआ नामि रहिआ लिव लाई हे॥
गुरमुखि नामु परापति होवै॥ सहजे जागै सहजे सोवै॥
गुरमुखि नामि समाइ समावै नानक नामु धिआई हे॥
भगता मुखि अंम्रित है बाणी॥ गुरमुखि हरि नामु आखि वखाणी॥
हरि हरि करत सदा मनु बिगसै हरि चरणी मनु लाई हे॥
हम मूरख अगिआन गिआनु किछु नाही॥ सतिगुर ते समझ पड़ी मन माही॥
होहु दइआलु क्रिपा करि हरि जीउ सतिगुर की सेवा लाई हे॥
जिनि सतिगुरु जाता तिनि एकु पछाता॥ सरबे रवि रहिआ सुखदाता॥
आतमु चीनि परम पदु पाइआ सेवा सुरति समाई हे॥[1]
जिन कउ आदि मिली वडिआई॥ सतिगुरु मनि वसिआ लिव लाई॥
आपि मिलिआ जगजीवनु दाता नानक अंकि समाई हे॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1069

रागु देवगंधारी महला 4 घरु 1

सेवक जन बने ठाकुर लिव लागे॥
जो तुमरा जसु कहते गुरमति तिन मुख भाग सभागे॥ रहाउ॥
टूटे माइआ के बंधन फाहे हरि राम नाम लिव लागे॥
हमरा मनु मोहिओ गुर मोहिनि हम बिसम भई मुखि लागे॥[3]
सगली रैणि सोई अंधिआरी गुर किंचत किरपा जागे॥
जन नानक के प्रभ सुंदर सुआमी मोहि तुम सरि अवरु न लागे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 527

तिलंग महला 4 घरु 2

हरि कीआ कथा कहाणीआ गुरि मीति सुणाईआ॥
बलिहारी गुर आपणे गुर कउ बलि जाईआ॥

---

1. **चीनि**=पहचान कर; **परम पदु**=सबसे ऊँचा पद। 2. **अंकि**=गोद में। 3. **हम...लागे**=गुरु के दर्शन पाकर मैं विस्मादी अवस्था में पँहुच गयी अर्थात् अपनी सुध-बुध भूल गयी।

आइ मिलु गुरसिख आइ मिलु तू मेरे गुरू के पिआरे॥ रहाउ॥
हरि के गुण हरि भावदे से गुरू ते पाए॥
जिन गुर का भाणा मंनिआ तिन घुमि घुमि जाए॥
जिन सतिगुरु पिआरा देखिआ तिन कउ हउ वारी॥
जिन गुर की कीती चाकरी तिन सद बलिहारी॥
हरि हरि तेरा नामु है दुख मेटणहारा॥
गुर सेवा ते पाईऐ गुरमुखि निसतारा॥
जो हरि नामु धिआइदे ते जन परवाना॥
तिन विटहु नानकु वारिआ सदा सदा कुरबाना॥
सा हरि तेरी उसतति है जो हरि प्रभ भावै॥
जो गुरमुखि पिआरा सेवदे तिन हरि फलु पावै॥
जिना हरि सेती पिरहड़ी तिना जीअ प्रभ नाले॥[1]
ओइ जपि जपि पिआरा जीवदे हरि नामु समाले॥
जिन गुरमुखि पिआरा सेविआ तिन कउ घुमि जाइआ॥
ओइ आपि छुटे परवार सिउ सभु जगतु छडाइआ॥
गुरि पिआरै हरि सेविआ गुरु धंनु गुरु धंनो॥
गुरि हरि मारगु दसिआ गुर पुंनु वड पुंनो॥
जो गुरसिख गुरु सेवदे से पुंन पराणी॥
जनु नानकु तिन कउ वारिआ सदा सदा कुरबाणी॥
गुरमुखि सखी सहेलीआ से आपि हरि भाईआ॥
हरि दरगह पैनाईआ हरि आपि गलि लाईआ॥
जो गुरमुखि नामु धिआइदे तिन दरसनु दीजै॥
हम तिन के चरण पखालदे धूड़ि घोलि घोलि पीजै॥[2]
पान सुपारी खातीआ मुखि बीड़ीआ लाईआ॥
हरि हरि कदे न चेतिओ जमि पकड़ि चलाईआ॥

---

1. **पिरहड़ी**=प्रीति। 2. **पखालदे**=धोते हैं।

जिन हरि नामा हरि चेतिआ हिरदै उरि धारे॥
तिन जमु नेड़ि न आवई गुरसिख गुर पिआरे॥
हरि का नामु निधानु है कोई गुरमुखि जाणै॥
नानक जिन सतिगुरु भेटिआ रंगि रलीआ माणै॥
सतिगुरु दाता आखीऐ तुसि करे पसाओ॥
हउ गुर विटहु सद वारिआ जिनि दितड़ा नाओ॥
सो धंनु गुरू साबासि है हरि देइ सनेहा॥
हउ वेखि वेखि गुरू विगसिआ गुर सतिगुर देहा॥[1]
गुर रसना अंम्रितु बोलदी हरि नामि सुहावी॥
जिन सुणि सिखा गुरु मंनिआ तिना भुख सभ जावी॥
हरि का मारगु आखीऐ कहु कितु बिधि जाईऐ॥
हरि हरि तेरा नामु है हरि खरचु लै जाईऐ॥
जिन गुरमुखि हरि आराधिआ से साह वड दाणे॥
हउ सतिगुर कउ सद वारिआ गुर बचनि समाणे॥
तू ठाकुरु तू साहिबो तूहै मेरा मीरा॥[2]
तुधु भावै तेरी बंदगी तू गुणी गहीरा॥
आपे हरि इक रंगु है आपे बहु रंगी॥
जो तिसु भावै नानका साई गल चंगी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 725

रागु गोंड चउपदे महला 4 घरु 1

हरि दरसन कउ मेरा मनु बहु तपतै जिउ त्रिखावंतु बिनु नीर॥
मैरै मनि प्रेमु लगो हरि तीर॥
हमरी बेदन हरि प्रभु जानै मेरे मन अंतर की पीर॥ रहाउ॥
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावै सो भाई सो मेरा बीर॥

---

1. **हउ...देहा**=गुरु के दर्शन करके मेरा मन ख़ुशी से खिल उठा। 2. **मीरा**=बादशाहों का बादशाह।

मिलु मिलु सखी गुण कहु मेरे प्रभ के ले सतिगुर की मति धीर॥
जन नानक की हरि आस पुजावहु हरि दरसनि सांति सरीर॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 861

गउड़ी की वार सलोक महला 4

होदै परतखि गुरू जो विछुड़े तिन कउ दरि ढोई नाही॥[1]
कोई जाइ मिलै तिन निंदका मुह फिके थुक थुक मुहि पाही॥
जो सतिगुरि फिटके से सभ जगति फिटके नित भंभल भूसे खाही॥[2]
जिन गुरु गोपिआ आपणा से लैदे ढहा फिराही॥[3]
तिन की भुख कदे न उतरै नित भुखा भुख कूकाही॥
ओना दा आखिआ को न सुणै नित हउले हउलि मराही॥
सतिगुर की वडिआई वेखि न सकनी ओना अगै पिछै थाउ नाही॥[4]
जो सतिगुरि मारे तिन जाइ मिलहि रहदी खुहदी सभ पति गवाही॥
ओइ अगै कुसटी गुर के फिटके जि ओसु मिलै तिसु कुसटु उठाही॥[5]
हरि तिन का दरसनु ना करहु जो दूजै भाइ चितु लाही॥
धुरि करतै आपि लिखि पाइआ तिसु नालि किहु चारा नाही॥
जन नानक नामु अराधि तू तिसु अपड़ि को न सकाही॥
नावै की वडिआई वडी है नित सवाई चड़ै चड़ाही॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 308

---

1. **होदै...नाही**=जो वक़्त के साक्षात् सतगुरु से विमुख रहते हैं, उनको दरगाह में सहारा नहीं मिलता। 2. **जो...खाही**=सतगुरु के धिक्कारे हुए जीवों को सारा संसार धिक्कारता है। उनको मार्ग नहीं मिलता और वे सदा भटकते रहते हैं। 3. **जिन...फिराही**=जो लोक-लाज या डर आदि के कारण अपना सतगुरु छिपाकर रखते हैं उनको कहीं सहारा नहीं मिलता। 4. **सतिगुर...नाही**=जो सतगुरु से ईर्ष्या करते हैं, उनको कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता। 5. **ओइ...उठाही**=गुरु के धिक्कारे जीव कोढ़ी हैं तथा उनसे मेल-मिलाप रखनेवाले भी कोढ़ी बनते हैं।

बानी गुरु अर्जुन देव जी

मारू सोलहे महला 5

आदि निरंजनु प्रभु निरंकारा॥ सभ महि वरतै आपि निरारा॥
वरनु जाति चिहनु नही कोई सभ हुकमे स्रिसटि उपाइदा॥
लख चउरासीह जोनि सबाई॥ माणस कउ प्रभि दीई वडिआई॥
इसु पउड़ी ते जो नरु चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइदा॥
कीता होवै तिसु किआ कहीऐ॥ गुरमुखि नामु पदारथु लहीऐ॥
जिसु आपि भुलाए सोई भूलै सो बूझै जिसहि बुझाइदा॥
हरख सोग का नगरु इहु कीआ॥ से उबरे जो सतिगुर सरणीआ॥
त्रिहा गुणा ते रहै निरारा सो गुरमुखि सोभा पाइदा॥
अनिक करम कीए बहुतेरे॥ जो कीजै सो बंधनु पैरे॥[1]
कुरुता बीजु बीजे नही जंमै सभु लाहा मूलु गवाइदा॥[2]
कलजुग महि कीरतनु परधाना॥ गुरमुखि जपीऐ लाइ धिआना॥
आपि तरै सगले कुल तारे हरि दरगह पति सिउ जाइदा॥
खंड पताल दीप सभि लोआ॥ सभि कालै वसि आपि प्रभि कीआ॥[3]
निहचलु एकु आपि अबिनासी सो निहचलु जो तिसहि धिआइदा॥
हरि का सेवकु सो हरि जेहा॥ भेदु न जाणहु माणस देहा॥
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा॥[4]
इकु जाचिकु मंगै दानु दुआरै॥ जा प्रभ भावै ता किरपा धारै॥
देहु दरसु जितु मनु त्रिपतासै हरि कीरतनि मनु ठहराइदा॥[5]
रूड़ो ठाकुरु कितै वसि न आवै॥ हरि सो किछु करे जि हरि किआ संता भावै॥[6]
कीता लोड़नि सोई कराइनि दरि फेरु न कोई पाइदा॥
जिथै अउघटु आइ बनतु है प्राणी॥ तिथै हरि धिआईऐ सारिंगपाणी॥[7]

---

1. **पैरे**=पाँव में। 2. **कुरुता बीजु**=बे-मौसमा बीज। 3. **लोआ**=लोक। 4. **सललै... समाइदा**=पानी, पानी में वापस समा जाता है। 5. **त्रिपतासै**=तृप्त हो, सन्तुष्ट हो। 6. **रूड़ो**=सुन्दर, उत्तम, श्रेष्ठ। 7. **अउघटु**=कठिनाई, मुश्किल।

जिथै पुत्रु कलत्रु न बेली कोई तिथै हरि आपि छडाइदा॥
वडा साहिबु अगम अथाहा॥ किउ मिलीऐ प्रभ वेपरवाहा॥
काटि सिलक जिसु मारगि पाए सो विचि संगति वासा पाइदा॥[1]
हुकमु बूझै सो सेवकु कहीऐ॥ बुरा भला दुइ समसरि सहीऐ॥[2]
हउमै जाइ त एको बूझै सो गुरमुखि सहजि समाइदा॥
हरि के भगत सदा सुखवासी॥ बाल सुभाइ अतीत उदासी॥[3]
अनिक रंग करहि बहु भाती जिउ पिता पूतु लाडाइदा॥
अगम अगोचरु कीमति नही पाई॥ ता मिलीऐ जा लए मिलाई॥
गुरमुखि प्रगटु भइआ तिन जन कउ जिन धुरि मसतकि लेखु लिखाइदा॥
तू आपे करता कारण करणा॥ स्रिसटि उपाइ धरी सभ धरणा॥[4]
जन नानकु सरणि पइआ हरि दुआरै हरि भावै लाज रखाइदा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1075

माझ महला 5 चउपदे घरु 1

कहिआ करणा दिता लैणा॥ गरीबा अनाथा तेरा माणा॥[5]
सभ किछु तूंहै तूंहै मेरे पिआरे तेरी कुदरति कउ बलि जाई जीउ॥
भाणै उझड़ भाणै राहा॥ भाणै हरि गुण गुरमुखि गावाहा॥
भाणै भरमि भवै बहु जूनी सभ किछु तिसै रजाई जीउ॥
ना को मूरखु ना को सिआणा॥ वरतै सभ किछु तेरा भाणा॥
अगम अगोचर बेअंत अथाहा तेरी कीमति कहणु न जाई जीउ॥
खाकु संतन की देहु पिआरे॥ आइ पइआ हरि तेरै दुआरै॥
दरसनु पेखत मनु आघावै नानक मिलणु सुभाई जीउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 98

---

1. **सिलक**=फाँसी अर्थात् भ्रम की रस्सी। 2. **समसरि**=एक समान। 3. **अतीत**=माया से परे यानी निर्लेप। 4. **धरणा**=पृथ्वी। 5. **कहिआ...लैणा**=जो तू कहता है, वह हम करते हैं, जो तू देता है, वह हम लेते हैं।

रागु गउड़ी पूरबी महला 5

किन बिधि मिलै गुसाई मेरे राम राइ॥
कोई ऐसा संतु सहज सुखदाता मोहि मारगु देइ बताई॥ रहाउ॥
अंतरि अलखु न जाई लखिआ विचि पड़दा हउमै पाई॥
माइआ मोहि सभो जगु सोइआ इहु भरमु कहहु किउ जाई॥
एका संगति इकतु ग्रिहि बसते मिलि बात न करते भाई॥
एक बसतु बिनु पंच दुहेले ओह बसतु अगोचर ठाई॥
जिस का ग्रिहु तिनि दीआ ताला कुंजी गुर सउपाई॥
अनिक उपाव करे नही पावै बिनु सतिगुर सरणाई॥
जिन के बंधन काटे सतिगुर तिन साधसंगति लिव लाई॥
पंच जना मिलि मंगलु गाइआ हरि नानक भेदु न भाई॥
मेरे राम राइ इन बिधि मिलै गुसाई॥
सहजु भइआ भ्रमु खिन महि नाठा मिलि जोती जोति समाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 204

बारह माहा मांझ महला 5 घरु 4

किरति करम के वीछुड़े करि किरपा मेलहु राम॥[1]
चारि कुंट दह दिस भ्रमे थकि आए प्रभ की साम॥[2]
धेनु दुधै ते बाहरी कितै न आवै काम॥[3]
जल बिनु साख कुमलावती उपजहि नाही दाम॥[4]
हरि नाह न मिलीऐ साजनै कत पाईऐ बिसराम॥[5]
जितु घरि हरि कंतु न प्रगटई भठि नगर से ग्राम॥
स्रब सीगार तंबोल रस सणु देही सभ खाम॥[6]
प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजण सभि जाम॥[7]

---

1. **किरति...के**=पूर्व जन्मों में किये हुए कर्मों के कारण। 2. **साम**=शरण। 3. **धेनु**=गाय। 4. **साख**=खेती। 5. **नाह**=पति। 6. **तंबोल**=पान-सुपारी; **स्रब...खाम**=शरीर सहित सब हार-शृंगार और खाद्य-पदार्थ नाशवान हैं। 7. **जाम**=यम।

नानक की बेनंतीआ करि किरपा दीजै नामु॥
हरि मेलहु सुआमी संगि प्रभ जिस का निहचल धाम॥
चेति गोविंदु अराधीऐ होवै अनंदु घणा॥
संत जना मिलि पाईऐ रसना नामु भणा॥[1]
जिनि पाइआ प्रभु आपणा आए तिसहि गणा॥[2]
इकु खिनु तिसु बिनु जीवणा बिरथा जनमु जणा॥[3]
जलि थलि महीअलि पूरिआ रविआ विचि वणा॥[4]
सो प्रभु चिति न आवई कितड़ा दुखु गणा॥
जिनी राविआ सो प्रभू तिंना भागु मणा॥
हरि दरसन कंउ मनु लोचदा नानक पिआस मना॥
चेति मिलाए सो प्रभू तिस कै पाइ लगा॥
वैसाखि धीरनि किउ वाढीआ जिना प्रेम बिछोहु॥[5]
हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु॥
पुत्र कलत्र न संगि धना हरि अविनासी ओहु॥
पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु॥[6]
इकसु हरि के नाम बिनु अगै लईअहि खोहि॥
दयु विसारि विगुचणा प्रभ बिनु अवरु न कोइ॥[7]
प्रीतम चरणी जो लगे तिन की निरमल सोइ॥[8]
नानक की प्रभ बेनती प्रभ मिलहु परापति होइ॥
वैसाखु सुहावा तां लगै जा संतु भेटै हरि सोइ॥

---

1. **नामु भणा**=नाम जपने की विधि। 2. **आए...गणा**=उनका आना ही गिनती में है भाव सफल है। 3. **बिरथा...जणा**=उसने अपना जन्म व्यर्थ गँवा दिया। 4. **महीअलि**=धरती और आकाश के बीच का भाग। 5. **धीरनि...बिछोहु**=परमात्मा रूपी प्रियतम से बिछुड़ी हुई आत्मा को धैर्य किस प्रकार आ सकता है। 6. **पलचि पलचि**=फँस, फँसकर। 7. **दयु...विगुचणा**=देव, इष्ट यानी परमेश्वर को भुलाकर ख़्वार होता है। 8. **सोइ**=शोभा, सम्मान।

हरि **जेठि** जुड़ंदा लोड़ीऐ जिसु अगै सभि निवंनि॥
हरि सजण दावणि लगिआ किसै न देई बंनि॥[1]
माणक मोती नामु प्रभ उन लगै नाही संनि॥
रंग सभे नाराइणै जेते मनि भावंनि॥
जो हरि लोड़े सो करे सोई जीअ करंनि॥
जो प्रभि कीते आपणे सेई कहीअहि धंनि॥
आपण लीआ जे मिलै विछुड़ि किउ रोवंनि॥
साधू संगु परापते नानक रंग माणंनि॥
हरि जेठु रंगीला तिसु धणी जिस कै भागु मथंनि॥[2]
आसाड़ु तपंदा तिसु लगै हरि नाहु न जिंना पासि॥[3]
जगजीवन पुरखु तिआगि कै माणस संदी आस॥
दुयै भाइ विगुचीऐ गलि पईसु जम की फास॥[4]
जेहा बीजै सो लुणै मथै जो लिखिआसु॥[5]
रैणि विहाणी पछुताणी उठि चली गई निरास॥
जिन कौ साधू भेटीऐ सो दरगह होइ खलासु॥[6]
करि किरपा प्रभ आपणी तेरे दरसन होइ पिआस॥
प्रभ तुधु बिनु दूजा को नही नानक की अरदासि॥
आसाड़ु सुहंदा तिसु लगै जिसु मनि हरि चरण निवास॥
सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु॥[7]
मनु तनु रता सच रंगि इको नामु अधारु॥
बिखिआ रंग कूड़ाविआ दिसनि सभे छारु॥
हरि अंम्रित बूंद सुहावणी मिलि साधु पीवणहारु॥
वणु तिणु प्रभ संगि मउलिआ संम्रथ पुरख अपारु॥[8]

---

1. **दावणि**=दामन, आँचल; **किसै...बंनि**=कोई (यमदूत) उसे बंधन में नहीं डाल सकता। 2. **मथंनि**=मस्तक पर। 3. **हरि नाहु**=परमात्मा रूपी पति। 4. **विगुचीऐ**=भटकते हैं। 5. **लुणै**=काटता है। 6. **होइ खलासु**=मुक्त हो जाते हैं। 7. **सरसी**=प्रसन्न हुई। 8. **वणु तिणु**=जंगल और पेड़-पौधे; **मउलिआ**=हरे-भरे हो गये।

हरि मिलणै नो मनु लोचदा करमि मिलावणहारु ॥
जिनी सखीए प्रभु पाइआ हंउ तिन कै सद बलिहार॥
नानक हरि जी मइआ करि सबदि सवारणहारु ॥[1]
सावणु तिना सुहागणी जिन राम नामु उरि हारु ॥
भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु ॥
लख सीगार बणाइआ कारजि नाही केतु ॥[2]
जितु दिनि देह बिनससी तितु वेलै कहसनि प्रेतु ॥
पकड़ि चलाइनि दूत जम किसै न देनी भेतु ॥
छडि खड़ोते खिनै माहि जिन सिउ लगा हेतु ॥
हथ मरोड़ै तनु कपे सिआहहु होआ सेतु ॥[3]
जेहा बीजै सो लुणै करमा संदड़ा खेतु ॥
नानक प्रभ सरणागती चरण बोहिथ प्रभ देतु ॥[4]
से भादुइ नरकि न पाईअहि गुरु रखण वाला हेतु ॥
असुनि प्रेम उमाहड़ा किउ मिलीऐ हरि जाइ ॥[5]
मनि तनि पिआस दरसन घणी कोई आणि मिलावै माइ ॥
संत सहाई प्रेम के हउ तिन कै लागा पाइ ॥
विणु प्रभ किउ सुखु पाईऐ दूजी नाही जाइ ॥[6]
जिंन्ही चाखिआ प्रेम रसु से त्रिपति रहे आघाइ ॥[7]
आपु तिआगि बिनती करहि लेहु प्रभू लड़ि लाइ ॥
जो हरि कंति मिलाईआ सि विछुड़ि कतहि न जाइ ॥
प्रभ विणु दूजा को नही नानक हरि सरणाइ ॥
असू सुखी वसंदीआ जिना मइआ हरि राइ ॥
कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु ॥[8]
परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ॥

---

1. **मइआ**=दया। 2. **कारजि...केतु**=उसका कोई लाभ नहीं। 3. **सेतु**=सफ़ेद। 4. **बोहिथ**=जहाज़। 5. **उमाहड़ा**=उमड़ आया। 6. **किउ**=कैसे, किस तरह। 7. **त्रिपति...आघाइ**=तृप्त हो गये। 8. **दोसु....जोगु**=किसी दूसरे को दोष नहीं दे सकते।

वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग॥
खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग॥
विचु न कोई करि सकै किस थै रोवहि रोज॥[1]
कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग॥
वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग॥
नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच॥[2]
कतिक होवै साधसंगु बिनसहि सभे सोच॥[3]
मंघिरि माहि सोहंदीआ हरि पिर संगि बैठड़ीआह॥
तिन की सोभा किआ गणी जि साहिबि मेलड़ीआह॥
तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह॥
साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह॥[4]
तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वसि पड़ीआह॥
जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिसनि नित खड़ीआह॥[5]
रतन जवेहर लाल हरि कंठि तिना जड़ीआह॥
नानक बांछै धूड़ि तिन प्रभ सरणी दरि पड़ीआह॥[6]
मंघिरि प्रभु आराधणा बहुड़ि न जनमड़ीआह॥
पोखि तुखारु न विआपई कंठि मिलिआ हरि नाहु॥[7]
मनु बेधिआ चरनारबिंद दरसनि लगड़ा साहु॥[8]
ओट गोविंद गोपाल राइ सेवा सुआमी लाहु॥
बिखिआ पोहि न सकई मिलि साधू गुण गाहु॥[9]
जह ते उपजी तह मिली सची प्रीति समाहु॥
करु गहि लीनी पारब्रहमि बहुड़ि न विछुड़ीआहु॥

---

1. **विचु...सकै**=कोई बीच में पड़कर बचाव या सहायता नहीं कर सकता। 2. **बंदी मोच**=बन्दियों को मुक्त करनेवाले। 3. **बिनसहि...सोच**=सब चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं। 4. **साध...इकेलड़ीआह**=जो साधुओं की संगति नहीं करतीं, वे प्रभु से बिछुड़ी रहतीं हैं। 5. **जिनी...आपणा**=जिन्होंने प्रभु से मिलाप कर लिया। 6. **बांछै**=चाहता है। 7. **तुखारु**=सर्दी, ठण्ड; **हरि नाहु**=परमात्मा रूपी पति। 8. **बेधिआ**=बिंध गया; **चरनारबिंद**=चरण-कँवलों के साथ। 9. **गुण गाहु**=गुण गाओ।

बारि जाउ लख बेरीआ हरि सजणु अगम अगाहु॥
सरम पई नाराइणै नानक दरि पईआहु॥
पोखु सोहंदा सरब सुख जिसु बखसे वेपरवाहु॥
माघि मजनु संगि साधूआ धूड़ी करि इसनानु॥
हरि का नामु धिआइ सुणि सभना नो करि दानु॥
जनम करम मलु उतरै मन ते जाइ गुमानु॥
कामि करोधि न मोहीऐ बिनसै लोभु सुआनु॥[1]
सचै मारगि चलदिआ उसतति करे जहानु॥
अठसठि तीरथ सगल पुंन जीअ दइआ परवानु॥
जिस नो देवै दइआ करि सोई पुरखु सुजानु॥
जिना मिलिआ प्रभु आपणा नानक तिन कुरबानु॥
माघि सुचे से कांढीअहि जिन पूरा गुरु मिहरवानु॥[2]
फलगुणि अनंद उपारजना हरि सजण प्रगटे आइ॥[3]
संत सहाई राम के करि किरपा दीआ मिलाइ॥
सेज सुहावी सरब सुख हुणि दुखा नाही जाइ॥
इछ पुनी वडभागणी वरु पाइआ हरि राइ॥
मिलि सहीआ मंगलु गावही गीत गोविंद अलाइ॥[4]
हरि जेहा अवरु न दिसई कोई दूजा लवै न लाइ॥
हलतु पलतु सवारिओनु निहचल दितीअनु जाइ॥
संसार सागर ते रखिअनु बहुड़ि न जनमै धाइ॥
जिहवा एक अनेक गुण तरे नानक चरणी पाइ॥
फलगुणि नित सलाहीऐ जिस नो तिलु न तमाइ॥[5]
जिनि जिनि नामु धिआइआ तिन के काज सरे॥
हरि गुरु पूरा आराधिआ दरगह सचि खरे॥
सरब सुखा निधि चरण हरि भउजलु बिखमु तरे॥

---

1. **सुआनु**=कुत्ता। 2. **कांढीअहि**=कहलाते हैं। 3. **उपारजना**=उत्पन्न हुआ। 4. **गीत... अलाइ**=गोविन्द का गुणगान करके यानी उसकी भक्ति करके। 5. **तमाइ**=लोभ।

प्रेम भगति तिन पाईआ बिखिआ नाहि जरे॥
कूड़ गए दुबिधा नसी पूरन सचि भरे॥
पारब्रहमु प्रभु सेवदे मन अंदरि एकु धरे॥
माह दिवस मूरत भले जिस कउ नदरि करे॥[1]
नानकु मंगै दरस दानु किरपा करहु हरे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 133-36

आसा घरु 8 काफी महला 5

कोइ न किस ही संगि काहे गरबीऐ॥ एकु नामु आधारु भउजलु तरबीऐ॥
मै गरीब सचु टेक तूं मेरे सतिगुर पूरे॥ देखि तुम्हारा दरसनो मेरा मनु धीरे॥ रहाउ॥
राजु मालु जंजालु काजि न कितै गनो॥ हरि कीरतनु आधारु निहचलु एहु धनो॥
जेते माइआ रंग तेत पछाविआ॥ सुख का नामु निधानु गुरमुखि गाविआ॥[2]
सचा गुणी निधानु तूं प्रभ गहिर गंभीरे॥ आस भरोसा खसम का नानक के जीअरे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 398

रागु गोंड महला 5 चउपदे घरु 2

गुर की मूरति मन महि धिआनु॥ गुर कै सबदि मंत्रु मनु मान॥
गुर के चरन रिदै लै धारउ॥ गुरु पारब्रहमु सदा नमसकारउ॥
मत को भरमि भुलै संसारि॥ गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि॥ रहाउ॥
भूले कउ गुरि मारगि पाइआ॥ अवर तिआगि हरि भगती लाइआ॥
जनम मरन की त्रास मिटाई॥ गुर पूरे की बेअंत वडाई॥[3]
गुर प्रसादि ऊरध कमल बिगास॥ अंधकार महि भइआ प्रगास॥[4]
जिनि कीआ सो गुर ते जानिआ॥ गुर किरपा ते मुगध मनु मानिआ॥[5]
गुरु करता गुरु करणै जोगु॥ गुरु परमेसरु है भी होगु॥
कहु नानक प्रभि इहै जनाई॥ बिनु गुर मुकति न पाईऐ भाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 864

---

1. **मूरत**=मुहूर्त। 2. **पछाविआ**=परछाईं; **जेते...पछाविआ**=माया के सब रंग-तमाशे परछाईं-मात्र हैं। 3. **त्रास**=डर, भय। 4. **ऊरध**=उलटा। 5. **मुगध**=अज्ञानी, मूर्ख।

मारू महला 5 सोलहे

गुरु गोपालु गुरु गोविंदा॥ गुरु दइआलु सदा बखसिंदा॥
गुरु सासत सिम्रिति खटु करमा गुरु पवित्रु असथाना हे॥
गुरु सिमरत सभि किलविख नासहि॥ गुरु सिमरत जम संगि न फासहि॥
गुरु सिमरत मनु निरमलु होवै गुरु काटे अपमाना हे॥
गुर का सेवकु नरकि न जाए॥ गुर का सेवकु पारब्रहमु धिआए॥
गुर का सेवकु साधसंगु पाए गुरु करदा नित जीअ दाना हे॥
गुर दुआरै हरि कीरतनु सुणीऐ॥ सतिगुरु भेटि हरि जसु मुखि भणीऐ॥[1]
कलि कलेस मिटाए सतिगुरु हरि दरगह देवै मानां हे॥
अगमु अगोचरु गुरू दिखाइआ॥ भूला मारगि सतिगुरि पाइआ॥
गुर सेवक कउ बिघनु न भगती हरि पूर द्रिढ़ाइआ गिआनां हे॥
गुरि द्रिसटाइआ सभनी ठांई॥ जलि थलि पूरि रहिआ गोसाई॥[2]
ऊच ऊन सभ एक समानां मनि लागा सहजि धिआना हे॥[3]
गुरि मिलिऐ सभ त्रिसन बुझाई॥ गुरि मिलिऐ नह जोहै माई॥[4]
सतु संतोखु दीआ गुरि पूरै नामु अंम्रितु पी पानां हे॥
गुर की बाणी सभ माहि समाणी॥ आपि सुणी तै आपि वखाणी॥
जिनि जिनि जपी तेई सभि निसत्रे तिन पाइआ निहचल थानां हे॥[5]
सतिगुर की महिमा सतिगुरु जाणै। जो किछु करे सु आपण भाणै॥
साधू धूरि जाचहि जन तेरे नानक सद कुरबानां हे॥[6]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1074

सिरीरागु महला 5

गुरु परमेसुरु पूजीऐ मनि तनि लाइ पिआरु॥
सतिगुरु दाता जीअ का सभसै देइ अधारु॥

---

1. **भणीऐ**=कहिए। 2. **गोसाई**=स्वामी। 3. **ऊच ऊन**=ऊँच-नीच। 4. **नह...माई**=माया उसकी ओर नहीं देखती यानी वह माया में नहीं फँसता। 5. **निहचल थानां**=अविनाशी स्थान यानी सचखण्ड। 6. **जाचहि**=माँगते है।

सतिगुर बचन कमावणे सचा एहु वीचारु॥
बिनु साधू संगति रतिआ माइआ मोहु सभु छारु॥
मेरे साजन हरि हरि नामु समालि॥
साधू संगति मनि वसै पूरन होवै घाल॥रहाउ॥[1]
गुरु समरथु अपारु गुरु वडभागी दरसनु होइ॥
गुरु अगोचरु निरमला गुर जेवडु अवरु न कोइ॥
गुरु करता गुरु करणहारु गुरमुखि सची सोइ॥
गुर ते बाहरि किछु नही गुरु कीता लोड़े सु होइ॥
गुरु तीरथु गुरु पारजातु गुरु मनसा पूरणहारु॥[2]
गुरु दाता हरि नामु देइ उधरै सभु संसारु॥
गुरु समरथु गुरु निरंकारु गुरु ऊचा अगम अपारु॥
गुर की महिमा अगम है किआ कथे कथनहारु॥
जितड़े फल मनि बाछीअहि तितड़े सतिगुर पासि॥
पूरब लिखे पावणे साचु नामु दे रासि॥
सतिगुर सरणी आइआं बाहुड़ि नही बिनासु॥
हरि नानक कदे न विसरउ एहु जीउ पिंडु तेरा सासु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 52

रागु गोंड महला 5 चउपदे घरु 2

गुरु मेरी पूजा गुरु गोबिंदु॥ गुरु मेरा पारब्रहमु गुरु भगवंतु॥
गुरु मेरा देउ अलख अभेउ॥ सरब पूज चरन गुर सेउ॥[3]
गुर बिनु अवरु नाही मै थाउ॥ अनदिनु जपउ गुरू गुर नाउ॥ रहाउ॥
गुरु मेरा गिआनु गुरु रिदै धिआनु॥ गुरु गोपालु पुरखु भगवानु॥
गुर की सरणि रहउ कर जोरि॥ गुरू बिना मै नाही होरु॥
गुरु बोहिथु तारे भव पारि॥ गुर सेवा जम ते छुटकारि॥

---

1. **घाल**=परिश्रम। 2. **पारजातु**=कल्पवृक्ष। 3. **देउ**=देवता, इष्ट; **अभेउ**=जो प्रभु से भिन्न नहीं है, प्रभु में अभेद है।

अंधकार महि गुर मंत्रु उजारा॥ गुर कै संगि सगल निसतारा॥
गुरु पूरा पाईऐ वडभागी॥ गुर की सेवा दूखु न लागी॥
गुर का सबदु न मेटै कोइ॥ गुरु नानकु नानकु हरि सोइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 864

रागु गोंड महला 5 चउपदे घरु 2

गुरू गुरू गुरु करि मन मोर॥ गुरू बिना मै नाही होर॥
गुर की टेक रहहु दिनु राति॥ जा की कोइ न मेटै दाति॥[1]
गुरु परमेसरु एको जाणु॥ जो तिसु भावै सो परवाणु॥ रहाउ॥
गुर चरणी जा का मनु लागै॥ दूखु दरदु भ्रमु ता का भागै॥
गुर की सेवा पाए मानु॥ गुर ऊपरि सदा कुरबानु॥
गुर का दरसनु देखि निहाल॥ गुर के सेवक की पूरन घाल॥
गुर के सेवक कउ दुखु न बिआपै॥ गुर का सेवकु दह दिसि जापै॥
गुर की महिमा कथनु न जाइ॥ पारब्रहमु गुरु रहिआ समाइ॥
कहु नानक जा के पूरे भाग॥ गुर चरणी ता का मनु लाग॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 864

रागु बिलावलु महला 5 घरु 5 चउपदे

चरन भए संत बोहिथा तरे सागरु जेत॥[2]
मारग पाए उदिआन महि गुरि दसे भेत॥[3]
हरि हरि हरि हरि हरि हरे हरि हरि हरि हेत॥
ऊठत बैठत सोवते हरि हरि हरि चेत॥ रहाउ॥
पंच चोर आगै भगे जब साधसंगेत॥
पूंजी साबतु घणो लाभु ग्रिहि सोभा सेत॥
निहचल आसणु मिटी चिंत नाही डोलेत॥

1. **दाति**=नाम की दात, नाम की बख़्शिश। 2. **बोहिथा**=जहाज़। 3. **उदिआन**=जंगल।

भरमु भुलावा मिटि गइआ प्रभ पेखत नेत॥[1]
गुण गभीर गुन नाइका गुण कहीअहि केत॥
नानक पाइआ साधसंगि हरि हरि अंम्रेत॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 810

धनासरी महला 5

जिनि तुम भेजे तिनहि बुलाए सुख सहज सेती घरि आउ॥
अनद मंगल गुन गाउ सहज धुनि निहचल राजु कमाउ॥
तुम घरि आवहु मेरे मीत॥
तुमरे दोखी हरि आपि निवारे अपदा भई बितीत॥[3] रहाउ॥
प्रगट कीने प्रभ करनेहारे नासन भाजन थाके॥
घरि मंगल वाजहि नित वाजे अपुनै खसमि निवाजे॥
असथिर रहहु डोलहु मत कबहू गुर कै बचनि अधारि॥
जै जै कारु सगल भू मंडल मुख ऊजल दरबार॥
जिन के जीअ तिनै ही फेरे आपे भइआ सहाई॥
अचरजु कीआ करनैहारै नानक सचु वडिआई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 678

रागु आसा घरु 7 महला 5

जिसु नीच कउ कोई न जानै॥ नामु जपत उहु चहु कुंट मानै॥
दरसनु मागउ देहि पिआरे॥ तुमरी सेवा कउन कउन न तारे॥
जा कै निकटि न आवै कोई॥ सगल स्रिसटि उआ के चरन मलि धोई॥
जो प्रानी काहू न आवत काम॥ संत प्रसादि ता को जपीऐ नाम॥
साधसंगि मन सोवत जागे॥ तब प्रभ नानक मीठे लागे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 386

1. **प्रभ...नेत**=आँखों द्वारा प्रभु के दर्शन करके। 2. **अंम्रेत**=अमृत। 3. **अपदा**=विपत्ति, मुसीबत; **बितीत**=बीत गयी।

रागु सूही महला 5 असटपदीआ घरु 10 काफी

जे भुली जे चुकी साईं भी तहिंजी काढीआ॥[1]
जिन्हा नेहु दूजाणे लगा झूरि मरहु से वाढीआ॥[2]
हउ ना छोडउ कंत पासरा॥
सदा रंगीला लालु पिआरा एहु महिंजा आसरा॥ रहाउ॥[3]
सजणु तूहै सैणु तू मै तुझ उपरि बहु माणीआ॥[4]
जा तू अंदरि ता सुखे तूं निमाणी माणीआ॥
जे तू तुठा क्रिपा निधान ना दूजा वेखालि॥
एहा पाई मू दातड़ी नित हिरदै रखा समालि॥[5]
पाव जुलाई पंध तउ नैणी दरसु दिखालि॥[6]
स्रवणी सुणी कहाणीआ जे गुरु थीवै किरपालि॥[7]
किती लख करोड़ि पिरीए रोम न पुजनि तेरिआ॥[8]
तू साही हू साहु हउ कहि न सका गुण तेरिआ॥
सहीआ तऊ असंख मंञहु हभि वधाणीआ॥[9]
हिक भोरी नदरि निहालि देहि दरसु रंगु माणीआ॥[10]
जै डिठे मनु धीरीऐ किलविख वंञन्हि दूरे॥[11]
सो किउ विसरै माउ मै जो रहिआ भरपूरे॥
होइ निमाणी ढहि पई मिलिआ सहजि सुभाइ॥
पूरबि लिखिआ पाइआ नानक संत सहाइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 761

---

1. **तहिंजी**=तेरी; **काढीआ**=कहलाती हूँ। 2. **दूजाणे**=दूसरों से; **वाढीआ**=वियोगिनें, बिछुड़ी हुईं। 3. **महिंजा**=मेरा। 4. **सैणु**=साथी। 5. **दातड़ी**=दात, बख़्शिश। 6. **पाव... तउ**=मैं तुम्हारी ओर चलकर आ रही हूँ। 7. **स्रवणी**=कानों से। 8. **किती... तेरिआ**=तुमसे प्यार करने वाली करोड़ों आत्माएँ मिलकर भी तुम्हारे एक रोम का मुक़ाबला नहीं कर सकती। 9. **मंञहु**=मुझसे; **हभि**=सब; **वधाणीआ**=बढ़कर, उत्तम। 10. **भोरी**=थोड़ी-सी। 11. **जै...दूरे**=जिसके दर्शनों से मन शान्त हो जाता है और पाप नष्ट हो जाते हैं।

रागु गउड़ी गुआरेरी महला 5 असटपदीआ

तिसु गुर कउ सिमरउ सासि सासि॥ गुरु मेरे प्राण सतिगुरु मेरी रासि॥ रहाउ॥
गुर का दरसनु देखि देखि जीवा॥ गुर के चरण धोइ धोइ पीवा॥ 1॥
गुर की रेणु नित मजनु करउ॥ जनम जनम की हउमै मलु हरउ॥ 2॥
तिसु गुर कउ झूलावउ पाखा॥ महा अगनि ते हाथु दे राखा॥ 3॥
तिसु गुर कै ग्रिहि ढोवउ पाणी॥ जिसु गुर ते अकल गति जाणी॥ 4॥
तिसु गुर कै ग्रिहि पीसउ नीत॥ जिसु परसादि वैरी सभ मीत॥ 5॥
जिनि गुरि मो कउ दीना जीउ॥ आपुना दासरा आपे मुलि लीउ॥ 6॥
आपे लाइओ अपना पिआरु॥ सदा सदा तिसु गुर कउ करी नमसकारु॥ 7॥
कलि कलेस भै भ्रम दुख लाथा॥ कहु नानक मेरा गुरु समराथा॥ 8॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 239

रागु गउड़ी गुआरेरी महला 5 चउपदे

थिरु घरि बैसहु हरि जन पिआरे॥ सतिगुरि तुमरे काज सवारे॥ रहाउ॥
दुसट दूत परमेसरि मारे॥ जन की पैज रखी करतारे॥[1]
बादिसाह साह सभ वसि करि दीने॥ अंम्रित नाम महा रस पीने॥
निरभउ होइ भजहु भगवान॥ साधसंगति मिलि कीनो दानु॥
सरणि परे प्रभ अंतरजामी॥ नानक ओट पकरी प्रभ सुआमी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 201

रामकली महला 5 असटपदी

दरसनु भेटत पाप सभि नासहि हरि सिउ देइ मिलाई॥
मेरा गुरु परमेसरु सुखदाई॥
पारब्रहम का नामु द्रिड़ाए अंते होइ सखाई॥ रहाउ॥
सगल दूख का डेरा भंना संत धूरि मुखि लाई॥
पतित पुनीत कीए खिन भीतरि अगिआनु अंधेरु वंञाई॥

1. **पैज**=लाज।

करण कारण समरथु सुआमी नानक तिसु सरणाई॥
बंधन तोड़ि चरन कमल द्रिड़ाए एक सबदि लिव लाई॥
अंध कूप बिखिआ ते काढिओ साच सबदि बणि आई॥
जनम मरण का सहसा चूका बाहुड़ि कतहु न धाई॥
नाम रसाइणि इहु मनु राता अंम्रितु पी त्रिपताई॥
संतसंगि मिलि कीरतनु गाइआ निहचल वसिआ जाई॥
पूरै गुरि पूरी मति दीनी हरि बिनु आन न भाई॥[1]
नामु निधानु पाइआ वडभागी नानक नरकि न जाई॥
घाल सिआणप उकति न मेरी पूरै गुरू कमाई॥[2]
जप तप संजम सुचि है सोई आपे करे कराई॥
पुत्र कलत्र महा बिखिआ महि गुरि साचै लाइ तराई॥[3]
अपणे जीअ तै आपि सम्हाले आपि लीए लड़ि लाई॥
साच धरम का बेड़ा बांधिआ भवजलु पारि पवाई॥[4]
बेसुमार बेअंत सुआमी नानक बलि बलि जाई॥
अकाल मूरति अजूनी संभउ कलि अंधकार दीपाई॥[5]
अंतरजामी जीअन का दाता देखत त्रिपति अघाई॥[6]
एकंकारु निरंजनु निरभउ सभ जलि थलि रहिआ समाई॥
भगति दानु भगता कउ दीना हरि नानकु जाचै माई॥[7]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 915

रागु बिलावलु महला 5 चउपदे घरु 1

नदरी आवै तिसु सिउ मोहु॥ किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहि॥[8]
करि किरपा मोहि मारगि पावहु॥ साधसंगति कै अंचलि लावहु॥[9]

---

1. **आन**=और, दूसरा। 2. **सिआणप**=चतुराई, समझदारी। 3. **कलत्र**=स्त्री। 4. **भवजलु**=संसार-सागर। 5. **अकाल**=काल से परे; **अजूनी**=जो जन्म-मरण में न आये; **संभउ**=स्वयंभू, अपने-आप से आप; **दीपाई**=प्रकाश करनेवाला। 6. **अघाई**=तृप्त हो जाता है। 7. **जाचै**=माँगता है। 8. **मोहु**=प्यार, मुहब्बत। 9. **अंचलि**=आँचल, दामन।

किउ तरीऐ बिखिआ संसारु॥ सतिगुरु बोहिथु पावै पारि॥
पवन झुलारे माइआ देइ॥ हरि के भगत सदा थिरु सेइ॥
हरख सोग ते रहहि निरारा॥ सिर ऊपरि आपि गुरू रखवारा॥
पाइआ वेड़ु माइआ सरब भुइअंगा॥ हउमै पचे दीपक देखि पतंगा॥[1]
सगल सीगार करे नही पावै॥ जा होइ क्रिपालु ता गुरू मिलावै॥
हउ फिरउ उदासी मै इकु रतनु दसाइआ॥ निरमोलकु हीरा मिलै न उपाइआ॥
हरि का मंदरु तिसु महि लालु॥ गुरि खोलिआ पड़दा देखि भई निहालु॥
जिनि चाखिआ तिसु आइआ सादु॥ जिउ गूंगा मन महि बिसमादु॥
आनद रूपु सभु नदरी आइआ॥ जन नानक हरि गुण आखि समाइआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 801

रागु गउड़ी गुआरेरी महला 5 चउपदे

नैनहु नीद पर द्रिसटि विकार॥ स्रवण सोए सुणि निंद वीचार॥[2]
रसना सोई लोभि मीठै सादि॥ मनु सोइआ माइआ बिसमादि॥
इसु ग्रिह महि कोई जागतु रहै॥ साबतु वसतु ओहु अपनी लहै॥ रहाउ॥
सगल सहेली अपनै रस माती॥ ग्रिह अपुने की खबरि न जाती॥
मुसनहार पंच बटवारे॥ सूने नगरि परे ठगहारे॥[3]
उन ते राखै बापु न माई॥ उन ते राखै मीतु न भाई॥
दरबि सिआणप ना ओइ रहते॥ साधसंगि ओइ दुसट वसि होते॥
करि किरपा मोहि सारिंगपाणि॥ संतन धूरि सरब निधान॥
साबतु पूंजी सतिगुर संगि॥ नानकु जागै पारब्रहम कै रंगि॥
सो जागै जिसु प्रभु किरपालु॥ इह पूंजी साबतु धनु मालु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 182

---

1. **पाइआ...भुइअंगा**=माया रूपी साँप ने चारों तरफ़ से अपनी लपेट में लिया हुआ है। 2. **पर...विकार**=पर स्त्री, पर धन आदि की ओर पाप भरी दृष्टि। 3. **मुसनहार**=लूटने वाले; **पंच बटवारे**=पाँच डाकू यानी पाँच विकार।

रागु रामकली महला 5 घरु 2

पंच सबद तह पूरन नाद॥ अनहद बाजे अचरज बिसमाद॥
केल करहि संत हरि लोग॥ पारब्रहम पूरन निरजोग॥
सूख सहज आनंद भवन॥
साधसंगि बैसि गुण गावहि तह रोग सोग नही जनम मरन॥ रहाउ॥
ऊहा सिमरहि केवल नामु॥ बिरले पावहि ओहु बिस्रामु॥
भोजनु भाउ कीरतन आधारु॥ निहचल आसनु बेसुमारु॥
डिगि न डोलै कतहू न धावै॥ गुर प्रसादि को इहु महलु पावै॥
भ्रम भै मोह न माइआ जाल॥ सुंन समाधि प्रभू किरपाल॥
ता का अंतु न पारावारु॥ आपे गुपतु आपे पासारु॥
जा कै अंतरि हरि हरि सुआदु॥ कहनु न जाई नानक बिसमादु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 888

सोरठि महला 5 घरु 2 असटपदीआ

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे॥[1]
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे॥
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका॥
हारि परिओ सुआमी कै दुआरै दीजै बुधि बिबेका॥ रहाउ॥
मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही॥[2]
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही॥
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए॥[3]
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए॥
कनिक कामिनी हैवर गैवर बहु बिधि दानु दातारा॥[4]

---

1. **निवलि**=न्योली कर्म। 2. **करपाती**=जो हाथों को पात्र यानी बर्तन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। 3. **करवत**=काशी में एक आरा था जिससे मनुष्य मुक्ति प्राप्त करने के लिए अपना सिर कटवा लेते थे। 4. **कनिक**=स्वर्ण, सोना; **कामिनी**=स्त्री; **हैवर**=घोड़ा; **गैवर**=हाथी।

अंन बसत्र भूमि बहु अरपे नह मिलीऐ हरि दुआरा॥[1]
पूजा अरचा बंदन डंडउत खटु करमा रतु रहता॥[2]
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता॥
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ॥
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै हरि सिउ संगु न गहिआ॥
राज लीला राजन की रचना करिआ हुकमु अफारा॥
सेज सोहनी चंदनु चोआ नरक घोर का दुआरा॥[3]
हरि कीरति साधसंगति है सिरि करमन कै करमा॥
कहु नानक तिसु भइओ परापति जिसु पुरब लिखे का लहना॥
तेरो सेवकु इह रंगि माता॥
भइओ क्रिपालु दीन दुख भंजनु हरि हरि कीरतनि इहु मनु राता॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 641

रागु बिलावलु महला 5 घरु 5 चउपदे

पिंगुल परबत पारि परे खल चतुर बकीता॥[4]
अंधुले त्रिभवण सूझिआ गुर भेटि पुनीता॥
महिमा साधू संग की सुनहु मेरे मीता॥
मैलु खोई कोटि अघ हरे निरमल भए चीता॥ रहाउ॥[5]
ऐसी भगति गोविंद की कीटि हसती जीता॥[6]
जो जो कीनो आपनो तिसु अभै दानु दीता॥
सिंघु बिलाई होइ गइओ त्रिणु मेरु दिखीता॥[7]
स्रमु करते दम आढ कउ ते गनी धनीता॥[8]

---

1. **हरि दुआरा**=हरि का द्वार। 2. **अरचा**=अर्चना; **खटु करमा**=षट् कर्म (विद्या पढ़ना-पढ़ाना; दान देना-लेना; यज्ञ करना-कराना)। 3. **चोआ**=इत्र आदि सुगन्धित वस्तुएँ। 4. **पिंगुल**=लंगड़ा-लूला; **खल**=मूर्ख। 5. **अघ**=घोर पाप। 6. **हसती**=हाथी। 7. **सिंघु**=शेर; **बिलाई**=बिल्ली; **त्रिणु**=तृण, तिनका; **मेरु**=सुमेर पर्वत। 8. **स्रमु...धनीता**=जो आधी दमड़ी के लिए कठोर परिश्रम करते थे, वे साहूकार अथवा धनाढ्य बन गये।

कवन वडाई कहि सकउ बेअंत गुनीता॥
करि किरपा मोहि नामु देहु नानक दरस रीता॥[1]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 809

रागु आसा महला 5

प्रभु होइ क्रिपालु त इहु मनु लाई॥ सतिगुरु सेवि सभै फल पाई॥
मन किउ बैरागु करहिगा सतिगुरु मेरा पूरा॥
मनसा का दाता सभ सुख निधानु अंम्रित सरि सद ही भरपूरा॥ रहाउ॥
चरण कमल रिद अंतरि धारे॥ प्रगटी जोति मिले राम पिआरे॥
पंच सखी मिलि मंगलु गाइआ॥ अनहद बाणी नादु वजाइआ॥
गुरु नानकु तुठा मिलिआ हरि राइ॥ सुखि रैणि विहाणी सहजि सुभाइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 375

रागु बिलावलु महला 5 घरु 2

बिखै बनु फीका तिआगि री सखीए नामु महा रसु पीओ॥
बिनु रस चाखे बुडि गई सगली सुखी न होवत जीओ॥
मानु महतु न सकति ही काई साधा दासी थीओ॥
नानक से दरि सोभावंते जो प्रभि अपुनै कीओ॥
हरिचंदउरी चित भ्रमु सखीए म्रिग त्रिसना द्रुम छाइआ॥[2]
चंचलि संगि न चालती सखीए अंति तजि जावत माइआ॥
रसि भोगण अति रूप रस माते इन संगि सूखु न पाइआ॥
धंनि धंनि हरि साध जन सखीए नानक जिनी नामु धिआइआ॥
जाइ बसहु वडभागणी सखीए संता संगि समाईऐ॥
तह दूख न भूख न रोगु बिआपै चरन कमल लिव लाईऐ॥
तह जनम न मरणु न आवण जाणा निहचलु सरणी पाईऐ॥

---

1. **दरस रीता**=दर्शनों से वंचित। 2. **हरिचंदउरी...छाइआ**=यह संसार एक भ्रम है, यह मृग-तृष्णा और वृक्ष की छाया के समान है।

प्रेम बिछोहु न मोहु बिआपै नानक हरि एकु धिआईऐ॥
द्रिसटि धारि मनु बेधिआ पिआरे रतड़े सहजि सुभाए॥
सेज सुहावी संगि मिलि प्रीतम अनद मंगल गुण गाए॥
सखी सहेली राम रंगि राती मन तन इछ पुजाए॥
नानक अचरजु अचरज सिउ मिलिआ कहणा कछू न जाए॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 802

रागु भैरउ महला 5 चउपदे घरु 2

बिनु बाजे कैसो निरतिकारी॥ बिनु कंठै कैसे गावनहारी॥[1]
जील बिना कैसे बजै रबाब॥ नाम बिना बिरथे सभि काज॥[2]
नाम बिना कहहु को तरिआ॥ बिनु सतिगुर कैसे पारि परिआ॥ रहाउ॥
बिनु जिहवा कहा को बकता॥ बिनु स्रवना कहा को सुनता॥
बिनु नेत्रा कहा को पेखै॥ नाम बिना नरु कही न लेखै॥
बिनु बिदिआ कहा कोई पंडित॥ बिनु अमरै कैसे राज मंडित॥[3]
बिनु बूझे कहा मनु ठहराना॥ नाम बिना सभु जगु बउराना॥
बिनु बैराग कहा बैरागी॥ बिनु हउ तिआगि कहा कोऊ तिआगी॥
बिनु बसि पंच कहा मन चूरे॥ नाम बिना सद सद ही झूरे॥[4]
बिनु गुर दीखिआ कैसे गिआनु॥ बिनु पेखे कहु कैसो धिआनु॥
बिनु भै कथनी सरब बिकार॥ कहु नानक दर का बीचार॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1140

मारू महला 5 घरु 8 अंजुलीआ

बिरखै हेठि सभि जंत इकठे॥ इकि तते इकि बोलनि मिठे॥[5]
असतु उदोतु भइआ उठि चले जिउ जिउ अउध विहाणीआ॥[6]

---

1. **निरतिकारी**=नाच। 2. **जील**=तन्तु, तार। 3. **अमरै**=हुक्म। 4. **बिनु...चूरे**=काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी पाँच विकारों को वश में किये बिना मन वश में नहीं आता। 5. **बिरखै**=वृक्ष। 6. **असतु**=सूर्यास्त; **उदोतु**=सूर्योदय; **अउध विहाणीआ**=आयु बीतती गयी।

पाप करेदड़ सरपर मुठे॥ अजराईलि फड़े फड़ि कुठे॥[1]
दोजकि पाए सिरजणहारै लेखा मंगै बाणीआ॥
संगि न कोई भईआ बेबा॥ मालु जोबनु धनु छोडि वञेसा॥[2]
करण करीम न जातो करता तिल पीड़े जिउ घाणीआ॥
खुसि खुसि लैदा वसतु पराई॥ वेखै सुणे तैरै नालि खुदाई॥
दुनीआ लबि पइआ खात अंदरि अगली गल न जाणीआ॥[3]
जमि जमि मरै मरै फिरि जंमै॥ बहुतु सजाइ पइआ देसि लंमै॥[4]
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहै पराणीआ॥
खालक थावहु भुला मुठा॥ दुनीआ खेलु बुरा रुठ तुठा॥[5]
सिदकु सबूरी संतु न मिलिओ वतै आपण भाणीआ॥[6]
मउला खेल करे सभि आपे॥ इकि कढे इकि लहरि विआपे॥
जिउ नचाए तिउ तिउ नचनि सिरि सिरि किरत विहाणीआ॥[7]
मिहर करे ता खसमु धिआई॥ संता संगति नरकि न पाई॥
अंम्रित नाम दानु नानक कउ गुण गीता नित वखाणीआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1019-20

कानड़ा महला 5 घरु 2

बिसरि गई सभ ताति पराई॥ जब ते साधसंगति मोहि पाई॥ रहाउ॥
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई॥
जो प्रभ कीनो सो भल मानिओ एह सुमति साधू ते पाई॥
सभ महि रवि रहिआ प्रभु एकै पेखि पेखि नानक बिगसाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1299

---

1. **पाप करेदड़**=पाप करने वाले; **कुठे**=मारता है। 2. **भईआ**=भाई; **बेबा**=बहन; **छोडि वञेसा**=छोड़कर चले गये। 3. **लबि**=लोभ के; **खात**=गढ्ढ़े में। 4. **देसि लंमै**=लम्बे रास्ते यानी चौरासी के चक्कर में। 5. **मुठा**=ठगा गया; **दुनीआ...तुठा**=दुनिया के विचित्र खेल में कभी रूठा, तो कभी मान गया, कभी दुखी हुआ तो कभी सुखी हो गया। 6. **सिदकु सबूरी**=सब्र-सन्तोष; **वतै...भाणीआ**=मनमर्ज़ी के कारण भटकता है। 7. **किरत विहाणीआ**=कर्मगति सब पर आती है यानी कर्मों का फल प्रत्येक को भुगतना पड़ता है।

रागु आसा महला 5 दुपदे

भई परापति मानुख देहुरीआ॥ गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥[1]
अवरि काज तेरै कितै न काम॥ मिलु साधसंगति भजु केवल नाम॥
सरंजामि लागु भवजल तरन कै॥ जनमु ब्रिथा जात रंगि माइआ कै॥ रहाउ॥[2]
जपु तपु संजमु धरमु न कमाइआ॥ सेवा साध न जानिआ हरि राइआ॥
कहु नानक हम नीच करंमा॥ सरणि परे की राखहु सरमा॥[3]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 378

रागु बिलावलु महला 5 घरु 4

भूले मारग जिनहि बताइआ॥ ऐसा गुरु वडभागी पाइआ॥
सिमरि मना राम नामु चितारे॥ बसि रहे हिरदै गुर चरन पिआरे॥ रहाउ॥
कामि क्रोधि लोभि मोहि मनु लीना॥ बंधन काटि मुकति गुरि कीना॥
दुख सुख करत जनमि फुनि मूआ॥ चरन कमल गुरि आस्रमु दीआ॥
अगनि सागर बूडत संसारा॥ नानक बाह पकरि सतिगुरि निसतारा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 803

रागु गउड़ी गुआरेरी महला 5 असटपदीआ

मिलु मेरे गोबिंद अपना नामु देहु॥ नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु असनेहु॥ रहाउ॥[4]
नाम बिना जो पहिरै खाइ॥ जिउ कूकरु जूठन महि पाइ॥
नाम बिना जेता बिउहारु॥ जिउ मिरतक मिथिआ सीगारु॥
नामु बिसारि करे रस भोग॥ सुखु सुपनै नही तन महि रोग॥
नामु तिआगि करे अन काज॥ बिनसि जाइ झूठे सभि पाज॥[5]
नाम संगि मनि प्रीति न लावै॥ कोटि करम करतो नरकि जावै॥
हरि का नामु जिनि मनि न आराधा॥ चोर की निआई जम पुरि बाधा॥

---

1. **देहुरीआ**=देह, शरीर; **बरीआ**=बारी, मौक़ा, अवसर। 2. **सरंजामि**=उद्यम, बन्दोबस्त। 3. **सरमा**=लाज, इज़्ज़त। 4. **असनेहु**=स्नेह, प्रेम। 5. **पाज**=दिखावे, फ़रेब, पाखण्ड।

लाख अडंबर बहुतु बिसथारा॥ नाम बिना झूठे पासारा॥
हरि का नामु सोई जनु लेइ॥ करि किरपा नानक जिसु देइ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 240

माझ महला 5 चउपदे घरु 1

मेरा मनु लोचै गुर दरसन ताई॥ बिलप करे चात्रिक की निआई॥[1]
त्रिखा न उतरै सांति न आवै बिनु दरसन संत पिआरे जीउ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई गुर दरसन संत पिआरे जीउ॥[2] रहाउ॥
तेरा मुखु सुहावा जीउ सहज धुनि बाणी॥ चिरु होआ देखे सारिंगपाणी॥[3]
धंनु सु देसु जहा तूं वसिआ मेरे सजण मीत मुरारे जीउ॥
हउ घोली हउ घोलि घुमाई गुर सजण मीत मुरारे जीउ॥ रहाउ॥
इक घड़ी न मिलते ता कलिजुगु होता॥
हुणि कदि मिलीऐ प्रिअ तुधु भगवंता॥
मोहि रैणि न विहावै नीद न आवै बिनु देखे गुर दरबारे जीउ॥
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई तिसु सचे गुर दरबारे जीउ॥ रहाउ॥
भागु होआ गुरि संतु मिलाइआ॥ प्रभु अबिनासी घर महि पाइआ॥
सेव करी पलु चसा न विछुड़ा जन नानक दास तुमारे जीउ॥[4]
हउ घोली जीउ घोलि घुमाई जन नानक दास तुमारे जीउ॥ रहाउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 96

वडहंसु महला 5 घरु 2

मैरै अंतरि लोचा मिलण की पिआरे हउ किउ पाई गुर पूरे॥
जे सउ खेल खेलाईऐ बालकु रहि न सकै बिनु खीरे॥
मैरै अंतरि भुख न उतरै अंमाली जे सउ भोजन मै नीरे॥[5]

---

1. **लोचै**=चाहता है; **बिलप**=विलाप; **चात्रिक**=पपीहा। 2. **घोली जीउ**=बलिहार जाती हूँ। 3. **सारिंगपाणी**=परमात्मा। 4. **पलु चसा**=क्षण-भर के लिए भी। 5. **अंमाली**=हे मेरी प्रिय सखी।

मैंरै मनि तनि प्रेमु पिरंम का बिनु दरसन किउ मनु धीरे॥
सुणि सजण मेरे प्रीतम भाई मै मेलिहु मित्रु सुखदाता॥
ओहु जीअ की मेरी सभ बेदन जाणै नित सुणावै हरि कीआ बाता॥[1]
हउ इकु खिनु तिसु बिनु रहि न सका जिउ चात्रिकु जल कउ बिललाता॥
हउ किआ गुण तेरे सारि समाली मै निरगुण कउ रखि लेता॥
हउ भई उडीणी कंत कउ अंमाली सो पिरु कदि नैणी देखा॥[2]
सभि रस भोगण विसरे बिनु पिर कितै न लेखा॥
इहु कापड़ु तनि न सुखावई करि न सकउ हउ वेसा॥
जिनी सखी लालु राविआ पिआरा तिन आगै हम आदेसा॥
मै सभि सीगार बणाइआ अंमाली बिनु पिर कामि न आए॥
जा सहि बात न पुछीआ अंमाली ता बिरथा जोबनु सभु जाए॥
धनु धनु ते सोहागणी अंमाली जिन सहु रहिआ समाए॥
हउ वारिआ तिन सोहागणी अंमाली तिन के धोवा सद पाए॥
जिचरु दूजा भरमु सा अंमाली तिचरु मै जाणिआ प्रभु दूरे॥
जा मिलिआ पूरा सतिगुरू अंमाली ता आसा मनसा सभ पूरे॥
मै सरब सुखा सुख पाइआ अंमाली पिरु सरब रहिआ भरपूरे॥
जन नानक हरि रंगु माणिआ अंमाली गुर सतिगुर कै लगि पैरे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 564

वडहंसु महला 5 घरु 1

विसरु नाही प्रभ दीन दइआला॥ तेरी सरणि पूरन किरपाला॥ रहाउ॥
जह चिति आवहि सो थानु सुहावा॥ जितु वेला विसरहि ता लागै हावा॥
तेरे जीअ तू सद ही साथी॥ संसार सागर ते कढु दे हाथी॥
आवणु जाणा तुम ही कीआ॥ जिसु तू राखहि तिसु दूखु न थीआ॥
तू एको साहिबु अवरु न होरि॥ बिनउ करै नानकु कर जोरि॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 563

---

1. **बेदन**=पीड़ा। 2. **उडीणी**=उदास, व्याकुल।

सिरीरागु महला 5 घरु 1

संत जनहु मिलि भाईहो सचा नामु समालि॥
तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि॥
गुर पूरे ते पाईऐ अपणी नदरि निहालि॥
करमि परापति तिसु होवै जिस नो होइ दइआलु॥
मेरे मन गुर जेवडु अवरु न कोइ॥
दूजा थाउ न को सुझै गुर मेले सचु सोइ॥ रहाउ॥
सगल पदारथ तिसु मिले जिनि गुरु डिठा जाइ॥
गुर चरणी जिन मनु लगा से वडभागी माइ॥
गुरु दाता समरथु गुरु गुरु सभ महि रहिआ समाइ॥
गुरु परमेसरु पारब्रहमु गुरु डुबदा लए तराइ॥
कितु मुखि गुरु सालाहीऐ करण कारण समरथु॥
से मथे निहचल रहे जिन गुरि धारिआ हथु॥
गुरि अंम्रित नामु पीआलिआ जनम मरन का पथु॥
गुरु परमेसरु सेविआ भै भंजनु दुख लथु॥
सतिगुरु गहिर गभीरु है सुख सागरु अघ खंडु॥
जिनि गुरु सेविआ आपणा जमदूत न लागै डंडु॥
गुर नालि तुलि न लगई खोजि डिठा ब्रहमंडु॥[1]
नामु निधानु सतिगुरि दीआ सुखु नानक मन महि मंडु॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 49

रागु सूही महला 5 घरु 6

सतिगुर पासि बेनंतीआ मिलै नामु आधारा॥
तुठा सचा पातिसाहु तापु गइआ संसारा॥[3]

---

1. **तुलि**=बराबर, समान। 2. **सुखु...मंडु**=इस सुख को मन में धारण कर लो।
3. **तुठा**=प्रसन्न हुआ, दयाल हुआ।

भगता की टेक तूं संता की ओट तूं सचा सिरजनहारा॥ रहाउ॥
सचु तेरी सामगरी सचु तेरा दरबारा॥
सचु तेरे खाजीनिआ सचु तेरा पासारा॥[1]
तेरा रूपु अगंमु है अनूपु तेरा दरसारा॥
हउ कुरबाणी तेरिआ सेवका जिन्ह हरि नामु पिआरा॥
सभे इछा पूरीआ जा पाइआ अगम अपारा॥
गुरु नानकु मिलिआ पारब्रहमु तेरिआ चरणा कउ बलिहारा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 746

गउड़ी सुखमनी महला 5 सलोकु असटपदी

सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ॥
तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ॥

सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल॥ सेवक कउ गुरु सदा दइआल॥
सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै॥ गुर बचनी हरि नामु उचरै॥
सतिगुरु सिख के बंधन काटै॥ गुर का सिखु बिकार ते हाटै॥
सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देइ॥ गुर का सिखु वडभागी हे॥
सतिगुरु सिख का हलतु पलतु सवारै॥
नानक सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै॥
गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै॥ गुर की आगिआ मन महि सहै॥
आपस कउ करि कछु न जनावै॥ हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै॥[2]
मनु बेचै सतिगुर कै पासि॥ तिसु सेवक के कारज रासि॥
सेवा करत होइ निहकामी॥ तिस कउ होत परापति सुआमी॥
अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ॥ नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ॥
बीस बिसवे गुर का मनु मानै॥ सो सेवकु परमेसुर की गति जानै॥[3]
सो सतिगुरु जिसु रिदै हरि नाउ॥ अनिक बार गुर कउ बलि जाउ॥

---

1. **खाजीनिआ**=ख़ज़ाने, भण्डार। 2. **आपस...जनावै**=जो अपने आप को किसी तरह भी न जतलाए यानी जिसमें अहं भाव न हो। 3. **बीस बिसवे**=सौ फीसदी यानी पूरी तरह।

सरब निधान जीअ का दाता॥ आठ पहर पारब्रहम रंगि राता॥
ब्रहम महि जनु जन महि पारब्रहमु॥ एकहि आपि नही कछु भरमु॥
सहस सिआनप लइआ न जाईऐ॥ नानक ऐसा गुरु बडभागी पाईऐ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 286

सिरीरागु महला 5 घरु 1

सभे थोक परापते जे आवै इकु हथि॥[1]
जनमु पदारथु सफलु है जे सचा सबदु कथि॥
गुर ते महलु परापते जिसु लिखिआ होवै मथि॥[2]
मेरे मन एकस सिउ चितु लाइ॥
एकस बिनु सभ धंधु है सभ मिथिआ मोहु माइ॥ रहाउ॥
लख खुसीआ पातिसाहीआ जे सतिगुरु नदरि करेइ॥
निमख एक हरि नामु देइ मेरा मनु तनु सीतलु होइ॥
जिस कउ पूरबि लिखिआ तिनि सतिगुर चरन गहे॥
सफल मूरतु सफला घड़ी जितु सचे नालि पिआरु॥
दूखु संतापु न लगई जिसु हरि का नामु अधारु॥
बाह पकड़ि गुरि काढिआ सोई उतरिआ पारि॥
थानु सुहावा पवितु है जिथै संत सभा॥
ढोई तिस ही नो मिलै जिनि पूरा गुरू लभा॥
नानक बधा घरु तहां जिथै मिरतु न जनमु जरा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 44

रागु बिलावलु महला 5 चउपदे घरु 1

सुख निधान प्रीतम प्रभ मेरे॥ अगनत गुण ठाकुर प्रभ तेरे॥
मोहि अनाथ तुमरी सरणाई॥ करि किरपा हरि चरन धिआई॥ 1॥

---

1. **थोक**=वस्तु, पदार्थ; **सभे...हथि**=यदि वह एक प्रभु मिल गया तो समझो कि सब कुछ मिल गया। 2. **लिखिआ...मथि**=जिसके मस्तक पर लिखा हो यानी जिसके भाग्य में हो।

दइआ करहु बसहु मनि आइ॥ मोहि निरगुन लीजै लड़ि लाइ॥ रहाउ॥
प्रभु चिति आवै ता कैसी भीड़॥ हरि सेवक नाही जम पीड़॥[1]
सरब दूख हरि सिमरत नसे॥ जा कै संगि सदा प्रभु बसै॥ 2॥
प्रभ का नामु मनि तनि आधारु॥ बिसरत नामु होवत तनु छारु॥[2]
प्रभ चिति आए पूरन सभ काज॥ हरि बिसरत सभ का मुहताज॥ 3॥
चरन कमल संगि लागी प्रीति॥ बिसरि गई सभ दुरमति रीति॥
मन तन अंतरि हरि हरि मंत॥ नानक भगतन कै घरि सदा अनंद॥ 4॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 801-802

रागु गउड़ी महला 5

सुणि सखीए मिलि उदमु करेहा मनाइ लैहि हरि कंतै॥
मानु तिआगि करि भगति ठगउरी मोहह साधू मंतै॥
सखी वसि आइआ फिरि छोडि न जाई इह रीति भली भगवंतै॥
नानक जरा मरण भै नरक निवारै पुनीत करै तिसु जंतै॥
सुणि सखीए इह भली बिनंती एहु मतांतु पकाईऐ॥
सहजि सुभाइ उपाधि रहत होइ गीत गोविंदहि गाईऐ॥
कलि कलेस मिटहि भ्रम नासहि मनि चिंदिआ फलु पाईऐ॥
पारब्रहम पूरन परमेसर नानक नामु धिआईऐ॥
सखी इछ करी नित सुख मनाई प्रभ मेरी आस पुजाए॥
चरन पिआसी दरस बैरागनि पेखउ थान सबाए॥
खोजि लहउ हरि संत जना संगु संम्रिथ पुरख मिलाए॥
नानक तिन मिलिआ सुरिजनु सुखदाता से वडभागी माए॥
सखी नालि वसा अपुने नाह पिआरे मेरा मनु तनु हरि संगि हिलिआ॥[3]
सुणि सखीए मेरी नीद भली मै आपनड़ा पिरु मिलिआ॥

---

1. **भीड़**=दुःख, संकट। 2. **छारु**=भस्म; **होवत...छारु**=शरीर राख का ढेर बन जाता है। 3. **नाह**=पति।

भ्रमु खोइओ सांति सहजि सुआमी परगासु भइआ कउलु खिलिआ॥
वरु पाइआ प्रभु अंतरजामी नानक सोहागु न टलिआ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 249

मारू सोलहे महला 5

सूरति देखि न भूलु गवारा॥ मिथन मोहारा झूठु पसारा॥[1]
जग महि कोई रहणु न पाए निहचलु एकु नाराइणा॥
गुर पूरे की पउ सरणाई॥ मोहु सोगु सभु भरमु मिटाई॥
एको मंत्रु द्रिड़ाए अउखधु सचु नामु रिद गाइणा॥[2]
जिसु नामै कउ तरसहि बहु देवा॥ सगल भगत जा की करदे सेवा॥
अनाथा नाथु दीन दुख भंजनु सो गुर पूरे ते पाइणा॥[3]
होरु दुआरा कोइ न सूझै॥ त्रिभवण धावै ता किछू न बूझै॥[4]
सतिगुरु साहु भंडारु नाम जिसु इहु रतनु तिसै ते पाइणा॥
जा की धूरि करे पुनीता॥ सुरि नर देव न पावहि मीता॥
सति पुरखु सतिगुरु परमेसरु जिसु भेटत पारि पराइणा॥
पारजातु लोड़हि मन पिआरे॥ कामधेनु सोही दरबारे॥[5]
त्रिपति संतोखु सेवा गुर पूरे नामु कमाइ रसाइणा॥[6]
गुर कै सबदि मरहि पंच धातू॥ भै पारब्रहम होवहि निरमला तू॥[7]
पारसु जब भेटै गुरु पूरा ता पारसु परसि दिखाइणा॥
कई बैकुंठ नाही लवै लागे॥ मुकति बपुड़ी भी गिआनी तिआगे॥[8]
एकंकारु सतिगुर ते पाईऐ हउ बलि बलि गुर दरसाइणा॥
गुर की सेव न जाणै कोई॥ गुरु पारब्रहमु अगोचरु सोई॥

---

1. **मिथन**=मिथ्या, असत्य, झूठ; **मोहारा**=मोह। 2. **अउखधु**=औषधि। 3. **दुख भंजनु**=दुखों को दूर करनेवाला। 4. **त्रिभवण**=तीन लोक। 5. **पारजातु**=कल्पवृक्ष। 6. **रसाइणा**=रसायन, ताँबे को सोना बना देनेवाला पदार्थ। 7. **पंच धातू**=पाँच विकार। 8. **नाही...लागे**=बराबरी नहीं कर सकते, मुक़ाबले में तुच्छ हैं; **बपुड़ी**=बेचारी।

जिस नो लाइ लए सो सेवकु जिसु वडभाग मथाइणा॥
गुर की महिमा बेद न जाणहि॥ तुछ मात सुणि सुणि वखाणहि॥[1]
पारब्रहम अपरंपर सतिगुर जिसु सिमरत मनु सीतलाइणा॥[2]
जा की सोइ सुणी मनु जीवै॥ रिदै वसै ता ठंढा थीवै॥
गुरु मुखहु अलाए ता सोभा पाए तिसु जम कै पंथि न पाइणा॥[3]
संतन की सरणाई पड़िआ॥ जीउ प्राण धनु आगै धरिआ॥
सेवा सुरति न जाणा काई तुम करहु दइआ किरमाइणा॥[4]
निरगुण कउ संगि लेहु रलाए॥ करि किरपा मोहि टहलै लाए॥
पखा फेरउ पीसउ संत आगै चरण धोइ सुखु पाइणा॥
बहुतु दुआरे भ्रमि भ्रमि आइआ॥ तुमरी क्रिपा ते तुम सरणाइआ॥
सदा सदा संतह संगि राखहु एहु नाम दानु देवाइणा॥
भए क्रिपाल गुसाई मेरे॥ दरसनु पाइआ सतिगुर पूरे॥
सूख सहज सदा आनंदा नानक दास दसाइणा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1077

सोरठि महला 5 घरु 2 चउपदे

हम संतन की रेनु पिआरे हम संतन की सरणा॥
संत हमारी ओट सताणी संत हमारा गहणा॥
हम संतन सिउ बणि आई॥ पूरबि लिखिआ पाई॥
इहु मनु तेरा भाई॥ रहाउ॥
संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा॥
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगति भरे भंडारा॥
संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उतरिआ मन का धोखा॥
धरम राइ अब कहा करैगो जउ फाटिओ सगलो लेखा॥

---

1. **तुछ**=बहुत थोड़ी। 2. **सीतलाइणा**=शीतल हो जाता है। 3. **गुरु...अलाए**=गुरु का सुमिरन करे; **पंथि**=राह, रास्ता। 4. **किरमाइणा**=कीट पर, कीड़े पर।

महा अनंद भए सुखु पाइआ संतन कै परसादे॥
कहु नानक हरि सिउ मनु मानिआ रंगि रते बिसमादे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 614

बाणी गुरु तेग़ बहादुर जी

धनासरी महला 9

अब मै कउनु उपाउ करउ॥
जिह बिधि मन को संसा चूकै भउ निधि पारि परउ॥ रहाउ॥[1]
जनमु पाइ कछु भलो न कीनो ता ते अधिक डरउ॥
मन बच क्रम हरि गुन नही गाए यह जीअ सोच धरउ॥
गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिओ पसु जिउ उदरु भरउ॥
कहु नानक प्रभ बिरदु पछानउ तब हउ पतित तरउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 685

सोरठि महला 9

इह जगि मीतु न देखिओ कोई॥
सगल जगतु अपनै सुखि लागिओ दुख मै संगि न होई॥ रहाउ॥
दारा मीत पूत सनबंधी सगरे धन सिउ लागे॥
जब ही निरधन देखिओ नर कउ संगु छाडि सभ भागे॥
कहंउ कहा यिआ मन बउरे कउ इन सिउ नेहु लगाइओ॥[2]
दीना नाथ सकल भै भंजन जसु ता को बिसराइओ॥
सुआन पूछ जिउ भइओ न सूधउ बहुतु जतनु मै कीनउ॥[3]
नानक लाज बिरद की राखहु नामु तुहारउ लीनउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 633

1. **भउ निधि**=भवसागर। 2. **यिआ**=इस। 3. **सुआन...कीनउ**=जिस तरह लाखों यत्न करने पर भी कुत्ते की पूँछ सीधी नहीं होती, उसी तरह अनेक यत्न करने पर भी मेरा मन वश में नहीं आता।

रागु सारंग महला 9

कहा मन बिखिआ सिउ लपटाही॥
या जग महि कोऊ रहनु न पावै इकि आवहि इकि जाही॥ रहाउ॥
कां को तनु धनु संपति कां की का सिउ नेहु लगाही॥
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाही॥[1]
तजि अभिमानु सरणि संतन गहु मुकति होहि छिन माही॥
जन नानक भगवंत भजन बिनु सुखु सुपनै भी नाही॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1231

धनासरी महला 9

काहे रे बन खोजन जाई॥
सरब निवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई॥ रहाउ॥
पुहप मधि जिउ बासु बसतु है मुकर माहि जैसे छाई॥[2]
तैसे ही हरि बसे निरंतरि घट ही खोजहु भाई॥
बाहरि भीतरि एको जानहु इहु गुर गिआनु बताई॥
जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 684

रागु देवगंधारी महला 9

जगत मै झूठी देखी प्रीति॥
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत॥ रहाउ॥[3]
मेरउ मेरउ सभै कहत है हित सिउ बाधिओ चीत॥
अंति कालि संगी नह कोऊ इह अचरज है रीति॥

---

1. **बादर**=बादल। 2. **पुहप**=फूल; **मुकर**=आईना, दर्पण; **पुहप...छाई**=जिस तरह फूल में सुगन्धि और आईने में परछाईं होती है। 3. **दारा**=स्त्री।

मन मूरख अजहू नह समझत सिख दै हारिओ नीत॥[1]
नानक भउजलु पारि परै जउ गावै प्रभ के गीत॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 536

सोरठि महला 9

जो नरु दुख मै दुखु नही मानै॥
सुख सनेहु अरु भै नही जा कै कंचन माटी मानै॥ रहाउ॥[2]
नह निंदिआ नह उसतति जा कै लोभु मोहु अभिमाना॥
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना॥
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा॥
कामु क्रोधु जिह परसै नाहनि तिह घटि ब्रहमु निवासा॥
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 633

रागु गउड़ी महला 9

नर अचेत पाप ते डरु रे॥
दीन दइआल सगल भै भंजन सरनि ताहि तुम परु रे॥ रहाउ॥
बेद पुरान जास गुन गावत ता को नामु हीऐ मो धरु रे॥[3]
पावन नामु जगति मै हरि को सिमरि सिमरि कसमल सभ हरु रे॥[4]
मानस देह बहुरि नह पावै कछू उपाउ मुकति का करु रे॥
नानक कहत गाइ करुना मै भव सागर कै पारि उतरु रे॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 220

---

1. **नीत**=नित्य, हमेशा। 2. **कंचन...मानै**=सोने को मिट्टी के समान समझता है। 3. **हीऐ मो**=हृदय में। 4. **कसमल**=कालिख, पापों की मैल। 5. **करुना मै**=करुणामय, दयालु प्रभु।

सोरठि महला 9

प्रीतम जानि लेहु मन माही॥
अपने सुख सिउ ही जगु फांधिओ को काहू को नाही॥ रहाउ॥[1]
सुख मै आनि बहुतु मिलि बैठत रहत चहू दिसि घैरै॥
बिपति परी सभ ही संगु छाडित कोऊ न आवत नैरै॥
घर की नारि बहुतु हितु जा सिउ सदा रहत संग लागी॥[2]
जब ही हंस तजी इह कांइआ प्रेत प्रेत करि भागी॥
इह बिधि को बिउहारु बनिओ है जा सिउ नेहु लगाइओ॥
अंत बार नानक बिनु हरि जी कोऊ कामि न आइओ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 634

रागु जैजावंती महला 9

बीत जैहै बीत जैहै जनमु अकाजु रे॥
निसि दिनु सुनि कै पुरान समझत नह रे अजान॥
कालु तउ पहूचिओ आनि कहा जैहै भाजि रे॥ रहाउ॥
असथिरु जो मानिओ देह सो तउ तेरउ होइ है खेह॥[3]
किउ न हरि को नामु लेहि मूरख निलाज रे॥[4]
राम भगति हीए आनि छाडि दे तै मन को मानु॥
नानक जन इह बखानि जग महि बिराजु रे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1352

रागु गउड़ी महला 9

मन रे कहा भइओ तै बउरा॥
अहिनिसि अउध घटै नही जानै भइओ लोभ संगि हउरा॥ रहाउ॥[5]
जो तनु तै अपनो करि मानिओ अरु सुंदर ग्रिह नारी॥

---

1. **को...नाही**=कोई किसी का नहीं है। 2. **हितु**=प्यार। 3. **असथिरु**=स्थिर; **खेह**=मिट्टी। 4. **निलाज**=निर्लज्ज। 5. **हउरा**=तुच्छ।

इन मैं कछु तेरो रे नाहनि देखो सोच बिचारी॥
रतन जनमु अपनो तै हारिओ गोबिंद गति नही जानी॥
निमख न लीन भइओ चरनन सिंउ बिरथा अउध सिरानी॥[1]
कहु नानक सोई नरु सुखीआ राम नाम गुन गावै॥
अउर सगल जगु माइआ मोहिआ निरभै पदु नही पावै॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 220

सोरठि महला 9

माई मनु मेरो बसि नाहि॥
निस बासुर बिखिअन कउ धावत किहि बिधि रोकउ ताहि॥ रहाउ॥
बेद पुरान सिम्रिति के मत सुनि निमख न हीए बसावै॥
पर धन पर दारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै॥[3]
मदि माइआ कै भइओ बावरो सूझत नह कछु गिआना॥[4]
घट ही भीतरि बसत निरंजनु ता को मरमु न जाना॥[5]
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल बिनासी॥
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फासी॥[6]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 632

रागु जैजावंती महला 9

रामु सिमरि रामु सिमरि इहै तैरै काजि है॥
माइआ को संगु तिआगु प्रभ जू की सरनि लागु॥
जगत सुख मानु मिथिआ झूठो सभ साजु है॥ रहाउ॥
सुपने जिउ धनु पछानु काहे परि करत मानु॥
बारू की भीति जैसे बसुधा को राजु है॥[7]

1. **बिरथा...सिरानी**=आयु व्यर्थ गुज़र गयी। 2. **निरभै पदु**=निर्वाण पद। 3. **पर दारा**=परायी स्त्री; **बिरथा...सिरावै**=जन्म व्यर्थ गँवा देता है। 4. **मदि...कै**=माया के नशे में। 5. **मरमु**=मर्म, भेद। 6. **चिंतामनि**=सब कामनाओं को पूरा करने वाला प्रभु। 7. **बारू...भीति**=रेत की दीवार; **बसुधा**=धरती; **बारू...है**=सारी धरती का राज्य भी रेत की दीवार के समान है।

नानकु जनु कहतु बात बिनसि जैहै तेरो गातु॥[1]
छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1352

रागु गउड़ी महला 9

साधो इहु मनु गहिओ न जाई॥
चंचल त्रिसना संगि बसतु है या ते थिरु न रहाई॥ रहाउ॥
कठन करोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई॥
रतनु गिआनु सभ को हिरि लीना ता सिउ कछु न बसाई॥[2]
जोगी जतन करत सभि हारे गुनी रहे गुन गाई॥
जन नानक हरि भए दइआला तउ सभ बिधि बनि आई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 219

रागु रामकली महला 9 तिपदे

साधो कउन जुगति अब कीजै॥
जा ते दुरमति सगल बिनासै राम भगति मनु भीजै॥ रहाउ॥
मनु माइआ महि उरझि रहिओ है बूझै नह कछु गिआना॥
कउनु नामु जगु जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना॥[3]
भए दइआल क्रिपाल संत जन तब इह बात बताई॥
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ कीरति गाई॥[4]
राम नामु नरु निसि बासुर महि निमख एक उरि धारै॥[5]
जम को त्रासु मिटै नानक तिह अपुनो जनमु सवारै॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 902

---

1. **गातु**=शरीर। 2. **रतनु...बसाई**=इसने ज्ञान रूपी रत्न चुरा लिया है, मेरा इस पर कोई वश नहीं चलता। 3. **पदु निरबाना**=निर्वाण पद, मुक्ति। 4. **सरब...गाई**=जिसने प्रभु का यशोगान कर लिया, उसने मानो सारे कर्म-धर्म कर लिये। 5. **निसि**=निशा, रात; **बासुर**=दिन।

रागु गउड़ी महला 9

साधो गोबिंद के गुन गावउ॥
मानस जनमु अमोलकु पाइओ बिरथा काहि गवावउ॥ रहाउ॥
पतित पुनीत दीन बंध हरि सरनि ताहि तुम आवउ॥
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमरत तुम काहे बिसरावउ॥[1]
तजि अभिमान मोह माइआ फुनि भजन राम चितु लावउ॥[2]
नानक कहत मुकति पंथ इहु गुरमुखि होइ तुम पावउ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 219

रागु गउड़ी महला 9

साधो मन का मानु तिआगउ॥
कामु क्रोधु संगति दुरजन की ता ते अहिनिसि भागउ॥ रहाउ॥
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै अउरु मानु अपमाना॥
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि ततु पछाना॥[3]
उसतति निंदा दोऊ तिआगै खोजै पदु निरबाना॥
जन नानक इहु खेलु कठनु है किनहूं गुरमुखि जाना॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 219

रागु बिलावलु महला 9 दुपदे

हरि के नाम बिना दुखु पावै॥
भगति बिना सहसा नह चूकै गुरु इहु भेदु बतावै॥ रहाउ॥
कहा भइओ तीरथ ब्रत कीए राम सरनि नही आवै॥
जोग जग निहफल तिह मानउ जो प्रभ जसु बिसरावै॥

---

1. **गज...त्रासु**=हाथी का कष्ट—भागवत में दर्ज एक कथा के अनुसार एक हाथी (एक गन्धर्व जो श्राप के कारण हाथी बन गया था) को एक तेंदुए ने जकड़ लिया। परमात्मा के नाम का सुमिरन करने से हाथी तेंदुए की पकड़ से आज़ाद हो गया था। 2. **फुनि**=फिर, उसके बाद। 3. **अतीता**=निर्लेप।

मान मोह दोनो कउ परहरि गोबिंद के गुन गावै ॥[1]
कहु नानक इह बिधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 830

जैतसरी महला 9

हरि जू राखि लेहु पति मेरी ॥
जम को त्रास भइओ उर अंतरि सरनि गही किरपा निधि तेरी ॥ रहाउ ॥
महा पतित मुगध लोभी फुनि करत पाप अब हारा ॥
भै मरबे को बिसरत नाहिन तिह चिंता तनु जारा ॥[2]
कीए उपाव मुकति के कारनि दह दिसि कउ उठि धाइआ ॥[3]
घट ही भीतरि बसै निरंजनु ता को मरमु न पाइआ ॥
नाहिन गुनु नाहिन कछु जपु तपु कउनु करमु अब कीजै ॥
नानक हारि परिओ सरनागति अभै दानु प्रभ दीजै ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 703

सलोक महला 9

गुन गोबिंद गाइओ नही जनमु अकारथ कीनु ॥
कहु नानक हरि भजु मना जिह बिधि जल कउ मीनु ॥ 1 ॥
बिखिअन सिउ काहे रचिओ निमख न होहि उदासु ॥
कहु नानक भजु हरि मना परै न जम की फास ॥ 2 ॥
तरनापो इउ ही गइओ लीओ जरा तनु जीति ॥
कहु नानक भजु हरि मना अउध जातु है बीति ॥ 3 ॥
बिरधि भइओ सूझै नही कालु पहूचिओ आनि ॥
कहु नानक नर बावरे किउ न भजै भगवानु ॥ 4 ॥
धनु दारा संपति सगल जिनि अपुनी करि मानि ॥
इन मै कछु संगी नही नानक साची जानि ॥ 5 ॥

---

1. **परहरि**=त्यागकर। 2. **भै...को**=मौत का डर। 3. **दह दिसि**=दस दिशाएँ।

पतित उधारन भै हरन हरि अनाथ के नाथ॥
कहु नानक तिह जानीऐ सदा बसतु तुम साथि॥6॥
तनु धनु जिह तो कउ दीओ तां सिउ नेहु न कीन॥
कहु नानक नर बावरे अब किउ डोलत दीन॥7॥
तनु धनु संपै सुख दीओ अरु जिह नीके धाम॥[1]
कहु नानक सुनु रे मना सिमरत काहि न रामु॥8॥
सभ सुख दाता रामु है दूसर नाहिन कोइ॥
कहु नानक सुनि रे मना तिह सिमरत गति होइ॥9॥
जिह सिमरत गति पाईऐ तिह भजु रे तै मीत॥
कहु नानक सुनु रे मना अउध घटत है नीत॥10॥
पांच तत को तनु रचिओ जानहु चतुर सुजान॥
जिह ते उपजिओ नानका लीन ताहि मै मानु॥11॥
घट घट मै हरि जू बसै संतन कहिओ पुकारि॥
कहु नानक तिह भजु मना भउ निधि उतरहि पारि॥12॥
सुखु दुखु जिह परसै नही लोभु मोहु अभिमानु॥
कहु नानक सुनु रे मना सो मूरति भगवान॥13॥
उसतति निंदिआ नाहि जिहि कंचन लोह समानि॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि॥14॥
हरखु सोगु जा कै नही बैरी मीत समानि॥
कहु नानक सुनि रे मना मुकति ताहि तै जानि॥15॥
भै काहू कउ देत नहि नहि भै मानत आन॥
कहु नानक सुनि रे मना गिआनी ताहि बखानि॥16॥
जिहि बिखिआ सगली तजी लीओ भेख बैराग॥
कहु नानक सुनु रे मना तिह नर माथै भागु॥17॥
जिहि माइआ ममता तजी सभ ते भइओ उदासु॥
कहु नानक सुनु रे मना तिह घटि ब्रहम निवासु॥18॥

---

1. **नीके धाम**=उत्तम स्थान, उत्तम घर।

जिहि प्रानी हउमै तजी करता रामु पछानि॥
कहु नानक वहु मुकति नरु इह मन साची मानु॥ 19॥
भै नासन दुरमति हरन कलि मै हरि को नामु॥
निसि दिनु जो नानक भजै सफल होहि तिह काम॥ 20॥
जिहबा गुन गोबिंद भजहु करन सुनहु हरि नामु॥
कहु नानक सुनि रे मना परहि न जम कै धाम॥ 21॥
जो प्रानी ममता तजै लोभ मोह अहंकार॥
कहु नानक आपन तरै अउरन लेत उधार॥ 22॥
जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कउ जानि॥
इन मै कछु साचो नही नानक बिनु भगवान॥ 23॥
निसि दिनु माइआ कारने प्रानी डोलत नीत॥
कोटन मै नानक कोऊ नाराइनु जिह चीति॥ 24॥
जैसे जल ते बुदबुदा उपजै बिनसै नीत॥
जग रचना तैसे रची कहु नानक सुनि मीत॥ 25॥
प्रानी कछू न चेतई मदि माइआ कै अंधु॥
कहु नानक बिनु हरि भजन परत ताहि जम फंध॥ 26॥
जउ सुख कउ चाहै सदा सरनि राम की लेह॥
कहु नानक सुनि रे मना दुरलभ मानुख देह॥ 27॥
माइआ कारनि धावही मूरख लोग अजान॥
कहु नानक बिनु हरि भजन बिरथा जनमु सिरान॥ 28॥
जो प्रानी निसि दिनु भजै रूप राम तिह जानु॥
हरि जन हरि अंतरु नही नानक साची मानु॥ 29॥
मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु॥
कहु नानक बिनु हरि भजन जीवन कउने काम॥ 30॥
प्रानी रामु न चेतई मदि माइआ कै अंधु॥
कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंध॥ 31॥
सुख मै बहु संगी भए दुख मै संगि न कोइ॥
कहु नानक हरि भजु मना अंति सहाई होइ॥ 32॥

जनम जनम भरमत फिरिओ मिटिओ न जम को त्रासु ॥
कहु नानक हरि भजु मना निरभै पावहि बासु ॥ 33 ॥
जतन बहुतु मै करि रहिओ मिटिओ न मन को मानु ॥
दुरमति सिउ नानक फधिओ राखि लेहु भगवान ॥ 34 ॥
बाल जुआनी अरु बिरधि फुनि तीनि अवसथा जानि ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु बिरथा सभ ही मानु ॥ 35 ॥
करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध ॥
नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध ॥ 36 ॥[1]
मनु माइआ मै रमि रहिओ निकसत नाहिन मीत ॥
नानक मूरति चित्र जिउ छाडित नाहिन भीति ॥ 37 ॥
नर चाहत कछु अउर अउरै की अउरै भई ॥
चितवत रहिओ ठगउर नानक फासी गलि परी ॥ 38 ॥
जतन बहुत सुख के कीए दुख को कीओ न कोइ ॥
कहु नानक सुनि रे मना हरि भावै सो होइ ॥ 39 ॥
जगतु भिखारी फिरतु है सभ को दाता रामु ॥
कहु नानक मन सिमरु तिह पूरन होवहि काम ॥ 40 ॥
झूठै मानु कहा करै जगु सुपने जिउ जानु ॥
इन मै कछु तेरो नही नानक कहिओ बखानि ॥ 41 ॥
गरबु करतु है देह को बिनसै छिन मै मीत ॥
जिहि प्रानी हरि जसु कहिओ नानक तिहि जगु जीति ॥ 42 ॥
जिह घटि सिमरनु राम को सो नरु मुकता जानु ॥
तिहि नर हरि अंतरु नही नानक साची मानु ॥ 43 ॥
एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मनि ॥
जैसे सूकर सुआन नानक मानो ताहि तनु ॥ 44 ॥
सुआमी को ग्रिहु जिउ सदा सुआन तजत नही नित ॥
नानक इह बिधि हरि भजउ इक मनि हुइ इक चिति ॥ 45 ॥

---

1. **समिओ...गइओ**=समय बीत गया।

तीरथ बरत अरु दान करि मन मै धरै गुमानु॥
नानक निहफल जात तिह जिउ कुंचर इसनानु॥ 46 ॥[1]
सिरु कंपिओ पग डगमगे नैन जोति ते हीन॥
कहु नानक इह बिधि भई तऊ न हरि रसि लीन॥ 47 ॥
निज करि देखिओ जगतु मै को काहू को नाहि॥
नानक थिरु हरि भगति है तिह राखो मन माहि॥ 48 ॥
जग रचना सभ झूठ है जानि लेहु रे मीत॥
कहि नानक थिरु ना रहै जिउ बालू की भीति॥ 49 ॥
रामु गइओ रावनु गइओ जा कउ बहु परवारु॥
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसारु॥ 50 ॥
चिंता ता की कीजीऐ जो अनहोनी होइ॥
इहु मारगु संसार को नानक थिरु नही कोइ॥ 51 ॥
जो उपजिओ सो बिनसि है परो आजु कै कालि॥
नानक हरि गुन गाइ ले छाडि सगल जंजाल॥ 52 ॥
बलु छुटकिओ बंधन परे कछू न होत उपाइ॥
कहु नानक अब ओट हरि गज जिउ होहु सहाइ॥ 53 ॥
बलु होआ बंधन छुटे सभु किछु होत उपाइ॥
नानक सभु किछु तुमरै हाथ मै तुम ही होत सहाइ॥ 54 ॥
संग सखा सभि तजि गए कोऊ न निबहिओ साथि॥
कहु नानक इह बिपति मै टेक एक रघुनाथ॥ 55 ॥
नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुरु गोबिंदु॥
कहु नानक इह जगत मै किन जपिओ गुर मंतु॥ 56 ॥
राम नामु उर मै गहिओ जा कै सम नही कोइ॥
जिह सिमरत संकट मिटै दरसु तुहारो होइ॥ 57 ॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1426-29

---

1. **कुंचर**=हाथी।

बानी कबीर साहिब जी

[1]

अजर अमर इक नाम है, सुमिरन जो आवै॥
बिन मुखड़ा से जप करो, नहिं जीभ डुलावो॥
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसावो॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो॥
तिरबेनी के घाट पर, हंसा नहवावो॥
पानी पवन की गम नहीं, वोहि लोक मँझारा॥
ताही बिच इक रूप है, वोहि ध्यान लगावो॥
जिमीं असमान उहाँ नहीं, वो अजर कहावै॥
कहै कबीर सोइ साधु जन, वा लोक मँझावै॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 3, पृ. 9

[2]

अवधू बेगम देस हमारा॥
राजा रंक फकीर बादसा, सब से कहौं पुकारा॥
जो तुम चाहत अहौ परम पद, बसिहो देस हमारा॥
जो तुम आये झीने होइ के, तजो मनी को भारा॥
ऐसी रहनि रहो रे गोरख, सहज उतरि जाव पारा॥
सत्तनाम की हैं महताबैं, साहेब के दरबारा॥
बचना चाहो कठिन काल से, गहो शब्द टकसारा॥
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, सत्तनाम है सारा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 60

[3]

अवधू सो जोगी गुरु मेरा, या पद का करै निबेरा॥
तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागे॥
साखा पत्र नहीं कछु वा के, अष्ट कमल दल गाजे॥
चढ़ तरवर दो पंछी बैठे, एक गुरू इक चेला॥
चेला रहा सो चुन चुन खाया, गुरू निरन्तर खेला॥
बिन करताल पखावज बाजै, बिन रसना गुन गावै॥
गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै॥
गगन मँडल में उर्ध मुख कुइयाँ, जहाँ अमी को बासा॥
सगुरा होय सो भर भर पीवै, निगुरा जाय पियासा॥
सुन्न सिखर पर गइया बियानी, धरती छीर जमाया॥
माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जगत भरमाया॥
पंछी को खोज मीन को मारग, कहैं कबीर दोउ भारी॥
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, मूरत की बलिहारी॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 70

[4]

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सँतोष छिमा सत धारो॥
मद्द मांस मिथ्या तजि डारो, हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है॥ 1॥
धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पदम जुगत से लाओ॥
कुम्भक कर रेचक करवाओ, पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है॥ 2॥
मूल कँवल दल चतुर बखानो, कलिंग जाप लाल रँग मानो॥
देव गनेस तहँ रोपा थानो, ऋध सिध चँवर ढुलारा है॥ 3॥
स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म सावित्री रूप निहारो॥
उलटि नागिनी का सिर मारो, तहाँ सब्द ओंकारा है॥ 4॥
नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा॥
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा, लछमी सिव आधारा है॥ 5॥

द्वादस कँवल हृदय के माहीं, जंग गौर सिव ध्यान लगाई॥
सोहं सब्द तहाँ धुन छाई, गन करैं जैजैकारा है॥6॥
षोडस दल कँवल कंठ के माहीं, तेहि मध बसे अबिद्या बाई॥
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई, जहँ श्रिंग नाम उचारा है॥7॥
ता पर कंज कँवल है भाई, बग भौंरा दुइ रूप लखाई॥
निज मन करत तहाँ ठकुराई, सो नैनन पिछवारा है॥8॥
कँवलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा॥
सतसँग कर सतगुरु सिर धारा, वह सत नाम उचारा है॥9॥
आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ॥
दोनों तिल इक तार मिलाओ, तब देखो गुलजारा है॥10॥
चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ॥
तिरबेनी के संध समाओ, भोर उतर चल पारा है॥11॥
घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई॥
ता मध करता निरखो सोई, बंकनाल धस पारा है॥12॥
डाकिनी साकिनी बहु किलकारें, जम किंकर धर्म दूत हकारें॥
सत्तनाम सुन भागें सारे, जब सतगुरु नाम उचारा है॥13॥
गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइआ, गुरुमुख साधू भर भर पीया॥
निगुरे प्यास मरे बिन कीया, जा के हिये अँधियारा है॥14॥
त्रिकुटी महल में बिद्या सारा, घनहर गरजें बजे नगारा॥
लाल बरन सूरज उँजियारा, चतुर कँवल मँझार सब्द ओंकारा है॥15॥
साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा॥
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा, जहाँ कुलुफ रहा मारा है॥16॥[1]
आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई॥
हंसन मिलि हंसा होइ जाई, मिलै जो अमी अहारा है॥17॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा॥
द्वादस भानु हंस उँजियारा, खट दल कँवल मँझार सब्द रंकारा है॥18॥

---

1. **कुलुफ**=ताला।

महा सुन्न सिंध विषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिं बाटी॥
ब्याघर सिंघ सरप बहु काटी, तहँ सहज अचिंत पसारा है॥ 19॥
अष्ट दल कँवल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई॥
बायें दस दल सहज समाई, यों कँवलन निरवारा है॥ 20॥
पाँच ब्रह्म पाँचों अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हो॥
चार मुकाम गुप्त तहँ कीन्हो, जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है॥ 21॥
दो पर्बत के संध निहारो, भंवर गुफा तें संत पुकारो॥
हंसा करते केल अपारो, तहाँ गुरन दरबारा है॥ 22॥
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये॥
मुरली बजत अखंड सदाये, तहँ सोहं झनकारा है॥ 23॥
सोहं हद्द तजी जब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई॥
उठत सुगंध महा अधिकाई, जा को वार न पारा है॥ 24॥
षोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा॥
हंसा करत चँवर सिर भूपा, सत्त पुरुष दर्बारा है॥ 25॥
कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई॥
पुरुष रोम सम एक न होई, ऐसा पुरुष दीदारा है॥ 26॥
आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई॥
अरबन सूर रोम सम नाहीं, ऐसा अलख निहारा है॥ 27॥
ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहि को राजा॥
खरबन सूर रोम इक लाजा, ऐसा अगम अपारा है॥ 28॥
ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई॥
जो पहुँचा जानेगा वाही, कहन सुनन तें न्यारा है॥ 29॥
काया भेद किया निर्बारा, यह सब रचना पिंड मँझारा॥
माया अवगति जाल पसारा, सो कारीगर भारा है॥ 30॥
आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई॥
अवगति रचन रची अँड माहीं, ता का प्रतिबिंब डारा है॥ 31॥
सब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दइ तारी॥
खुले कपाट सब्द झनकारी, पिंड अंड के पार सो देस हमारा है॥ 32॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 65-67

[5]

करम गति टारे नाहिं टरी॥ टेक॥

मुनि बसिष्ट से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी॥
सीता हरन मरन दसरथ को, वन में बिपति परी॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारिध, कहँ वह मिरग चरी॥
सीता को हरि ले गयो रावन, सोने की लंका जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने, बलि पाताल धरी॥
कोटि गाय नित पुन्न करत नग, गिरगिट जोनि परी॥
पाँडव जिन के आपु सारथी, तिन पर बिपति परी॥
दुरजोधन को गर्ब घटायो, जदु कुल नास करी॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा, बिधि संजोग परी॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, होनी होके रही॥

— कबीर साहिब की शब्दावली भाग 1, पृ. 55

[6]

करो जतन सखी साँईं मिलन की॥ टेक॥

गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तज दे बुधि लरिकैयाँ खेलन की॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की॥
ऊँचा महल अजब रँग बँगला, साँईं की सेज वहाँ लगी फूलन की॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहँ, सुरत सम्हार परु पइयाँ सजन की॥
कहैं कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बता देऊँ ताला खुलन की॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 25

[7]

करो रे मन वा दिन की तदबीर॥

जब जमराजा आनि पड़ैंगे, नेक धरत नहिं धीर॥
मुँगरिन मारि के प्रान निकासत, नैनन भरि आयो नीर॥
भौसागर इक अगम पंथ है, नदिया बहत गँभीर॥
नाव न बेड़ा लोग घनेरा, खेवट है बेपीर॥

घर तिरिया अरधंगी बैठी, मातु पिता सुत बीर॥
माल मुलुक की कौन चलावै, संग न जात सरीर॥
लै कै बोरत नरक कुण्ड में, ब्याकुल होत सरीर॥
कहत कबीर नर अब से चेतो, माफ होय तकसीर॥[1]

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 37

[8]

क्या माँगौं कछु थिर न रहाई, देखत नैन चल्यो जग जाई॥
इक लख पूत सवा लख नाती, जा रावन घर दिया न बाती॥
लंका सा कोट समुद्र सी खाई, जा रावन की खबर न पाई॥
सोने कै महल रूपे कै छाजा, छोड़ि चले नगरी के राजा॥
कोइ करै महल कोई करै टाटी, उड़ि जाय हंस पड़ी रहै माटी॥
आवत संग न जात सँगाती, कहा भये दल बाँधे हाथी॥
कहैं कबीर अंत की बारी, हाथ झारि ज्यों चला जुवारी॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 45

[9]

गुर सेवा ते भगति कमाई॥ तब इह मानस देही पाई॥
इस देही कउ सिमरहि देव॥ सो देही भजु हरि की सेव॥
भजहु गुोबिंद भूलि मत जाहु॥ मानस जनम का एही लाहु॥[2]
जब लगु जरा रोगु नही आइआ॥ जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ॥
जब लगु बिकल भई नही बानी॥ भजि लेहि रे मन सारिगपानी॥[3]
अब न भजसि भजसि कब भाई॥ आवै अंतु न भजिआ जाई॥
जो किछु करहि सोई अब सारु॥ फिरि पछुताहु न पावहु पारु॥
सो सेवकु जो लाइआ सेव॥ तिन ही पाए निरंजन देव॥
गुर मिलि ता के खुल्हे कपाट॥ बहुरि न आवै जोनी बाट॥

---

1. **तकसीर**=ग़लती। 2. **गुोबिंद**=गोबिंद। 3. **सारिगपानी**=परमात्मा।

इही तेरा अउसरु इह तेरी बार॥ घट भीतरि तू देखु बिचारि॥
कहत कबीरु जीति कै हारि॥ बहु बिधि कहिओ पुकारि पुकारि॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1159

[10]

गुरु से लगन कठिन है भाई।
लगन लगे बिन काज न सरिहै, जीव प्रलय होइ जाई॥
जैसे पपिहा प्यासा बुंद का, पिया पिया रटि लाई।
प्यासे प्रान तलफ दिन राती, और नीर ना भाई॥[1]
जैसे मिरगा सब्द सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै औ प्रान दान दे, तनिको नाहिं डेराई॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, पिय की राह मन भाई।
पावक देख डरे वह नाहीं, हँसत बैठ सरा माईं॥
दो दल सन्मुख आन जुड़े हैं, सूरा लेत लड़ाई।
टूक टूक होइ गिरे धरनि पर, खेत छोड़ि नहिं जाई॥
छोड़ो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जनम नसाई॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 50

[11]

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सब का किया बिबेका हो॥
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
सुकदेव अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
आसा तृस्ना सब को ब्यापै, कोई महल न सूना हो॥

---

1. **तलफ**=तड़पता है।

साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो।
कहैं कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 34

[12]

बिरह और प्रेम

चौपाई

दरसन दीजे नाम सनेही। तुम बिन दुख पावे मेरी देही॥

छंद

दुखित तुम बिन रटत निसि दिन, प्रगट दरसन दीजिये।
बिनती सुन प्रिय स्वामियाँ बलि जाउँ बिलँब न कीजिये॥

चौपाई

अन्न न भावे नींद न आवे। बार बार मोहिं बिरह सतावे॥

छंद

बिबिध बिध हम भई ब्याकुल, बिन देखे जिव न रहे।
तपत तन जिव उठत झाला, कठिन दुख अब को सहे॥

चौपाई

नैनन चलत सजल जलधारा। निसि दिन पंथ निहारौं तुम्हारा॥

छंद

गुन अवगुन अपराध छिमाकर, औगुन कछु न बिचारिये।
पतित-पावन राख परमति, अपना पन न बिसारिये॥

चौपाई

गृह आँगन मोहिं कछु न सोहाई। बज्र भई और फिरयो न जाई॥

छंद

नैन भरि भरि रहे निरखत, निमिख नेह न तोड़ाइये।
बाँह दीजे बंदी छोड़ा, अब के बंद छोड़ाइये॥

चौपाई

मीन मरै जैसे बिन नीरा। ऐसे तुम बिन दुखित सरीरा॥

छंद

दास कबीर यह करत बिनती, महा पुरुष अब मानिये।
दया कीजे दरस दीजे, अपना कर मोहिं जानिये॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 6

[13]

पी ले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम अमी रस का रे॥
बालपना सब खेलि गँवाया, तरुन भया नारी बस का रे॥
बिरध भया कफ बाय ने घेरा, खाट पड़ा न जाय खिसका रे॥
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरै बन का रे॥
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तन का रे॥
मातु पिता बंधू सुत तिरिया, संग नहीं कोइ जाय सका रे॥
जब लग जीवै गुरु गुन गा ले, धन जोबन है दिन दस का रे॥
चौरासी जो उबरा चाहै, छोड़ कामिनी का चसका रे॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, नख सिख पूर रहा बिष का रे॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 45

[14]

प्रीत लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं॥
नजर करो अब मिहर की, मोहि मिलो गुसाइई॥
बिरह सतावै मोहिं को, जिव तड़पै मेरा॥
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिलो सवेरा॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागै॥
दर्दवंत दीदार का, निसि बासर जागै॥
जो अब के प्रीतम मिलै, करूँ निमिष न न्यारा॥[1]
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2, पृ. 64

[15]

भक्ती का मारग झीना रे॥
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौलीना रे॥
साध के सतसंग में रहे निस दिन मन भीना रे॥
सब्द में सुर्त ऐसे बसे जैसे जल मीना रे॥
मान मनी को यों तजे जस तेली पीना रे॥
दया छिमा संतोष गहि रहे अति आधीना रे॥
परमारथ में देत सिर कछु बिलंब न कीना रे॥
कहैं कबीर मत भक्ति का परगट कह दीना रे॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 13

[16]

मन फूला फूला फिरै जगत में कैसा नाता रे॥
माता कहे यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर मेरा॥
भाई कहै यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा॥
पेट पकरि के माता रोवै, बाँहि पकरि के भाई॥

---

1. **निमिष**=क्षण-भर के लिए भी।

लपटि झपटि के तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई॥
जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवै दस मासा॥
तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेर करै घर बासा॥
चार गजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी॥
चारो कोने आग लगाया, फूँक दियो जस होरी॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को, केस जरै जस घासा॥
सोना ऐसी काया जरि गइ, कोई न आयो पासा॥
घर की तिरिया ढूँढन लागी, ढूँढि फिरी चहुँ देसा॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, छाड़ो जग की आसा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 26

[17]

मन लागो मेरो यार फकीरी में॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में॥
भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में॥
हाथ में कूँड़ी बगल में सोंटा, चारो दिसा जगीरी में॥
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिलै सबूरी में॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 15

[18]

महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा॥
बेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा।
जात बरन कुल किरिया नाहीं, संध्या नेम अचारा॥
बिन जल बूँद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।
सुन्न महल में नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा॥

जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसैं, आगे अगम अपारा।
कहैं कबीर वहँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 59

[19]

मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे॥
बार बार मैं कहि समझावौं, जग में जीवन थोरा रे॥
या काया कौ गर्ब न कीजै, क्या साँवर क्या गोरा रे॥
बिना भक्ति तन काम न आवै, कोटि सुगंधि चभोरा रे॥
या माया जानि देख रे भूलौ, क्या हाथी क्या घोड़ा रे॥
जोरि जोरि धन बहुत बिगूचे, लाखन कोटि करोरा रे॥
दुबिधा दुरमति औ चतुराई, जनम गयौ नर बौरा रे॥
अजहूँ आनि मिलौ सत संगति, सतगुरु मान निहोरा रे॥
लेत उठाई परत भुइँ गिरि गिरि, ज्यों बालक बिन कोराँ रे॥[1]
कहैं कबीर चरन चित राखो, ज्यों सूई बिच डोरा रे॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 48

[20]

रहना नहिं देस बिराना है॥ टेक॥
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है॥
यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 38

---

1. **कोराँ**=माता की गोद।

[21]

वा दिन की कछु सुध कर मन माँ॥
जा दिन लैचलु लैचलु होई, ता दिन सँग चलै नहिं कोई॥
तात मात सुत नारी रोई, माटी के सँग दिये समोई॥
सो माटी काटेगी तन माँ॥
उलफत नेहा कुलफत नारी, किसकी बीबी किसकी बाँदी॥[1]
किसका सोना किसकी चाँदी, जा दिन जम ले चलि है बाँधी॥
डेरा जाय परै वहि बन माँ॥
टाँड़ा तुमने लादा भारी, बनिज किया पूरा ब्यौपारी॥
जूवा खेला पूँजी हारी, अब चलने की भई तयारी॥
हित चित मत तुम लाओ धन माँ॥
जो कोइ गुरु से नेह लगाई, बहुत भाँति सोई सुख पाई॥
माटी में काया मिलि जाई, कहैं कबीर आगे गोहराई॥
साँच नाम साहेब को सँग माँ॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 23

[22]

सतगुरु है रंगरेज, चुनर मेरी रंगि डारी॥
स्याही रंग छुड़ाइ के रे, दियो मजीठा रंग॥
धोये से छूटै नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
भाव के कुंड नेह के जल में, प्रेम रंग दइ बोर॥
चसकी चास लगाइ के रे, खूब रंगी झकझोर॥
सतगुरु ने चुनरी रँगी रे, सतगुरु चतुर सुजान॥
सब कुछ उन पर वार दूं रे, तन मन धन औ प्रान॥
कहै कबीर रंगरेज गुरु रे, मुझ पर हुए दयाल॥
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे, भइ हौं मगन निहाल॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2, पृ. 63

---

1. **नेहा**=प्रेम; **कुलफत**=दुःख, व्यथा।

[23]

साँईं बिन दरद करेजे होय॥
दिन नहिं चैन रात नहिं निदिया, कासे कहूँ दुख रोय॥
आधी रतियाँ पिछले पहरवाँ, साँईं बिन तरस तरस रही सोय॥
पाँचो मारि पचीसो बस करि, इन में चहै कोइ होय॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु मिले सुख होय॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 12

[24]

साधो सब्द साधना कीजै।
जेहिं सब्द तें प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै॥
सब्दहिं गुरू सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझै॥
सोई सिष्य सोइ गुरू महातम, जेहिं अंतर गति सूझै॥
सब्दै बेद पुरान कहत हैं, सब्दै सब ठहरावै॥
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैं, सब्द भेद नहिं पावै॥
सब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैं, सब्द कहै अनुरागी॥
षट दरसन सब सब्द कहत है, सब्द कहै बैरागी॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा॥
कहैं कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 4

[25]

सुनता नहीं धुन की खबर अनहद का बाजा बाजता॥
रसमंद मंदिर बाजता बाहर सुने तो क्या हुआ॥
गाँजा अफ़ीम और पोसता भाँग और सराबें पीवता॥
इक प्रेम रस चाखा नहीं अमली हुआ तो क्या हुआ॥
कासी गया और द्वारिका तीरथ सकल भरमत फिरै॥
गाँठी न खोली कपट की तीरथ गया तो क्या हुआ॥
पोथी किताबें बाँचता औरों को नित समुझावता॥

त्रिकुटी महल खोजै नहीं बक बक मरा तो क्या हुआ॥
काजी किताबें खोजता करता नसीहत और को॥
महरम नहीं उस हाल से काज़ी हुआ तो क्या हुआ॥
सतरंज चौपड़ गजिफा इक नर्द है बदरंग की॥
बाजी न लाई प्रेम की खेला जुआ तो क्या हुआ॥
जोगी दिगम्बर सेवड़ा कपड़ा रँगे रँग लाल से॥
वाकिफ़ नहीं उस रँग से कपड़ा रँगे से क्या हुआ॥
मंदिर झरोखे रावटी गुल चमन में रहते सदा॥
कहते कबीरा हैं सही घट घट में साहेब रम रहा॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 30-31

[26]

हमन हैं इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या॥
रहें आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते॥
हमारा यार है हम में, हमन को इंतिजारी क्या॥
ख़लक़ सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है॥
हमन गुर नाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या॥
न पल बिछुड़ें पिया हम से, न हम बिछुड़ें पियारे से॥
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेक़रारी क्या॥
कबीरा इश्क़ का माता, दुई को दूर कर दिल से॥
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 14

गुरुदेव का अंग

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृंग को, वह कर ले आप समान॥ 1॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु आँखि न देखया, सो गुरु दिया लखाय॥ 2॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात॥ 3॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार॥ 4॥[1]
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव॥ 5॥
कबीर गुरु गुरुआ मिला, रल गया आटे लोन।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन॥ 6॥
ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय।
जब साहिब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय॥ 7॥
गुरु साहिब करि जानिये, रहिये सबद समाय।
मिले तो दँडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय॥ 8॥
गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिं॥ 9॥
गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय॥ 10॥
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार॥ 11॥
लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
सबद तुरी असवार है, पल पल आवै जाय॥ 12॥

---

1. **लोचन...दिखावनहार**=सतगुरु ने अन्तर में वह दिव्य-चक्षु खोल दिया जिससे उस अगम्य प्रभु के दर्शन हो गये।

जो गुरु बसैं बनारसी, सिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन होय सरीर॥ 13॥
सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनराय।[1]
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय॥ 14॥[2]
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक्क।
बेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक्क॥ 15॥
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस॥ 16॥
सतनाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं॥ 17॥
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर॥ 18॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार॥ 19॥
तन मन ता को दीजिये, जा के विषया नाहिं।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिं॥ 20॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय॥ 21॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग॥ 22॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और॥ 23॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला देइ।
मन का मैल छुड़ाइं कै, चित दरपन करि लेइ॥ 24॥
सिष खांडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान।
सबद सहै सनमुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान॥ 25॥

1-2. **सब...जाय**=सारी धरती को काग़ज़, सारी वनस्पति को कलम और सात समुद्रों को स्याही बना लेने से भी गुरु की उपमा नहीं लिखी जा सकती।

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार॥ 26॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट॥ 27॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह॥ 28॥
गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटे गुरु भजे, तब पावै करतार॥ 29॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु चरन निवास॥ 30॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध॥ 31॥
गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि।
ते नर नरकै जाइँगे, जन्म जन्म ह्वै स्वान॥ 32॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥ 33॥
गुरु हैं बड़ गोबिन्द तें, मन में देखु बिचार।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार॥ 34॥
गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सबद बिहूना होय।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय॥ 35॥
अहं अगिन निसि दिन जरै, गुरु से चाहै मान।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान॥ 36॥
गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान॥ 37॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हा दान॥ 38॥
जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार॥ 39॥

गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास॥ 40॥
अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरु दया तें पावई, सुरत निरत करि देख॥ 41॥
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत सबद परमान॥ 42॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव॥ 43॥
कहै कबीर तजि भरम को, नन्हा ह्वै के पीव।
तेजि अहं गुरु चरन गहु, जम से बाचै जीव॥ 44॥
तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होइ॥ 45॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाइ॥ 46॥
गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहै कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय॥ 47॥
थापन पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
कबीर हीरा बनिजिया, मानसरोवर तीर॥ 48॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान॥ 49॥
निस्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर।
निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर॥ 50॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय।
अंतर भींजी आत्मा, हरो भयो बनराय॥ 51॥
सतगुरु के सदके किया, दिल अपने को साच।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम मेरा बाँच॥ 52॥
साचे गुरु की पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें नि:चल भया, नहिं आवै नहिं जाय॥ 53॥

भली भई जो गुरु मिलै, नातर होती हान।
दीपक जोति पतंग ज्यों, परता आय निदान॥ 54॥
भली भई जों गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
घटही माहिं चबूतरा, घटही माहिं दिवान॥ 55॥
गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष सोक ब्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप॥ 56॥
गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्यों करिके मिलना भया, क्यों बिछुड़े आवे जाय॥ 57॥
गुरू हमारा गगन में, चेला है चित माहिं।
सुरत सबद मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं॥ 58॥
बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥ 59॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥ 60॥
जल परमानै माछरी, कुल परभावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि॥ 61॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तौ भी सस्ता जान॥ 62॥
चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय ह्वै निःसंक भजु , केवल नाम कबीर॥ 63॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़े में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ॥ 64॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आवै हट्ट॥ 65॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर॥ 66॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत॥ 67॥

ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग॥ 68॥
सतगुरु हमसे रीझि कै, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग॥ 69॥
सतगुरु के उपदेस का, सुनियो एक बिचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार॥ 70॥
जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचा तान।
तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि॥ 71॥
चार खानि में भरमता, कबहुँ न लहता पार।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार॥ 72॥
जरा मीच ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस में, जहँ बैदा सतगुरु होय॥ 73॥
काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहिब अंक पसारिया, लै चला अपने देश॥ 74॥
सतगुरु साचा सूरमा, सबद जो बाहा एक।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक॥ 75॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर॥ 76॥
सतगुरु सबद कमान करि, बाहन लागा तीर।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर॥ 77॥
सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट॥ 78॥
सतगुरु मेरा सूरमा, बेधां सकल सरीर।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर॥ 79॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
नाम अकेला रहि गया, चित न आवै और॥ 80॥
कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं।
भीतर बिंधै सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं॥ 81॥

जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि॥ 82॥
सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाहिं सरीर।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर॥ 83॥
सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान॥ 84॥
ज्ञान कमान औ लव गुना, तन तरकस मन तीर।
भलका बहै तत सार का, मारा हदफ कबीर॥ 85॥
कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान।
केते जोधा पचि गये, खींचै संत सुजान॥ 86॥
लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जीवत मिरतक होय॥ 87॥
हंसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार॥ 88॥
गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान॥ 89॥
सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहुँ कितेब॥ 90॥
सतगुरु मारा प्रेम से, रही कटारी टूट।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ॥ 91॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
अलख नाम में रमि रहा, चित न आवै और॥ 92॥
मान बड़ाई ऊरमी, ये जग का ब्यवहार।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार॥ 93॥
दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार।
सतगुरु सबद का मस्कला, मोहिं दिखावनहार॥ 94॥
दीसे है सो बिनसिहै, नाम धरे सो जाय।
कबीर सोई तत्त गहु, जा सतगुरु दियो बताय॥ 95॥

कुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय।
भंवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय॥ 96॥
सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया।
अबिनासी को परसि के, आतम अमर भया॥ 97॥
सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत्त सार॥ 98॥
सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस।
जाय समाना सबद में, सत्त नाम विस्वास॥ 99॥
कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय।
सुरत कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय॥ 100॥
कुमति कींच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय॥ 101॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान।
पंच सबद धुनकार धुन, बाजै गगन निसान॥ 102॥
जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर॥ 103॥
साचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया; नहिं आवै नहिं जाय॥ 104॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञात मस्कला देइ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ॥ 105॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ॥ 106॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि ऊतम मति धीर।
सो धोखा बिच क्यों रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर॥ 107॥
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गम्भीर।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर॥ 108॥
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजीर।
हाथ जोरि बिनती करूँ, भवसागर के तीर॥ 109॥

कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोटि हजार।
सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार॥ 110॥
सतगुरु मोहिं निवानिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल॥ 111॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस॥ 112॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार।
आई परोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार॥ 113॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय॥ 114॥
पहले बुरा कमाई के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट॥ 115॥
सतगुरु बड़े सराफ़ हैं, परखें खरा अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखैं अपनी ओट॥ 116॥
भवसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबद सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर॥ 117॥
सतगुरु सबद जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुन्द एकै भया, किस का करूँ निषेध॥ 118॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठै आय।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय॥ 119॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकरैं बाँहिं॥ 120॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल।
पास बस्त्र ढाँकै नहीं, क्या करै बपुरी चोल॥ 121॥
जग मूआ बिषधर धरे, कहै कबीर बिचार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार॥ 122॥
बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सकल जिव को गनै॥ 123॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय॥ 124॥
करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तबै जिव काज, नि:चय कै परतीत करु॥ 125॥
अच्छर आदी जगत में, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया से पाइये, सत्तनाम निज सार॥ 126॥
सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटौ भव को अंक, आवागमन निवारहू॥ 127॥
बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै॥ 128॥
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै॥ 129॥
सतगुरु सरन न आवहो, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज॥ 130॥
जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर।
जम कै अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ॥ 131॥
तत दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु कै चेला सोई॥ 132॥
जग भवसागर माहिं, कहु कैसे बूड़त तरै।
गहु सतगुरु की बाहिं, जो जल थल रच्छा करैं॥ 133॥
निज मन सतगुरु पास, जाहिं पाय सब सुधि मिलै।
जग तें रहै उदास, ता कहँ क्यों नहिं खोजिये॥ 134॥
यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भवजल जीति॥ 135॥
सतगुरु तो सत्त भाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिं, जो ऐसी सुधि पाय॥ 136॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव॥ 137॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 1-13

जीते-जी मरने का अंग

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास॥ 1॥
कबीर काया समुँद है, अन्त न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय॥ 2॥
मैं मरजीवा समुंद का, डुबकी मारी एक।[1]
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक॥ 3॥
डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास॥ 4॥
हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास॥ 5॥
सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अन्तर नाम रतन॥ 6॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल॥ 7॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिं।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिं॥ 8॥
गुरु दरिया सूभर भरा, जा में मुक्ता लाल।[2]
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल॥ 9॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय॥ 10॥
ऊँचा तरवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।[3]
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय॥ 11॥
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय॥ 12॥

---

1. **मरजीवा...का**=समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला। 2. **सूभर**=शुभ्र, प्रकाशमान। 3. **तरवर**=पेड़।

जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्मर होय॥ 13॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द॥ 14॥
कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यों गऊ बछा की लार॥ 15॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार॥ 16॥
पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय॥ 17॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय॥ 18॥
घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय॥ 19॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 114-116

कबीर ऐसा एकु आधु जो जीवत मिरतकु होइ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखउ तत सोइ॥ 20॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1364

कबीरा तुही कबीरु तू तेरो नाउ कबीरु।
राम रतनु तब पाईऐ जउ पहिले तजहि सरीरु॥ 21॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1366

नाम का अंग

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह॥ 1॥
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस॥ 2॥

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।[1]
कह कबीर निज नाम बिनु , बूड़ि मुआ संसार॥ 3॥
कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय॥ 4॥
राम नाम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय॥ 5॥
जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय॥ 6॥
नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिं।
सेंत मेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं॥ 7॥
सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय॥ 8॥
जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥ 9॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डराय॥ 10॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तें सदा निहाल।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल॥ 11॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करैं, गाजि रहा ब्रह्मंड॥ 12॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय॥ 13॥
एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक।
तबहीं सो सुचि पाइहै, जब जिव होय निसंक॥ 14॥
एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय॥ 15॥

---

1. **डार**=शाखा।

होय बिबेका सबद का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, माहहु कहा हमार॥ 16॥
सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखौ बिस्वास॥ 17॥
आसा तौ इक नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास॥ 18॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार॥ 19॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार॥ 20॥
कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम बिनु ठाँव॥ 21॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै, ता की बेदन जाय॥ 22॥
कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर॥ 23॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय॥ 24॥
जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि॥ 25॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देंह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम॥ 26॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो बेद॥ 27॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब जा पारस भेंटिहै, तब जिव होसी सीव॥ 28॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार॥ 29॥

सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥ 30॥
कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा, केता काठ जराय॥ 31॥
लेने को सत्तनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान॥ 32॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय॥ 33॥
नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥ 34॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय॥ 35॥
नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास॥ 36॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्तनाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे प्रान जाहिं जब छूटि॥ 37॥
सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति संदेस, सुनो संत सत भाव से॥ 38॥
क्यों छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से॥ 39॥
काटहु जम के फंद, जेहिं फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो॥ 40॥
सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै॥ 41॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 83-87

प्रेम का अंग

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं॥ 1॥
सीस उतारै भुइँ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव॥ 2॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय॥ 3॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय॥ 4॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान॥ 5॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय॥ 6॥
आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय॥ 7॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय॥ 8॥
प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव॥ 9॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥ 10॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जानु मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान॥ 11॥
आया बगूला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास॥ 12॥
प्रेम बिकता मैं सुना, माथा साटे हाट।
बूझत बिलम्ब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट॥ 13॥

प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग॥ 14॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घींच टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर॥ 15॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबही त्यागै देंह॥ 16॥
सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुंदर पार॥ 17॥
यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात॥ 18॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं॥ 19॥
मेरा मन तो तुज्झ से, तेरा मन कहुँ और।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर॥ 20॥
ज्यों मेरा मन तुज्झ से, यों तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय॥ 21॥
प्रीति जो लागी घुलि गइ, पैठि गई मन माहि।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं॥ 22॥
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यों घट भीतर स्वास।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास॥ 23॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कूम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार॥ 24॥
प्रीति ताहि से कीजिये, जो आप समाना होय।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहैं समोय॥ 25॥
प्रेम बनिज नहिं कर सकै, चढ़ै न नाम की गैल।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल॥ 26॥
जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार॥ 27॥

प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ।
सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ॥ 28॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय॥ 29॥
प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय॥ 30॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेस।
बिना प्रेम पहुँचै नहीं, दुरलभ सतगुरु देस॥ 31॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान मे दो खड़ग, देखा सुना न कान॥ 32॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ति दृढ़ होय॥ 33॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल बया खाय॥ 34॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक॥ 35॥
नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल॥ 36॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय॥ 37॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।
माथा साटे जो मिलै, तौ भी सस्ता जान॥ 38॥
पया पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार॥ 39॥
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय॥ 40॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक॥ 41॥

यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तें न्यारा रहा, गया लहरि में पैठि॥ 42॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैं घोरि॥ 43॥
अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
बस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिं आवै आन॥ 44॥
साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई इक बुँद से, क्या ले करौं समुंद॥ 45॥
मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय॥ 46॥
जोइ मिलै सो प्रीत में, और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिलै, तो देंह मिले का होय॥ 47॥
जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय॥ 48॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय॥ 49॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय॥ 50॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिं॥ 51॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा॥ 52॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़॥ 53॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद॥ 54॥
प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकन्त।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत॥ 55॥

सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥ 56 ॥
प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिं तब मिलि रहै, नहिं आवै नहिं जाय ॥ 57 ॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय ॥ 58 ॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥ 59 ॥
प्रीती बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीत सो जानिये, सतगुरु से जो होय ॥ 60 ॥
गुनवंता औ द्रब्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय ॥ 61 ॥
कबीर ता से प्रीत करु, जो निरबाहै ओर।
बनै तो बिबिधि न राचिये, देखत लागै खोर ॥ 62 ॥
कहा भयो तन बीछुरे दूरि बसे जे बास।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ॥ 63 ॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ताको सौंपिये, जो कबहूँ छाड़ि न जाय ॥ 64 ॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥ 65 ॥
तन दिखलावै आपना, कछू न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय ॥ 66 ॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देंह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥ 67 ॥
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥ 68 ॥
खेल जो मँडा खिलाड़ि से, आनंद बड़ा अघाय।
अब पासा काहू परौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥ 69 ॥

प्रीतम को पतियाँ लिखूं, जो कहुं होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा संदेस॥ 70॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 43-49

भक्ति का अंग

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज॥ 1॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो चोल।[1]
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल॥ 2॥
गुरु भक्ति अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार॥ 3॥
भक्ति दुहेली गुरू की, नहिं कायर का काम।[2]
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम॥ 4॥
भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार।
जो डोलै तो कटि परै, नि:चल उतरै पार॥ 5॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास॥ 6॥
हरष बड़ाई देख करि, भक्ति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गवार॥ 7॥
भक्ति निसेनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय॥ 8॥
भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय॥ 9॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय॥ 10॥

---

1. **चोल**=चोला, देह; **आय...चोल**=जीव चाहे किसी भी योनि में क्यों न चला जाये।
2. **दुहेली**=कठिन।

भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस॥ 11॥
जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नास्रम तहँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिं॥ 12॥
भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय॥ 13॥
भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय॥ 14॥
सब से कहौं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै भेख॥ 15॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों केंचुली भुवंग॥ 16॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय॥ 17॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार॥ 18॥
खेत बिगारयो खरतुआ, सभा बिगारी कूर।[1]
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर॥ 19॥
तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुमति गई इक लोभ तें, भक्ति गई अभिमान॥ 20॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चली घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय॥ 21॥
कामी क्रोधी लालची, इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय॥ 22॥

---

1. **खरतुआ**=एक निकम्मी घास जो आसपास के अनाज की फ़सल को ख़राब कर देती है; **कूर**=दुष्ट।

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर, जात न लागै बार॥ 23 ॥[1]
भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राख।
साच सील खे खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि॥ 24 ॥[2]
सत्तनाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय॥ 25 ॥
जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम॥ 26 ॥
कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय॥ 27 ॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, नि:कामी निज देव॥ 28 ॥
भक्ति पियारी नाग की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि॥ 29 ॥[3]
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत॥ 30 ॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय॥ 31 ॥
भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय॥ 32 ॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 31-34

लव का अंग

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिं समाय॥ 1 ॥
काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर॥ 2 ॥

---

1. **धौलहर**=धुएँ का महल या किला। 2. **मैं...नाखि**=मेरी-तेरी को छोड़कर। 3. **पट्टन**=शहर।

गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट॥ 3॥
जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय॥ 4॥
लै पावौ तौ लै रहो, लैन कहूँ नहिं जाँव।
लै बूड़ै सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव॥ 5॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देंह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह॥ 6॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी देंह की को गिनै, तारै पुरुष करोर॥ 7॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार होइ जाय॥ 8॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक॥ 9॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह॥ 10॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाये॥ 11॥
चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी बस्तु लगार॥ 12॥[1]
और सुरन बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग॥ 13॥
सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोयन राता सुधि हरि, बिछुरत कबहुँ नाहिं॥ 14॥[2]
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय॥ 15॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 34-36

1. **लगार**=लगन, प्रीति। 2. **लोयन**=लोचन, आँख।

शील का अंग

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय॥ 1॥
सीलवंत सब तें बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि॥ 2॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक॥ 3॥
सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह।
सबद बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह॥ 4॥
विषय पियारे प्रीति से, तब लगि गुरुमुख नाहिं।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया से रुचि नाहिं॥ 5॥
सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरे जागि।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि॥ 6॥
आव कहै सो औलिया, बैठु कहै सो पीर।
जा घर आव न बैठु है, सो काफिर बेपीर॥ 7॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवंत, बिरला होय तो होय॥ 8॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 137-138

सत्संग का अंग

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साध संग जहँ होय॥ 1॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन॥ 2॥
कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि॥ 3॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय॥ 4॥

कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास॥ 5॥
ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय॥ 6॥
कबीर संगन साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय॥ 7॥
कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय॥ 8॥
मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साध संगति हरि भजन बिनु , कछू न आवै हाथ॥ 9॥
साधुन के सतसंग तें, थरहर काँपै देंह।
कबहूँ भाव कुभाव तें, मत मिटि जाय सनेह॥ 10॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय॥ 11॥
बंधे को बंधा मिलै, छुटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय॥ 12॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि॥ 13॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत॥ 14॥
जो घर गुरु की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान॥ 15॥
कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम॥ 16॥
कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय॥ 17॥
कबीर चंदन के ढिंगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास॥ 18॥

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध॥ 19॥
घड़िहू की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धका न खाय॥ 20॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 49-50

सुमिरन का अंग

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय॥ 1॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़ों बड़ा जो सुमिरै निःकाम॥ 2॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देंह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम॥ 3॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै तो दुख काहे होय॥ 4॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फरियाद॥ 5॥
सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहिं, निसु दिन आठो जाम॥ 6॥
सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार॥ 7॥
सुमिरन की सुधि यों करौ, ज्यों सुरभी सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं॥ 8॥
सुमिरन की सुधि यों करौ, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल॥ 9॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥ 10॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग॥ 11॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरैं आपको, होय जाय तेहि रंग॥ 12॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन॥ 13॥
सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल॥ 14॥
माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय॥ 15॥
माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥ 16॥
अजपा सुमिरन घट बिखे, दीन्हा सिरजनहार।
ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार॥ 17॥
कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख॥ 18॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उस्वास की, जा में गाँठ न मेर॥ 19॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत हौ मोय।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय॥ 20॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहुँ ओर।
जेहि फेरे साईं मिलै, सो भया काठ कठोर॥ 21॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिं खोय।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय॥ 22॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम॥ 23॥
सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं॥ 24॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दुइ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥ 25 ॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥ 26 ॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहिं खाय ॥ 27 ॥
जा की पूँजी स्वास है, छिन आवै छिन जाय।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥ 28 ॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौं बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥ 29 ॥
ऐसे मँहगे मोल का, एक स्वास जो जाय।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥ 30 ॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
या को टुकड़ा डारि करि, सुमिरन करो निसंक ॥ 31 ॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥ 32 ॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिं छाड़िये, सत्तनाम की टेक ॥ 33 ॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गले गलथना, जा में दूध न मूत ॥ 34 ॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान ॥ 35 ॥
पांच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥ 36 ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥ 37 ॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वास उस्वास जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥ 38 ॥

माला स्वास उस्वास की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करम की फाँस॥ 39॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से यों कह्यो, सुमिरन करो समाय॥ 40॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आद अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल॥ 41॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार॥ 42॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै अति सुख होय॥ 43॥
साईं यों मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त॥ 44॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानै भगत जन, सुमिरन सम कछु नाहिं॥ 45॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
नि:कामी सुमिरन करै, पावै अबिचल नाम॥ 46॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवत नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं॥ 47॥
कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिंगे छूटि।
घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट॥ 48॥
कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति॥ 49॥
जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय॥ 50॥
कबीर चित्त चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय॥ 51॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम॥ 52॥

सत्त नाम को सुमिरना, हँस कर भावै खीज।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज ॥ 53 ॥
स्वास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय।
और स्वास योंही गये, करि करि बहुत उपाय ॥ 54 ॥
कहा भरोसा देंह का, बिनसि जाय छिन माहिं।
स्वास स्वास सुमिरन करौ, और जतन कछु नाहिं ॥ 55 ॥
जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥ 56 ॥
बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥ 57 ॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर।
झूठा जाल जंजाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥ 58 ॥
हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥ 59 ॥
सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निस्फल जाय ॥ 60 ॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥ 61 ॥
नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥ 62 ॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥ 63 ॥

— कबीर साखी-संग्रह, पृ. 87-92

बानी चरनदास जी

[1]

अँखियाँ गुरु दरसन की प्यासी।
इकटक लागी पंथ निहारूँ तन सूँ भई उदासी॥
रैन दिना मोहिं चैन नहीं है चिन्ता अधिक सतावै।
तलफत रहूँ कल्पना भारी निस्चल बुधि नहिं आवै॥
तन गयो सूख हूक अति लागी हिरदै पावक बाढ़ी।
खिन में लेटी खिन में बैठी घर अंगना खिन ठाढ़ी॥
भीतर बाहर संग सहेली बातन ही समझावैं।
चरनदास सुकदेव पियारे नैनन ना दरसावैं॥

— चरनदास की बानी, भाग 1, पृ. 13

[2]

ऐसा देस दिवाना रे लोगो जाय सो माता होय॥
बिन मदिरा मतवारे झूमैं जन्म मरन दुख खोय॥
कोटि चंद सूरज उजियारो रबि ससि पहुँचत नाहीं॥
बिना सीप मोती अनमोलक बहु दामिनि दमकाहीं॥
बिन ऋतु फूले फूल रहत हैं अमृत रस फल पागे॥
पवन गवन बिन पवन बहत है बिन बादर झरि लागे॥
अनहद शब्द भँवर गुंजारै संख पखावज बाजैं॥
ताल घंट मुरली घनघोरा भेरि दमामे गाजैं॥
सिद्धि गर्जना अति हीं भारी घुँघुरू गति झनकारैं॥
रंभा नृत्य करैं बिन पग सूँ बिन पायल ठनकारैं॥
गुरु सुकदेव करैं जब किरपा ऐसो नगर दिखावैं॥
चरनदास वा पग के परसे आवा गवन नसावैं॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 8

[3]

गुरुदेव हमारे आवो जी।
बहुत दिनों से लगो उमाहो। आनंद मंगल लावो जी॥[1]
पलकन पंथ बुहारूँ तेरो। नैन परे पग धारो जी॥
बाट तिहारी निस दिन देखूँ। हमरी ओर निहारो जी॥
करूँ उछाह बहुत मन सेती। आँगन चौक पुराऊँ जी॥[2]
करूँ आरती तन मन वारूँ। बार बार बलि जाऊँ जी॥
दै पैकरमा सीस नवाऊँ। सुनि सुनि बचन अघाऊँ जी॥
गुरु सुकदेव चरन हूँ दासा। दरसन माहिं समाऊँ जी॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 46

[4]

घट में खेलि ले मन खेला॥ टेक॥
सकल पदारथ घट ही माहीं हरि सूँ होय जो मेला॥
घट में देवल घट में जोती घट में तीरथ सारे॥
बेगहिं आव उलट घट माहीं बीतै बरबी न्हारे॥[3]
घट में भरो है मान सरोवर मोती चुगै मराला॥[4]
घट में ऊँचा ध्यान शब्द का सोहं सोहं माला॥
घट में बिन सूरज उजियारा राति दिना तहिं सूझै॥
अमृत भोजन भोग लगतु है बिरला जन कोइ बूझै॥
घट में पापी घट में धर्मी घट में तपसी जोगी॥
गुन औगुन सब घट ही माहीं घट में बैद अरु रोगी॥
राम भक्ति घट ही में उपजै घट में प्रेम प्रकासा॥
सुकदेव कहैं चौथा पद घट में पहुँच चरन हीं दासा॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 49

---

1. **उमाहो**=उमंग, लालसा। 2. **उछाह**=उत्साह, उमंग। 3. **बीतै**=बीतती है; **बरबी**=पर्व का दिन। 4. **मराला**=हंस।

[5]

जब से अनहद घोर सुनी॥
इन्द्री थकित गलित मन हूवा आसा सकल भुनी॥
घूमत नैन सिथिल भइ काया अमल जु सुरत सनी॥
रोम रोम आनन्द उपज करि आलस सहज भनी॥
मतवारे ज्यों शब्द समाये अन्तर भींज कनी॥
करम भरम के बन्धन छूटे दुबिधा बिपति हनी॥
आपा बिसरि जक्त कूँ बिसरो कित रहिं पाँच जनी॥
लोक भोग सुधि रही न कोई भूले ज्ञानि गुनी॥
हो तहँ लीन चरनहीं दासा कहै सुकदेव मुनी॥
ऐसा ध्यान भाग सूँ पैये चढ़ि रहै सिखर अनी॥[1]

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 6

[6]

जिन्हैं हरि भक्ति पियारी हो॥
मात पिता सहजै छुटैं छुटैं सुत अरु नारी हो॥
लोक भोग फीके लगैं सम अस्तुति गारी हो॥
हानि लाभ नहिं चाहिए सब आसा हारी हो॥
जग सूँ मुख मोरे रहै करैं ध्यान मुरारी हो॥
जित मनुवाँ लागो रहै भइ घट उँजियारी हो॥
गुरु सुकदेव बताइया प्रेमी गति भारी हो॥
चरनदास चारौ बेद सूँ औरै कछु न्यारी हो॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 37

1. **अनी**=नोक।

[7]

टुक रंग महल में आव कि निरगुन सेज बिछी॥
जहँ पवन गवन नहिं होय जहाँ जा सुरति बसी॥
जहँ त्रैगुन बिन निर्बान जहाँ नहिं सूर ससी॥
जहँ हिल मिलि कै सुख मान मुक्ति की होय हँसी॥
जहँ पिय प्यारी मिलि एक कि आसा दुई नसी॥
जहँ चरनदास गलतान कि सोभा अधिक लसी॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 8

[8]

तरसैं मेरे नैन हेली राम मिलन कब होयगो॥
पिय दरसन बिन क्यों जिऊँ री हेली कैसे पाऊँ चैन॥
तीर्थ बर्त बहुतै किये री चित दै सुने पुरान॥
बाट निहारत ही रहूँ री हेली सुधि नहिं लीनी आय॥
यह जोबन यों ही चलो री चालो जन्म सिराय॥
बिरहा दल साजे रहै री हेली छिन छिन में दुख देहि॥
मन लालन के बस परो भई भाक सी देहि॥[1]
गुरु सुकदेव कृपा करो जी हेली दीजै बिरह छुटाय॥
चरनदास पिय सूँ मिलै सरन तुम्हारी धाय॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 21

[9]

पिंड ब्रह्मंड की सैल गुरु गम करी॥ सरसिया जुक्ति सूँ अलख राई॥
सहज ही सहज पग धरा जब अगम को॥ दसौ परकार झागड़ बजाई॥[2]
खोलि कपाट अरु बज्र द्वारे चढ़ो॥ कला के भेद कुंजी लगाई॥
पहिले महल पर जाय आसन किया॥ दूसरे महल की खबर पाई॥
तीसरे महल पर सुरित जा बस रही॥ महल चौथे दुही अमी गाई॥

---

1. **लालन**=प्रीतम; **भाक**=भट्ठा। 2. **झागड़**=बाजा।

पाँचवें महल को साध कोइ पाइ है॥ महल छटवाँ दिया गुरु बताई॥
सातवें महल पर कोटि सूरज दिपैं॥ आठवें महल अवगति गोसाईं॥
रूप अद्भुत तहाँ देखि अचरज जहाँ॥ देखिया दरस तब बिपति जाई॥
सुकदेव की सहा सों धारना गहा सो॥ आपने पीव के भवन आई॥
चरनदास आपा दिया प्रेम प्याला पिया॥ सीस सदके किया पूजि पाईं॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 1, पृ. 39

[10]

प्रेम नगर के माहिं होरी होय रही॥
जब सों खेली हम हूँ चित दै आपन हूँ को खोय रही॥
बहुतन कुल अरु लाज गँवाई रहो न कोई काम॥
नाचि उठैं कभी गावन लागैं भूले तन धन धाम॥
बहुतन की मति रंग रंगी है जिन को लागो प्रेम॥
बहुतन को अपनी सुधि नाहीं कौन करै अस नेम॥
बहुतन की गदगद ही बानी नैनन नीर ढराय॥
बहुतन की बौरापन लागी ह्वाँ की कही न जाय॥
प्रेमी की गति प्रेमी जानै जाके लागी होय॥
चरनदास उस नेह नगर की सुकदेवा कहि सोय॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 25

शील का अंग

अब मैं गाऊँ शीलकूँ, ऐ हो सन्त सुजान।
नर नारी सब ही सुनो, दे दे चित बुधि कान॥
रूप गुणी कुलवंत जो, अरु होवै धनवन्त।
शील बिना शोभा नहीं, भिष्टै नरक पड़न्त॥
शील बिना जो तप करै, करै शील बिन दान।
योगयुक्ति करै शील बिन, सो कहिये अज्ञान॥
शील बड़ो ही योग है, जो कर जानै कोय।
शीलविहीनो चरणदास, कबहुँ मुक्त न होय॥

सब शुभ लक्षण तो विषे, शील न आया एक।
जप तप निष्फल जाहिंगे, चरणहिं दास विवेक॥
पूजा संयम नेम जो, यज्ञ करै चित लाय।
चरणदास कहैं शील बिन, सभी अकारथ जाय॥
सोइ सती सोइ शूरमा, सोइ दाता अधिकाय।
शील लिये नित ही रहै, तौ निष्फल नहिं जाय॥
शील अंग ऊंचो अधिक, उन्तीसों के बीच।
जा घट शील न आइया, सो घट कहिये नीच॥
शील न उपजे खेत में, शील न हाट बिकाय।
जो हो पूरा टेक का, लेवे अँग उपजाय॥
शील बिना नरकै परै, शील बिना यम दण्ड।
शील बिना भरमत फिरै, सात द्वीप नौ खण्ड॥
शील बिना भटकत फिरै, चौरासी के माहिं।
पहिले होवे प्रेत ही, यामें संशय नाहिं॥
सब तजि सेवो शील कूँ, राम नाम लौ लाय।
जीवत शोभा जगत में, मुये मुक्ति ह्वै जाय॥
जाको शील सुभाव है, ताकी दूर बलाय।
ताकी कीरति जगत में, सुन हो कान लगाय॥
शील रहेते सब रहैं, जेते हैं शुभ अंग।
ज्यों राजा के रहे ते, रहै फौज को संग॥
सत्य गया तो क्या रहा, शील गया सब झाड़।
भक्ति खेत कैसे बचै, टूट गई जब बाड़॥
ज्वानी शील न राखिया, बिगड़ गई सब देह।
अब पछितावा क्या करे, मुख पर उड़िया खेह॥
शील गये शोभा घटे, या दुनिया के माहिं।
कूकर ज्यों झिड़क्यो फिरे, कहीं भी आदर नाहिं॥
शील गये गुरु सूँ फिरै, हरि सों बेमुख होय।
चरणदास कहाँ लौं कहैं, सर्वस डारै खोय॥

धिक जीवन संसार में, जाको शील नशाय।
जग में फिटफिट होत है, मुये यातना पाय॥
शील कसैला आँवला, और बड़ों के बोल।
पाछे देवे स्वाद वे, चरणदास कहि खोल॥
शील निरोगा नींब सा, औगुण डारै खोय।
पहिले करुवा दुख लगे, पाछे गुण सुख होय॥
लाख यही उपदेश है, एक शील कूँ राख।
जन्म सुधारो हरि मिलो, चरणदास की साख॥
शीलवंत के चरण का, जो चरणोदक लेय।
रोग दोष मिटि जायँ सब, रहै न यम का भेय॥
आठ अंग सूं शील ही, जा घट माहीं होय।
चरणदास यों कहत हैं, दुर्लभ दर्शन सोय॥
शीलवंत दर्शन बड़े, देखत पातक जाय।
वचन सुनै मन शुद्ध हो, खोटी दृष्टि सिराय॥
शील सरोवर न्हाय करि, करो राम की सेव।
या सम तीरथ और ना, कहिया गुरु शुकदेव॥

— चरनदास जी का भक्ति-पदार्थ वर्णन, पृ. 231-234

दोहे

सतगुरु के ढिंग जाइ कै, सनमुख खावै चोट।
चकमक लग पथरी झरै, सकल जरावै खोट॥ 1॥
मैं मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान॥ 2॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद।
बेदरदी समझै नहीं, बिरही पावै भेद॥ 3॥
सतगुरु शब्दी बान है, अँग अँग डारे तोड़।
प्रेम खेत घायल गिरे, टांका लगै न जोड़॥ 4॥

— चरनदास की बानी, भाग 1, पृ. 2

प्रेम बराबर जोग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधिबो, सबही थोथा ध्यान॥ 5॥
गद गद बानी कंठ में, आँसू टपकै नैन।
वह तो बिरहिन राम की, तलफत है दिन रैन॥ 6॥
हाय हाय करि कब मिलैं, छाती फाटी जाय।
ऐसा दिन कब होयगा, दरसन करौं अघाय॥ 7॥
बिन दरसन कल ना पड़ै, मनुआँ धरै न धीर।
चरनदास की राम बिन, कौन मिटावै पीर॥ 8॥
मुख पियरो सूखे अधर, आँखें खरी उदास।
आह जो निकसै दुख भरी, गहिरे लेत उसास॥ 9॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद॥ 10॥
पीव चहौ कै मत चहौ, वह तौ पी की दास।
पिय के रंग राती रहै, जग सूँ होय उदास॥ 11॥

— चरनदास की बानी, भाग 1, पृ. 11-12

ज्यों सेमर का सेवना, ज्यों लोभी का धर्म।
अन्न बिना भुस कूटना, नाम बिना यों कर्म॥ 12॥
हाथी घोड़े धन घना, चंद्र मुखी बहु नारि।
नाम बिना जम लोक में, पावै दुक्ख अपार॥ 13॥
आज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग।
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजो रंग॥ 14॥
पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम।
सबै देवता छोड़ि कै, जपिये हरि का नाम॥ 15॥
मोह बड़ा दुख रूप है, ताकूँ मारि निकास।
प्रीत जगत की छोड़ दे, जब होवै निर्बास॥ 16॥
इंद्रिन के बस मन रहै, मन के बस रहै बुद्ध।
कहो ध्यान कैसे लगै, ऐसा जहाँ बिरुद्ध॥ 17॥

— संकलित दोहे

[11]

साधो राम भजे ते सुखिया।
राजा परजा नेमी दाता सबहीं देखे दुखिया॥
जो कोई धनवन्त जगत में राखत लाख हजारा॥
उनकूँ तौ संसय है निस दिन घटत बढ़त ब्यौहारा॥
जिनके बहु सुत नाती कहिये और कुटुंब परिवारा॥
वे तौ जीवन मरन के काजै भरत रहैं दुख भारा॥
नेमी नेम करत दुख पावै कर अस्नान सबेरा॥
दाता कूँ देबे का दुख है जब मँगतौं ने घेरा॥
चारि बरन में कोउ न देखो जाकूँ चिन्ता नाहीं॥
हरि की भक्ति बिना सब दुख है समझ देख मन माहीं॥
सत संगति अरु हरि सुमिरन करि सुकदेवा गुरु कहिया॥
चरनदास बिपता सब तजि कै आनँद में नित रहिया॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 38

[12]

सुन सुरत रँगीली हो कि हरि सा यार करौ॥
जब छूटै बिघ्न बिकार कि भौजल तुरत तरौ॥
तुम त्रैगुन छैल बिसारि गगन में ध्यान धरौ॥[1]
रस अमृत पीवो हो कि बिषया सकल हरौ॥
करि सील संतोष सिंगार छिमा की माँग भरौ॥
अब पाँचो तजि लगवार अमर घर पुरुष बरो॥
कहैं चरनदास गुरु देखि पिया के पाँव परो॥

— चरनदास जी की बानी, भाग 2, पृ. 8

---

1. **छैल**=छलिया।

बानी तुलसी साहिब जी

मंगल

अमर बूटी मोरे यार, प्यारे पिया ने दई।
काटी जम की जाल, काल डर ना रही॥
मैं पिय मोर अनूप, रूप पिय में गई।
दरसै एकै नूर, सूर स्रुति से भई॥
जुगजुग अमर अहवात, साथ पिय के सखी।
जावँ न आवों हाथ, साथ पिय के पकी॥
नौतम निरखि निहारि, सार दसवें वही।
आगे अजब अजूब, खूब खुलि कै कही॥
पिय मोरे दीन-दयाल, चाल चीन्हा सही।
सुख सागर सुख चौज, मौज मुख से दई॥
अंड खंड ब्रह्मंड, कोई करता नहीं।
हमार सकल पसार, सार हम से भई॥
धरती गगन अकास, नास सब होइँगे।
अगिनि पवन जल नास, हमीं हम रहैंगे॥
ब्रह्मा बेद नसाय, बिस्नु सिव ना बचैं।
बचै नहीं बैराट, कहनि कहौ को पचै॥
कोई न पावै अंत, संत हम को लखै।
तुलसी बिधि बेअंत, अंत कहि को सकै॥

— घट रामायण, भाग 1, पृ. 56

ग़ज़ल

अरे ऐ तक़ी तकते रहो, मुर्शिद ने दस्त पंजा दिया॥
बेहोश हो मत छोड़ियो, गर चाहे तू जलवा पिया॥
होगा फज़ल दर्गाह तक, खौफ़ो ख़तर की जा नहीं॥[1]
सीधे चले जाना वहां, मुर्शिद ने यह फ़तवा दिया॥[2]
मनसूर, सरमद, बूअली, और शम्स मौलाना हुए॥
पहुंचे सभी इस राह से जिस ने कि दिल पुख़्ता किया॥[3]
यह राहे मंज़िल इश्क है, पर पहुंचना मुश्किल नही॥
मुश्किल-कुशा है रूबरू, जिस ने तुझे पंजा दिया॥[4]
तुलसी कहे सुन ऐ तक़ी, यह राज़ बातिन है जुदा॥[5]
रखना हिफ़ाज़त से इसे, तुझ को निशां ऊँचा दिया॥

— संतबानी, पृ. 46

कुंडलियाँ

[1]

गगन मँडल के बीच में झिलिमिलि झलकत नूर॥
झिलिमिलि झलकत नूर सूर कोइ बिरला पावै।
करै तत्त की खोज नहीं चौरासी आवै॥
सतगुर मिलैं दयाल भेद सब उन से पावै।
करै संत की टहल महल की खबर लखावै॥
तुलसी मुरदा जब बनै तब पावै गुर पूर।
गगन मँडल के बीच में झिलिमिलि झलकत नूर॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 37

---

1. **फज़ल**=कृपा। 2. **फ़तवा**=आदेश, हुक्म। 3. **पुख़्ता**=दृढ़, पक्का। 4. **मुश्किल-कुशा**=कठिनाई को दूर करनेवाला; **रूबरू**=प्रत्यक्ष। 5. **राज़ बातिन**=आन्तरिक-भेद।

ककहरा

छछ्छा छिन छिन सुरति सँवार लार दृग के रहौ॥
तन मन दर्पन माँज साज स्रुति से गहौ॥
लगन लगै लख पार सार तब पाइया॥
अरे हाँ रे तुलसी संत चरन की धूर नूर दर्साइया॥ 1॥
जज्जा जिन जिन सुरति सँवारि काल डर ना रही॥
चढ़ी गगन पर धाय पाय पति पै गई॥
लिया अगमपुर धाम जाइ पिउ भेंटिया॥
अरे हाँ रे तुलसी जन्म जन्म भ्रम भाव दाव दुख मेटिया॥ 2॥
झझ्झा झलकत नूर जहूर हरष हिये में भई॥
निरखा रबि उजियार द्वार पच्छिम गई॥
सूरत चीन्हा भेद भरम तजि भागिया॥
अरे हाँ रे तुलसी सब्द सुरति भया मेल खेल खुलि त्यागिया॥ 3॥
टट्टा टोइ लिया सतसंग रंग गुर ने दिया॥
जुगन जुगन तजि भूल आदि घर को लिया॥
सिव ब्रह्मा और बेद बिस्नु नहिं आ सकै॥
अरे हाँ रे तुलसी निरंकाल सोई काल जोति नहिं जा सकै॥ 4॥
ठठ्ठा ठौर ठिकाना ठाँव गाँव पिया को कही॥
निरंकार के पार तहाँ तुलसी रही॥
सत्तनाम सुख धाम अमरपुर लोक है॥
अरे हाँ रे तुलसी चौथा पद जद जाय संत सोई कहै॥ 5॥
डड्डा डगर संत का पंथ अंत कहो को लखै॥
जग पंडित और भेष भूल भव में पकै॥
तीरथ नेम अचार भार सिर पर लिया॥
अरे हाँ रे तुलसी कर्म धर्म अभिमान जानि करि ये किया॥ 6॥
ढढ्ढा ढिग ही पूरन बस्त कस्द कोइ ना करै॥
गुरू संत बिन भेद पार कैसे परै॥

पढ़ि पढ़ि बेद पुरान ज्ञान करि करि मुए॥
अरे हाँ रे तुलसी कथा सुने सोइ जोनि पौन भूतै भये॥ 7॥
णणा नीच ऊँच नहिं देख पेख सब एक पसारा॥
नहि बाम्हन नहिं सूद्र नहीं छत्री कोउ न्यारा॥
नहीं बैस की जाति सकल घट एक पसारा॥
अरे हाँ रे तुलसी जो करि जानै दोइ खोइ जिन जनम बिगारा॥ 8॥
तत्ता तुरत तत को खोज रोज रच दरस दिखावै॥
अगम निगम का भेद घाट घट में जब पावै॥
बिना तत्त नहिं मूल भूल चौरासी आवै॥
अरे हाँ रे तुलसी तत्त मत सूरत साच सब्द में जाय मिलावै॥ 9॥
थथ्था थिर होइ सुरति लगाव थोब थिर मन को राखौ॥
इंद्री चलै न जाय पाय गुन को नहिं भाखौ॥
प्रकृति पचीसौ बास महल से काढ़ निकारौ॥
अरे हाँ रे तुलसी जब लग है कुछ हाथ संत की टहल बिचारौ॥ 10॥
दद्दा देखो दृष्टि पसारि सार कुछ जग में नाहीं॥
दिना चार का रंग संग नहिं जावै भाई॥
धन संपत परिवार काम एको नहिं आवै॥
अरे हाँ रे तुलसी दीपक संग पतंग प्रान छिन में चलि जावै॥ 11॥
धध्धा ध्यान धरो घट माहिं सुरति को काढ़ि निकारी॥
उलटि चलो असमान हिये बिच होत उजारी॥
ता उजियारे बैठि लखो ब्रह्मंड पसारा॥
अरे हाँ रे तुलसी जो अंडे बिच जीव निरखि भिनि भिनि बिध सारा॥ 12॥
पप्पा पड़े जगत के माहिं भक्ति सुपने नहिं भावै॥
ब्राम्हन पंडित भेष सबै पुनि दान करावै॥
जिन कीन्हा तन साज ताहि से नेह न लावै॥
अरे हाँ रे तुलसी जब जम पकरै बाँह पूत को कौन छुड़ावै॥ 13॥
फफ्फा फूले फूले फिरें देखि धन धाम बड़ाई॥
तन फुलेल और तेल चाम को चुपरें भाई॥

दिना चारि का खेल मिलै फिर खाक में॥
अरे हाँ रे तुलसी पकरि फिरिस्ते करें सलाई आँखि में॥ 14॥
बब्बा बड़ा जगत जंजाल जाल जम फाँसी डारी॥
ज्यों धीमर जल माहिं पकर करि मछरी मारी॥
निकरि जाय जब प्रान काल चोटी धर खींचा॥
अरे हाँ रे तुलसी परिहौ जम मुख माहिं डाढ़ चक्की ज्यों पीसा॥ 15॥
भब्भा भगी सुरति घट माहिं जाय जो देखा भाई॥
सुखमनि सेज सँवारि सुन्नि में सुरति लगाई॥
मुकर माहिं दीदार दरस कीन्हा सोइ जानै॥
अरे हाँ रे तुलसी ज्यों स्वाँती की बूँद सीप बिरहिन पहचानै॥ 16॥
मम्मा मुसकिल होइ आसान जानि कोइ ना करै॥
करै तत्त को खोज काज घट में सरै॥
बाहर है सब झूँठ लूटि जम लेइँगे॥
अरे हाँ रे तुलसी तन छूटै बेहाल बहुत दुख देइँगे॥ 17॥
यय्या या को चीन्ह बिचार कहो ये कौन है॥
बोले सब घट माहिं परख कित पौन है॥
धरती अगिनि अकास नीर कोउ को न था॥
अरे हाँ रे तुलसी रचा नहीं बैराट बोलता कहँ हता॥ 18॥
रर्रा राति दिवस कर खोज रोज रस ज्ञान सुनावै॥
घट घट उठै आवाज़ तासु कोउ भेद न पावै॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड सकल बिधि रहा समाई॥
अरे हाँ रे तुलसी खोलि हिये की आँख संत दीन्हा दरसाई॥ 19॥
लल्ला लोभ लोग पचि मरे कहो को खोज लगावै॥
इन्द्री रस सुख स्वाद भोग नीके करि भावै॥
राम राम की टेक भेष सब जगत पुकारा॥
अरे हाँ रे तुलसी जीवत मिलै न मुक्ति मुए को कहै लबारा॥ 20॥
वव्वा वा को खोज गँवार सार जिन किया पसारा॥
रोम रोम ब्रह्मंड कोटि छबि रबि उजियारा॥

अजर अमर वह लोक सोक सब दूर बहावै॥
अरे हाँ रे तुलसी राम कृस्न अवतार दसों नहिं जाने पावै॥ 21॥
सस्सा सोच करो मन माहिं पिंड कहो कौन सँवारा॥
आदि अन्त का खेल किया किन बिधि बिधि सारा॥
निरंकार नहिं हता नहीं तब जोति रहाई॥
अरे हाँ रे तुलसी ब्रह्मा बिस्नु न बेद नहीं अवतारी भाई॥ 22॥
हहा हक्क हजूरी संत पंथ कोइ रहे न भाई॥
सत साहिब सिरदार और कोइ दूजा नाहीं॥
कागद स्याही कलम रहे नहिं लिखनेहारा॥
अरे हाँ रे तुलसी आदि अंत नहिं हता नाहिं सत असत पसारा॥ 23॥
अआ अष्ट कंवल दल फूल मूल मारग तब पावै॥
सहस कँवल दल छाँड़ि कँवल दल दुइ पर आवै॥
लखै चार दल कँवल ताहि पर सुरति चढ़ावै॥
अरे हाँ रे तुलसी तिरबेनी के पार सार सतलोक दिखावै॥ 24॥
ईया इतना भेद अभेद गुरन से मिलै ठिकाना॥
कहैं अगम की राह सुरति से फोड़ निसाना॥
गई सिंध के पार यार लख पुरुष पुराना॥
अरे हाँ रे तुलसी ज्यों सलिता जलधार सिंध धस जाय समाना॥ 25॥
ऊवा उलटि चलै दरबार पार घर अपना पावै॥
बुंद सिध का मेल खेल खुद आप कहावै॥
भूली बस्त मिलाप आप अपना दरसावै॥
अरे हाँ रे तुलसी जिन चीन्हा यह भेद सोई सत संत कहावै॥ 26॥
अरल ककहरा अंक बंक बत्तीस बखाना॥
संत पंथ अज अमर आदि घर अपना जाना॥
जो कोइ करै बिबेक एक सब घट पहिचानै॥
अरे हाँ रे तुलसी सतगुर मिलै दयाल काल गत भिन भिन छानै॥ 27॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 25-29

[2]

जग जग कहते जुग भये जगा न एको बार॥
जगा न एको बार सार कहो कैसे पावै॥
सोवत जुग जुग भये संत बिन कौन जगावै॥
पड़े भरम के माहिं बंद से कौन छुड़ावै॥
जो कोइ कहै बिबेक ताहि की नेक न भावै॥
तुलसी पंडित भेष से सब भूला संसार॥
जग जग कहते जुग भये जगा न एको बार॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 36

शब्द

जिनके हिरदे गुर संत नहीं। उन नर औतार लिया न लिया॥
सूरत बिमल बिकल नहिं जाके। बहु बक ज्ञान किया न किया॥
करम काल बस उद्र निहारा। जग बिच मूढ़ जिया न जिया॥
अगम राह रस रीत न जानी। बहु सतसंग किया न किया॥
नाम अमल घट घोंट न पीन्हा। अमल अनेक पिया न पिया॥
मोटे मात जात ज़िंदगी में। सिर धर पैर छुया न छुया॥
तुलसीदास साध नहिं चीन्हा। तन मन धन दिया न दिया॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 2

ग़ज़ल

दिल का हुजरा साफ़कर जानां के आने के लिये॥[1]
ध्यान ग़ैरों का उठा उसके बिठाने के लिये॥
चशमे दिल से देख यहाँ जो जो तमाशे हो रहे॥[2]
दिलसितां क्या क्या हैं तेरे दिल सताने के लिये॥[3]

1. **हुजरा**=कोठरी; **जानां**=प्रियतम। 2. **चशमे दिल**=दिल की आँख। 3. **दिलसितां**=दिल को लुभाने वाली चीज़ें।

एक दिल लाखों तमन्ना उसपै और ज़्यादा हविस॥[1]
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये॥
नकली मन्दिर मस्जिदों में जाय सद अफ़सोस है॥
कुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये॥[2]
कुदरती काबे की तू महराब में सुन ग़ौर से॥[3]
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥
क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में॥
रासता शाह रग में है दिलवर पै जाने के लिये॥[4]
मुरशिदे कामिल से मिल सिदक़ और सबूरी से तक़ी॥[5]
जो तुझे देगा फ़हम शाह रग के पाने के लिये॥[6]
गोशे बातिन हों कुशादा जो करे कुछ दिन अमल॥[7]
ला इलाह अल्लाहू अकबर पै जाने के लिये॥
यह सदा तुलसी की है आमील अमल कर ध्यान दे॥
कुन क़ुरां में है लिखा अल्लाहु अकबर के लिये॥[8]

— संतबानी, पृ. 44

सतगुरु महिमा

परथम बन्दौं सतगुरु स्वामी। तुलसी चरन सरनि रति मानी॥
पुनि बन्दौं संतन सरनाई। जिन पुनि सुरत निरत दरसाई॥
चरन सरन संतन बलिहारी। सूरति दीन्ही लखन सिहारी॥
सरन सूर सूरति समझाई। सतगुरु मूर मरम लख पाई॥
मैं मतिहीन दीन दिल दीन्हा। संत सरन सतगुरु को चीन्हा॥
सतगुरु अगम सिंध सुखदाई। जिन सत राह रीति दरसाई॥
पुनि पुनि चरन कँवल सिर नाऊँ। दीन होइ संतन गति गाऊँ॥

---

1. **तमन्ना**=कामनाएँ, तृष्णाएँ। 2. **साकिन**=रहनेवाला। 3. **महराब**=दरवाज़े के ऊपर का अर्ध-गोलाकार हिस्सा। 4. **शाह रग**=सुषम्ना। 5. **सिदक़...सबूरी**=विश्वास और धैर्य। 6. **फ़हम**=भेद, युक्ति। 7. **गोशे...कुशादा**=आन्तरिक कान खुल जायेंगे। 8. **कुन**=हुक्म, शब्द या नाम; **क़ुरां**=क़ुरान शरीफ़।

दीन जानि दीन्ही मोहिं आँखी। मैं पुनि चरन सरन गहि भाखी॥
मैं तौ चरन भाव चित चेरा। मोहिं अति अधम जानि कै हेरा॥
मैं तौ प्रति प्रति दास तुम्हारा। संत बिना कोई पावै न पारा॥
संत दयाल कृपा सुखदाई। तुम्हरी सरन अधम तरि जाई॥
आदि न अंत संत बिन कोई। तुलसी तुच्छ सरन में सोई॥
जो कछु करहिं करहिं सोइ संता। संत बिना नहिं पावै पंथा॥
मोरे इष्ट संत स्रुति सारा। सतगुरु संत परम पद पारा॥
सतगुरु सत्तपुरुष अबिनासी। राह दीन लखि काटी फाँसी॥
कँवलकंज सतगुरु पद बासी। सूरति कीन दीन निज दासी॥
सूरति निरत आदि अपनाई। सतगुरु चरन सरन लौ लाई॥
बार बार सतगुरु बलिहारी। तुलसी अधम अघ नाहिं बिचारी॥
बन्दौं सब चर अचर समाना। जानौ तुलसी दास निदाना॥
मैं किंकर पर दया बिचारा। अनहित प्रिये करौ हित सारा॥
सब के चरन बन्दि सिर नाई। प्रिये लार लै प्रीति जनाई॥
तुम प्रति भूल बंद अस गाई। बार बार चरनन सिर नाई॥
पुनि बन्दौं सतगुरु सत भावा। जिनसे बस्तु अगोचर पावा॥
सतगुरु अगम अरूप अकाया। जिनकी गति मति संतन पाया॥
सतगुरु की कस करहुँ बखानी। सूरति दीन्ही अगम निसानी॥
लख लख अलख सुरति अलगानी। संतकृपा सतगुरु सहदानी॥
सूरति सैल पेल रस राती। सतगुरु कंज पदम मद माती॥
तुलसी तुच्छ कुच्छ नहिं जानै। सतगुरु चरन सरन रत मानै॥
सूरति सतगुरु दीन्ह जनाई। नित नित चढ़ै गगन पर धाई॥
सैल करै ब्रह्मंड निहारा। देखै आदि अंत पद सारा॥
निरखा आदि अंत मधि माहीं। सोइ सोइ तुलसी भाखि सुनाई॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड समाना। तुलसी देखा अगम ठिकाना॥
पिंड ब्रह्मंड में आदि अगाधा। पेली सुरति अलख लख साधा॥
पिंड ब्रह्मंड अगम लख पाया। तुलसी निरखि अगाध सुनाया॥
पिंड माहिं ब्रह्मंड दिखाना। ता की तुलसी करी बखाना॥

पिंड माहिं ब्रह्मंड, देखा निज घट जोइ कै।
गुरु पद पदम प्रकास, सत प्रयाग असनान करि॥
बूझै कोइ कोइ संत, आदि अंत जा ने लखी।
परचै परम प्रकास, जिन अकास अम्बर चखी॥

— घट रामायण, भाग 1, पृ. 8-10

सन्तों द्वारा सुरत की रक्षा

मरने के समय सुरत कैसे खिंचती है और सन्त
अपनी शरणागत सुरत की कैसे रक्षा करते हैं।

संत जीव की बिपति छुड़ावें। कर्मी जीव जक्त को चावें॥
याको फल चौरासी माहीं। भिन्न भिन्न तोहि कहूँ सुनाई॥
जब जिव निकरि देह दरसाऊँ। वोहि समय की समझ सुनाऊँ॥
निकरि जीव तन छूटे भाई। जब की बातें कहूँ बुझाई॥
सिमटि अकास भास जब जावे। जब नाड़ी में सीत समावे॥
जस रबि अस्त होय अँधियारा। प्रान पती तन धुक धुक धारा॥
जस रबि भास गये उजियासी। धुकधुक प्रान बसे तन बासी॥
निकसे स्वाँस भासकृन प्राना। येरे सिमटि कहो कहाँ समाना॥
जो वो ठाँव जौन से ठाईं। दसवाँ द्वार बह्म के माहीं॥
सूरज ब्रह्म द्वार दस माहीं। उनसे किरन अंड में आई॥
किरन पाँचतत प्रान कहाया। ततमिलि पाँच अकास जगाया॥
आतम सब में भास प्रकासा। सोई भास किया तन बासा॥
मारग भास जोई मग आया। तरक तालुवे राह समाया॥
ज्यों प्रतिबिंब पड़े जल जाई। ऐसे भास नाभ के माहीं॥
नाभ तेज तन माहिं समाना। रोमहि रोम बदन में जाना॥
भास तेज चेतन भइ काया। यह भीतर में बरनि बताया॥
जिन घट सैल करी काया की। भीतर भेद कहै जोइ भाखी॥
ऊपर की कहनी नहिं मानूँ। अंदर उदय होय घट भानू॥

अंदर भानु उदै बिना, भीतर की का कहेन।
बैन बचन झूँठै कहे, बिन अंदर नहिं ऐन॥

ब्रह्म जीव कृन प्रान कहाया। यह काया में भाखि बताया॥
ठीक ठौर अरु ठाम ठिकाना। अंदर कोई परखि पहिचाना॥
यह सब बैन बदन में भाखी। सुन करि साध देइँगे साखी॥
निकरे प्रान बदन से जावे। जाहि समय की संत सुनावें॥
जाका अब दृष्टांत सुनाऊँ। नकल माहि मैं असल दिखाऊँ॥
जैसे पतँग गगन चढ़ि जावे। डोरी देत देत बढ़ि जावे॥
जब डोरी वह खैंचि खिलाड़ी। खैंचि डोरि भूमी पर डारी॥
सिमटी डोरि किया उन पिंडा। यहि बिधि सुरति खिंचै ब्रह्मंडा॥
रोम रोम से तेज खिंचाना। सिमटि सिमटि नाभी में आना॥
नाभि तेज से भास उठाया। जब तन मद्ध तालुवे आया॥
तालुवे से जब डोरि खिंचानी। जब तत पाँच अंड में आनी॥
खैंचै डोरि प्रान इँचि आवे। काल कान पर आसन लावे॥
काल कान के मारग लाई। या बिधि तन के माहिं समाई॥
जब वा डोरि को पकड़े जाई। संत सुरति की बैठक वाही॥
वही सतगुरु की बैठक पासा। डोरि छाँड़ि होइ काल निरासा॥
प्रानी सतगुरु की सुधि लावे। डोरी छाँड़ि काल अलगावे॥
जो सतगुरु सुधि बिसरे भाई। जबहि काल घर बजत बधाई॥
जिनके हृदय संत लौ लागी। सतगुरु साँच प्रीति अनुरागी॥
जिनके काल निकट नहिं आवे। डोरि छाँडि के दूर परावे॥
काल ठिकाने अपने आवे। सूरति में सूरति लिपटावे॥
अपनी सुरति सुरति में डाली। ज्यों बंसी मच्छी खिंचि चाली॥
बंसी में मच्छी खिँचि आवे। ज्यों सतगुरु में सुरति समावे॥
सुरति डोरि पोढ़ मजबूती। जबहिँ काल सिर मारे जूती॥

सुरति डोरि सतगुरु गहे, रहे चरन के माहिं।
सुन्न सुरति सब्दै मिली, डोरी डोरि समाय॥

काल रहा झख मारि के, गयो जो दावा चूक।
निर्मल होइ आगे चले, कर्म काल मुख थूक॥
जे सतगुरु सज्जन अनुरागी। संत चरन सूरति बडभागी॥
कहुँ उनका यहि यों बरतंता। सुरति बसे सरन में संता॥
जो कोइ ऐसी लगन लगावे। सो सूरति सतगुरु में आवे॥
वार काल जहँ बसे ठिकाना। काल पार सतगुरु का थाना॥
जेहि के मद्ध सूरति का बासा। सज्जन जो कोइ करे निवासा॥
अष्ट कँवल पखड़ी दल माहीं। जो जेहि आस रहे जहँ जाई॥
काल स्याम के बीच रहाई। सेत सुरति सतगुरु की भाई॥
बूझे यह कोइ समझ लखावे। याकी बूझ समझ कोइ पावे॥
यामें जिव का लगे ठिकाना। यह मारग सज्जन का जाना॥

दोहा

नैन स्याम और सेत के, मद्ध सुरत की लाग।
जो जैसे सतगुरु मिले, तैसे तिन के भाग॥
जो सूरति सतगुरु को चाही। जैसी डोरि ऊँट की नाईं॥
जैसे ऊँट अगाड़ी जावे। सब कतार पीछे चलि आवे॥
बाँधि डोरि पूँछि के माहीं। सब कतार पीछे चलि आई॥
सतगुरु सूरति मूल ठिकाने। ज्यों कतार जिव सूरति समाने॥
जो सूरति सतगुरु दृढ़ लावे। सुनु हिरदे वह वही समावे॥
यही भाँति से चले न दावा। और भाँति सब मार गिरावा॥
तप संजम जोगी बहु पाले। ये मारग में भये बिहाले॥
जो कोइ समझि करे यह लेखा। बिन सतगुरु नहिं मिले बिबेका॥
ज्यों कतार रहे ऊँट की, अगले ऊँट बँधाय।
यों सूरति सतगुरु कहें, सब जिव वही समाय॥

हिरदे वाच

यह स्वामी सज्जन की बाता। यहि बिधि भाखै सभी सनाथा॥
सब संतन की देखी बानी। सबने कही बिमल मति छानी॥

अब वह मोको भेद बतावो। करमी जीव काल को दावो॥
सज्जन का भाखा निरबारा। करमी जीव काल को जारा॥
उनके प्रान कहाँ होइ जाई। कहो स्वामी मोहि बरनि सुनाई॥
काल घाट रोके केहि द्वारे। सब जीवन को खाय बिडारे॥
कौन राह से जीव नसावे। कैसे सकल जगत को खावे॥
यह तन में केहि भाँति समावे। बदन बीच वह क्योंकर आवे॥

प्रान निकारे आय के, घेरे घट के माहिं।
एक जीव बाचे नहीं, धरि धरि सब को खाय॥

करता कौन जीव का होई। बिन जाने जग जाय बिगोई॥
कहँ से आय कौन उपजाया। क्योंकर देह धरी जग काया॥
पाँच तत्त तन रहा बँधाई। उपजि मरे चौरासी माहीं॥
याको सब यह सबब सुनावो। स्वामी यह धोखा दरसावो॥
पत मत हीन दीन हौं दासा। चरन कंवल की निसदिन आसा॥
और आस बिस्वास न आवे। निस दिन सूरति चरन समावे॥
ज्ञान बिबेक एक नहिं जानी। ऊपर चरन सुरति कुरबानी॥
दिल दृढ़ मेहर सरन में होई। चित संसय मेटो प्रभु सोई॥

दिल दुबिधा मोरे भई, स्वामी सरन तुम्हार।
जार जक्त कैसे पड़े, कैसे जीव उबार॥

चौपाई

काल बली परचंड कहावे। यासे जीव बचन नहिं पावे॥
छल बल दाँव करे कइ भाँती। करे कोप जिव पर दिनराती॥
नहिं कोइ ठौर बचन जिव पावे। जहाँ जाय तहँ जाय समावे॥
स्वर्ग मिर्त्त पाताल न बाचे। को है जबर सरन जेहिं याचे॥
भटकत फिरे जुगन के माहीं। कालबली से पार न पाई॥
यह कइ दाँव लगाये फँदा। कर्मी जीव जक्त का अंधा॥
मारे जो जोरावर कोई। जबर संग कछु ज़ोर न होई॥
काल बड़ा बरियार कहावे। बिकट बिपति करि जीव सतावे॥

काल जबर जुलमी बड़ा, खड़ा रहे मैदान।
कर कमान खैंचे फिरे, मारे गोसा तान॥
ज्यों बन भेड़ी सिंघ अहारा। जैसे जीव काल का चारा॥
डाके सिघ भेड़ के माहीं। ऐसे डाक काल जिव खाई॥
यह स्वामी मोहिं कहो बुझाई। कौन चरित्तर काल कसाई॥
या की कर कूँची बतलावो। भिन्न भिन्न कहि करि समझावो॥
केहि बिधि जाय जीव को घेरे। केहि मारग से सूरति फेरे॥

जीव सत्पुरुष का अंश

हे हिरदे तोहि आदि सुनाऊँ। जीव सुरति की संधि लखाऊँ॥
चौथे महल पुरुष इक स्वामी। जीव अंस वहि अन्तरजामी॥
उनकी अंस जीव जग आया। करता पाँच तत्त में लाया॥
करता ने काया रची, जुग जुग जग बिस्तार।
सार दियो बिसराय के, घर घर करत पुकार॥

कर्म काया का अंग

पिंड प्रधान बसे तन माहीं। करता ने काया उपजाई॥
बेद पुरान कर्म उपराजा। यासे करे जीव जग काजा॥
करता करम किया बिस्तारा। लख चौरासी रूप सँवारा॥
काल अपर्बल जाल पसारा। उन सब घेरि जीव को मारा॥
कर्म कलंदर आप नचावे। बाजी लाय जीव भटकावे॥
कोइ बंधन से बाँधे भाई। ऐसे बन्ध अनेक लगाई॥
कोई दाँव नहिं मारग पावे। धरि धरि देही जन्म सिरावे॥
चौरासी से निकरि न पावे। बारबार वहि माहिं समावे॥
कर्म सारनी बुधि बसी, सूरति रही अधीन।
आसा के बस में पड़ी, बासा बिपति मलीन॥
कर्म अपरबल भारी भोगू। सब जग जार जबर यह रोगू॥
बिना कर्म कोइ काया नाहीं। जग बस रहा कर्म के माहीं॥

काया बिना कर्म नहिं होई। कर्म बिना काया नहिं सोई॥
यह अनादि से रचना भाई। जुगन जुगन ऐसे चलि आई॥
कर्म भूत सब जग को लागा। यासे बची नहीं कोई जागा॥
कीट पतंग संग सब केरे। तीन लोक अंडा सब घेरे॥
सात दीप नव खंड कहावे। चौदह लोक कर्म बस गावे॥
चन्द्र सूर अरु दस औतारा। यह सब बँधे कर्म की जारा॥
अंड खंड ब्रह्मंड लों, लोक सकल जग जाल।
काल कर्म सिर ऊपरे, जुग जुग फिरत बेहाल॥

काल के चरित्र

अब यह काल चरित्र लखाऊँ। अंदर प्रान बसे जेहि ठाऊँ॥
काया मद्धे काल सतावे। जब वह प्रान लेन को आवे॥
सिमटत भास स्वाँस उठि जावे। प्रानपती जम सिमटि समावे॥
भास अकास तत्त में जाई। तत्त अकास अंड के माहीं॥
जब यह कर्म कला उपजावे। बुद्धि सुरति को आन दबावे॥
मैली बुद्धि सुरति के माहीं। वही समय में जाय समाई॥
कर्म अनुसार बसे मन आसा। सूरति मन बुधि बंधन फाँसा॥
सुनत अवाज स्याम सठ गाँसा। घेर घुमरि लावे जहँ स्वाँसा॥
कर्म सारनी बुधि बसै, आसा बास निदान।
यह नव द्वारा पिंड में, निकसि जाय ज्यों प्रान॥
यह तो कर्म बुद्धि अनुसारा। अब सुनियो यह काल पसारा॥
अष्ट कँवल दल अन्दर माहीं। ह्वाँ छिपि बैठा काल कसाई॥
जब सब भास सिमटि करि आवे। जब सूरति पै बुधि पहुँचावे॥
कँवल द्वार पखड़ी को रोके। उलटी सुरति काल मुख सोखे॥
काल दाढ़ में आन चबानी। जब ढरके नैनन से पानी॥
लगे टकटकी दिखे न भाई। वाहि समय को करे सहाई॥
जम के दूत घेर चहुँ फेरा। निकसे प्रान छोड़ करि डेरा॥

जहाँ आसा तहाँ बासा

कर्म सारनी बुद्धि कहाई। जहँ भइ आस बास जेहिं माहीं॥
कर्म आस की बास में, जोनी जोनि समाय।
जो जैसी करनी करे, सो तैसे फल खाय॥

नरकों के दुःख

जम का जुलम जोर दरसाऊँ। मारग में जिव बिपति बताऊँ॥
लोह के खंभ तपत के माहीं। जहाँ जीव को ले चिपटाई॥
तड़फ तड़फ जिव जुलम दुखारी। तपत खंभ दुख उपजे भारी॥
वाहि समय की कहा सुनाई। लोहा अगिन धमन धौंकाई॥
ज्यों धम्मन से धौंकि लुहारा। लोहा जो अगिनी में डारा॥
ऐसे कस्ट जले जिव भाई। वही समय की बिपति बताई॥
पाया भोग सोग सोइ जाना। छटपट करे जीव बिलखाना॥
अब नर्कन का सुनो सुभावा। कर्मी जीव सहें दुख दावा॥
कुंभी नर्क निदान यह, पड़े जीव जब जाय।
सिर समेत बूड़ा रहे, सदा नर्क के माहिं॥
जबहि नर्क सिर ऊपर काढ़े। जब ऊपर जूती जम मारे॥
डूबा रहे नर्क के माहीं। सिर काढ़े जम मारे भाई॥
कुम्भी नर्क कल्प लौं रहे बासा। मुख में नर्क नाक में स्वाँसा॥
कई जुगन लौं रहे बिहाला। फिर अघोर नर्क लै डाला॥
ह्वाँको कठिन भोग दुखदाई। तन सड़ि मरे उपजि वहि माहीं॥
निकसि न होय कधी निरबारा। गाढ़े बंध बँधे चौधारा॥
पापी जीव अधम है सोई। करम भोग भुगते जो कोई॥
करनी कीन्ह मलीन बनाई। जिन की दसा भोग दरसाई॥
नर्क अनेकन और हैं, कहँ लग करूँ बयान।
दुख भुगते यह जीव ज्यों जाने जो भोग समान॥

खानि योनि के कष्ट

ये भुगताय बहुरि सुनु भाई। जोनी खानि जुलम दुखदाई॥
खानि खानि का कहूँ निबेरा। लख चौरासी जीव बसेरा॥
भवसागर जल भरा अथाही। अंडा जीव पड़े सब माहीं॥
अंडा मद्धे जीव बिचारा। सो सब बहे चौरासी धारा॥
धार धार का कहूँ बिबेका। तो लिखने नहिं लागै लेखा॥
हे हिरदे यह अद्‌भुत बाता। लख पावे नहिं करम बिधाता॥
ब्रह्मा बासन गढ़े कुम्हारा। वोहु पुनि कर्म जोग अनुसारा॥
सिव जोगी भिच्छा में राजे। बिस्नु भोग बैकुंठ बिराजे॥

करम भोग अनुराग में, माया का बिस्तार।
तीन त्रिया तीनों लई, कर्म जोग अनुसार॥

यहि बिधि जक्त चलाई बाटा। इन भुलाय दीन्हा घर घाटा॥
सब दुनिया मारग यहि लागी। भवसागर जिव भया अभागी॥
जग में जीव करै ब्योहारा। घटी बढ़ी कछु नाहिं सिहारा॥
आवागवन भया बिस्तारा। भवसागर यों जीव बिचारा॥

संत छाप के एक जीव ने नर्क में पड़ कर सब नर्कियों का उद्धार कराया।

अब वह कथा कहूँ बिस्तारी। हिरदे सुनिये ज्ञान बिचारी॥
संत छाप जेहि जिव पै लागी। कोइ जिव भूलि गया अनुरागी॥
कूसंगति से भूल समानी। जाकी कहूँ सुनो सहदानी॥
जो कदाचि नरक में जावे। संत जाय के जहाँ छुड़ावें॥

साह असामी पै करज, जाय लेइ जहँ होय।
ऐसे संत सुभाव को, परख लीजिये सोय॥

मोहर छाप के काज सिधावें। नरक माहिं वे जीव जुड़ावें॥
अँगूठा बोरि नरक के माहीं। वहि ततछिन में नरक सुखाई॥
जोनी छूटि नरक से आवे। फिरि नर देही जोनि जुड़ावे॥

एक जीव कारन उपकारी। सब छूटे भये जीव सुखारी॥
अब नानक की साख सुनाऊँ। सोदर पौड़ी में समझाऊं॥

संत की अनूठी दया

धन धन राजा जनक है, जिन सुमिरन किया बिबेक।
एक घड़ी के सुमिरते, पापी तरे अनेक॥
ऐसा सुमिरन जानि के, संतन पकड़ी टेक।
नानक सुमिरन सार है, बिसरे घड़ी न एक॥

नानक जाय अँगूठा बोरा। नरक जीव के बंधन तोड़ा॥
ऐसी साख समझ कोई बूझे। तिमिर जाय आँखी से सूझे॥
साखी देन का कारन नाहीं। अंधे जीव भरम के माहीं॥
जो बड़ भाग दया वे करईं। तो कदाचि बंधन निरबरई॥
जुग जुग भूले जीव अनेका। दया भाव सतगुरु से ठेका॥
संत दया की रीति नियारी। बार बार चरनन पर वारी॥
जो कुछ करें करें सोइ संता। संत बिना नहिं पावे पंथा॥
सतगुरु सो जोइ राह बतावें। भूले को मारग दरसावें॥

सतगुरु संत दयाल से, करम रेख मिटि जाय।
मन तन सूरति साँच से, ज्यों का त्यों रहि जाय॥

हिरदे अजब वोहि रीति घर की, संत से नाहीं बड़ी।
जहँ लौं निगम कहे बाक बानी, सो सभी नीचे पड़ी॥
आगे अगम बेअंत मारग, सुरति वहिं जा कर अड़ी।
जहँ लोक लखन अलोक लखि कर, गगन पर सूरति चढ़ी॥
तक सूर सन्मुख दृस्टि धरि कर, नेह निसाने पै गड़ी।
सूरति सिखर के पार होइ कर, कँवल पखड़ी से कढ़ी॥
चढ़ते पलक नहि बार उनको, निमख नहिं लागे घड़ी।
छोड़े सकल सँग साथ सबको, फौज तजि पहुँची छड़ी॥

सबको दिये छिटकाय करिके, सुरति सत मत से लड़ी।
यहि भाँति साथ जड़ाव कुन्दन, नग अँगूठी ज्यों जड़ी॥
अंदर अलख के पार पद में, पुरुष के आगे खड़ी।
भयो मेल मिलन मिलाप पिव को, संत के सरने पड़ी॥
सत पुरुष संत दयाल दिल ले, सुरति सज्जन की बड़ी।
कैसे नरक दुख खानि में से, काढ़ि लें वोही घड़ी॥
ऐसे पुकारें साख सब कहें, संत की बातें बड़ी।
सब सुन स्रवन पर हाथ डारे, संत पट खोलें कड़ी॥

सन्त सरन जो जिव रहे, गहे जो उनकी बाँह।
थाह बतावें समुद की, बल्ली भवजल माहिं॥

ऐसे हिरदे संत सुभावा। भवजल पार लगावें थावा॥
जहाज सुरति उनकी नित चाले। समुदर पार भरावें माले॥
भरती भरें सुरति की डोरी। पहुँचे पार जहाज को छोड़ी॥
माल बिलायत में जा बेंचें। मेवा आनि खरीदी खैंचें॥
जम्बू दीप मुलुक के माहीं। खलक माल को चीन्हे नाहीं॥
गली गली में ले दरसावें। मेवा ल्यौ जो जिनको चावैं॥
बार बार कहि कर गोहरावें। कोइ मेवा के पास न आवें॥
देखे सुने समझ कर कहते। यह तो माल बड़ा कछु लेते॥
भाव सुने पर मूड़ हिलावें। साँची मानि बहुरि नहिं आवें॥

तन मन से साँची कहैं, खरी खरी बतलान।
पल्ले में डालैं जबै, खैंचै खूँट निदान॥

कदर बिना नहिं माल बिकाना। संत दिसावर बड़ी न जाना॥
मेवा मोल खरीदी नाहीं। वह सवाद कहो क्योंकर पाई॥
देखे सुने खाय मुख माहीं। सो कीमत को जाने भाई॥
लिया दिया देखा नहिं आँखी। वह कहा परख कहेंगे भाखी॥
यह संतन का माल अगूढ़ा। सो का जाने जग मन मूढ़ा॥
यह तौ नाज खरीदा चावे। धर गठरी सिर ऊपर लावे॥

धड़ा पसेरी तोल पिछाने। यहि विधि माल संत का जाने॥
गठरी बाँधि लेउँ सब सारी। यह जाने यों माल अनारी॥
संत मता दुरलभ कहैं, सतसंग में गोहराय।
बड़े बड़े हारे सभी, संतन की गति गाय॥

— रत्न सागर, पृ. 78-89

[3]

सतगुर दीन दयाल बिन जुग जुग मारे जायँ॥
जुग जुग मारे जायँ खायँ फिर जम की लाती॥
ऐसे मूरख लोग चलैं वाही के साथी॥
सुन सुन कथा पुरान जान कर जनम बिगारा॥
सिम्रित सास्तर बेद काल ने किया पसारा॥
तुलसी सतसंग संत बिन फिर फिर खेही खायँ॥
सतगुर दीनदयाल बिन जुग जुग मारे जायँ॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 33

[4]

सब्द सब्द सब कहत हैं सब्द सुन्न के पार॥
सब्द सुन्न के पार सार सोई सब्द कहावै॥
पच्छिम द्वार के पार पार के पार समावै॥
दो दल कँवल मँझार मद्ध के मधि में आवै॥
संतन दिया लखाय सार सोइ सब्द कहावै॥
तुलसी सत सतलोक से कहूँ कुछ भेद निनार॥
सब्द सब्द सब कहत हैं सब्द सुन्न के पार॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 39

ग़ज़ल

सुन ऐ तक़ी न जाइयो ज़िनहार देखना।[1]
अपने में आप जलवाए दिलदार देखना॥
पुतली में तिल है तिल में भरा राज़ कुल का कुल।[2]
इस परदाए सियाह के ज़रा पार देखना॥[3]
चौदह तबक़ का हाल अयां हो तुझे ज़रूर।[4]
ग़ाफ़िल न हो ख़याल से हुशियार देखना॥
सुन ला-मकाँ पे पहुंच के तेरी पुकार है।
है आ रही सदा से सदा यार देखना॥[5]
मिलना तो यार का नहीं मुशकिल मगर तक़ी।
दुशवार तो यह है कि है दुशवार देखना॥[6]
तुलसी बिना करम किसी मुरशिद रसीदा के।[7]
राहे निजात दूर है उस पार देखना॥[8]

— संतबाणी, पृ. 45

भेद पिण्ड और ब्रह्माण्ड का

स्रुति बुँद सिंध मिलाप, आप अधर चढ़ि चाखिया।
भाखा भोर भियान, भेद भान गुरु स्रुति लखा॥

स्रुति सिंध

छन्द

सत सुरति समझि सिहार साधौ। निरखि नित नैनन रहौ॥
धुनि धधक धीर गँभीर मुरली। मरम मन मारग गहौ॥

---

1. **ज़िनहार**=कदापि, कभी किसी हालत में; **सुन...देखना**=ऐ तक़ी, कभी किसी हालत में भी परमात्मा को बाहर न खोजना। 2. **राज़**=भेद। 3. **सियाह**=काला परदा यानी तीसरा तिल। 4. **चौदह तबक़**=चौदह लोक; **अयां**=प्रकट। 5. **सदा से**=हमेशा से; **सदा**=आवाज़। 6. **दुशवार**=कठिन, मुश्किल। 7. **करम**=कृपा, दया; **मुरशिद रसीदा**=पहुँचा हुआ गुरु, कामिल मुर्शिद। 8. **राहे निजात**=मुक्ति का मार्ग।

सम सील लील अपील पेलै। खेल खुलि खुलि लखि परै॥
नित नेम प्रेम पियार पिउ कर। सुरति सजि पल पल भरै॥
धरि गगन डोरि अपोर परखै। पकरि पट पिउ पिउ करै॥
सर साधि सुन्न सुधारि जानौ। ध्यान धरि जब थिर थुवा॥
जहँ रूप रेख न भेष काया। मन न माया तन जुवा॥
अलि अंत मूल अतूल कँवला। फूल फिरि फिरि धरि धसै॥
तुलसि तार निहार सुरति। सैल सत मत मन बसै॥

छन्द 2

हिये नैन सैन सुचैन सुन्दरि। साजि स्रुति पिउ पै चली॥
गिर गवन गोह गुहारि मारग। चढ़त गढ़ गगना गली॥
जहँ ताल तट पट पार प्रीतम। परसि पद आगे अली॥
घट घोर सोर सिहार सुनि के। सिंध सलिता जस मिली॥
जब ठाट घाट बैराट कीन्हा। मीन जल कँवला कली॥
अली अंस सिंध सिहार अपना। खलक लखि सुपना छली॥
अस सार पार सम्हारि सूरति। समझि जग जुगजुग जली॥
गुरु ज्ञान ध्यान प्रमान पद बिन। भटकि तुलसी भौ मिली॥

छन्द 3

अलि अधर धार निहारि निज कै। निकरि सिखर चढ़ावही॥
जहँ गगन गंगा सुरति जमुना। जतन धार बहावही॥
जहँ पदम प्रेम प्रयाग सुरसरि। धुर गुरू गति गावही॥
जहँ संत आस बिलास बेनी। बिमल अजब अन्हावही॥
कृत कुमति काग सुभाग कलि मल। कर्म धोइ बहावही॥
हिये हेरि हरष निहारि घर कौ। पार हंस कहावही॥
मिलि तूल मूल अतूल स्वामी। धाम अबिचल बसि रही॥
अलि आदि अंत बिचारि पद कौ। तुलसि तब पिव की भई॥

— घट रामायण, भाग 1, पृ. 1-2

बानी गोस्वामी तुलसीदास जी

सतगुरु की चरण-धूलि की महिमा

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि॥[1]
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥[2]
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥[3]
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥[4]
सुकृति संभु तन बिमल बिभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी। किएँ तिलक गुन गन बस करनी॥[5]
श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू॥[6]
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥[7]
सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥[8]
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान॥[9]
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥[10]
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन॥

— मानस 1. सोरठा.5-1.1

---

1. **गुरु...कंज**=गुरु के चरण-कमल। 2. **महामोह...जासु**=महामोह के घोर अन्धकार के लिए; **रबि...निकर**=सूर्य की किरणों के समूह। 3. **गुरु...परागा**=गुरु के चरण-कमलों का पराग। 4. **मूरिमय**=अमर मूल, संजीवनी जड़ी; **चूरन चारू**=सुन्दर चूर्ण है; **समन**=शान्त करना, मिटाना; **भव रुज**=सांसारिक रोग। 5. **मुकुर**=आईना। 6. **दलन...तम**=मोह या अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटानेवाला। 7. **ही के**=हृदय के; **भव रजनी**=संसार रूपी रात्रि। 8. **गुपुत...खानिक**=गुप्त और प्रकट जहाँ जो जिस खान में हैं, दिखाई पड़ने लगते हैं। 9. **दृग**=आँख। 10. **भूतल...निधान**=पृथ्वी के अन्दर के बहुत से ख़ज़ाने।

मनुष्य जीवन

एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥[1]
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥[2]
सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥[3]
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥[4]
बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।[5]
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥[6]
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥[7]
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥[8]
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥[9]
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

---

1. **द्विज**=गुरु-दीक्षा द्वारा दूसरा जन्म पाकर परमार्थ की साधना करने वाला। 2. **भव भंजन**=आवागमन को दूर करने वाले। 3. **बानी**=बचन। 4. **बरजहु**=रोकना। 5. **परत्र**=लोक और परलोक में। 6. **स्वल्प**=थोड़े समय के लिए। 7. **सुधा**=अमृत। 8. **मरुत**=हवा। 9. **करनधार**=केवट।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥[1]
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥
भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥[2]

— मानस 7.42.1-7.44.3

ब्रह्म और राम से नाम की विशेषता

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥
सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥
नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥[3]
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥[4]
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥[5]
जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥[6]
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥[7]

---

1. **प्रत्यूह**=विघ्न, बाधा। 2. **संसृति**=जन्म-मरण का चक्कर। 3. **बिरति...प्रपंच**=ब्रह्मा के बनाये सांसारिक झमेले से अलग। 4. **अनामय**=माया रहित, निर्दोष। 5. **अनिमादिक**=अणिमा आदि (आठ) सिद्धियाँ ये हैं— अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकम्य, ईभित्व और वभित्व। 6. **आरत**=दु:खी। 7. **सुकृती**=पुण्यात्मा; **अनघ**=पाप रहित, निष्पाप।

चहू चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष ह्रद तिन्हहुँ किए मन मीन॥[1]

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥[2]
प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की॥[3]
एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥[4]
उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म राम तें॥[5]
ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥[6]
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें॥[7]

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम तें निज बिचार अनुसार॥

राम भगत हित नर तनु धारी। सहि संकट किए साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मंगल बासा॥
राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥[8]
रिषि हित राम सुकेतुसुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥[9]
सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबि निसि नासा॥[10]
भंजेउ राम आपु भव चापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू॥[11]
दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जन मन अमित नाम किए पावन॥[12]
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥[13]

---

1. **पियूष**=अमृत। 2. **जुग**=(अगुण और सगुण) दोनों को; **निज...बूतें**=अपनी ताक़त से अपने वश में। 3. **प्रौढ़ि सुजन**=सज्जन पुरुष। 4. **दारुगत**=काठ के अन्दर; **पावक**=आग। 5. **उभय...जुग**=दोनों ही जानने में कठिन हैं। 6. **अबिकारी**=विकार रहित। 7. **निरूपन**=प्रकाशित या प्रकट होना। 8. **तापस तिय**=तपस्वी गौतम की स्त्री (अहल्या)। 9. **सुकेतुसुता**=सुकेतु यक्ष की पुत्री (ताड़का); **बिबाकी**=समाप्त कर देना। 10. **रबि... नासा**=सूर्य जैसे रात्रि को नष्ट कर देता है। 11. **भव चापू**=शिव का धनुष। 12. **अमित**=असीम, बेहद। 13. **निकर**=सेना, समूह।

सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल बेद बिदित गुन गाथ॥
राम सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥[1]
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥[2]
राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥[3]
नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥
राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥
फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥
ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि।[4]
रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

— मानस 1.20.1-1.25

नवधा भक्ति

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।[5]
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥[6]
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥[7]
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥[8]
नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥[9]
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥[10]

---

1. **सुकंठ**=सुग्रीव। 2. **बिरिद**=यश। 3. **कटकु**=सेना; **सेतु**=पुल। 4. **बर दायक... दानि**=यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। 5. **पानि**=हाथ। 6. **अस्तुति**=स्तुति, गुणगान। 7. **भामिनि**=स्त्री (शबरी)। 8. **बारिद**=बादल। 9. **नवधा**=नौ अंगों वाली। 10. **रति**=प्रेम।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।[1]
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥[2]
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥[3]
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥
मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

— मानस 3.34.1-3.35.5

सन्तों के लक्षण

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥[4]
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा॥[5]
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी॥[6]
सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥[7]
गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।[8]
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥[9]
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं। पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं॥
सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती॥

---

1. **अमान**=मान रहित। 2. **दम**=इन्द्रियों को वश में करना; **निरत**=लीन। 3. **दीना**=दुःखी होने का भाव। 4. **भव...भीरा**=भवसागर के भय (जन्म-मरण के भय) को नाश करने वाले। 5. **अनघ**=पाप रहित; **अकामा**=कामना रहित। 6. **मितभोगी**=कम खाने वाले; **कोबिद**=ज्ञानी, विद्वान। 7. **मानद**=मान या प्रतिष्ठा देने वाले। 8. **गुनागार**=गुणों का भण्डार। 9. **चरन सरोज**=चरण-कमल; **गेह**=घर।

जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत सीला॥[1]
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥[2]

कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए॥

— मानस 3.44.3–3.45 छन्द

संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगनित श्रुति पुरान बिख्याता।[3]
संत असंतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चंदन आचरनी॥[4]
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥[5]

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखंड।[6]
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दंड॥[7]

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥[8]
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥[9]
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥[10]
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥[11]

---

1. **परहित...सीला**=दूसरों के हित में लगे रहने वाले। 2. **सारद**=सरस्वती; **श्रुति**=वेद। 3. **बिख्याता**=प्रसिद्ध, मशहूर। 4. **कुठार**=कुल्हाड़ी। 5. **परसु**=एक प्रकार की कुल्हाड़ी; **मलय**=मलयगिरि का चन्दन। 6. **श्रीखंड**= चन्दन। 7. **अनल**=आग; **दाहि**=जलाकर। 8. **गुनाकर**=गुणों की खान। 9. **अभूतरिपु**=जिसका कोई शत्रु नहीं है; **बिमद**=अभिमान से रहित; **लोभामरष**=लोभ और क्रोध। 10. **अमाया**=माया से रहित। 11. **मुदितायन**= प्रसन्नता के घर।

सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥[1]
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥[2]
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥[3]
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।[4]
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज॥

— मानस 7.36.3-7.38

ज्ञान और भक्ति का अंतर

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥[5]
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना॥[6]
भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥[7]
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु बिहंगबर॥[8]
ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना॥[9]
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती॥
पुरुष त्यागि सक नारिहि जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयाबस बिमुख जो पद रघुबीर।[10]
सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी बिधु मुख निरखि।[11]
बिबस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।[12]
इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। बेद पुरान संत मत भाषउँ॥[13]
मोह न नारि नारि कें रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानइ सब कोऊ॥

---

1. **द्विज**=गुरु-दीक्षा द्वारा दूसरा नया जन्म पाकर परमार्थ की साधना करनेवाला; **जनयत्री**=जननी; सच्चे धर्म को जन्म देनेवाली। 2. **फुर**=सच्चा। 3. **परुष**=कठोर। 4. **उभय**=दोनों। 5. **कृपा निकेता**=हे कृपा के धाम। 6. **उरगारि बचन**= गरुड़ जी के बचन। 7. **हरहिं**=दूर करते हैं। 8. **बिहंगबर**= पक्षी श्रेष्ठ। 9. **हरिजाना**=हरि के वाहन अर्थात् गरुड़ जी। 10. **बिषयाबस**=विषयों के वश में। 11. **मृगनयनी**=सुन्दर युवती; **बिधु मुख**=चन्द्रमुख। 12. **बिबस**=विवश; **बिष्नु**=विष्णु। 13. **पच्छपात**= पक्षपात; **भाषउँ**=कहता हूँ।

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥[1]
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥[2]
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी॥

यह रहस्य रघुनाथ कर बेगि न जानइ कोइ॥[3]
जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ॥
औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन॥
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन॥[4]

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥[5]
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥[6]
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥
जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥[7]
सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥[8]
नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै॥[9]

---

1. **निरुपम**=उपमा रहित; **निरुपाधी**=उपाधि रहित (विशुद्ध)। 2. **बिलोकि**=देखकर। 3. **बेगि**=जल्दी। 4. **अबिछीन**=अभंग, एकतार 5. **कीर**=तोता; **मरकट**=बन्दर। 6. **ग्रंथि**=गाँठ; **मृषा**=झूठ। 7. **निरुअरई**=सुलझना। 8. **तृन हरित**=हरा घास। 9. **तोष मरुत**=संतोष रूपी हवा; **धृति**=धीरज।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥
जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ॥
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ॥[1]
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ॥[2]
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।[3]
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥[4]
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥[5]
सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥[6]
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा। उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा॥[7]
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह जीव कृतारथ होई॥[8]
छोरत ग्रंथि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करइ तब माया॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई॥
कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल बात बुझावहिं दीपा॥[9]
होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह तन चितव न अनहित जानी॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥[10]

---

1. **बिसद**=विशुद्ध, निर्मल। 2. **दिअटि**=दिया। 3. **कपास तें काढ़ि**=तीनों गुण रूपी कपास से निकाल कर । 4. **तूल तुरीय सँवारि**=तुरीयावस्था रूपी रूई को सँवार कर। 5. **जातहिं....सब**=जिसके समीप जाते ही मद (उन्माद , गर्व) आदि सब पतंगे जल जायें। 6. **सोहमस्मि**=मैं वह ब्रह्म हूँ। 7. **उर...निरुआरा**=(बुद्धि) हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन की गाँठ को खोलती है। 8. **छोरन...सोई**=यदि (विज्ञान रूपी बुद्धि) उस गाँठ को खोल ले। 9. **अंचल...दीपा**=आंचल की हवा उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझा देती है। 10. **तौ...उपाधि**=तो फिर देवता विघ्न पैदा करते हैं।

इंद्रीं द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥[1]
जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप बिग्यान बुझाई॥[2]
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥[3]
इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥[4]
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥[5]

तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस॥[6]
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिबेक॥
होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक॥[7]
ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥[8]
जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥
भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी॥[9]
असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।[10]
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

---

1. **बिषय बयारी**=विषय रूपी वायु। 2. **जब...जाई**=ज्यों ही वह तेज़ हवा हृदय रूपी घर में जाती है। 3. **बुद्धि...बतासा**=विषय रूपी हवा। 4. **इंद्रिन्ह...सोहाई**=इन्द्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान नहीं सुहाता। 5. **भोरी**=बावली; **बहोरी**=जलाना। 6. **संसृति क्लेस**=आवागमन के दु:ख। 7. **होइ...अनेक**=यदि संयोग से कभी यह ज्ञान हो भी जाये तो फिर उसे कायम रखने में अनेकों विघ्न हैं। 8. **परत...बारा**=हे पक्षिराज! इस मार्ग से गिरते देर नहीं लगती। 9. **जिमि...जठरागी**=जैसे भोजन को जठराग्नि (पेट की आग) अपने आप पचा लेती है। 10. **उरगारि**=हे सर्पों के शत्रु गरुड़ जी।

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य॥
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥
कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई। सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई॥
राम भगति चिंतामनि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥[1]
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥[2]
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥[3]
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥[4]
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई॥
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं भटभेरे॥[5]
पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥[6]
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

— मानस 7.114(ख).6 - 7.119.10

---

1. **नहिं...बाती**=उसे (प्रकाश) के लिए दीपक, घी और बत्ती—किसी की आवश्यकता नहीं। 2. **लोभ बात**=लोभ रूपी हवा। 3. **गरल...होई**=विष अमृत के समान और शत्रु मित्र हो जाता है। 4. **जे...कराहीं**=जो उस भक्ति रूपी मणि के लिए भली भाँति यत्न करते हैं। 5. **नर...भटभेरे**=पर अभागे मनुष्य उन्हें ठुकरा देते हैं। 6. **मर्मी सज्जन**=संन्तजन; **सुमति कुदारी**=उनकी सुमति कुदाल (खोदने वाली) के समान है।

प्रेम और भक्ति

[चात्रक का दृष्टान्त]

एक भरोसा एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाँति सलिल गुरु चरन हैं, चात्रिक तुलसी दास॥[1]
ऊँची जाति पपोहरा, नीचो पियत न नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै सरीर॥[2]
गंगा जमुना सरसुती, सात सिंधु भरिपूर।[3]
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाँती सब धूर॥[4]

— संतबानी संग्रह, भाग 1, पृ. 221-222

जौं घन बरषें समय सिर, जौं भरि जनम उदास।[5]
तुलसी या चित चातकहि, तऊ तिहारी आस॥[6]
चातक तुलसी के मतें, स्वातिहुँ पिऐ न पानि।[7]
प्रेम तृषा बाढ़ति भली, घटें घटैगी आनि॥[8]
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग।[9]
तुलसी चातक प्रेम को, नित नूतन रुचि रंग॥[10]
चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोष।[11]

---

1. **सलिल**=जल, पानी। 2. **याचै**=माँगता है; **घनश्याम**=काले बादलों से। 3. **सिंधु**=समुद्र। 4. **चातक...मते**=(चात्रक की) दृष्टि में। 5. **घन**=बादल; **सिर**=वक़्त पर, ठीक समय पर; **उदास**=चाहे चात्रक पूरे जीवन में भी उदास रहे अर्थात् बादल न बरसे। 6. **तुलसी...आस**=तुलसीदास जी कहते हैं कि हे प्रभु! मेरे चात्रक रूपी चित्त को फिर भी तेरी ही आस रहेगी। 7-8. **चातक...आनि**=तुलसीदास जी कहते हैं कि हे चात्रक! मेरी सलाह है कि तू स्वाति नक्षत्र से बरसा हुआ पानी भी न पीना, क्योंकि (प्रभु के) प्रेम की प्यास तो हमेशा बढ़ती ही रहनी चाहिए; अगर घट गयी तो प्रेम की शान भी घट जायेगी। 9. **लटी**=थक कर लड़खड़ा गयी; **तृषा**=प्यास से; **सूखि गे**=सूख गये। 10. **नित...रंग**=इतने पर भी चात्रक के प्रेम का रंग और रूप हर रोज़ निखरता ही जाता है। 11. **पयोद**=बादल।

तुलसी प्रेम पयोधि की, ताते नाप न जोख॥[1]
उपलि बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।[2]
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुं दूसरी ओर॥[3]
मान राखिबो माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।[4]
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु॥[5]
तुलसी चातक माँगनो, एक एक घन दानि।[6]
देत जो भू भाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि॥[7]
जीव चराचर जहँ लगें, हैं सब को हित मेह।[8]
तुलसी चातक मन बस्यो, घन सों सहज सनेह॥[9]
बास बेस बोलनि चलनि, मानस मंजु मराल।[10]
तुलसी चातक प्रेम की, कीरति बिसद बिसाल॥[11]

— तुलसीदास की दोहावली, पृ. 95-100

---

1. **प्रेम...की**=प्रेम के अथाह समुद्र की; **ताते**=इसलिए; **नाप...जोख**=माप-तोल नहीं हो सकता, थाह नहीं पायी जा सकती। 2. **उपलि बरषि**=ओले बरसाता है; **गरजत तरजि**=कड़क कर गरजता है; **डारत...कठोर**=कठोरता के साथ बिजलियाँ गिराता है। 3. **चितव...ओर**=परन्तु चात्रक बादल को छोड़कर कभी दूसरी ओर नहीं देखता। 4-5. **मान...लेहु**=मान रखना, माँगना और फिर भी प्रियतम के लिए बराबर प्रेम बनाये रखना— ये तीनों बातें चात्रक जैसे प्रेमी को ही शोभा देती हैं। चात्रक इतना मान रखता है कि सिवाय बादल के किसी और से कुछ नहीं माँगता, वह माँगनेवाला भी ऐसा है कि माँगते हुए कभी थकता नहीं, और न मिलने पर भी उसी तरह प्रेम बनाये रखता है। 6. **तुलसी...दानि**=तुलसीदास जी कहते हैं कि चात्रक ही एक निराला मांगनेवाला है और बादल भी एक ही (अद्वितीय) दानी है। 7. **देत...पानि**=बादल इतना देता है कि धरती के सब बरतन (तालाब, कुएँ वग़ैरह) भर जाते हैं, पर चात्रक तो प्रेम के अमृत की केवल एक बूंद ही लेता है। 8-9. **जीव...सनेह**=सभी प्राणियों के लिए बादल हितकारी (लाभ देनेवाला) है, परन्तु चात्रक का ख़याल लाभ या हानि की ओर नहीं। उसके मन में तो बादल के लिए सिर्फ़ निश्छल और पवित्र प्रेम ही बसा हुआ है। 10-11. **बास...बिसाल**=हंस का निवास स्थान मानसरोवर है, वेष (रंग-रूप) और आवाज़ मनोहर है, चाल-ढाल (मोती चुगना तथा दूध और पानी को अलग-अलग करना) निराली है। इन सभी गुणों में वह चातक से कहीं बढ़ कर है, परन्तु चातक के प्रेम की महानता के सामने ये गुण कुछ भी नहीं हैं, अर्थात् प्रभु का प्रेम अन्य सभी गुणों और ख़ूबियों से बढ़ कर है, ईश्वर का प्रेम ही सबसे महान् है।

बानी दयाबाई जी

[1]

गुरु बिन ज्ञान ध्यान नहिं होवै। गुरु बिन चौरासी मग जोवै॥
गुरु बिन राम भक्ति नहिं जागै। गुरु बिन असुभ कर्म नहिं त्यागै॥
गुरु ही दीन-दयाल गोसाईं। गुरु सरनै जो कोई जाई॥
पलटैं करैं काग सूँ हंसा। मन को मेटत हैं सब संसा॥
गुरु हैं सव देवन के देवा। गुरु को कोउ न जानत भेवा॥
करुना-सागर कृपा-निधाना। गुरु हैं ब्रह्म रूप भगवाना॥
हानि लाभ दोउ सम करि जानैं। हृदै ग्रंथ नीकी बिधि भानैं॥[1]
दै उपदेस करैं भ्रम नासा। ''दया'' देत सुख-सागर बासा॥
गुरु को अहि निसि ध्यान जो करिये। बिधिवत सेवा में अनुसरिये॥[2]
तन मन सूँ अज्ञा में रहिये। गुरु अज्ञा बिन कछू न करिये॥
गुरु अज्ञा मेटीजै नाहीं। भावै देह पात है जाही॥
होय गुरमुखी जग में रहै। सिर पर सीत ऊस्न सब सहै॥

— दयाबाई की बानी, पृ. 2-3

---

1. **ग्रंथ**=गांठ; **भानैं**=तोड़ना, खोलना। 2. **अहि निसि**=दिन-रात; **अनुसरिये**=लगें।

[2]

गुरु सब्दन कूँ ग्रहण करि बिषयन कूँ दे पीठ॥
गोबिंद रूपी गदा गहि मारो कमरन डीठ॥
जग तजि हरि भजि दया गहि, कूर कपट सब छाँड़॥
हरि सनमुख गुर-ज्ञान गहि, मनहीं सूँ रन माँड़॥[1]
सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कवंद॥[2]
लोक लाज कुल कान कूँ, तोड़ि होत निरबंद॥
सुनत सबद नीसान, मन में उठत उमंग॥[3]
ज्ञान गुरज हथियार गहि, करत जुद्ध अरि संग॥[4]
जो पग धरत सो द्रिड़ धरत, पग पाछे नहिं देत॥
अहंकार कूँ मार करि, राम रूप जस लेत॥
आप मरन भय दूर करि, मारत रिपु को जाय॥[5]
महा मोह दल दलन करि, रहै सरूप समाय॥
सूरा सन्मुख समर में, घायल होत निसंक॥[6]
यों साधू संसार में, जग के सहैं कलंक॥
कायर कंपै देख करि, साधू को संग्राम॥
सीस उतार भुइँ धरै, जब पावै निज ठाम॥

— दयाबाई की बानी, पृ. 5

---

1. **रन माँड़**=लड़ाई कर। 2. **बिन...कवंद**=बिना सिर के धड़ से ही लड़ता रहता है। 3. **नीसान**=डंका। 4. **गुरज**=गदा; **अरि**=दुश्मन। 5. **रिपु**=दुश्मन। 6. **समर**=लड़ाई।

बानी दरिया साहिब जी (मारवाड़ वाले)

[1]

कहा कहूँ मेरे पिउ की बात, जो रे कहूँ सोइ अंग सुहात॥
जब मैं रही थी कन्या क्वारी, तब मेरे करम हता सिर भारी॥[1]
जब मेरी पिउ से मनसा दौड़ी, सतगुरु आन सगाई जोड़ी॥
तब मैं पिउ का मंगल गाया, जब मेरा स्वामी ब्याहन आया॥
हथलेवा दे बैठी संगा, तब मोहिं लीनी बाँयें अंगा॥
जन दरिया कहै मिटिगइ दूती।, आपो अरप पीव सँग सूती॥[2]

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 46

[2]

*दरिया दरबारा, खुल गया अजर किवाड़ा॥
चमकी बीज चली ज्यों धारा, ज्यों बिजली बिच तारा॥
खुल गया चन्द बन्द बदरी का, घोर मिटा अँधियारा॥
लौ लगी जाय लगन के लारा, चाँदनी चौक निहारा॥
सूरत सैल करै नभ ऊपर, बंकनाल पट फाड़ा॥
चढ़ गइ चाँप चली ज्यों धारा, ज्यों मकड़ी मक-तारा॥
मैं मिली जाय पाय पिउ प्यारा, ज्यों सलिता जलधारा॥
देखा रूप अरूप अलेखा, ता का वार न पारा॥
दरिया दिल दरवेस भये तब, उतरे भौजल पारा॥

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 51

---

1. **हता**=था। 2. **दूती**=दुई, द्वैत।

* इस शब्द में दरिया साहिब आत्मा की रूहानी मण्डलों में चढ़ाई का वर्णन करते हैं।

[3]

नाम बिन भव करम नहिं छूटै॥
साध संग और राम भजन बिन, काल निरंतर लूटै॥
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै॥
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल ताँता टूटै॥
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़ पड़ फूटै॥
गुरमुख सब्द गहै उर अंतर, सकल भरम से छूटै॥
राम का ध्यान तू धर रे प्रानी, अमृत का मेंह बूटै॥[1]
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै॥

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 40

[4]

पतिब्रता पति मिली है लाग, जहँ गगन मँडल में परम भाग॥ टेक॥
जहँ जल बिन कँवला बहु अनंत। जहँ बपु बिन भौंरा गोह करंत॥[2]
अनहद बानी अगम खेल। जहँ दीपक जरै बिन बाती तेल॥
जहँ अनहद सब्द है करत घोर। बिन मुख बोलै चात्रिक मोर॥
बिन रसना गुन उदत नार। पाँव बिन पातर निरतकार॥[3]
जहँ जल बिन सरवर भरा पूर। जहँ अनंत जोत बिन चंद सूर॥
बारह मास जहँ ऋतु बसंत। ध्यान धरैं जहँ अनंत संत॥
त्रिकुटी सुखमन चुवत छीर। बिन बादल बरखै मुक्ति नीर॥
अमृत धारा चलै सीर। कोइ पीवै बिरला संत धीर॥[4]
ररंकार धुन अरूप एक। सुरत गही उनही की टेक॥
जन दरिया बैराट चूर। जहँ बिरला पहुँचै संत सूर॥

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 37

---

1. **बूटै**=बरसै। 2. **बपु**=शरीर; **गोह**=गुंजार। 3. **बिन...निरतकार**=जहाँ नारी बिना जिह्वा के गुण गा रही है और नर्तकी बिना पाँव के नाच रही है। 4. **सीर**=शीतल, ठंडी।

[5]

बाबल कैसे बिसरा जाई॥[1]
जदि मैं पति सँग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई॥ टेक॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई।[2]
अब मेरे साँईं को सरम पड़ैगी, लेगा चरन लगाई॥
थे जानराय मैं बाली भोली, थे निर्मल मैं मैली।[3]
वे बतलाएँ मैं बोल न जानूँ, भेद न सकूँ सहेली॥
थे ब्रह्म भाव में आतम कन्या, समझ न जानूँ बानी।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निस्चय कर जानी॥

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 43

[6]

संतो कहा गृहस्त कहा त्यागी॥
जेहि देखूं तहि बाहर भीतर, घट घट माया लागी॥ टेक॥
माटी की भीत पवन का थंबा, गुन औगुन से छाया॥
पाँच तत्त आकार मिला कर, सहजाँ गिरह बनाया॥
मन भयो पिता मनसा भइ माई, दुख सुख दोनों भाई॥
आसा तृस्ना बहिनें मिलकर, गृह की सौंज बनाई॥[4]
मोह भयो पुरुष कुबुध भइ धरनी, पाँचो लड़का जाया॥
प्रकृति अनंत कुटुंबी मिलकर, कलहल बहुत उपाया॥

— दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 49

---

1. **बाबल**=बाप। 2. **परनाई**=ब्याह कराया। 3. **जानराय**=सर्वज्ञाता। 4. **सौंज**=सामान।

बानी दरिया साहिब जी (बिहार वाले)

शाकाहार

जोगी तेजु निग्रह जोग।[1]
ज्ञान भक्ति बिचारि देखो मीन मासु न भोग॥
पिवो बारुन बुड़न चाहो बिखम सागर सोए॥[2]
कहर है दरियाव आगे बहुरि चलिहौ रोए॥
ज्ञान आंकुस हाथ करि जंजीर जकरे बांधु॥[3]
पांच के परबोध के तब ज्ञान सतगुर साधु॥[4]
जुक्ति जाने मुक्ति सोई मुक्त सादा साथ॥
कहें दरिया दरस कीजे परखि हीरा हाथ॥

— दरिया ग्रन्थावली, भाग 1, पृ. 110

प्रेम

तुम मेरो साईं मैं तेरो दास, चरन कँवल चित मेरो बास॥
पल पल सुमिरौं नाम सुबास, जीवन जग में देखो दास॥
जल में कुमुदिनि चन्द अकास, छाइ रहा छबि पुहुप बिलास॥
उनमुनि गगन भया परगास, कह दरिया मेटा जम त्रास॥

— संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. 130

---

1. **जोग**=हठ योग। 2. **बारुन**=शराब। 3. **जकरे**=जकड़ कर, कसकर। 4. **पांच... के**=पाँचों इन्द्रियों को समझाकर शान्त करना।

उपदेश

पेड़ को पकड़ तब डार पालो मिलै। डार गहि पकड़ नहिं पेड़ यारा।[1]
देख दिब दृष्टि असमान में चन्द्र है। चन्द्र की जोति अनगिनित तारा॥
आदि औ अंत सब मध्य है मूल में। मूल में फूल धौं केति डारा।
नाम निर्गुन निर्लेप निर्मल बरै। एक से अनंत सब जगत सारा॥
पढ़ि बेद कितेब बिस्तार बक्ता कथै। हारि बेचून वह नूर न्यारा।
निर्पेच निर्बान नि:कर्म नि:भर्म वह। एक सर्वज्ञ सत नाम प्यारा॥
तजु मान मनी करु काम को काबु यह। खोजु सतगुरू भरपूर सूरा।
असमान कै बुन्द गरकाब हूआ। दरियाव की लहरि कहि बहुरि मूरा॥[2]

— दरिया साहिब (बिहार वाले) के शब्द, पृ. 11-12

उपदेश

भीतर मैलि चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवे है॥[3]
अविगति मुरति महल के भीतर, वा का पंथ न जोवे है॥
जुगुति बिना कोइ भेद न पावै, साधु सँगति का गोवे है॥
कहैं दरिया कुटने बे गीदी, सीस पटकि का रोवे है॥[4]

— दरिया साहिब (बिहार वाले) के शब्द, पृ. 41

---

1. **पेड़...यारा**=हे यार! पेड़ पकड़ने से डाल-पत्ती भी मिल जायेगी, पर डाल के पकड़ने से पेड़ हाथ नहीं आयेगा। 2. **गरकाब हूआ**=डूब गया; **मूरा**=मुड़ा। 3. **चहल**=कीचड़। 4. **गीदी**=भोंदू, मूढ़।

भेद

मानु सब्द जो करु बिबेक, अगम पुरुष जहँ रूप न रेख॥
अठदल कँवल सुरति लौ लाय, अजपा जपि के मन समुझाय॥
भँवरगुफा में उलटि जाय, जगमग जोति रहे छबि छाय॥
बंक नाल गहि खैंचे सूत, चमके बिजुली मोती बहुत॥
सेत घटा चहुं ओर घनघोर, अजरा जहवाँ होय अँजोर॥
अमिय कँवल निज करो बिचार, चुवत बुन्द जहँ अमृत धार॥
छव चक्र खोजि करो निवास, मूल चक्र जहँ जिव को बास॥
काया खोजि जोगी भुलान, काया बाहर पद निर्बान॥
सतगुरु सब्द जो करे खोज, कहैं दरिया तब पूरन जोग॥

— दरिया साहिब (बिहार वाले) के शब्द, पृ. 20

अनहद

होरी सद संत समाज संतन गाइया॥ टेक॥
बाजा उमँग झाल झनकारा अनहद धुन घहराइया।
झरि झरि परत सुरंग रंग तहँ, कौतुक नभ में छाइया॥
राग रुबाब अघोर तान तहँ, झिनझिन जंतर लाइया।
छवो राग छत्तीस रागिनी, गंधर्ब सुर सब गाइया॥
पाँच पचीस भवन में नाचहिं, भर्म अबीर उड़ाइया।
कहैं दरिया चित चन्दन चर्चित, सुन्दर सुभग सोहाइया॥

— दरिया साहिब (बिहार वाले) के शब्द, पृ. 23-24

बानी दादू साहिब जी

[1]

जानै अंतरजामी अचरज अकथ अनामी॥
नौ लख कँवल जुगल दल अंदर। द्वादस साहिब स्वामी॥
सूरत कड़क कँवल दल नभ पर। झटकि झटकि थिर थामी॥
जैसे जहाज चलै सागर में। बरदबान बहै धीमी॥
तैसे यार प्यार लखि पाया। तब सूरति ठहरानी॥
सूरति सब्द सब्द में सूरति। अगम अगोचर धामी॥
का से कहौं पिया सुख सारा। ज्यों तिरिया मुसकानी॥
नहिं ये जोग ज्ञान तुरिया तत। यह गति अकथ कहानी॥
चंद न सूर पवन नहिं पानी। क्योंकर करौं बखानी॥
सुन्न न गगन धरन नहिं तारा। अल्लाह रब्ब न रामा॥
कहा कहौं कहिबे की नाहीं। जानत संत सुजानी॥
बेद न भेद भेष नहिं जानत। कोऊ देत न हामी॥
दादू दृग दीदार हिये के। सूरति करति सलामी॥
मैं पिया प्यार प्यार पिय अपने। मिलि रहे एक ठिकानी॥
सूरति सार संध लखि पाई। ये गति बिरले जानी॥

— घट रामायण, भाग 2, पृ. 8

[2]

दादू जानै न कोई। संतन की गति गोई॥
अविगत अंत अंत अंतर पट। अगम अगाध अगोई॥
सुन्नी सुन्न सुन्न के पारा। अगुन सगुन नहिं दोई॥
अंड न पिंड खंड ब्रह्मंडा। सूरति सिंध समोई॥
निराकार आकार न जोती। पूरन ब्रह्म न होई॥
इनके पार सार सोई पैहै, मन तन गति पति खोई॥
दादू दीन लीन चरनन चित, मैं उनका सरनोई॥

— घट रामायण, भाग 2, पृ. 13

[3]

दादू देखा अदीदा सब कोई कहत सुनीदा॥
हवा हिरस अंदर बस कीदा। तब यह दिल भया सीधा॥
अनहद नाद गगन चढ़ गरजा। तब रस पिया अमीं दा॥
सुखमनि सुन्न सुरति महलौं। आया अजर अकीदा॥
अष्ट कँवल दल में दृग दरसन। पाया ख़ुद ख़ुदीदा॥
जैसे दूध दूध दधि माखन। बिन मथे भेद न घीदा॥
ऐसे तत्त मत्त सत साधन। तब टुक नसा पिय पीदा॥
नहिं यह जोग ज्ञान मुद्रा तत। यह गति और पदीदा॥
जो कोइ चीन्ह लीन्ह यह मारग। कारज हो गया जी दा॥
मुरसिद सत्त गगन गुरु लखिया। तन मन कीन्ह उसी दा॥
आसिक यार अधर लखि पाया। हो गया दीदम दीदा॥

— घट रामायण भाग 2, पृ. 8

संकलित दोहे

साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी साच दे, माँगै दादूदास॥ 1॥

— दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ. 179

जीवत माटी ह्वै रहै, साईं सनमुख होइ।
दादू पहिली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ॥ 2॥

— दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ. 191

दादू दावा दूर कर, निरदावे दिन काट।
केते सौदा करि गये, पंसारी के हाट॥ 3॥
दादू दावा आदि का, निरदावा कैसा।
दिल की दुरमति दूर कर, सौदा कर ऐसा॥ 4॥
नहीं तहां से सब हुआ, फिर नाहीं हो जाय।
दादू नाहीं हो रहो, साहब से लौ लाय॥ 5॥
उपजै बिनसै गुन धरै, यह माया का रूप।
दादू देखत थिर नहीं, छिन छाया छिन धूप॥ 6॥
बिपति भली गुरु संग में, काया कसौटी दुख।
नाम बिना किस काम के, दादू संपति सुख॥ 7॥
क्या मुँह ले हँसि बोलिये, दादू दीजै रोइ।
जनम अमोलक आपणा, चले अकारथ खोइ॥ 8॥

— दादू दयाल की बानी भाग 1, पृ. 98

बानी धर्मदास जी

[1]

भक्ति दान गुरु दीजिये, देवन के देवा हो॥
चरन कँवल बिसरौं नहीं, करिहौं पद सेवा हो॥
तीरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो॥
तुमहिं ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि हैं, बैकुण्ठ निवासा हो॥
सो मैं ना कछु माँगहूँ, मेरे समरथ दाता हो॥
सुख सम्पति परिवार धन, सुन्दर बर नारी हो॥
सुपनेहु इच्छा न उठै, गुरु आन तुम्हारी हो॥[1]
धरमदास की बीनती, साहेब सुन लीजै हो॥
आवागमन निवार कै, आपन करि लीजै हो॥

— धनी धर्मदास की शब्दावली, पृ. 17

[2]

सतगुरु आवो हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी॥
वाहि देस की बतियाँ रे, लावैं संत सुजान॥
उन संतन के चरन पखारौं, तन मन करौं कुरबान॥
वाहि देस की बतियाँ हम से, सतगुर आन कही॥
आठ पहर के निरखत हमरे, नैन की नींद गई॥
भूल गई तन मन धन सारा, ब्याकुल भया सरीर॥
बिरह पुकारै बिरहनी, ढरकत नैनन नीर॥
धरमदास के दाता सतगुरु, पल में कियो निहाल॥
आवागमन की डोरी कट गई, मिटे भरम जंजाल॥

— धनी धर्मदास की शब्दावली, पृ. 10

---

1. **सुपनेहु...हो**=हे सतगुरु! सपने में भी मेरे मन में तेरे सिवाय किसी चीज़ की चाहत न हो।

बानी नाभा जी

*नाभा नभ खेला, सुरति केल सर सैला॥
दरपन नैन सैन मन मांजा, लाजा अलख अकेला॥
पल पर दल दल ऊपर दामिनि, जोत में होत उजेला॥
अंडा पार सार लखि सूरति, सुन्नी सुन्न सुहेला॥
चढ़ि गई धाय जाय गढ़ ऊपर, सबद सुरति भया मेला॥
ये सब खेल अपेल अमेला, सिंध नीर नद मेला॥
जल जलधार सार पद जैसे, नहीं गुरु नहिं चेला॥
नाभा नैन ऐन अन्दर के, खुल गये निरखि निहाला॥
संत उचिष्ठ वार मन झेला, दुर्लभ दीन दुहेला॥

— घट रामायण, भाग 2, पृ. 10

---

* इस शब्द में नाभा जी आत्मा की आन्तरिक मण्डलों की चढ़ाई के विषय में बताते हैं। आन्तरिक रूहानी सफ़र में आत्मा को शब्द का प्रकाश दिखाई देता है और शब्द की आवाज़ सुनाई देती है। जिस प्रकार नदी समुद्र में समाकर समुद्र का रूप हो जाती है, उसी प्रकार सुरत, शब्द में लीन होकर शब्द का रूप हो जाती है।

बानी नामदेव जी

रागु सोरठि बाणी भगत नामदेउ जी की घरु 3

अणमड़िआ मंदलु बाजै॥ बिनु सावण घनहरु गाजै॥[1]
बादल बिनु बरखा होई॥ जउ ततु बिचारै कोई॥[2]
मो कउ मिलिओ रामु सनेही॥ जिह मिलिऐ देह सुदेही॥ रहाउ॥[3]
मिलि पारस कंचनु होइआ॥ मुख मनसा रतनु परोइआ॥[4]
निज भाउ भइआ भ्रमु भागा॥ गुर पूछे मनु पतीआगा॥[5]
जल भीतरि कुंभ समानिआ॥ सभ रामु एकु करि जानिआ॥[6]
गुर चेले है मनु मानिआ॥ जन नामै ततु पछानिआ॥[7]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 657

रागु गोंड बाणी नामदेउ जी की घरु 1

असुमेध जगने॥ तुला पुरख दाने॥ प्राग इसनाने॥[8]
तउ न पुजहि हरि कीरति नामा॥
अपुने रामहि भजु रे मन आलसीआ॥ रहाउ॥

---

1. **अणमड़िआ...बाजै**=अनमड़या (ऐसा मृदंग जिस पर चमड़ा न मढ़ा हुआ हो) बजता है; **बिनु...गाजै**=सावन महीने के बिना ही बादल गरजता है। 2. **बादल...कोई**=बादलों के बिना वर्षा होती है— इसका अनुभव केवल ऊँची अवस्था में पहुँचकर परम तत्त्व को पहचानने से होता है। 3. **जिह...सुदेही**=जिसके मिलाप से देह में आना सार्थक हो जाता है अर्थात् जन्म सफल हो जाता है। 4. **मुख...परोइआ**=मुँह और मन में नाम रूपी रत्न पिरो लिया यानी हर समय नाम-भक्ति में लीन हो गया। 5. **मनु पतीआगा**=मन मान गया। 6. **जल...जानिआ**=समुद्र में घड़ा समा गया (आत्मा परमात्मा में समा गयी); अब हर स्थान और हरएक जीव के अन्दर वही परमात्मा समाया हुआ प्रतीत होने लगा। 7. **गुर... मानिआ**=शिष्य का गुरु पर निश्चय हो गया। 8. **असुमेध जगने**=अश्वमेध यज्ञ; **तुला... दाने**=अपने वज़न के बराबर सोने का दान; **प्राग इसनाने**=प्रयाग तीर्थ का स्नान।

गइआ पिंडु भरता॥ बनारसि असि बसता॥[1]
मुखि बेद चतुर पड़ता॥
सगल धरम अछिता॥ गुर गिआन इंद्री द्रिड़ता॥[2]
खटु करम सहित रहता॥[3]
सिवा सकति संबादं॥ मन छोडि छोडि सगल भेदं॥[4]
सिमरि सिमरि गोबिंदं॥ भजु नामा तरसि भव सिंधं॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 873

प्रभाती बाणी भगत नामदेव जी की

आदि जुगादि जुगादि जुगो जुगु ता का अंतु न जानिआ।
सरब निरंतरि रामु रहिआ रवि ऐसा रूपु बखानिआ॥[6]
गोबिदु गाजै सबदु बाजै॥ आनद रूपी मेरो रामईआ॥ रहाउ॥[7]
बावन बीखू बानै बीखे बासु ते सुख लागिला॥[8]
सरबे आदि परमलादि कासट चंदनु भैइला॥[9]
तुम्ह चे पारसु हम चे लोहा संगे कंचनु भैइला॥[10]
तू दइआलु रतनु लालु नामा साचि समाइला॥[11]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1351

---

1. **गइआ...भरता**=गया जाकर पित्रों को पिण्ड दान करता है; **बनारसि...बसता**=काशी में असी घाट पर निवास करता है। 2. **सगल...अछिता**=सब कर्म अच्छी तरह करता है; **इंद्री द्रिड़ता**=इन्द्रियों को वश में रखता है। 3. **खटु करम**=षट्कर्म— विद्या पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-करवाना, दान लेना-देना। 4. **सिवा...संबादं**= शिव-शक्ति के संवाद अथवा चर्चा में लगा रहता है; **मन...भेदं**=ऐ मन! तू सब कर्मकाण्ड त्याग दे। 5. **नामा**=नामदेव; **तरसि**=तर जायेगा, पार हो जायेगा। 6. **सरब निरंतरि**=सबके अन्दर; **रहिआ रवि**=रम रहा है; **बखानिआ**=कहा गया है। 7. **सबदु बाजै**=अन्तर में शब्द धुनकारें दे रहा है। 8. **बावन बीखू**=चन्दन का वृक्ष; **बानै बीखे**=जंगल में; **बावन...लागिला**=जंगल में चन्दन के वृक्ष की सुगन्धि सुहावनी लगती है। 9. **सरबे...भैइला**=बावन चन्दन के वृक्ष से समस्त वृक्ष और ठूँठ तक चन्दन बन गये हैं। 10. **तुम्ह चे...भैइला**=आप जैसे पारस का संग करके मुझ जैसा लोहा कंचन यानी सोना बन गया। 11. **समाइला**= समा गया।

आसा बाणी स्री नामदेउ जी की

एक अनेक बिआपक पूरक जत देखउ तत सोई॥
माइआ चित्र बचित्र बिमोहित बिरला बूझै कोई॥
सभु गोबिंदु है सभु गोबिंदु है गोबिंद बिनु नही कोई॥
सूतु एकु मणि सत सहंस जैसे ओति पोति प्रभु सोई॥ रहाउ॥[1]
जल तरंग अरु फेन बुदबुदा जल ते भिंन न होई॥[2]
इहु परपंचु पारब्रहम की लीला बिचरत आन न होई॥[3]
मिथिआ भरमु अरु सुपन मनोरथ सति पदारथु जानिआ॥[4]
सुक्रित मनसा गुर उपदेसी जागत ही मनु मानिआ॥
कहत नामदेउ हरि की रचना देखहु रिदै बीचारी॥
घट घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 485

भैरउ नामदेउ जीउ घरु 2

घर की नारि तिआगै अंधा॥ पर नारी सिउ घालै धंधा॥
जैसे सिंबलु देखि सूआ बिगसाना॥ अंत की बार मूआ लपटाना॥[5]
पापी का घरु अगने माहि॥ जलत रहै मिटवै कब नाहि॥ रहाउ॥
हरि की भगति न देखै जाइ॥ मारगु छोडि अमारगि पाइ॥
मूलहु भूला आवै जाइ॥ अंम्रितु डारि लादि बिखु खाइ॥
जिउ बेस्वा के परै अखारा॥ कापरु पहिरि करहि सींगारा॥
पूरे ताल निहाले सास॥ वा के गले जम का है फास॥

---

1. **सूतु...सोई**=जैसे हज़ारों-सैकड़ों मनके एक धागे में हों, इसी प्रकार सृष्टि के ताने-बाने में प्रभु व्यापक है। 2. **जल...होई**=जिस प्रकार पानी की लहरें, झाग और बुलबुले पानी से भिन्न नहीं हैं। 3. **इहु...होई**=उसी प्रकार यह पाँच तत्त्व की सृष्टि परमेश्वर से भिन्न नहीं है। 4. **सति**=सच; **जानिआ**=समझता है। 5. **सिंबलु**=सेमल का वृक्ष; **सूआ**=तोता; **बिगसाना**=प्रसन्न होता है; **अंत...लपटाना**=कहते हैं कि सेमल के सुन्दर फूल को देखकर तोता उसे खाने के लिए जाता है, किन्तु फूल के रेशे उसकी चोंच में उलझ जाते हैं और वह जान गँवा बैठता है।

जा के मसतकि लिखिओ करमा॥ सो भजि परि है गुर की सरना॥
कहत नामदेउ इहु बीचारु॥ इन .बिधि संतहु उतरहु पारि॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1164-65

भैरउ नामदेउ जीउ घरु 2

जउ गुरदेउ त मिलै मुरारि॥ जउ गुरदेउ त उतरै पारि॥
जउ गुरदेउ त बैकुंठ तरै॥ जउ गुरदेउ त जीवत मरै॥
सति सति सति सति सति गुरदेव॥
झूठु झूठु झूठु झूठु आन सभ सेव॥ रहाउ॥
जउ गुरदेउ त नामु द्रिड़ावै॥ जउ गुरदेउ न दह दिस धावै॥
जउ गुरदेउ पंच ते दूरि॥ जउ गुरदेउ न मरिबो झूरि॥
जउ गुरदेउ त अंम्रित बानी॥ जउ गुरदेउ त अकथ कहानी॥
जउ गुरदेउ त अंम्रित देह॥ जउ गुरदेउ नामु जपि लेहि॥
जउ गुरदेउ भवन त्रै सूझै॥ जउ गुरदेउ ऊच पद बूझै॥
जउ गुरदेउ त सीसु अकासि॥ जउ गुरदेउ सदा साबासि॥
जउ गुरदेउ सदा बैरागी॥ जउ गुरदेउ पर निंदा तिआगी॥
जउ गुरदेउ बुरा भला एक॥ जउ गुरदेउ लिलाटहि लेख॥
जउ गुरदेउ कंधु नहीं हिरै॥ जउ गुरदेउ देहुरा फिरै॥[1]
जउ गुरदेउ त छापरि छाई॥ जउ गुरदेउ सिहज निकसाई॥[2]
जउ गुरदेउ त अठसठि नाइआ॥ जउ गुरदेउ तनि चक्र लगाइआ॥
जउ गुरदेउ त दुआदस सेवा॥ जउ गुरदेउ सभै बिखु मेवा॥[3]

---

1. **जउ...हिरै**=अगर गुरु मिल जाये तो शरीर (विकारों में पड़कर) नहीं छीजता।
2. **सिहज**=बादशाह की दी हुई सेज जो नामदेव जी ने नदी में फैंक दी थी, परन्तु बादशाह के माँगने पर सूखी निकल आयी थी; **निकसाई**=निकल आयी।
3. **दुआदस**=बारह दल का कमल, सहस्र-दल-कमल।

जउ गुरदेउ त संसा टूटै॥ जउ गुरदेउ त जम ते छूटै॥
जउ गुरदेउ त भउजल तरै॥ जउ गुरदेउ त जनमि न मरै॥
जउ गुरदेउ अठदस बिउहार॥ जउ गुरदेउ अठारह भार॥[1]
बिनु गुरदेउ अवर नही जाई॥ नामदेउ गुर की सरणाई॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1166

धनासरी बाणी भगत नामदेव जी की

मारवाड़ि जैसे नीरु बालहा बेलि बालहा करहला॥[2]
जिउ कुरंक निसि नादु बालहा तिउ मैरै मनि रामईआ॥[3]
तेरा नामु रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूड़ो मेरो रामईआ॥ रहाउ॥[4]
जिउ धरणी कउ इंद्रु बालहा कुसम बासु जैसे भवरला॥[5]
जिउ कोकिल कउ अंबु बालहा तिउ मैरै मनि रामईआ॥
चकवी कउ जैसे सूरु बालहा मान सरोवर हंसुला॥
जिउ तरुणी कउ कंतु बालहा तिउ मैरै मनि रामईआ॥[6]
बारिक कउ जैसे खीरु बालहा चात्रिक मुख जैसे जलधरा॥
मछुली कउ जैसे नीरु बालहा तिउ मैरै मनि रामईआ॥
साधिक सिध सगल मुनि चाहहि बिरले काहू डीठुला॥[7]
सगल भवण तेरो नामु बालहा तिउ नामे मनि बीठुला॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 693

---

1. **अठदस**=अठारह स्मृतियाँ; **अठारह भार**=सारी वनस्पति। 2. **मारवाड़ि**=राजस्थान के एक प्रदेश का नाम; **नीरु**=पानी; **बालहा**=प्यारा होता है; **करहला**=ऊँटों को। 3. **कुरंक**=मृग को; **निसि**=सदा, हमेशा। 4. **रूड़ो**=सुन्दर। 5. **धरणी**=धरती; **इंद्रु**=वर्षा। 6. **जिउ तरुणी**=युवा स्त्री, युवती। 7. **डीठुला**=दिखाई दिया।

बसंतु बाणी नामदेउ जी की

लोभ लहरि अति नीझर बाजै॥ काइआ डूबै केसवा॥[1]
संसारु समुंदे तारि गोबिंदे॥ तारि लै बाप बीठुला॥ रहाउ॥[2]
अनिल बेड़ा हउ खेवि न साकउ॥ तेरा पारु न पाइआ बीठुला॥
होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मो कउ॥ पारि उतारे केसवा॥
नामा कहै हउ तरि भी न जानउ॥ मो कउ बाह देहि बाह देहि बीठुला॥[3]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1196

बिलावलु बाणी भगत नामदेव जी की

सफल जनमु मो कउ गुर कीना॥ दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥
गिआन अंजनु मो कउ गुरि दीना॥ राम नाम बिनु जीवनु मन हीना॥ रहाउ॥[4]
नामदेइ सिमरनु करि जानां॥ जगजीवन सिउ जीउ समानां॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 857-58

बसंतु बाणी नामदेउ जी की

साहिबु संकटवै सेवकु भजै॥ चिरंकाल न जीवै दोऊ कुल लजै॥[6]
तेरी भगति न छोडउ भावै लोगु हसै॥ चरन कमल मेरे हीअरे बसैं॥ रहाउ॥
जैसे अपने धनहि प्रानी मरनु मांडै॥ तैसे संत जनां राम नामु न छाडैं॥[7]
गंगा गइआ गोदावरी संसार के कामा॥ नाराइणु सुप्रसंन होइ त सेवकु नामा॥[8]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1195

---

1. **नीझर**=लगातार। 2. **बाप**=पिता। 3. **तरि**=तैरना। 4. **अंजनु**=सुरमा; **राम...हीना**= राम-नाम या शब्द के बिना जीवन निरर्थक है। 5. **नामदेइ...समानां**=सिमरन के आधार पर नामदेव परमात्मा में लीन हो गया है। 6. **संकटवै**=संकट देवे; **सेवकु भजै**=सेवक तेरी भक्ति छोड़ जाये; **लजै**= लज्जित करता है। 7. **जैसे...छाडैं**=जिस प्रकार लोग धन के लिए अपनी जान तक देने के लिए तैयार हो जाते हैं पर धन नहीं छोड़ते, उसी प्रकार सन्त-जन भी नाम को कभी नहीं छोड़ते। 8. **गंगा...नामा**=गंगा, यमुना, गोदावरी आदि तीर्थों पर जाना यह दुनिया के काम हैं; पर हे नामदेव! भक्त वही है जिस पर प्रभु प्रसन्न हो।

बानी पलटू साहिब जी

[1]

आठ पहर निरखत रहै जैसे चन्द चकोर॥
जैसे चन्द चकोर पलक से टारत नाहीं।
चुगै बिरह से आग रहै मन चन्दै माहीं॥
फिरै जेही दिस चंद तेही दिसि को मुख फेरै।
चन्दा जाय छिपाय आग के भीतर हेरै॥
मधुकर तजै न पदम जान से जाइ बँधावै।
दीपक में ज्यों पतंग प्रेम से प्रान गँवावै॥
पलटू ऐसी प्रीत कर परधन चाहै चोर।
आठ पहर निरखत रहै जैसे चन्द चकोर॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 62

[2]

आदि अंत हम हीं रहे सब में मेरो बास॥
सब में मेरो बास और न दूजा कोई।
ब्रह्मा बिस्नु महेस रूप सब हमरै होई॥
हमहीं उतपति करैं, करैं हम हीं संहारा।
घट घट में हम रहैं, रहैं हम सब से न्यारा॥
पारब्रह्म भगवान अंस हमरै कहवाये।
हमहीं सोहं सब्द जोति ह्वै सुन्न में आये॥
पलटू देह के धरे से वे साहिब हम दास।
आदि अंत हम हीं रहे सब में मेरो बास॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 178

[3]

उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रितु बारह मास रहत जरतै दिन राती॥
सतगुरु मिला जो होय ताहि की नजर में आवै।
बिन सतगुरु कोउ होय नहीं वा को दरसावै॥
निकसै एक अवाज चिराग की जोतिहिं माहीं।
ज्ञान समाधी सुनै और कोउ सुनता नाहीं॥
पलटू जो कोई सुनै ता के पूरे भाग।
उलटा कूवा गगन में तिस में जरै चिराग॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 169

[4]

कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान॥
सो ध्यानी परमान सुरति से अंडा सेवै।
आप रहै जल माहिं सूखे में अंडा देवै॥
जस पनिहारी कलस भरे मारग में आवै।
कर छोड़े मुख बचन चित्त कलसा में लावै॥
फनि मनि धरै उतारि आपु चरने को जावै।
वह गाफिल ना परै सुरति मनि माहिं रहावै॥
पलटू सब कारज करै सुरति रहै अलगान।
कमठ दृष्टि जो लावई सो ध्यानी परमान॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 91

[5]

कोटिन जुग परलय गई हमहीं करनेहार॥
हमहीं करनेहार हमहिं करता के करता।
जेकर करता नाम आदि में हमहीं रहता॥

मरिहैं ब्रह्मा बिस्नु मृत्य ना होय हमारी।
मरिहैं सिय के लाल मरैगी सिव की नारी॥
धरती अगिन अकास मूवा है पवन और पानी।
आदि जोति मरि गई रही देवतन की नानी॥
पलटू हम मरते नहीं ज्ञानी लेहु बिचार।
कोटिन जुग परलय गई हमहीं करनेहार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 177

[6]

गरमै गरमै हेलुवा गंफा लीजै मारि॥
गंफा लीजै मारि मनुष तन जात सिराना।
भजि लीजै भगवान काल सिर पर नियराना॥
मीठा है हरि नाम जियन का नाहिं भरोसा।
खाय लेहु भरि पेट आगे से जात परोसा॥
लीजै लाहा लूटि दिना दुइ संतन पासा।
अजहूँ चेत गँवार जात है खाली स्वासा॥
पलटू अटक न कीजिये कूच है साँझ सकारि।
गरमै गरमै हेलुवा गंफा लीजै मारि॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 44

[7]

तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौ निर्धार॥
भक्ति करौ निर्धार लोक की लाज न मानौ।
देव पितर मुख खाक डारि इक गुरु को जानौ॥
तजि दो कुल की रीति खोलि घूंघट को नाचौ।
बेद पुरान मत काच काछनी काछौ साचौ॥

सुभ असुभ दोउ काटु पाँव की अपने बेरी।
निसि दिन रहौ अनन्द कोऊ का करिहै तेरी॥
पलटू सतगुरु चरन पर डारि देहु सिर भार।
तन मन लज्जा खोइ कै भक्ति करौ निर्धार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 132

[8]

तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर॥
अपनी ओर निबेर छोड़ि गुड़ विष को खावै।
कूवाँ में तू परै और को राह बतावै॥
औरन को उँजियार मसालची जाय अँधेरे।
त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै।
घर में लागी आग दौरि के घूर बुतावै॥
पलटू यह साची कहै अपने मन का फेर।
तुझे पराई क्या परी अपनी ओर निबेर॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 119

[9]

तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल॥
सिर पर बैठा काल दिनो दिन वादा पूजै।
आज काल में कूच मुरख नहिं तोकँह सूझै॥
कौड़ी कौड़ी जोरि ब्याज दे करते बट्टा।
सुखी रहै परिवार मुक्ति में होवत ठट्टा॥
तू जानै मैं ठग्यो आप को तुही ठगावै।
नाम सजीवन मूर छोरि के माहुर खावै॥
पलटू सेखी ना रही चेत करो अब लाल।
तू क्यों गफलत में फिरै सिर पर बैठा काल॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 43

[10]

दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान॥
भक्ति दई तेहि जान नाम पर पकर्‌यो मोकहँ।
गिरा परा धन पाय छिपायौं मैं ले ओकहँ॥
लिखा रहा कुछ आन कर्म में दीन्हा आनै।
जानौं महीं अकेल कोऊ दूसर नहिं जानै॥
पाछे भा फिर चेत देय पर नाहीं लीन्हा।
आखिर बड़े की चूक जोई निकसा सोइ कीन्हा॥
पलटू मैं पापी बड़ा भूल गया भगवान।
दूसर पलटू इक रहा भक्ति दई तेहि जान॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 164

[11]

देत लेत हैं आपुहीं पलटू पलटू सोर॥
पलटू पलटू सोर राम की ऐसी इच्छा।
कौड़ी घर में नाहिं आपु में माँगों भिच्छा॥
राई परबत करैं करैं परबत को राई।
अदना के सिर छत्र पैज की करैं बड़ाई॥
लीला अगम अपार सकल घट अंतरजामी।
खाँहिं खिलावहिं राम देहिं हम को बदनामी॥
हम सों भया न होयगा साहिब करता मोर।
देत लेत हैं आपुहीं पलटू पलटू सोर॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 21

[12]

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥
सो मेरा गुरुदेव सेवा मैं करिहौं वा की।
सब्द में है गलतान अवस्था ऐसी जा की॥

निस दिन दसा अरूढ़ लगै न भूख पियासा।
ज्ञान भूमि के बीच चलत है उलटी स्वासा॥
तुरिया सेती अतीत सोधि फिर सहज समाधी।
भजन तेल की धार साधना निर्मल साधी॥
पलटू तन मन वारिये मिलै जो ऐसा कोउ।
धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 5

[13]

नाम के रे परताप से भये आन कै आन॥
भये आन कै आन बड़े के पाँव पड़ूँगा।
का बपुरा तिल तेल फूल संग बिकता महँगा॥
संत हैं बड़े दयाल आप सम मो को कीन्हा।
जैसे भृंगी कीट सिच्छा कुछ ऐसी दीन्हा॥
राई किहा सुमेर अजया गजराज चढ़ाई।
तुलसी होइगा रेंड़ सरन की पैज बड़ाई॥
पलटू जातिन नीच मैं सब औगुन की खान।
नाम के रे परताप से भये आन कै आन॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 16

[14]

नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय॥
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी।
वही सकस को मिलै जिन्होंने आसा मारी॥
हौं को करै खमोस होस ना तन को राखै।
गगन गुफा के बीच पियाला प्रेम का चाखै॥
बिसरै भूख पियास जाय मन रंग में लागै।
पाँच पचीस रहे वार संग में सोऊ भागै॥

आपुइ रहै अकेल बोलै बहु मीठी बानी।
सुनतै अब वह बनै कहा मैं कहौं बखानी॥
पलटू गुरु परताप तें रहै जगत में सोय।
नाम नाम सब कहत है नाम न पाया कोय॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 11

[15]

निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय॥
काम हमारा होय बिना कौड़ी को चाकर।
कमर बाँधि के फिरै करै तिहुँ लोक उजागर॥
उसे हमारी सोच पलक भर नाहिं बिसारी।
लगी रहै दिन रात प्रेम से देता गारी॥
संत कहैं दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै।
निन्दक गुरू हमार नाम से वही मिलावै॥
सुनि के निन्दक मरि गया पलटू दिया है रोय।
निन्दक जीवै जुगन जुग काम हमारा होय॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 220

[16]

पतितपावन बाना धर्‌यो तुमहिं परी है लाज॥
तुमहिं परी है लाज बात यह हमने बूझी।
जब तुम बाना धरयो नाहिं तब तुम कहँ सूझी॥
अब तो तारे बनै नहीं तो बाना उतारौ।
फिर काहे को बड़ा बाच जो कहिकै हारौ॥
आगहिं तुम गये चूक दोष नहिं दीजै मेरो।
तुम यह जानत नाहिं पतित होइहैं बहुतेरो॥
पलटू मैं तो पतित हौं किये असुभ सब काज।
पतितपावन बाना धर्‌यो तुमहिं परी है लाज॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 159

[17]

पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥
संत लिया औतार जगत को राह चलावैं।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावैं॥
प्रीत बढ़ावैं जक्त में धरनी पर डोलैं।
कितनौ कहै कठोर बचन वे अमृत बोलैं॥
उनको क्या है चाह सहत हैं दुःख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा॥
पलटू सतगुरु पाय के दास भया निरवार।
पर स्वारथ के कारने संत लिया औतार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 4

[18]

बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर॥
मगन भया मन मोर महल अठवें पर बैठा।
जहँ उठै सोहंगम सब्द सब्द के भीतर पैठा॥
नाना उठैं तरंग रंग कुछ कहा न जाई।
चाँद सुरज छिपि गये सुषमना सेज बिछाई॥
छूटि गया तन येह नेह उनहीं से लागी।
दसवाँ द्वारा फोड़ि जोति बाहर ह्वै जागी॥
पलटू धारा तेल की मेलत ह्वै गया भोर।
बंसी बाजी गगन में मगन भया मन मोर॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 170

[19]

बड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया बिचार॥
संतन किया बिचार ज्ञान का दीपक लीन्हा।
देवता तैंतिस कोट नजर में सब को चीन्हा॥

सब का खंडन किया खोजि के तीनि निकारा।
तीनों में दुइ सही मुक्ति का एकै द्वारा॥
हरि को लिया निकारि बहुर तिन मंत्र बिचारा।
हरि हैं गुन के बीच संत हैं गुन से न्यारा॥
पलटू प्रथमै संत जन दूजे हैं करतार।
बड़ा होय तेहि पूजिये संतन किया बिचार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 22

[20]

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥
खाला का घर नाहिं सीस जब धरै उतारी।
हाथ पाँव कटि जाय करै ना संत करारी॥
ज्यों ज्यों लागै घाव तेहुँ तेहूँ कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय बहुरि ना जियता आवै॥
पलटू ऐसा घर मँहैं बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 71

[21]

राम समीपी संत हैं वे जो करैं सो होय॥
वे जो करैं सो होय हुकुम में उनके साहिब।
संत कहैं सोइ करैं राम ना करते बायब॥[1]
राम के घर के बीच काम सब संतै करते।
देवता तेंतिसकोट संत से सबही डरते॥
राई पर्बत करैं करैं परबत को राई।
राम के घर के बीच फिरत है संत दुहाई॥
पलटू घर में राम के और न करता कोय।
राम समीपी संत हैं वे जो करैं सो होय॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 25

[22]

लगन महूरत झूठ सब और बिगाड़ै काम॥
और बिगाड़ै काम साइत जनि सोधै कोई।
एक भरोसा नाहिं कुसल कहवाँ से होई॥
जेकरे हाथै कुसल ताहि को दिया बिसारी।
आपन इक चतुराई बीच में करै अनारी॥
तिनका टूटै नाहिं बिना सतगुरु की दाया।
अजहूँ चेत गँवार जगत है झूठी काया॥
पलटू सुभ दिन सुभ घड़ी याद पड़ै जब नाम।
लगन महूरत झूठ सब और बिगाड़ै काम॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 75

[23]

संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार॥
नहीं पदारथ चार मुक्ति संतन की चेरी।
ऋद्धि सिद्धि पर थुकैं स्वर्ग की आस न हेरी॥
तीरथ करहिं न बर्त नहीं कछु मन में इच्छा।
पुन्य तेज परताप संत को लगै अनिच्छा॥
ना चाहैं बैकुंठ न आवागवन निवारा।
सात स्वर्ग अपवर्ग तुच्छ सम ताहि बिचारा॥
पलटू चाहै हरि भगति ऐसा मता हमार।
संत न चाहैं मुक्ति को नहीं पदारथ चार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 57

[24]

संत सनेही नाम है नाम सनेही संत॥
नाम सनेही संत नाम को वही मिलावैं।
वे हैं वाक़िफ़कार मिलन की राह बतावैं॥

जप तप तीरथ बरत करै बहुतेरा कोई।
बिना वसीला संत नाम से भेंट न होई॥
कोटिन करै उपाय भटक सगरौ से आवै।
संत दुवारै जाय नाम को घर तब पावै॥
पलटू यह है प्रान पर आदि सेती औ अंत।
संत सनेही नाम है नाम सनेही संत॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 14

[25]

सतगुरु सब को देत हैं लेता नाहीं कोय॥
लेता नाहीं कोय सीस को धरै उतारी।
वही सकस को मिलै मरै की करै तयारी॥
कड़ू बहुत सतनाम देखत कै डरै सरीरा।
रोटी खावनहार खायगा क्योंकर हीरा॥
अंधा होवै नीक बैद का पथ जो खावै।
मलयागिर की बास बाँस में नहीं समावै॥
पलटू पारस क्या करै जो लोहा खोटा होय।
सतगुरु सब को देत हैं लेता नाहीं कोय॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 87

[26]

सतगुरु सिकलीगर मिलैं तब छुटै पुराना दाग॥
छुटै पुराना दाग गड़ा मन मुरचा माहीं।
सतगुरु पूरे बिना दाग यह छूटै नाहीं॥
झाँवाँ लेवै जोग तेग को मलै बनाई।
जौहर देय निकार सुरत को रंद चलाई॥

सब्द मस्कला करै ज्ञान का कुरँड लगावै।
जोग जुगत से मलै दाग तब मन का जावै॥
पलटू सैफ को साफ करि बाढ़ धरै बैराग।
सतगुरु सिकलीगर मिलैं तब छुटै पुराना दाग॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 2

[27]

साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥
केवल भक्ति पियार साहिब भक्ती में राजी।
तजा सकल पकवान लिया दासीसुत भाजी॥
जप तप नेम अचार करै बहुतेरा कोई।
खाये सेवरी के बेर मुए सब ऋषि मुनि रोई॥
किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा।
मरदा सब का मान सुपच बिनु घंट न बाजा॥
पलटू ऊँची जाति कौ जनि कोइ करै हंकार।
साहिब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 218

[28]

साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥
साहिब तेरे पास याद करु होवै हाज़िर।
अंदर धसि कै देखु मिलैगा साहिब नादिर॥
मान मनी हो फना नूर तब नजर में आवै।
बुरका डारै टारि खुदा बाखुद दिखरावै॥[1]
रूह करै मेराज कुफर का खोलि कुलाबा।[2]
तीसौ रोजा रहै अंदर में सात रिकाबा॥[3]
लामकान में रब्ब को पावै पलटूदास।
साहिब साहिब क्या करै साहिब तेरे पास॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 93

[29]

सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत॥
तैसे सीतल संत जगत की ताप बुझावैं।
जो कोइ आवै जरत मधुर मुख बचन सुनावैं॥
धीरज सील सुभाव छिमा ना जात बखानी।
कोमल अति मृदु बैन बज्र को करते पानी॥
रहन चलन मुसकान ज्ञान को सुगंध लगावैं।
तीन ताप मिट जाय संत के दर्सन पावैं॥
पलटू ज्वाला उदर की रहै न मिटै तुरंत।
सीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे सीतल संत॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 23

[30]

सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं॥
सहज आसिकी नाहिं खाँड खाने को नाहीं।
झूठ आसिकी करै मुलुक में जूती खाही॥
जीते जी मरि जाय करै ना तन की आसा।
आसिक को दिन रात रहै सूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींद भर नाहीं सोना।
तिल भर रक्त न माँस नहीं आसिक को रोना॥
पलटू बड़े बेकूफ वे आसिक होने जाहिं।
सीस उतारै हाथ से सहज आसिकी नाहिं॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1, कुंडली 64

बानी पीपा जी

रागु धनासरी

कायउ देवा काइअउ देवल काइअउ जंगम जाती ॥[1]
काइअउ धूप दीप नईबेदा काइअउ पूजउ पाती ॥[2]
काइआ बहु खंड खोजते नव निधि पाई ॥[3]
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो राम की दुहाई ॥[4]
जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥[5]
पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होइ लखावै ॥[6]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 695

---

1. **कायउ...जाती**=काया के अन्दर ही सच्चा देवता है, काया में ही सच्चा हरि बसता है, काया ही उस हरि का निवास स्थान है और काया ही सच्चा यात्री या साधु है। 2. **काइअउ... पाती**=काया ही धूप, दीपक और प्रसाद है और काया में ही सच्चे फूल और पत्ते हैं। 3. **काइआ...पाई**=जिस वस्तु को जगह-जगह ढूँढ़ते हैं, वह काया के अन्दर ही मिलती है। 4. **ना...दुहाई**=आप (पीपा जी) ज़ोर देकर कहते हैं कि सब कुछ इस काया के अन्दर ही है, बाहर से कुछ भी आता-जाता नहीं। 5. **जो...पावै**=जो कुछ सारी सृष्टि में है, वह सबकुछ काया के अन्दर भी है। अगर काया के अन्दर खोज करें तो सबकुछ अपने अन्दर ही मिल जाता है। 6. **पीपा...लखावै**=पीपा जी कहते हैं कि परमात्मा ही असल सार वस्तु है। वह सार वस्तु सबके अन्तर में है। पूरा सतगुरु मिल जाये तो वह उस सार वस्तु को अन्दर ही दिखा देता है।

कलाम साईं बुल्लेशाह

दोहे

आई रुत्त शगूफ़यां वाली, चिड़ियां चुगण आइयां।[1]
इकना नूं जुर्रयां फड़ खाधा, इकना फाहीआं लाइयां॥ 1 ॥[2]
इकना आस मुड़न दी आहे, इक सीख कबाब चढ़ाइयां।[3]
बुल्लेशाह की वस्स ओनां, जो मार तकदीर फसाइयां॥ 2 ॥[4]
होर ने सब गल्लड़ियां, अल्लाह अल्लाह दी गल्ल।
कुझ रौला पाया आलमां, कुझ काग़ज़ां पाया झल्ल॥ 3 ॥
बुल्लया मैं मिट्टी घुमयार दी, गल्ल आख न सकदी एक।
तत्तड़ मेरा क्यों घड़या, मत जाए अलेक-सलेक॥ 4 ॥[5]
बुल्ला कसर नाम कसूर है, ओथे मूँहों ना सकण बोल॥
ओथे सच्चे गरदन-मारीए, ओथे झूठे करन कलोल॥ 5 ॥
बुल्लया कसूर बेदस्तूर, ओथे जाणा बणया ज़रूर।
ना कोई पुंन दान है, ना कोई लाग दस्तूर॥ 6 ॥
बुल्लया औंदा साजन वेख के, जांदा मूल ना वेख।
मारे दरद फ़राक दे, बण बैठे बाहमण शेख॥ 7 ॥

---

1. **आई...आइयां**=यहाँ होनी या भाग्य का और संसार में हर ओर फैले मौत और काल के जाल का वर्णन किया गया है। संसार रूपी बाग़ में मनुष्य-जन्म शगूफ़ियों वाली अर्थात् बसन्त ऋतु है। जीव (चिड़ियाँ) संसार में कार्यशील होने के लिये उतरते हैं। 2. **जुर्रयां**=बाज़; **इकना...लाइयां**=कुछ चिड़ियों (जीवों) को बाज़ (यमदूत) खा गए, कुछ (माया और भोगों की) फाँसी में फँस गईं। 3. **इकना...चढ़ाइयां**=कुछ जीवों के अन्दर निज घर वापस पहुँचने की आशा है और कुछ (किये हुए कर्मों के कारण) दुःख भोग रहे हैं। 4. **बुल्लेशाह...फसाइयां**=तक़दीर के मारे लोग बेबस या लाचार हैं। 5. **तत्तड़...सलेक**=मुझे इस तरह से क्यों घड़ा कि मेरी पहचान ही समाप्त हो गयी।

बुल्लया अच्छे दिन तो पिच्छे गए, जब हर से किया न हेत।[1]
अब पछतावा क्या करे, जब चिड़ियां चुग गईं खेत॥ 8॥
बुल्लया कनक कौडी कामनी, तीनों की तलवार।
आए थे नाम जपन को, और विच्चे लीते मार॥ 9॥
कनक कौडी कामनी, तीनों की तलवार।
आया सैं जिस बात को, भूल गई वोह बात॥ 10॥
उस दा मुख इक जोत है, घुंघट है संसार।
घुंघट में वह छिप गया, मुख पर आंचल डार॥ 11॥
उन को मुख दिखलाए हैं, जिन से उस की प्रीत।
उनको ही मिलता है वोह, जो उस के हैं मीत॥ 12॥
मुँह दिखलावे और छपे, छल बल है जगदीस।
पास रहे हर न मिले, इस को बिसवे बीस॥ 13॥[2]
ना ख़ुदा मसीते लभदा, ना ख़ुदा विच काअबे।[3]
ना ख़ुदा कुरान किताबां, ना ख़ुदा निमाज़े॥ 14॥
ना ख़ुदा मैं तीरथ डिट्ठा, ऐवें पैंडे झागे।
बुल्ला शौह जद मुरशद मिल गया, छुट्टे सब तगादे॥ 15॥
अरबा-अनासर महल बणायो, विच वड़ बैठा आपे।[4]
आपे कुड़ियां आपे नींगर, आपे बनना एं मापे॥ 16॥[5]
आपे मरें ते आपे जीवें, आपे करें स्यापे।
बुल्लया जो कुझ कुदरत रब्ब दी, आपे आप संञापे॥ 17॥[6]
बुल्लया धरमसाला धड़वाई रैहन्दे, ठाकुर-द्वारे ठग।[7]
विच मसीतां कुसत्तीए रैहन्दे, आशिक़ रहण अलग॥ 18॥[8]

---

1. **हेत**=प्यार। 2. **बिसवे बीस**=यह बात शत-प्रतिशत सत्य है; **पास...बीस**=यह बात सौ फीसदी सच है कि जिसको वह दर्शन नहीं देना चाहता, उसे नहीं देता चाहे वह उसके निकट ही क्यों न रहता हो। 3. **लभदा**=मिलता। 4. **अरबा**=चार; **अनासर**=अनसर, तत्त्व; **अरबा... बणायो**=इसलामी विश्वास के मुताबिक़ मनुष्य शरीर चार तत्त्वों—मिट्टी, पानी, अग्नि और हवा से बना है। 5. **कुड़ियां**=लड़की, दुल्हन; **नींगर**=लड़का, दूल्हा। 6. **संञापे**=पहचाने। 7. **धड़वाई**=डाकू, लुटेरे। 8. **कुसत्तीए**=झूठे, नीच।

बुल्लया ग़ैन ग़रूरत साड़ सुट, ते माण खूहे विच पा।[1]
तन मन दी सूरत गवा दे, घर आप मिलेगा आ॥ 19॥
बुल्लया वारे जाइए ओन्हां तों, जेहड़े गल्लीं देण परचा।
सूई सलाई दान करन, ते अहरण लैण छुपा॥ 20॥
बुल्लया वारे जाइए ओहनां तों, जेहड़े मारन गप-शड़प्प।
कौडी लब्भी देण चा, ते बुगचा घाऊं-घप्प। 21॥
बुल्लया परसों काफ़र थी गयों, बुत्त पूजा कीती कल्ल।
असीं जा बैठे घर आपणे, ओथे करन न मिलया गल्ल॥ 22॥
भट्ठ नमाज़ां ते चिक्कड़ रोज़े, कलमे ते फिर गई स्याही।
बुल्ले शाह शौह अंदरों मिलया, भुल्ली फिरे लोकाई॥ 23॥
बुल्ले नूँ लोक मत्तीं देंदे, बुल्लया तू जा बहो विच मसीती।
विच मसीतां की कुझ हुंदा, जे दिलों नमाज़ ना कीती॥ 24॥
बाहरों पाक कीते की हुंदा, जे अंदरों ना गई पलीती।[2]
बिन मुर्शिद कामल बुल्लया, तेरी ऐवें गई इबादत कीती॥ 25॥
बुल्लया हरिमंदर में आए के, कहो लेखा दियो बता।
पढ़े पंडित पांधे दूर कीए, अहमक लिए बुला॥ 26॥[3]
वहदत दे दरिया दसेंदे, मेरी वहदत कित वल्ल धाई।
मुर्शिद कामिल पार लंघाया, बाझ तुल्हे सुरनाही॥ 27॥[4]
बुल्ले शाह चल ओथे चल्लिए, जित्थे सारे होवण अन्हें।[5]
ना कोई साडी कदर पछाणे, ना कोई सानूं मंने॥ 28॥
बुल्लया धर्मशाला विच ना रहीं, जित्थे मोमन भोग पवाए।
विच मसीतां धक्के मिलदे, मुल्लां तिउड़ी पाए॥ 29॥
दौलतमंदां ने बूहयां उत्ते, चोबदार बहाए।
पकड़ दरवाज़ा हरि सच्चे दा, जित्थों दुःख दिल दा मिट जाए॥ 30॥

---

1. **ग़रूरत**=अहंकार; **बुल्लया...पा**=अहम् और अहंकार को कुएँ में डाल दे। 2. **पाक**=सफ़ाई; **पलीती**=गन्दगी। 3. **अहमक**=प्रभु के भक्त जिन्हें लोग मूर्ख समझते हैं। 4. **तुल्हे**=तुल्हा, बेड़ी; **सुरनाही**=मश्क; **मुर्शिद...सुरनाही**=मुर्शिद ने बिना किसी साधन के पार कर दिया। 5. **जित्थे...अन्हें**=जहाँ हमें कोई न पहचान सके।

आपणे तन दी ख़बर न काई, साजन दी ख़बर लयावे कौण।
न हूं ख़ाकी न हूं आतिश, न हूं पाणी पौण॥ 31 ॥[1]
कुप्पे दे विच रोड़ खड़कदा, मूरख आखण बोले कौण।[2]
बुल्ला साईं घट घट रवया, ज्यों आटे विच लौण॥ 32 ॥
बुल्ले शाह ओह कौण है, उत्तम तेरा यार।
ओसे के हाथ कुरान है, ओसे गल जुनार॥ 33 ॥[3]
बुल्लया जैसी सूरत ऐन दी, तैसी ग़ैन पछान।
इक नुकते दा फेर है, भुल्ला फिरे जहान॥ 34 ॥
बुल्लया खा हराम ते पढ़ शुकराना, कर तौबा तरक सवाबों।[4]
छोड़ मसीत ते पकड़ किनारा, तेरी छुटसी जान अज़ाबों॥ 35 ॥[5]
बुल्लया जे तूं ग़ाज़ी बनना ए, लक्क बन्ह तलवार।[6]
पहलों रंघड़ मार के, पिच्छों काफ़र मार॥ 36 ॥[7]
बुल्लया सभ मजाज़ी पौड़ियां, तूं हाल हकीकत वेख।[8]
जो कोई ओथे पहुंचया, चाहे भुल्ल जाए सलाम अलेक॥ 37 ॥[9]
बुल्लया काज़ी राज़ी रिश्वते, मुल्लां राज़ी मौत।[10]
आशिक़ राज़ी राम ते, न परतीत घट होत॥ 38 ॥
ठाकुर-द्वारे ठग्ग बसें, भाईद्वार मसीत।
हरि के द्वारे भिक्ख बसें, हमरी एह परतीत॥ 39 ॥[11]

---

1. **न...पौण**=आत्मा तत्त्वों से ऊपर है। 2. **कुप्पे...कौण**=शरीर रूपी कुप्पे में आत्मा रूपी 'रोड़' यानी सार-वस्तु है, परन्तु अज्ञानी को इसका ज्ञान नहीं। 3. **जुनार**=यज्ञोपवीत, जनेऊ। 4. **तरक**=त्याग; **सवाबों**=सवाब से, पुण्य से। 5. **अज़ाबों**=दु:खों से; **छोड़... अज़ाबों**=जो कर्म शरीअत में वर्जित हैं वह कर और प्रेम के रास्ते पर चल इससे तू बाहरमुखी झंझटों से छूट जायेगा। 6. **ग़ाज़ी**=धर्म युद्ध करने वाला। 7. **रंघड़**=काम रूपी दुष्ट; **पिच्छों...मार**=बाद में नफ़्स यानी मन को मार यानी वश में कर। 8. **मजाज़ी**=जिनका सम्बन्ध शरीर से है। 9. **सलाम अलेक**=मुसलमान आपस में मिलते समय आदर से सलाम कहते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं कि हक़ीक़त में पहुँचा हुआ इनसान सांसारिक रिवाजों से ऊपर उठ जाता है। 10. **रिश्वते**=रिश्वत लेकर। 11. **भिक्ख**=भिखारी; **परतीत**=विश्वास।

[1]

इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए। टेक।

फड़ नुकता छोड़ हिसाबां नूं, कर दूर कुफ़र दिआं बाबां नूं।[1]
लाह दोज़ख़ गोर अज़ाबां नूं, कर साफ दिले दिआं ख़वाबां नूं।[2]
गल्ल एसे घर विच ढुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।[3]
ऐवें मत्था ज़िमीं घसाईदा, लंमा पा महराब दिखाईदा।[4]
पढ़ कलमा लोक हसाई दा, दिल अंदर समझ न लिआईदा।[5]
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।
कई हाजी बण बण आए जी, गल नीले जामे पाए जी।[6]
हज बेच टके लै खाए जी, भला एह गल्ल कीहनूं भाए जी।[7]
कदी बात सच्ची वी लुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।
इक जंगल बहरीं जांदे नीं, इक दाणा रोज़ लै खांदे नीं।[8]
बेसमझ वजूद थकांदे नीं, घर आवण हो के मांदे नीं।[9]
ऐवें चिल्हयां विच जिंद सुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।[10]
फड़ मुरशद आबद ख़ुदाई हो, विच मस्ती बेपरवाही हो।[11]
बेख़ाहश बेनवाई हो, विच दिल दे ख़ूब सफ़ाई हो।[12]
बुल्ला बात सच्ची कदों रुकदी ए, इक नुकते विच गल्ल मुकदी ए।

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात', 12

---

1. **फड़...नूं**=इस नुकते को पकड़ लो, शेष जो कुछ है, उसको कुफ्र समझ कर त्याग दो। 2. **दोज़ख़**=नरक; **गोर**=क़ब्र; **लाह...नूं**=मृत्यु और नरकों का भय छोड़ दो और मन में से हर प्रकार के संकल्प-विकल्प निकाल दो। 3. **ढुकदी**=सही, मुनासिब। 4. **महराब**=दरवाज़े के ऊपर का अर्ध-गोलाकार भाग; **ऐवें...दिखाईदा**=धरती पर लेट कर मेहराब को नमस्कार करने का क्या लाभ है? 5. **पढ़...लिआईदा**=बाहर से कलमा पढ़ते हैं परन्तु न तो उसकी समझ आती है और न ही हृदय पर उसका प्रभाव होता है। इस प्रकार लोगों की हँसी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। 6-7. **कई...भाए जी**=लोग हज करते हैं फिर हज का पुण्य बेच कर धन कमा लेते हैं। 8-10. **बहरीं**=समुद्रों की तरफ़; **वजूद**=शरीर; **मांदे**=कमज़ोर; **चिल्हयां**=श्मशान आदि में चिल्हे काटना; **इक...मुकदी ए**=कुछ लोग वनों और समुद्रों में जाते हैं, कुछ प्रतिदिन एक दाने पर गुज़ारा करते हैं, वे अज्ञानी शरीर को दुःख देते हैं। वे शिथिल होकर घर लौट आते हैं और चिल्हों में व्यर्थ ही जीवन बरबाद कर लेते हैं। 11. **आबद**=भक्त। 12. **बेनवाई**=बेफ़िक्री, फ़क़ीरी।

[2]

इश्क असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताअने।
दिल दी वेदन कोई न जाणे, अन्दर देस बेगाने।[1]
जिस नूं चाट अमर दी होवे, सोई अमर पछाणे।[2]
एस इश्क दी औखी घाटी, जो चढ़या सो जाणे।
आतश इश्क फ़राक तेरे ने, पल विच साड़ विखाईयां।[3]
एस इश्क दे साड़े कोलों, जग विच दिआं दुहाईआं।
जिस तन लग्गे सो तन जाणे, दूजा कोई न जाणे।
मैं अनजाणी नेहों की जाणां, जाणे सुघ्घड़ सयाणी।
एस माही दे सदके जावां, जिस दा कोई न सानी।[4]
रूप सरूप अनूप है उसदा, शाला जवानी माणे।[5]
हिजर तेरे ने झल्ली करके, कमली नाम धराया।
सुमुन बुकमुन उमयुन होके, आपणा वकत लंघाया।[6]
कर हुण नज़र करम दी साईआं, न कर ज़ोर धगाणे।
हस्स बुलौणा तेरा जानी, याद करां हर वेले।
पल पल दे विच हिजर दी पीड़ों, इश्क मरेंदा धेले।
रो रो याद करां दिन रातीं, पिछले वकत विहाणे।
इश्क तेरा दरकार असानूं, हर वेले हर हीले।
पाक रसूल मुहम्मद सरवर, मेरे ख़ास वसीले।
बुल्लेशाह जे मिले प्यारा, लक्ख करां शुकराने।
इश्क असां नाल केही कीती, लोक मरेंदे ताअने।

— अब्दुल मजीद भट्टी: 'काफ़ियाँ बुल्लेशाह', 158

---

1. **वेदन**=पीड़ा। 2. **अमर**=हुक्म। 3. **आतश**=अग्नि; **फ़राक**=वियोग। 4. **जिस...सानी**=जिसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। 5. **रूप...उसदा**= उसका रूप अद्‌भुत है, **शाला**=परमात्मा करे। 6. **सुमुन...होके**=आँखें, कान और मुँह बन्द करके यानी ध्यान को दोनों आँखों के ऊपर और मध्य एकाग्र करके।

[3]

इश्क दी नवियों नवीं बहार।
जां मैं सबक इश्क दा पढ़या, मसजद कोलों जीउड़ा डरया।
डेरे जा ठाकर दे वड़या, जित्थे वजदे नाद हज़ार।
जां मैं रमज़ इश्क दी पाई, मैना तोता मार गवाई।
अंदर बाहर होई सफ़ाई, जित वल वेखां यारो यार।
हीर रांझे दे हो गए मेले, भुल्ली हीर ढूंडेंदी बेले।[1]
रांझा यार बुक्कल विच खेले, मैंनूं सुध बुध रही न सार।
बेद कुरानां पढ़ पढ़ थक्के, सजदे करदयां घस गए मत्थे।
न रब्ब तीरथ न रब्ब मक्के, जिस पाया तिस नूर अनवार।[2]
फूक मुसल्ला भंन सुट लोटा, न फड़ तसबी कासा सोटा।
आशिक कैहन्दे दे दे होका, तरक हलालों खाह मुरदार।[3]
उमर गवाई विच मसीती, अन्दर भरया नाल पलीती।[4]
कदे नमाज़ तौहीद न कीती, हुण की करनां एं शोर पुकार।
इश्क भुलाया सजदा तेरा, हुण क्यों ऐवें पावें झेड़ा।[5]
बुल्ला हुंदा चुप बथेरा, इश्क करेंदा मारो मार।[6]
इश्क दी नवियों नवीं बहार।

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात', 76

1. **हीर...मेले**=आत्मा का अन्तर में ही प्रभु से मिलाप हो गया। 2. **अनवार**=नूर का बहुवचन; **न रब्ब...अनवार**=वह परम चेतन, प्रकाश रूप परमात्मा जिसको भी मिलता है, अपने अन्तर में मिलता है। 3. **हलालों**=जिसको शरीअत ठीक कहती है; **मुरदार**=जिसको शरीअत ठीक नहीं मानती, **तरक...मुरदार**=तू शरीअत का त्याग करके प्रेम का मार्ग पकड़ ले। 4. **पलीती**=गन्दगी। 5. **सजदा**=दण्डवत प्रणाम; **झेड़ा**=झगड़ा। 6. **बुल्ला...मार**=मैं चुप करने का प्रयत्न करता हूँ , परन्तु प्रेम मुझे चुप नहीं रहने देता।

[4]

उठ जाग घुराड़े मार नहीं, एह सौण तेरे दरकार नहीं।[1]
इक रोज़ जहानों जाणा ए, जा कबरे विच समाणा ए।[2]
तेरा ग़ोशत कीड़यां खाणा ए, कर चेता मरग विसार नहीं।[3]
तेरा साहा नेड़े आया ए, कुझ चोली दाज रंगाया ए।[4]
क्यों आपणा आप वंजाया ए, ऐ ग़ाफ़िल तैनूं सार नहीं।[5]
तूं सुत्तयां उमर वंजाई ए, तूं चरखे तंद न पाई ए।[6]
की करसैं दाज तैयार नहीं, उठ जाग घुराड़े मार नहीं।
तूं जिस दिन जोबन मत्ती सैं, तूं नाल सईआं दे रत्ती सैं।[7]
हो ग़ाफ़िल गल्लीं वत्ती सैं, एह भोरा तैनूं सार नहीं।[8]
तूं मुड्ढों बहुत कुचज्जी सैं, निरलज्जयां दी निरलज्जी सैं।[9]
तूं खा खा खाणे रज्जी सैं, हुण ताईं तेरा बार नहीं।
अज्ज कल तेरा मुकलावा ए, क्यों सुत्ती कर कर दावा ए।
अणडिट्ठयां नाल मिलावा ए, एह भलके गरम बाज़ार नहीं।[10]
तूं एस जहानों जाएंगी, फिर कदम न एथे पाएंगी।
एह जोबन रूप वंजाएंगी, तैं रहणा विच संसार नहीं।
मंज़िल तेरी दूर दुराडी, तूं पैणां विच्च जंगल वादी।[11]
औखा पहुँचण पैर प्यादी, दिसदी तूँ असवार नहीं।[12]
इक इकल्ली तनहा चलसैं, जंगल बरबर दे विच रुलसैं।[13]

---

1. **घुराड़े**=खर्राटे; **सौण**=सोना, नींद; **दरकार**=ज़रूरी, आवश्यक। 2. **इक...ए**=एक दिन इस संसार को छोड़ कर क़ब्र में समाना पड़ेगा। 3. **मरग...नहीं**=हे मनुष्य, मौत को मत भुला। 4. **साहा**=मौत का दिन। 5. **वंजाया**=गँवाया। 6. **चरखे...ए**=तूने ज़रा-सा भी सूत न काता अर्थात् परमात्मा की भक्ति न की। 7. **जोबन...सैं**=यौवन में मस्त थी; **सईआं**=सहेलियों; **रत्ती**=रँगी हुई, लीन। 8. **वत्ती**=व्यस्त; **एह...नहीं**=तुझे रत्ती भर भी परवाह नहीं थी। 9. **मुड्ढों**=आरम्भ से ही। 10. **एह...नहीं**=ऐसा सुनहरी मौक़ा दोबारा नहीं मिलेगा। 11. **तू...वादी**=तुझे जंगलों-घाटियों में से गुज़रना पड़ेगा। 12. **औखा... नहीं**=पैदल पहुँचना कठिन है और तेरे पास कोई सवारी भी नहीं है अर्थात् न तूने सतगुरु का पल्ला पकड़ा है और न ही परमात्मा की भक्ति की है, जो तेरी सहायता करे। 13. **तनहा**=अकेली; **रुलसैं**=भटकेगी।

लै लै तोशा एथों घलसैं, ओथे लैण उधार नहीं।[1]
ओह ख़ाली ए सुंझी हवेली, तूं विच रहसें इक इकेली।[2]
ओथे होसी होर न बेली, साथ किसे दा बार नहीं।
जेहड़े सन देसां दे राजे, नाल जिन्हां दे वजदे वाजे।
गए हो के बे-तख़ते ताजे, कोई दुनिया दा इतबार नहीं।
कित्थे है सुलतान सिकन्दर, मौत न छड्डे पीर पैग़ंबर।
सब्भे छड्ड छड्ड गए अडंबर, कोई एथे पायदार नहीं।[3]
कित्थे यूसुफ माह-कनयानी, लई जुलेखा फेर जवानी।[4]
कीती मौत ने ओड़क फ़ानी, फेर ओह हार शिंगार नहीं।[5]
कित्थे तख़त सुलेमान वाला, विच हवा उडदा सी बाला।[6]
ओह भी कादर आप संभाला, कोई ज़िंदगी दा इतबार नहीं।
कित्थे मीर मलक सुल्ताना, सब्भे छड्ड छड्ड गए ठिकाना।[7]
कोई मार न बैठे ठाणा, लशकर दा जिन्हां शुमार नहीं।
फुल्लां फुल चंमेली लाला, सोसन सिंबल सरू निराला।
बादे-ख़िज़ां कीता बुरहाला, नरगस नित ख़ुमार नहीं।[8]
जो कुझ करसैं सो कुझ पासैं, नहीं ते ओड़क पछोतासैं।
सुंझी कूंज वांग कुरलासैं, खम्भां बाझ उडार नहीं।[9]

---

1. **तोशा**=सफ़र में काम आने वाला भोजन का सामान। परमात्मा का नाम ही मार्ग में काम आने वाला तोशा है जो जीते-जी इकट्ठा किया जा सकता है। गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, 'संत जनहु मिलि भाईहो सचा नाम समालि॥ तोसा बंधहु जीअ का ऐथै ओथै नालि॥' (आदि ग्रन्थ, पृ. 49)। 2. **ओह...इकेली**=तुझे क़ब्र रूपी हवेली में अकेले रहना पड़ेगा। 3. **पायदार**=स्थायी, पक्का, सदा रहने वाला। 4. **माह-कनयानी**=कनयान का चन्द्रमा, कनयान मिस्र के एक क्षेत्र का नाम है; **कित्थे...कनयानी**=चाँद जैसा सुन्दर यूसुफ़ न रहा; **लई...जवानी**=जुलेखा को दोबारा मिली जवानी भी समाप्त हो गयी। 5. **कीती... फ़ानी**=अन्ततः (ओड़क) मौत ने उसका नाश कर दिया। 6. **बाला**=ऊपर आकाश में; **कित्थे...बाला**=सुलेमान बहुत बुद्धिमान बादशाह था। कहते हैं कि उसका तख़्त हवा में उड़ सकता था। 7. **कित्थे...ठिकाना**=बड़े-बड़े राजा, महाराजा और सुलतान भी नहीं रहे। सब इस संसार के ठिकाने छोड़ गये। 8. **बादे-ख़िज़ां...बुरहाला**=पतझड़ की हवा (मौत) ने सब फूलों और बहार को नष्ट कर दिया। 9. **खम्भां बाझ**=पंखों के बिना; **खम्भां...नहीं**=परमात्मा की भक्ति रूपी पंख के बिना उड़ नहीं सकेगा।

डेरा करसें ओहनी जाईं, जित्थे शेर पलंग बलाईं।[1]
ख़ाली रहसण महल सराईं, फिर तूं विरसेदार नहीं।[2]
असीं आजज़ विच कोट इल्म दे, ओसे आंदे विच कलम दे।
बिन कलमे दे नाहीं कंम दे, बाझों कलमे यार नहीं।
बुल्ला शौह बिन कोई नाहीं, एथे ओथे दोहीं सराईं।
संभल संभल के कदम टिकाईं, फिर आवण दूजी वार नहीं।

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात' 6

[5]

कैसी तोबा है, तोबा ना कर यार।
मूंहों तोबा दिलों ना करदा, इस तोबा थीं तरक न फड़दा।
किस ग़फ़लत ने पायो परदा, फिर बख़शे क्यों गफ़्फ़ार।[3]
सावें दे के लए सवाए, डिओड़यां उत्ते बाज़ी लाई।
एह मुसलमानी कित्थों पाई, जिस दा एह करदार।[4]
जित्थे ना जाणा ओथे जावें, हक बेगाना मुक्कर खावें।
कूड़ किताबाँ सिर ते चावें, एह तेरा इतबार।
ज़ालम ज़ुलमों नाहीं डरदे, आपणे कीए ते आपे मरदे।
नाहीं ख़ौफ़ ख़ुदा दा करदे, एथे ओथे रहण ख़वार।
सौ दिन जीवें इक दिन मरसैं, उस दिन ख़ौफ़ ख़ुदा दा करसैं।
इस तौबा थीं तोबा करसैं, एह तोबा किस दरकार।
बुल्ला शौह दी सुणो हकायत, हादी फड़या होग हदायत।[5]
सब गुनाह थीं होग इनाइत, फिर बाकी क्या गुफ़तार।

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात'

---

1. **ओहनी जाईं**=उन स्थानों पर; **जित्थे...बलाईं**=तुझे उन स्थानों पर डेरा बनाना पड़ेगा जहाँ जंगली जानवर—शेर, चीते आदि मार्ग रोकेंगे; यहाँ पर मृत्यु के बाद मार्ग में आनेवाले संकटों का वर्णन किया गया है। 2. **विरसेदार**=मालिक। 3. **गफ़्फ़ार**= बख़्शनहार। 4. **करदार**=चरित्र, करतूत। 5. **हादी**=हिदायत करने वाला, मुर्शिद, सतगुरु।

[6]

*बंसी अचरज कान्ह बजाई।[1]

बंसी वालया चाका रांझा, तेरा सुर सभ नाल है सांझा।[2]
तेरियां मौजां साडा मांझा, साडी सुरती आप मिलाई।[3]
बंसी वालया कान्ह कहावें, शब्द अनेक अनूप सुणावें।
अक्खियां दे विच नज़र न आवें, कैसी बिखड़ी खेड रचाई।[4]
बंसी सभ कोई सुणे सुणावे, अर्थ एहदा कोई बिरला पावे।

---

1. **बंसी**=बाँसुरी। 2. **चाका**=चरवाहा। 3. **तेरीयां...मांझा**=तू तो मौज में रहता है, लेकिन हम दुःखों से घिरे हुए हैं। 4. **बिखड़ी खेड**=विचित्र खेल।

* आपने सारी काफ़ी में अनहद शब्द की बाँसुरी की महिमा का वर्णन किया है परन्तु अन्तिम तुक में इसको कलमा कहा है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि आप 'शब्द' या 'अनहद शब्द' और 'कलमे' को एक ही अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं। आप परमात्मा और सतगुरु दोनों को 'बंसी वाला रांझा' या 'बंसी वाला कान्ह' कहते हैं यानी सतगुरु और परमेश्वर दोनों के अस्तित्व का सार शब्द या कलमा है। इस बाँसुरी का स्वर सर्वव्यापक है यानी सब जीवों के अन्दर और सारी सृष्टि में इसकी ध्वनि गूँज रही है। 'साडी सुरती आप मिलाई' यानी सुरत, शब्द, सतगुरु, परमात्मा सबके अस्तित्व का सार एक होने के कारण ही ये आपस में अभेद हो सकते हैं क्योंकि केवल हम-जिन्स (एक प्रकार की) वस्तुएँ ही एक-दूसरे में समा सकती हैं।

बहुत कम जीवों को अनहद की बांसुरी का ज्ञान होता है परन्तु जो एक बार इसके मतवाले बन जाते हैं, उनको पता लग जाता है कि यह ध्वनि ही सृष्टि की रचना करने वाली शक्ति है, 'इक सुर दी सभ कला उठाई।'

'इस बंसी दा लंमा लेखा'— शब्द की ध्वनि अथाह है। इसकी 'सादी रेखा'— इसमें पूर्ण अद्वैत है यानी यह द्वैत से मुक्त है। 'ऐस वजूदों सिफ़त उठाई'— इसके द्वारा प्रभु के अस्तित्व से तीन गुण उत्पन्न हुए, जिससे सारी सृष्टि रची गयी।

'इस बंसी दे पंज सत्त तारे...इक्को सुर सभ विच दम मारे' यानी यह ध्वनि एक है, अखण्ड है और स्वयंभू यानी अपने आप से आप है। यह एक ध्वनि अलग-अलग रूहानी मण्डलों में अलग-अलग रूपों में सुनायी देती है।

इस अनहद की ध्वनि में लीन होकर सुरत हर प्रकार के द्वैत से मुक्त होकर प्रियतम के द्वार पर पहुँच जाती है। हर प्रकार की करनी त्याग कर इस बाँसुरी, शब्द या कलमे के साथ ही सम्बन्ध रखना चाहिए क्योंकि इस की कमाई करने वाले व्यक्ति की ही सतगुरु अन्त समय में सँभाल करता है, 'रक्खीं कलमे नाल ब्योपार, तेरी हज़रत भरे गवाही।'

जो कोई अनहद दी सुर पावे, सो इस बंसी दा शैदाई।[1]
सुणियां बंसी दीआं घनघोरां, कूकां तन मन वांगूं मोरां।[2]
डिट्ठियां उस दीआं तोड़ां जोड़ां, इक सुर दी सभ कला उठाई।
इस बंसी दे पंज सत्त तारे, आपो अपणी सुर भरदे सारे।
इक्को सुर सभ विच दम मारे, साडी उस ने होश भुलाई।
इस बंसी दा लंमा लेखा, जिसने ढूंडा तिस ने देखा।
सादी इस बंसी दी रेखा, एस वजूदों सिफ़त उठाई।[3]
बुल्ला पुज पए तकरार, बूहे आण खलोते यार।[4]
रक्खीं कलमे नाल ब्योपार, तेरी हज़रत भरे गवाही।[5]

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात'

[7]

भावें जाण न जाण वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।
मैं तेरे कुरबान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।
तेरे जेहा मैनूं होर न कोई, ढूंडां जंगल बेला रोही।
ढूंडां तां सारा जहान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।
लोकां दे भाणे चाक महीं दा, रांझा तां लोकां विच कहीदा।
साडा तां दीन ईमान वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।
मापे छोड़ लग्गी लड़ तेरे, शाह इनाइत साईं मेरे।
लाइयां दी लज्ज पाल वे, वेहड़े आ वड़ मेरे।[6]

— फ़कीर मुहम्मदः 'कुल्लियात', 32

---

1. **शैदाई**=आशिक़, मतवाला। 2. **घनघोरां**=गर्जन, ध्वनि; **वांगूं मोरां**=मोर की तरह। 3. **सादी...रेखा**=इसमें पूर्ण अद्वैत है। 4. **पुज...तकरार**=सारे झगड़े ख़त्म हो गये, द्वैत से निकलकर अद्वैत में पहुँच गया; **बूहे...यार**=प्रियतम के दरवाज़े पर पहुँच गया। 5. **तेरी... गवाही**=मुर्शिद तेरा सहायक सिद्ध होगा। 6. **लाइयां...मेरे**=मैं अपना दीन, धर्म, वंश, परिवार छोड़कर तेरी शरण में आयी हूँ। मेरे सतगुरु, तू मुझ शरण में आयी की, लाज रख ले।

[8]

मुँह आई बात न रैहंदी ए।[1]

झूठ आखां ते कुझ बचदा ए, सच आखयां भांबड़ मचदा ए।[2]

जी दोहां गल्लां तों जचदा ए, जच जच के जिहबा कैह्न्दी ए।[3]

इक लाज़म बात अदब दी ए, सानूँ बात मलूमी सभ दी ए।

हर हर विच सूरत रब्ब दी ए, किते ज़ाहर किते छुपेंदी ए।[4]

जिस पाया भेत कलंदर दा, राह खोजया अपणे अंदर दा।[5]

ओह वासी है सुख मंदर दा, जित्थे चढ़दी है न लैहन्दी ए।[6]

एथे दुनियां विच अन्हेरा ए, अते तिलकण बाज़ी वेहड़ा ए।

वड़ अंदर वेखो केहड़ा ए, बाहर ख़फ़तन पई ढूँडेंदी ए।[7]

एथे लेखा पाओं पसारा ए, एहदा वक्खरा भेत न्यारा ए।[8]

इक सूरत दा चमकारा ए, जिवें चिणग दारू विच पैंदी ए।[9]

किते नाज़-अदा दिखलाईदा, किते हो रसूल मिलाईदा।[10]

किते आशिक़ बण बण आईदा, किते जान जुदाईआं सैहन्दी ए।[11]

---

1. **मुँह... ए**=ज़िसके ह्रदय में प्रेम और वहदत का ज़ोर हो, वह ह्रदय की बात रोक नहीं सकता। 2. **झूठ...ए**=झूठ कहूँ तो कुछ बात अनकही रह जाती है। सच कहूँ तो संसार में आग लगती है। 3. **जचदा**=डरता; **जी...कैह्न्दी ए**=मैं सच कहने से भी डरता हूँ और झूठ कहने से भी डरता हूँ परन्तु डरते-डरते भी सच्ची बात कहने के लिए मजबूर हूँ। 4. **हर...छुपेंदी ए**=सत्य तो यह है कि हर शरीर में उस परमात्मा की सूरत समायी हुई है, कहीं गुप्त रूप में और कहीं प्रकट रूप में। 5-6. **कलंदर**=जो बन्दर को नचाता है मन रूपी बन्दर को वश में करके अपने इशारों पर नचाने वाले फ़क़ीर; **जिस...ए**=मन को वश में करने वाले फ़क़ीरों की रम्ज़ समझने वाले लोग अपने अन्दर हक़ीक़त की तलाश करते हैं। उनको सुख-मन्दिर अर्थात् अजर, अमर आनन्द के देश की प्राप्ति हो जाती है जो कम-अधिक और उतार-चढ़ाव से परे है। 7. **केहड़ा**=कौन; **ख़फ़तन**=मूर्ख, अज्ञानी; **बाहर...ढूँडेंदी ए**= बाहर ढूंढ़ने वाले अज्ञानवश कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। 8. **एथे... ए**=परमात्मा ने संसार की रचना रची है। 9. **इक...ए**=जिस प्रकार बारूद (दारू) में चिंगारी लगायी जाये तो धमाका भी होता है और आग भी निकलती है, उसी प्रकार यह जगत एक इलाही सूरत का चमत्कार है। 10-11. **किते...सैहन्दी ए**=कहीं तू अपनी दया और शान (नाज़ अदा) प्रकट करता है; कहीं रसूल बनकर रूह को रब्ब से मिलाता है, कहीं स्वयं अपना प्रेमी बन जाता है और स्वयं ही अपनी जुदाई में तड़पता है। आप हमाऊस्त का भाव प्रकट कर रहे हैं।

जदों ज़ाहर होए नूर होरीं, जल गए पहाड़ कोह-तूर हुरीं।
तदों दार चढ़े मनसूर हुरीं, ओथे शेखी मैंडी न तैंडी ए।[1]
जे ज़ाहर करां असरार ताईं, सभ भुल्ल जावण तकरार ताईं।[2]
फिर मारन बुल्ले यार ताईं, ऐथे मख़फ़ी बात सोहेंदी ए।[3]
असां पढ़या इलम तहकीकी ए, ओथे इक्को हरफ़ हकीकी ए।[4]
होर झगड़ा सभ वधीकी ए, ऐवें रौला पा पा बैहन्दी ए।[5]
बुल्ला शौह असाँ थीं वक्ख नहीं, बिन शौह थीं दूजा कक्ख नहीं।
पर वेखण वाली अक्ख नहीं, ताहीं जान पई दुःख सैहन्दी ए।

— अनवर अली रोहतकी: 'कानूने इश्क़', पृ. 70

[9]

मैं उडीकां कर रही, कदी आ कर फेरा।
मैं जो तैनूं आखया, कोई घल सुनेहड़ा।
चशमां सेज विछाईआं दिल कीता डेरा।[6]
लटक चलंदा आंवदा शाह इनाइत मेरा।
ओह अजेहा कौण है जा आखे जेहड़ा।
मैं विच की तकसीर है मैं बरदा तेरा।[7]
तैं बाझों मेरा कौण है दिल ढाह न मेरा।
ढूंढ शहर सभ भालया कासद घल्लां केहड़ा।[8]
चढ़ियां डोली प्रेम दी दिल धड़के मेरा।
आओ इनाइत कादरी जी चाहे मेरा।

---

1. **दार**=सूली; **तदों...हुरीं**=तब मनसूर को सूली पर चढ़ा दिया गया; **मैंडी...तैंडी**= मेरी या तेरी शेख़ी नहीं चल सकती। 2. **ज़ाहर**=प्रकट; **असरार**=इसरार, भेद; **तकरार**= झगड़ा। 3. **मख़फ़ी**=रम्ज़ भरी। 4. **इलम तहकीकी**=खोज द्वारा प्राप्त किया ज्ञान; **इक्को...हकीकी**= केवल कलमा या शब्द ही सच्चा अक्षर है। 5. **होर...वधीकी**=बाक़ी सब व्यर्थ का झगड़ा है। 6. **चशमां...विछाईआं**=तेरे लिए आँखों (चशमां) की सेज बिछायी है। 7. **तकसीर**= भूल, ग़लती; **बरदा**=ग़ुलाम। 8. **कासद**=सन्देशवाहक।

पहली पौड़ी प्रेम दी पुलसराते डेरा।[1]
हाजी मक्के हज करन, मैं मुख वेखां तेरा।[2]
आ इनाइत कादरी हत्थ पकड़ीं मेरा।[3]
जल बल आहीं मारीआं दिल पत्थर तेरा।
पा के कुंडी प्रेम दी दिल खिचयो मेरा।
मैं विच कोई न आ पीआ विच परदा तेरा।[4]
दस्त कंगण बाहीं चूड़ीयां गल नौरंग चोला।[5]
रांझण मैनूं कर गया कोई रावल-रौला।[6]
आण नवें दुःख पै गए कोई सूलां दा घेरा।[7]
मैं जाता दुख मैनूं आहा दुख पए घर सइयां।
सिर सिर भांबड़ भड़क्या सभ तपदीआं गइयां।[8]
हुण आण बणी सिर आपणे सभ चुक गया झेड़ा।[9]
जेहड़ीआं साहवरे मंनीआं सोई पेके होवण।[10]
शौह जिन्हां ते मायल ए चढ़ सेजे सोवण।[11]
जिस घर कौंत न बोलया सोई खाली वेहड़ा।[12]
बुल्ला शौह दे वासते दिल भड़कन भाहीं।[13]
औखा पैंडा प्रेम दा सो घटदा नाहीं।
दिल विच धक्के झेड़दे सिर धाईं बेड़ा।
मैं उडीकां कर रही कदी आ कर फेरा।

— अनवर अली रोहतकी: 'कानूने इश्क़', पृ. 16

---

1. **पुलसराते**=मुसलमानों का विश्वास है कि आन्तरिक रूहानी मार्ग में बाल से भी बारीक एक सूक्ष्म पुल है जिसके नीचे भयानक अग्नि जल रही है। 2. **हाजी...तेरा**=आत्मा के नौ द्वारों में से सिमट कर अन्तर में मुर्शिद के नूरी स्वरूप का दीदार करने की ओर इशारा है। आप इसे ही सच्चा हज कह रहे हैं। 3. **इनाइत**=शाह इनायत, बुल्लेशाह के गुरु; **आ...मेरा**=ऐ मेरे मुर्शिद मेरी मदद करना। 4. **मैं...तेरा**=तुम्हारे द्वारा ताने गये परदे के बिना मुझे तुझसे दूर रखने वाली कोई वस्तु नहीं। 5. **दस्त...चोला**=निराकार प्रभु द्वारा देह-स्वरूप यानी गुरु का रूप धारण करने की ओर संकेत है। 6. **रांझण...रौला**=रांझे ने मुझे भरमा लिया और मेरी सुध-बुध खो गयी। 7. **नवें**=नये; **सूलां**=दुःख। 8. **भांबड़**=शोले, भड़कती हुई आग; **तपदीआं**=जलती हुई यानी दुःखी। 9. **झेड़ा**=झगड़ा। 10. **जेहड़ीआं**=जो लड़कियाँ; **साहवरे**=ससुराल में; **मंनीआं**=परवान। 11. **मायल**=दयाल, प्रसन्न। 12. **कौंत**=कन्त, पति (परमात्मा)। 13. **भाहीं**=आग की लपटें।

[10]

मैं क्यों कर जावां काअबे नूं, दिल लोचे तख़त हज़ारे नूं।
लोकी सजदा काअबे नूं करदे, साडा सजदा यार प्यारे नूं।
औगुण वेख न भुल मीआं रांझा, याद करीं उस कारे नूं।[1]
मैं अणतारू तरन न जाणां, शरम पई तुध तारे नूं।[2]
तेरा सानी कोई नहीं मिलया, ढूंढ लया जग सारे नूं।[3]
बुल्ला शौह दी प्रीत अनोखी, तारे औगुणहारे नूं।[4]

— फ़कीर मुहम्मद: 'कुल्लियात', 125

---

1. **कारे**=कार्य; **याद...नूं**=प्रभु ने रूहों को सृष्टि में भेजते समय यह वायदा किया था कि मैं तुम्हें घर वापिस ले जाने के लिए संसार में आऊँगा। 2. **अणतारू**=जिसे तैरना नहीं आता; **शरम...नूं**=यदि मैं भवसागर में डूब गयी तो तुझे लाज आयेगी। 3. **सानी**=बराबरी करनेवाला। 4. **बुल्ला...नूं**=उस प्रियतम की प्रीति निराली है, वह बड़े से बड़े गुनहगार को भी पार लगा देता है।

बानी भीखा साहिब जी

कुण्डली

जौ भल चाहो आपनो तौ सतगुरु खोजहु जाइ॥
सतगुरु खोजहु जाइ जहाँ वै साहब रहते।
निसि दिनि इहै बिचारि सदा हरि को गुन कहते॥
समुझै बूझि बिचारि कै तन मन लावै सेव।
कृपा करहिं तब रीझि कै नाम देहिं गुरुदेव॥
भीखा बिछुरे जुगन के पल महँ देहिं मिलाइ।
जौ भल चाहो आपनो तौ सतगुरु खोजहु जाइ॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 64

प्रेम और प्रीति

प्रीति की यह रीति बखानौ॥
कितनौ दुख सुख परै देंह पर, चरन कमल कर ध्यानौ॥
हो चेतन्य बिचारि तजो भ्रम, खाँड़ धूरि जनि सानौ॥
जैसे चात्रिक स्वाँति बुन्द बिनु, प्रान समरपन ठानौ॥
भीखा जेहिं तन राम भजन नहिं, काल रूप तेहिं जानौ॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 22

शब्द

भीखा भय नाहीं। सबै काल चरि जाई॥ टेक॥
आदि अंत परलय हम देखा। लेखा अलेख गुसाईं॥
ब्रह्मा बिसुन देव मुनि नारद। कोई बचन नहिं पाई॥
अरध उरध बिच भाठी लगाई। सो रस पीन अघाई॥
मान सरोवर मैल छुडावा। बेनी में पैठ अन्हाई॥[1]

1. **बेनी**=त्रिवेणी।

धनुवा साध चले त्रिकुटी को। खैंच कमान चड़ाई॥
फोड़ निसान दसो दिसि पारा। काल को मार ढहाई॥
अनंत साहिब गुरु अस पाई। तिन मोहिं संध लखाई॥[1]
अंतर आदि अधर घर पाई। जम की जाल बहाई॥

— तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग 1, पृ. 101

उपदेश

मन तू राम से लै लाव।
त्यागि के परपंच माया सकल जगहिं नचाव॥
साँच की तू चाल गहि ले झूठ कपट बहाव॥
रहनि सों लौ लीन ह्वै गुरु-ज्ञान ध्यान जगाव॥
जोग की यह सहज जुक्ति बिचारि कै ठहराव॥
प्रेम प्रीति सो लागि के घट सहजहीं सुख पाव॥
दृष्टि तें आदृष्टि देखो सुरति निरति बसाव॥
आत्मा निर्धार निर्भौ बानि अनुभव गाव॥
अचल अस्थिर ब्रह्म सेवो भाव चित अरुझाव॥[2]
भीखा फिर नहिं कबहुँ पैहौ बहुरि ऐसो दाव॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 1

गुरु और नाम महिमा

मनुवाँ सब्द सुनत सुख पावै॥ टेक॥
जेहिं बिधि धुधुकत नाद अनाहद तेहिं बिधि सुरत लगावै॥
बानी बिमल उठत निसु बासर नेक बिलंब न लावै॥
पूरा आप करहि पर कारज नरक तें जीव बचावै॥
नाम प्रताप सबन के ऊपर बिछुरो ताहि मिलावै॥
कह भीखा बलि बलि सतगुरु की यह उपकार कहावै॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 12

---

1. **अनंत**=अविनाशी। 2. **अस्थिर**=स्थिर, निश्चल।

विनती

मोहिं राखो जी अपनी सरन॥ टेक॥
अपरम्पार पार नहिं तेरो, काह कहों का करन॥
मन क्रम बचन आस इक तेरी, होउ जनम या मरन॥
अबिरल भक्ति के कारन तुम पर, ह्वै ब्राह्मण देउँ धरन॥
जन भीखा अभिलाख इहो नहिं, चहौं मुक्ति गति तरन॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 20

मिश्रित दोहे

जोग जुक्ति अभ्यास करि सोहं सब्द समाय।
भीखा गुरु परताप तें निज आतम दरसाय॥ 1॥
नाम पढ़ै जो भाव सों ता पर होहिं दयाल।
भीखा के किरपा कियो नाम सुदृष्टि गुलाल॥ 2॥
जाप जपै जो प्रीति सों बहु बिधि रुचि उपजाय।
साँझ समय औ प्रात लगु तत्त पदारथ पाय॥ 3॥
राम को नाम अनन्त है अंत न पावे कोय।
भीखा जस लघु बुद्धि है नाम तवन सुख होय॥ 4॥
एक संप्रदा सब्द घट एक द्वार सुख संच।
इक आतम सब भेष मों दूजो जग परपंच॥ 5॥
भीखा केवल एक है किरतिंम भयो अनन्त।
एकै आतम सकल घट यह गति जानहिं संत॥ 6॥
एकै धागा नाम का सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संत जन सतगुरु नाम गुलाल॥ 7॥
आरति हरि गुरु चरन की कोइ जाने संत सुजान।
भीखा मन बच करमना ताहि मिलै भगवान॥ 8॥

— भीखा साहिब की बानी, पृ. 71

भीखा भूखा को नहीं, सब की गठरी लाल।
गिरह खोल न जानसी, ताते भये कंगाल॥ 9॥

बानी मीराबाई जी

[1]

अब तो निभायाँ बनेगा, बांह गहे की लाज॥
समरथ सरण तुम्हारी साँइयाँ, सरब सुधारण काज॥
भव सागर संसार अपरबल, जा में तुम हो जहाज॥
निरधाराँ आधार जगत-गुरु, तुम बिन होय अकाज॥
जुग जुग भीर हरी भगतन की, दीन्ही मोच्छ समाज॥[1]
मीरा सरण गही चरणन की, पेज रखो महाराज॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 27

[2]

अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई॥
माता छोड़ी पिता छोड़े, छोड़ा सगा भाई।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई॥
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई।
प्रेम आँसु डार डार, अमर बेल बोई॥
मारग में तारग मिले, संत राम दोई।
संत सदा शीश रखूं, राम हृदय होई॥
अंत में से तंत काढयो, पीछे रही सोई।[2]
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई॥
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
दास मीरा लाल गिरधर, होनी हो सो होई॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 410

---

1. **भीर हरी**=संकट दूर कर दिया, कठिनाई दूर कर दी। 2. **अंत...सोई**=मुझे सार तत्त्व का ज्ञान हो गया और मैं निश्चिन्त हो गयी।

[3]

अब मैं सरण तिहारी जी, मोहिं राखो कृपानिधान॥
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान॥
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी बिमान॥
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान॥
कुबजा नीच भीलनी तारी, जानै सकल जहान॥
कहँ लगि कहूँ गिनत नहिं आवै, थकि रहे बेद पुरान॥
मीरा कहै मै सरण रावली, सुनियो दोनों कान॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 28

[4]

कोई कछू कहे मन लागा रे॥
मीरा तो संतों में मिल गयी, ज्यों सोने में सुहागा रे॥
मीरा जी तो ऐसी मिल गयी, ज्यों गुदड़ी में धागा रे॥
लोग कहे मीरा बिगड़ चुकी है, वांका भरम वांने खागा रे॥
हंस की चाल हंस ही जाने, क्या जानेगा कागा रे॥
मीरा तो सूती श्याम भवन में, सतगुरु आय जगागा रे॥
मानुष जन्म ले हरि नहीं गायो, काल उसको खागा रे॥
सतसंगत और राम भजन कर, जन्म-मरण भौ भागा रे॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा रे॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 848

[5]

कोई कहियौ रे प्रभु आवन की, आवन की मन भावन की॥
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाण पड़ी ललचावन की॥
ए दोइ नैण कह्यो नहिं मानैं, नदियां बहै जैसे साँवन की॥
कहा करूं कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जाँवन की॥
मीरा कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भई हूं तेरे दाँवन की॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 53

[6]

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर॥
हम चितवन, तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर॥
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर॥
तुम से हमकूं एक होजी, हमसी लाख करोर॥
ऊभी ठाड़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर॥
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूं प्राण अकोर॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 471

[7]

दरस बिन दुखन लागे नैन॥
जबसे तुम बिछरे मेरे प्रभुजी, कबहुँ न पायों चैन॥
सब्द सुनत मेरी छतियां कंपै, मीठे लागे तुम बैन॥
एक टकटकी पंथ निहारूँ, भई छमासी रैन॥
विरह विथा कासूं कहुँ सजनी, बह गई करवत अैन॥
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटन सुख देन॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 20

[8]

नैणां मोरे बाण पड़ी, साईं मोहि दरस दिखाई॥
चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी॥
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवण मूर जड़ी॥
कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूं, अपणे भवन खड़ी॥
मीरा प्रभु के हात बिकानी, लोग कहे बिगड़ी॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 127

[9]

पायो जी मैंतो नाम रतन धन पायो॥ टेक॥
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पांई, जग में सभी खोवायो॥
खरचै नहिं कोइ चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तर आयो॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 24

[10]

बाल्हा मैं बैरागिण हूँगी हो।
जीं जीं भेष म्हाँरो साहिब रीझे, सोइ सोइ भेष धरूँगी हो॥ टेक॥
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी हो।
जा को नाम निरंजण कहिये, ता को ध्यान धरूँगी हो॥
गुरू ज्ञात रंगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पेरूँगी हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो॥
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, साधाँ संग रहूँगी हो॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 20

[11]

भज मन चरन कँवल अबिनासी॥
जेताइ दीसे धरनि गगन बिच, तेताइ सब उठि जासी॥
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी॥
यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड्यां उठि जासी॥

कहा भयो है भगवा पहरयां, घर तज भये सन्यासी॥
जोगी होय जुगति नहिं जानी, उलटि जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फांसी॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 160

[12]

मन माने जब तार प्रभुजी॥
नदिया गहरी नाव पुरानी। किस बिध उतरूं पार॥
वेद पुरान बखानी महिमा। लगे न गुण को पार॥
योग याग जप तप नहीं जानूं। नाम निरन्तर सार॥
बाट तकत हौं कबकी ठाड़ी। त्रिभुवन पालन हार॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। चरण कमल बलिहार॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 328

[13]

मन हमारा बांध्यो माई, कँवल नैन अपने गुन॥
तीखण तीर बेध शरीर, दूरि गयो माई॥
लाग्यो तब जान्यों नहीं, अब न सह्यो जाई री माई॥
तंत मंत औषद करउ, तऊ पीर न जाई॥[1]
है कोऊ उपकार करे कठिन दर्द री माई॥
निकटि हो तुम दूरि नहीं, बेगि मिलो आई॥
मीरां गिरधर स्वामी दयाल, तन की तपति बुझाई री माई॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 174

1. **तंत मंत**=तंत्र-मंत्र।

[14]

मीरा मन मानी सुरत सैल असमानी॥
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी॥
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी॥
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावे अन्न न पानी॥
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी॥
ऐसा वैद मिलै कोई भेदी, देस बिदेस पिछानी॥
तासों पीर कहूं तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी॥
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी॥
रैदास संत मिले मोहिं सतगुरु, दीन्ही सुरत सहदानी॥
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी॥
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 17

[15]

मुझे लगन लगी प्रभु पावन की। पावन की घर आवन की॥
छोड़ काज अरू लाज जगत की। निसदिन ज्ञान लगावन की॥
सुरत उजाली खुल गई ताली। गगन महल में जावन की॥
झिलमिलकारी ज्योति निहारी। जैसे बिजली सावन की॥
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर। हरख निरख गुण गावन की॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 381

[16]

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ॥
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ॥
रैण दिना वाके संग खेलूं, ज्यूं त्यूं ताहि रिझाऊँ॥

जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ॥
मेरी उनकी प्रीत पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ॥
जहाँ बैठावे तितही बैठूं, बेचै तो बिक जाऊँ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 379

[17]

मोहे लागी लगन गुरु-चरनन की॥
चरन बिना मोहे कछुवै नींह भावै, जग-माया सब सपनन की॥
भवसागर सब सूखि गयौ है, फिकर नहीं मोहि तरनन की॥
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुर-सरनन की॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 235

[18]

म्हारा सतगुर बेगा आज्यो जी, म्हारे सुख री सीर बुवाज्यो जी॥
तुम बीछड़ियां दुख पाऊं जी, मेरा मन माहीं मुरझाऊं जी॥
मैं कोइल ज्यूं कुरलाऊं जी, कुछ बाहरि कहि न जणाऊं जी॥
मोहिं बाघण विरह सतावे जी, कोई कहियां पार न पावै जी॥
ज्यूं चकवी रैण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुहावै जी॥
ऊ दिन कबै करोला जी, म्हारे आँगन पांव धरोला जी॥
अरज करे मीरा दासी जी, गुर पद रज की प्यासी जी॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 192

[19]

म्हारी सुध ज्यूं जानो ज्यूं लीजो जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसण म्हांने दीजो जी॥
मैं तो हूँ बहु औगणहारी, औगण चित्त मत दीजो जी॥
मैं तो दासी थारे चरण-जनां की, मिल बिछुरन मत कीजो जी॥
मीराँ तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणां चित्त दीजो जी॥

— मीरा बृहत्पदावली, पृ. 193

[20]

म्हाँ रे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा॥ टेक॥
तन मन धन सब भेंट करूँ, और भजन करूँ मैं थाँरा॥
तुम गुणवंत बड़े गुण सागर, मैं हूँ जी औगणहारा॥
मैं निगुणी गुण एको नाहीं, तुझ में जी गुण सारा॥
मीरा कहै प्रभु कबहि मिलौगे, बिन दरसण दुखियारा॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 25

[21]

म्हारे जन्म-मरण रा साथी, थांने नहिं बिसरूँ दिन राती॥
थाँ देख्याँ बिन कल न पड़त है, जाणत मेरी छाती॥
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ, रोय-रोय अँखियाँ राती॥
यो संसार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती॥[1]
दोउ कर जोड़याँ अरज करूँ छूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती॥
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूं मदमातो हाथी॥
सतगुरु हाथ धरौ सिर ऊपर, आँकुस दै समझाती॥
पल-पल पिव को रूप निहारूँ, निरख-निरख सुख पाती॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 167

[22]

राम रंग लागो, मेरे दल को धोको भागो॥
जब थी बन्दी मान गुमानी, पीजी मुखउ न बोलो॥[2]
अब भई बन्दी खाक बराबर, साहिब अन्तर खोलो॥
पीजी बोलो, अन्तर खोलो, सेजड़ियां सुख दीनो॥
मैं अपने प्रीतम संग राजी, प्रेम पियालो पीनो॥

---

1. **कुल**=परिवार; **न्याती**=नाती। 2. **पीजी**=पिया जी, प्रियतम।

लोक लाज कुल की मरजादा, तोड़ दियो सोइ धागो॥
हरीजनां ने हरी मिले, ज्यूं सोनो मिल्यो सुहागो॥
सांचे से मेरा साहिब राजी, झूठे से मन भागो॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारो जागो॥

— मीरा सुधा सिंधु , पृ. 380

[23]

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाणे कोय॥
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोणा होय॥
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस बिध मिलणा होय॥
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय॥
जौहर की गति जौहर जानै, की जिन जौहर होय॥
दरद की मारी बन बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोय॥
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सँवलिया होय॥

— मीराबाई की शब्दावली, पृ. 4

बानी गुरु रविदास जी

गउड़ी पूरबी रविदास जीउ

कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ॥
ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ॥
सगल भवन के नाइका इकु छिनु दरसु दिखाइ जी॥ रहाउ॥
मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ॥
करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मै सुमति देहु समझाइ॥
जोगीसर पावहि नही तुअ गुण कथनु अपार॥
प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 346

गउड़ी बैरागणि रविदास जीउ

घट अवघट डूगर घणा इकु निरगुणु बैलु हमार॥[1]
रमईए सिउ इक बेनती मेरी पूंजी राखु मुरारि॥
को बनजारो राम को मेरा टांडा लादिआ जाइ रे॥ रहाउ॥
हउ बनजारो राम को सहज करउ ब्यापारु॥
मै राम नाम धनु लादिआ बिखु लादी संसारि॥
उरवार पार के दानीआ लिखि लेहु आल पतालु॥[2]
मोहि जम डंडु न लागई तजीले सरब जंजाल॥
जैसा रंगु कसुंभ का तैसा इहु संसारु॥[3]
मेरे रमईए रंगु मजीठ का कहु रविदास चमार॥[4]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 345

---

1. **डूगर**=पर्वत; **घट...घणा**=रास्ता बहुत ऊबड़-खाबड़ और मुश्किलों से भरा है। 2. **उरवार...पतालु**=आप धर्मराय को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तू मेरे ख़िलाफ़ जो मर्ज़ी लिख ले। 3. **रंगु कसुंभ का**=कच्चा रंग। 4. **रंगु मजीठ का**=पक्का रंग।

धनासरी भगत रविदास जी की

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ॥[1]
मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ रसन अंम्रित राम नाम भाखउ॥[2]
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै॥ मै तउ मोलि महगी लई जीअ सटै॥ रहाउ॥[3]
साधसंगति बिना भाउ नही ऊपजै भाव बिनु भगति नही होइ तेरी॥[4]
कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ पैज राखहु राजा राम मेरी॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 694

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

जउ तुम गिरिवर तउ हम मोरा॥ जउ तुम चंद तउ हम भए है चकोरा॥
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नही तोरहि॥
तुम सिउ तोरि कवन सिउ जोरहि॥ रहाउ॥
जउ तुम दीवरा तउ हम बाती॥ जउ तुम तीरथ तउ हम जाती॥
साची प्रीति हम तुम सिउ जोरी॥ तुम सिउ जोरि अवर संगि तोरी॥
जह जह जाउ तहा तेरी सेवा॥ तुम सो ठाकुरु अउरु न देवा॥
तुमरे भजन कटहि जम फांसा॥ भगति हेत गावै रविदासा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 658

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

जउ हम बांधे मोह फास हम प्रेम बधनि तुम बाधे॥
अपने छूटन को जतनु करहु हम छूटे तुम आराधे॥
माधवे जानत हहु जैसी तैसी॥ अब कहा करहुगे ऐसी॥ रहाउ॥
मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ रांधि कीओ बहु बानी॥[6]

---

1. **चित...राखउ**=चित्त इसलिए है कि तेरा सिमरन करूँ, आँखें इसलिए हैं कि तेरा दीदार करूँ, कान इसलिए हैं कि तेरे यश-गान से भरे रहें। 2. **मधुकरु**=भ्रमर, भँवरा; **रसन**=रसना अथवा जिह्वा से; **भाखउ**=उच्चारण या जाप करूँ। 3. **मेरी...घटै**=मेरी गोबिन्द से प्रीति न घटे; **मै...सटै**=मैंने यह अपनी जान देकर ली है। 4. **भाउ**=प्रेम। 5. **पैज**=लाज। 6. **रांधि...बानी**=पूरी युक्ति से उसे पकाया।

खंड खंड करि भोजनु कीनो तऊ न बिसरिओ पानी॥
आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा॥[1]
मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नही संतापा॥
कहि रविदास भगति इक बाढी अब इह का सिउ कहीऐ॥[2]
जा कारनि हम तुम आराधे सो दुखु अजहू सहीऐ॥[3]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 658

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

जल की भीति पवन का थंभा रकत बुंद का गारा॥
हाड मास नाड़ीं को पिंजरु पंखी बसै बिचारा॥
प्रानी किआ मेरा किआ तेरा॥ जैसे तरवर पंखि बसेरा॥ रहाउ॥
राखहु कंध उसारहु नीवां॥ साढे तीनि हाथ तेरी सीवां॥[4]
बंके बाल पाग सिरि डेरी॥ इहु तनु होइगो भसम की ढेरी॥
ऊचे मंदर सुंदर नारी॥ राम नाम बिनु बाजी हारी॥
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओछा जनमु हमारा॥
तुम सरनागति राजा राम चंद कहि रविदास चमारा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 659

रागु सूही बाणी स्री रविदास जीउ की

जो दिन आवहि सो दिन जाही॥ करना कूचु रहनु थिरु नाही॥
संगु चलत है हम भी चलना॥ दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥
किआ तू सोइआ जागु इआना॥ तै जीवनु जगि सचु करि जाना॥ रहाउ॥
जिनि जीउ दीआ सु रिजकु अंबरावै॥ सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥[5]

---

1. **आपन...राजा**=वह किसी के बाप का नहीं है, वह उसका है जो उसे प्रेम करता है। 2-3. **कहि...सहीऐ**=रविदास जी कहते हैं कि चाहे मुझमें भक्ति-भाव बहुत प्रबल हो गया है मगर मैं यह दुःख किससे कहूँ कि जिस परमात्मा को पाने के लिए मैंने भक्ति की, मेरा अभी तक उससे मिलाप नहीं हो सका। 4. **कंध**=दीवार; **नीवां**=नींव; **सीवां**=सीमा। 5. **जिनि... अंबरावै**=जिसने पैदा किया है, वही सबको भोजन देता है।

करि बंदिगी छाडि मै मेरा॥ हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥
जनमु सिरानो पंथु न सवारा॥ सांझ परी दह दिस अंधिआरा॥[1]
कहि रविदास निदानि दिवाने॥ चेतसि नाही दुनीआ फन खाने॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 793-94

बसंतु बाणी रविदास जी की

तुझहि सुझंता कछू नाहि॥ पहिरावा देखे ऊभि जाहि॥[3]
गरबवती का नाही ठाउ॥ तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ॥[4]
तू कांइ गरबहि बावली॥
जैसे भादउ खूंबराजु तू तिस ते खरी उतावली॥ रहाउ॥[5]
जैसे कुरंक नही पाइओ भेदु॥ तनि सुगंध ढूढै प्रदेसु॥[6]
अप तन का जो करे बीचारु॥ तिसु नही जमकंकरु करे खुआरु॥[7]
पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु॥ ठाकुरु लेखा मगनहारु॥
फेड़े का दुखु सहै जीउ॥ पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ॥[8]
साधू की जउ लेहि ओट॥ तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि॥
कहि रविदास जो जपै नामु॥ तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1196

बिलावलु बाणी रविदास भगत की

दारिदु देखि सभ को हसै ऐसी दसा हमारी॥
असट दसा सिधि कर तलै सभ क्रिपा तुमारी॥

---

1. **जनमु...सवारा**=जीवन जा रहा है, पर तू घर तक ले जाने वाले रास्ते पर नहीं चल रहा। 2. **चेतसि...खाने**=यह क्यों नहीं सोचता कि संसार को नष्ट हो जाना है। 3. **सुझंता**=सूझता; **पहिरावा...जाहि**=अपना पहरावा व ठाठ देखकर घमण्ड करने लग जाता है। 4. **गरबवती**=अहंकारी; **ठाउ**=ठौर या ठिकाना; **तेरी...काउ**=काल रूपी कौआ भाव मौत तेरे सिर पर मंडरा रही है। 5. **जैसे...उतावली**=तेरा जीवन खुंभी से भी अधिक क्षणभंगुर है। 6. **कुरंक**=हिरण; **तनि**=तन में; **प्रदेसु**=परदेस, बाहर। 7. **अप तन**=अपने शरीर; **जमकंकरु**=यमदूत। 8. **फेड़े...जीउ**=अपने किये कर्मों के कारण दुःख सहन करता है; **पाछे...पीउ**=फिर सहायता के लिए किसे पुकारेगा।

तू जानत मै किछु नही भव खंडन राम॥
सगल जीअ सरनागती प्रभ पूरन काम॥ रहाउ॥
जो तेरी सरनागता तिन नाही भारु॥
ऊच नीच तुम ते तरे आलजु संसारु॥
कहि रविदास अकथ कथा बहु काइ करीजै॥
जैसा तू तैसा तुही किआ उपमा दीजै॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 858

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै॥[1]
राजे इंद्र समसरि ग्रिह आसन बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै॥[2]
न बीचारिओ राजा राम को रसु॥ जिह रस अन रस बीसरि जाही॥ रहाउ॥[3]
जानि अजान भए हम बावर सोच असोच दिवस जाही॥
इंद्रीं सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नही॥
कहीअत आन अचरीअत अन कछु समझ न परै अपर माइआ॥[4]
कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोपु करहु जीअ दइआ॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 658

धनासरी भगत रविदास जी की

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे॥ हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे॥[6] रहाउ॥
नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा नामु तेरा केसरो ले छिटकारे॥[7]
नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे॥[8]

---

1. **अबिबेकै**=अज्ञानता या नासमझी के कारण। 2. **समसरि**=समान; **किह लेखै**=किस काम के। 3. **अन रस**=अन्य सब सांसारिक रस अथवा स्वाद। 4. **कहीअत...अन**=हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं; **अपर**=अपार, प्रबल। 5. **परहरि**=त्यागकर; **कहि... दइआ**=मैं उदास मन से प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे प्रभु तू रोष (कोपु) त्यागकर मुझ पर दया कर। 6. **मजनु**=स्नान; **झूठे...पासारे**=सब धन्धे झूठ हैं। 7. **आसनो**=पूजा करने का आसन; **उरसा**=केसर घिसने का पत्थर; **नामु...छिटकारे**=तुम्हारे ऊपर छिड़काने वाला केसर भी तुम्हारा नाम है। 8. **अंभुला**=पानी।

नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे॥
नाम तेरे की जोति लगाई भइओ उजिआरो भवन सगलारे॥
नामु तेरो तागा नामु फूल माला भार अठारह सगल जूठारे॥[1]
तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ नामु तेरा तुही चवर ढोलारे॥[2]
दस अठा अठसठे चारे खाणी इहै वरतणि है सगल संसारे॥[3]
कहै रविदासु नामु तेरो आरती सति नामु है हरि भोग तुहारे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 694

रामकली बाणी रविदास जी की

पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ अनभउ भाउ न दरसै॥[4]
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसै॥[5]
देव संसै गांठि न छूटै॥[6]
काम क्रोध माइआ मद मतसर इन पंचहु मिलि लूटे॥ रहाउ॥
हम बड कबि कुलीन हम पंडित हम जोगी संनिआसी॥[7]
गिआनी गुनी सूर हम दाते इह बुधि कबहि न नासी॥[8]
कहु रविदास सभै नही समझसि भूलि परे जैसे बउरे॥
मोहि अधारु नामु नाराइन जीवन प्रांन धन मोरे॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 973-74

प्रभु जी संगति सरनि तिहारी। जग जीवन राम मुरारी॥ टेक॥
गली गली कौ नीर बहि आयो, सुरसरी जाइ समायो।

1. **अठारह...जूठारे**=सारी वनस्पति का एक-एक पत्ता ले लें तो अठारह भार (तोल) होते हैं, एक तोल पाँच मन से भारी होता है। यहाँ भाव यह है कि सारी वनस्पति जूठी है, प्रभु को भेंट करने योग्य नहीं है। 2. **नामु...ढोलारे**=मैं तुम्हारे ऊपर तुम्हारे नाम का चँवर झुलाता हूँ। 3. **दस...संसारे**=सारा संसार अठारह पुराणों, अड़सठ तीर्थों और चार खानों में भटक रहा है। 4. **पड़ीऐ...दरसै**=वाणी के पढ़ने-सुनने से भी ज्ञान-स्वरूप और प्रेम-स्वरूप प्रभु के दर्शन नहीं होते। 5. **कंचनु**=सोना; **परसै**=स्पर्श। 6. **देव**=हे प्रभु; **संसै**=भ्रम और संशय। 7. **कबि**=कवि; **कुलीन**=अच्छे कुल (खानदान) वाले। 8. **सूर**=सूरमा, बहादुर; **गिआनी... नासी**=यह हौंमैं वाली बुद्धि कि हम बड़े गुनी-ज्ञानी, बहादुर और ऊँचे कुल वाले हैं, कभी नष्ट नहीं होती।

संगति के परताप महातम, नांव गंगोदिक पायो॥
स्वांति बूंद बरषैं फनि ऊपर, सीस विषै विष होई।
वाही बूंद को मोती निपजै संगति की अधिकाई॥
तुम चंदन हम इरंड बापुरे, निकटि तुम्हारे बासा।
नीच व्रिष तै ऊँच भए हैं, तुम्हरी बास सुबासा॥
जाति भी ओछी पांति भी ओछी, ओछा कसब हमारा।
तुम्हरी क्रिपा तैं ऊंच भए हैं, कहै रविदास चमारा॥

— रविदास वाणी 116

भैरउ बाणी रविदास जीउ की घरु 2

बिनु देखे उपजै नही आसा॥ जो दीसै सो होइ बिनासा॥[1]
बरन सहित जो जापै नामु॥ सो जोगी केवल निहकामु॥[2]
परचै रामु रवै जउ कोई॥ पारसु परसै दुबिधा न होई॥ रहाउ॥[3]
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ॥ बिनु दुआरै त्रै लोक समाइ॥
मन का सुभाउ सभु कोई करै॥ करता होइ सु अनभै रहै॥[4]
फल कारन फूली बनराइ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाइ॥[5]
गिआनै कारन करम अभिआसु॥ गिआनु भइआ तह करमह नासु॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन॥ जीवत मुकत सदा निरबान॥[6]
कहि रविदास परम बैराग॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग॥[7]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1167

---

1. **उपजै**=पैदा होती। 2. **बरन...नामु**=जो नाम की उपमा करता है, नाम का जप करता है; **निहकामु**=कामना रहित। 3. **परचै**=अभ्यास करके; **परचै...होई**=जो व्यक्ति गुरु द्वारा दिये नाम का सुमिरन करता हुआ राम में समा जाता है, वह राम रूपी पारस के साथ मिलकर पारस बन जाता है और उसके सब भ्रम दूर हो जाते हैं। 4. **अनभै**=निर्भय यानी निर्लेप; **मन...रहै**=सारा संसार मन के कहने के मुताबिक़ कार्य करता है परन्तु जो परमात्मा में लीन हो जाता है वह मन से निर्लेप हो जाता है। 5. **बनराइ**=वनस्पति; **बिलाइ**=मुरझा जाते हैं। 6. **दधि**=दही; **मथै**=बिलोती है, मन्थन करती है; **सइआन**=समझदार स्त्री। 7. **परम बैराग**=उत्तम प्रेम, उत्तम ज्ञान; **न जपसि**=क्यों नहीं जपता।

बीति आउ भजनु नहीं कीन्हा॥ टेक॥
सेत भयउ तन थर थर कंपहिस हरि सिमरनु नहीं कीन्हा।
सत संगत नहिं गुरु पद सेओ, प्रभ कीरति नहिं गाई।
नहि मनु रमयो प्रभ चरनन महिं, तन स्यों परीत द्रिढ़ाई।
कह रविदास चलन की बिरियां, कोउ न होहु सहाई॥

— रविदास वाणी 242

आसा बाणी स्री रविदास जीउ की

म्रिग मीन भ्रिंग पतंग कुंचर एक दोख बिनास॥[1]
पंच दोख असाध जा महि ता की केतक आस॥
माधो अबिदिआ हित कीन॥ बिबेक दीप मलीन॥ रहाउ॥
त्रिगद जोनि अचेत संभव पुंन पाप असोच॥[2]
मानुखा अवतार दुलभ तिही संगति पोच॥
जीअ जंत जहा जहा लगु करम के बसि जाइ॥
काल फास अबध लागे कछु न चलै उपाइ॥
रविदास दास उदास तजु भ्रमु तपन तपु गुर गिआन॥
भगत जन भै हरन परमानंद करहु निदान॥[3]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 486

आसा बाणी स्री रविदास जीउ की

संत तुझी तनु संगति प्रान॥ सतिगुर गिआन जानै संत देवा देव॥[4]
संत ची संगति संत कथा रसु॥ संत प्रेम माझै दीजै देवा देव॥ रहाउ॥[5]

---

1. **म्रिग**=हिरन; **मीन**=मछली; **भ्रिंग**=भँवरा; **पतंग**=पतंगा; **कुंचर**=हाथी; **बिनास**=नष्ट हो जाते हैं। 2. **त्रिगद**=टेढ़ी चाल वाले जीव (साँप, मेंढक आदि)। 3. **निदान**=पार उतारा, छुटकारा। 4. **संत...प्रान**=हे प्रभु! सन्त तेरी देही हैं, उनकी संगति तेरे प्राण हैं; **सतिगुर...देव**=सतगुरु के ज्ञान द्वारा पता चला कि सन्त देवों के देव अर्थात् परमात्मा का रूप हैं। 5. **संत ची**=सन्तों की।

संत आचरण संत चो मारगु संत च ओल्हग ओल्हगणी ॥[1]
अउर इक मागउ भगति चिंतामणि ॥ जणी लखावहु असंत पापी सणि ॥[2]
रविदासु भणै जो जाणै सो जाणु ॥ संत अनंतहि अंतरु नाही ॥[3]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 486

गउड़ी बैरागणि रविदास जीउ

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार ॥[4]
तीनौ जुग तीनौ दिड़े कलि केवल नाम अधार ॥[5]
पारु कैसे पाइबो रे ॥ मो सउ कोऊ न कहै समझाइ ॥
जा ते आवा गवनु बिलाइ ॥[6] रहाउ ॥
बहु बिधि धरम निरूपीऐ करता दीसै सभ लोइ ॥
कवन करम ते छूटीऐ जिह साधे सभ सिधि होइ ॥[7]
करम अकरम बीचारीऐ संका सुनि बेद पुरान ॥[8]
संसा सद हिरदै बसै कउनु हिरै अभिमानु ॥[9]
बाहरु उदकि पखारीऐ घट भीतरि बिबिधि बिकार ॥[10]
सुध कवन पर होइबो सुच कुंचर बिधि बिउहार ॥[11]
रवि प्रगास रजनी जथा गति जानत सभ संसार ॥

---

1. **संत...ओल्हगणी**=मुझे सन्तों जैसे आचरण, सन्तों के मार्ग पर चलने और सन्तों के सेवकों की सेवा का सौभाग्य प्रदान करो। 2. **जणी...सणि**=असन्त और पापी व्यक्ति मुझे कभी न दिखाओ। 3. **रविदासु...नाही**=यह बात जानने योग्य है कि सन्त में और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं होता। 4-5. **सतजुगि...अधार**=सतयुग में प्रभु भक्ति के लिए सत्य यानी दान-पुण्य पर, त्रेता में हवन-यज्ञ पर और द्वापर में पूजा-अर्चना पर ज़ोर दिया जाता था, मगर कलियुग में नाम ही प्रभु-भक्ति का एकमात्र साधन है। 6. **जा...बिलाइ**=जन्म-मरण से छुटकारा हो जाये। 7. **कवन...होइ**=लोग कई प्रकार के कर्मकाण्ड करते हैं, पर वह कौन-सा कर्म है जिसको करने से मुक्ति प्राप्त होती है। 8-9. **संसा...अभिमानु**=वेदों और पुराणों को सुनने से भी संशय दूर नहीं होते, मन में अहंकार रहता है। तो फिर संशय और अहंकार का नाश कैसे हो? 10. **उदकि**=पानी; **पखारीऐ**=धोना, स्नान करना। 11. **सुध...बिउहार**=हाथी स्नान करने के बाद शरीर पर मिट्टी डाल लेता है, जब जीव की ऐसी अवस्था है तो फिर वह शुद्ध कैसे होगा?

पारस मानो ताबो छुए कनक होत नही बार॥[1]
परम परस गुरु भेटीऐ पूरब लिखत लिलाट॥
उनमन मन मन ही मिले छुटकत बजर कपाट॥
भगति जुगति मति सति करी भ्रम बंधन काटि बिकार॥
सोई बसि रसि मन मिले गुन निरगुन एक बिचार॥
अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास॥[2]
प्रेम भगति नही ऊपजै ता ते रविदास उदास॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 346

रागु सोरठि बाणी भगत रविदास जी की

सुख सागरु सुरतर चिंतामनि कामधेनु बसि जा के॥[3]
चारि पदारथ असट दसा सिधि नव निधि कर तल ता के॥[4]
हरि हरि हरि न जपहि रसना॥ अवर सभ तिआगि बचन रचना॥ रहाउ॥
नाना खिआन पुरान बेद बिधि चउतीस अखर मांही॥[5]
बिआस बिचारि कहिओ परमारथु राम नाम सरि नाही॥
सहज समाधि उपाधि रहत फुनि बडै भागि लिव लागी॥[6]
कहि रविदास प्रगासु रिदै धरि जनम मरन भै भागी॥[7]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 658

---

1. **पारस...बार**=जिस प्रकार ताँबा पारस के स्पर्श से शीघ्र सोना बन जाता है। 2. **अनिक...फास**=हठ कर्मों से भ्रम की फाँसी नहीं टलती। 3. **सुरतर**=कल्प-वृक्ष; **चिंतामनि**=वह मणि जिससे मन की सब कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। 4. **चारि पदारथ**=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष; **असट...सिधि**=अष्ट + दस अर्थात् अठारह सिद्धियाँ; **कर तल**=हाथ में, वश में। 5. **खिआन**=प्रसंग; **बेद बिधि**=वेदों में बतायी हुई विधियाँ; **चउतीस...मांही**=चौंतीस अक्षरों में लिखने-पढ़ने तक सीमित हैं। 6-7. **सहज...भागी**= रविदास जी कहते हैं कि जिस व्यक्ति की आत्मा भाग्य से प्रभु-चरणों में लीन हो जाती है, वह सहज अवस्था को प्राप्त कर लेता है, उसके अन्तर में प्रकाश हो जाता है और वह जन्म-मरण के भय से मुक्त हो जाता है।

बानी शेख़ फ़रीद जी

सलोक सेख फरीद के

जितु दिहाड़ै धन वरी साहे लए लिखाइ॥
मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ॥[1]
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ॥
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ॥[2]
जिंदु वहुटी मरणु वरु लै जासी परणाइ॥[3]
आपण हथी जोलि कै कै गलि लगै धाइ॥
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ॥[4]
फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ॥ 1 ॥[5]
फरीदा दर दरवेसी गाखड़ी चलां दुनीआं भति॥[6]
बंन्हि उठाई पोटली किथै वंञा घति॥ 2 ॥
किझु न बुझै किझु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि॥[7]
सांईं मेरै चंगा कीता नाही त हं भी दझां आहि॥ 3 ॥[8]
फरीदा जे जाणा तिल थोड़ड़े संमलि बुकु भरी॥
जे जाणा सहु नंढड़ा तां थोड़ा माणु करी॥ 4 ॥[9]

---

1. **मलकु**=यमराज। 2. **न चलनी**=नहीं टलते। 3. **जिंदु...परणाइ**=मौत का दूल्हा ज़िन्दगी की दुल्हन को ब्याह कर ले जायेगा। 4. **वालहु...पुरसलात**=इसलाम धर्म के अनुसार नर्क की आग के ऊपर बना हुआ पुल जो बाल से भी बारीक है। 5. **फरीदा...मुहाइ**=हे फ़रीद, अन्त समय समीप आ गया है, अपने आपको न लुटा। 6. **गाखड़ी**=कठिन; **दुनीआं भति**=दुनिया जैसे। 7. **गुझी**=गुप्त, छिपी हुई; **भाहि**=आग। 8. **नाही...आहि**=नहीं तो मैं भी इसमें जल जाता। 9. **नंढड़ा**=बाल-स्वभाव वाला, बेपरवाह।

जे जाणा लड़ु छिजणा पीडी पाईं गंढि ॥[1]
तै जेवडु मै नाहि को सभु जगु डिठा हंढि ॥ 5 ॥[2]
फरीदा जे तू अकलि लतीफु काले लिखु न लेख ॥[3]
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नींवां करि देखु ॥ 6 ॥[4]
फरीदा जो तै मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ॥[5]
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिन्हा दे चुंमि ॥ 7 ॥
फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ ॥
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ ॥ 8 ॥
देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ॥[6]
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि ॥ 9 ॥
देखु फरीदा जि थीआ सकर होई विसु ॥
सांई बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु ॥ 10 ॥
फरीदा अखी देखि पतीणीआं सुणि सुणि रीणे कंन ॥[7]
साख पकंदी आईआ होर करेंदी वंन ॥ 11 ॥
फरीदा कालीं जिनी न राविआ धउली रावै कोइ ॥[8]
करि सांई सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥ 12 ॥
फरीदा काली धउली साहिबु सदा है जे को चिति करे ॥
आपणा लाइआ पिरमु न लगई जे लोचै सभु कोइ ॥[9]
एहु पिरमु पिआला खसम का जै भावै तै देइ ॥ 13 ॥

---

1. **जे...छिजणा**=अगर मुझे पता होता कि गठ-बंधन छूट जायेगा तो मैं पक्की गाँठ बाँधता। 2. **हंढि**=घूम कर, ढूँढ़ कर। 3. **अकलि लतीफु**=सूक्ष्म बुद्धि वाला यानी अक़्लमंद। 4. **आपनड़े...देखु**=अपने अन्दर झाँक यानी अपने अवगुणों की ओर देख। 5. **घुंमि**=पलटकर, बदले में। 6. **भूर**=सफ़ेद, श्वेत। 7. **अखी...पतीणीआं**=आँखें कमज़ोर हो गयीं; **रीणे**=बहरे। 8. **कालीं**=काले बालों के होते हुए यानी जवानी में; **धउली**=सफ़ेद बालों यानी बुढ़ापे में; **फरीदा...कोइ**=अगर किसी ने जवानी में परमात्मा की भक्ति नहीं की तो बुढ़ापे में उसकी भक्ति कोई विरला ही कर सकता है। 9. **पिरमु**=प्रेम।

फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिआ से लोइण मै डिठु ॥[1]
कजल रेख न सहदिआ से पंखी सूइ बहिठु ॥ 14 ॥
फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित ॥[2]
जो सैतानि वंञाइआ से कित फेरहि चित ॥ 15 ॥[3]
फरीदा खाकु न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ ॥
जीवदिआ पैरा तलै मुइआ उपरि होइ ॥ 17 ॥
फरीदा जा लबु ता नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु ॥
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ॥ 18 ॥
फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ॥
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥ 19 ॥
फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्हि ॥[4]
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥ 20 ॥[5]
फरीदा जे मै होदा वारिआ मिता आइड़िआं ॥[6]
हेड़ा जलै मजीठ जिउ उपरि अंगारा ॥ 22 ॥[7]
फरीदा लोड़ै दाख बिजउरीआं किकरि बीजै जटु ॥[8]
हंढै उंन कताइदा पैधा लोड़ै पटु ॥ 23 ॥
फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु ॥
चला त भिजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥ 24 ॥
भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु ॥
जाइ मिला तिना सजणा तुटउ नाही नेहु ॥ 25 ॥

---

1. **लोइण**=नेत्र। 2. **चांगेदिआ**=दुहाई देते हुए, सावधान करते हुए। 3. **जो...चित**= जिनको मन रूपी शैतान ने गुमराह किया हुआ है, वे ध्यान को दुनिया की ओर से मोड़कर परमात्मा की ओर कैसे लगा सकते हैं? 4. **निकी जंघीऐ**=छोटी-छोटी टाँगों से; **थल**= रेगिस्तान; **डूंगर**=पर्वत। 5. **अजु...थीओमि**=आज पास पड़ा लोटा भी सौ कोस पर पड़ा प्रतीत होता है। 6-7. **फरीदा...अंगारा**=अगर मैंने मित्रों-सत्संगियों के आने पर कुछ छिपाकर रखा हो तो मेरा मांस मजीठ के समान लाल अंगारों पर जले। 8. **दाख बिजउरीआं**=बिजौर देश की दाखें।

फरीदा मै भोलावा पग दा मतु मैली होइ जाइ ॥[1]
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥ 26 ॥[2]
फरीदा सकर खंडु निवात गुडु माखिउो मांझा दुधु ॥[3]
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥ 27 ॥
फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ॥ 28 ॥
रुखी सुखी खाइ कै ठंढा पाणी पीउ ॥
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ ॥ 29 ॥
अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ ॥
जाइ पुछहु डोहागणी तुम किउ रैणि विहाइ ॥ 30 ॥
साहुरै ढोई ना लहै पेईऐ नाही थाउ ॥[4]
पिरु वातड़ी न पुछई धन सोहागणि नाउ ॥ 31 ॥[5]
साहुरै पेईऐ कंत की कंतु अगंमु अथाहु ॥
नानक सो सोहागणी जु भावै बेपरवाह ॥ 32 ॥
नाती धोती संबही सुती आइ नचिंदु ॥[6]
फरीदा रही सु बेड़ी हिंङु दी गई कथूरी गंधु ॥ 33 ॥[7]
जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ ॥
फरीदा कितीं जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाइ ॥ 34 ॥
फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावण लेफु ॥
एहु हमारा जीवणा तू साहिब सचे वेखु ॥ 35 ॥
बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु ॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु ॥ 36 ॥

---

1. **फरीदा...जाइ**=मुझे पगड़ी को मैला होने से बचाने की चिन्ता थी। 2. **गहिला...खाइ**=मूर्ख मन यह नहीं जानता था कि सिर को भी मिट्टी खा जायेगी। 3. **निवात**=मिश्री। 4. **पेईऐ**=पिता के घर में, मायके में यानी इस लोक में। 5. **वातड़ी**=बात, ख़बर। 6. **संबही**=सजी-सँवरी हुई; **नचिंदु**=निश्चिन्त, बेफ़िक्र। 7. **बेड़ी**=लिबड़ी हुई; **कथूरी**=कस्तूरी; **गंधु**=सुगन्ध।

फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि॥[1]
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि॥ 37॥
फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि॥[2]
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केर्हे कंमि॥ 38॥
फरीदा दरि दरवाजै जाइ कै किउ डिठो घड़ीआलु॥
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसां दा किआ हालु॥ 39॥
बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह॥
जे सउ वर्हिआ जीवणा भी तनु होसी खेह॥ 41॥
फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि॥[3]
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि॥ 42॥
कंधि कुहाड़ा सिरि घड़ा वणि कै सरु लोहारु॥
फरीदा हउ लोड़ी सहु आपणा तू लोड़हि अंगिआर॥ 43॥
फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु॥
अगै गए सिंञापसनि चोटां खासी कउणु॥ 44॥
पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड॥
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड॥ 45॥[4]
फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ उसारेदे भी गए॥
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए॥ 46॥
फरीदा खिंथड़ि मेखा अगलीआ जिंदु न काई मेख॥[5]
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख॥ 47॥[6]
फरीदा दुहु दीवी बलंदिआ मलकु बहिठा आइ॥[7]
गड़ु लीता घटु लुटिआ दीवड़े गइआ बुझाइ॥ 48॥[8]

---

1. **फरीदा...लिवाड़ि**=ज़हर की डंठलों पर चीनी की चाश्नी चढ़ाई हुई है। 2. **फरीदा... संमि**=दिन के चार पहर दुनिया की भाग-दौड़ में गंवा दिये और रात के चार पहर सो कर। 3. **बारि पराइऐ**=पराये द्वार पर। 4. **जीराण**=श्मशान भूमि में; **थीए...गड**=यतीमों की तरह धरती में गाड़ दिया गया यानी क़ब्र में दफ़ना दिया गया। 5. **खिंथड़ि**=गुदड़ी; **मेखा**=कपड़े के टुकड़े, टांके; **अगलीआ**=बहुत-सी। 6. **मसाइक**=शेख़ का बहुवचन। 7-8. **फरीदा...बुझाइ**=आँखों के सामने मौत का फ़रिश्ता शरीर रूपी किले में से आत्मा रूपी पूँजी लूटकर ले गया और नेत्रों के दीपक बुझा गया।

फरीदा वेखु कपाहै जि थीआ जि सिरि थीआ तिलाह ॥[1]
कमादै अरु कागदै कुंने कोइलिआह ॥
मंदे अमल करेदिआ एह सजाइ तिनाह ॥ 49 ॥
फरीदा कंनि मुसला सूफु गलि दिलि काती गुड़ु वाति ॥[2]
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति ॥ 50 ॥
फरीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ ॥
जो तन रते रब सिउ तिन तनि रतु न होइ ॥ 51 ॥
इहु तनु सभो रतु है रतु बिनु तंनु न होइ ॥
जो सह रते आपणे तितु तनि लोभु रतु न होइ ॥
भै पइऐ तनु खीणु होइ लोभु रतु विचहु जाइ ॥
जिउ बैसंतरि धातु सुधु होइ तिउ हरि का भउ दुरमति मैलु गवाइ ॥
नानक ते जन सोहणे जि रते हरि रंगु लाइ ॥ 52 ॥
फरीदा सोई सरवरु ढूढि लहु जिथहु लभी वथु ॥[3]
छपड़ि ढूढै किआ होवै चिकड़ि डुबै हथु ॥ 53 ॥
फरीदा सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं ॥[4]
रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं ॥ 55 ॥
फरीदा कोठे धुकणु केतड़ा पिर नीदड़ी निवारि ॥
जो दिह लधे गाणवे गए विलाड़ि विलाड़ि ॥ 56 ॥[5]
फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु ॥
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मितु ॥ 57 ॥[6]

---

1. **फरीदा...तिलाह**=हे फ़रीद! तू देख कपास के साथ जो हुआ और तिलों पर जो बीती। 2. **गुड़ु वाति**=मुँह में गुड़ है यानी मीठी और चिकनी चुपड़ी बातें करता है। 3. **वथु**=वस्तु, नाम रूपी सार-पदार्थ। 4. **पलीआं**=सफ़ेद हो गयीं। 5. **विलाड़ि विलाड़ि**=छलांगें लगाते हुए यानी तेज़ी से; **फरीदा...विलाड़ि**=हे फ़रीद! छत की दौड़ कितनी लम्बी हो सकती है, अर्थात् तू परमेश्वर की ओर से अचेत न रह, लापरवाही त्याग दे क्योंकि जो गिनती के दिन तुझे मिले हैं वे तेज़ी से बीतते जा रहे हैं। 6. **मिटी...मितु**=जब क़ब्र में पड़ा होगा, तो उस समय कोई तेरा मित्र न होगा।

फरीदा जिन्ही कंमी नाहि गुण ते कंमड़े विसारि॥
मतु सरमिंदा थीवही सांई दै दरबारि॥ 59॥
फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि॥[1]
दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि॥ 60॥[2]
फरीदा काले मैडे कपड़े काला मैडा वेसु॥
गुनही भरिआ मै फिरा लोकु कहै दरवेसु॥ 61॥[3]
तती तोइ न पलवै जे जलि टुबी देइ॥[4]
फरीदा जो डोहागणि रब दी झूरेदी झूरेइ॥ 62॥[5]
जां कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले॥
फरीदा एहो पछोताउ वति कुआरी न थीऐ॥ 63॥
कलर केरी छपड़ी आइ उलथे हंझ॥[6]
चिंजू बोड़न्हि ना पीवहि उडण संदी डंझ॥ 64॥[7]
हंसु उडरि कोध्रै पइआ लोकु विडारणि जाइ॥[8]
गहिला लोकु न जाणदा हंसु न कोध्रा खाइ॥ 65॥
फरीदा इट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि॥
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि॥ 67॥[9]
फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टुटी नागर लजु॥[10]
अजराईलु फरेसता कै घरि नाठी अजु॥ 68॥[11]
फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टूटी नागर लजु॥
जो सजण भुइ भारु थे से किउ आवहि अजु॥ 69॥
उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि॥
जो सिरु सांई ना निवै सो सिरु कपि उतारि॥ 71॥

---

1. **भरांदि**=भ्रम। 2. **जीरांदि**=बरदाश्त, धैर्य। 3. **गुनही**=गुनाहों से। 4. **तती**=जली हुई; **तोइ**=तूई, शाखा; **पलवै**=पलती, प्रफुल्लित होती। 5. **डोहागणि**=दुहागिन। 6. **हंझ**=हंस। 7. **डंझ**=तीव्र इच्छा। 8. **विडारणि**=उड़ाने के लिए। 9. **केतड़िआ...पासि**=क़ब्र में एक करवट से पड़े हुए युग बीत जायेंगे। 10-11. **फरीदा...अजु**=हे फ़रीद, देख कोई सुन्दर घड़ा फूट गया है, किसी के स्वाँसों की सुन्दर रस्सी टूट गयी है, अज़राईल फ़रिश्ता (यमदूत) आज किसी के घर मेहमान बन कर आया है।

जो सिरु साई ना निवै सो सिरु कीजै कांइ॥
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ॥ 72॥
फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि॥
तै पासहु ओइ लदि गए तूं अजै न पतीणोहि॥ 73॥[1]
फरीदा मनु मैदानु करि टोए टिबे लाहि॥
अगै मूलि न आवसी दोजक संदी भाहि॥ 74॥[2]
फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि॥
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि॥ 75॥
फरीदा जि दिहि नाला कपिआ जे गलु कपहि चुख॥
पवनि न इती मामले सहां न इती दुख॥ 76॥
चबण चलण रतंन से सुणीअर बहि गए॥[3]
हेड़े मुती धाह से जानी चलि गए॥ 77॥[4]
फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मनि न हढाइ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ॥ 78॥
फरीदा पंख पराहुणी दुनी सुहावा बागु॥
नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु॥ 79॥
फरीदा राति कथूरी वंडीऐ सुतिआ मिलै न भाउ॥[5]
जिंन्हा नैण नींद्रावले तिंन्हा मिलणु कुआउ॥ 80॥[6]
फरीदा मै जानिआ दुखु मुझ कू दुखु सबाइऐ जगि॥
ऊचे चड़ि कै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि॥ 81॥
फरीदा भूमि रंगावली मंझि विसूला बाग॥[7]
जो जन पीरि निवाजिआ तिंन्हा अंच न लाग॥ 82॥

---

1. **तै...गए**=वे तुझे छोड़कर चले गये; **तूं...पतीणोहि**=तुझे अभी भी यकीन नहीं आया कि एक दिन तुझे भी चले जाना है। 2. **अगै...भाहि**=तुझे नरकों की आग में जलना नहीं पड़ेगा। 3-4. **चबण...गए**=बुढ़ापे के कारण दाँत (चबण), पैर (चलण), आँखें (रतंन) और कान (सुणीअर) जवाब दे गये और अब जीव आहें भर के रोता है। 5. **भाउ**=भाग, हिस्सा। 6. **तिंन्हा...कुआउ**=उन्हें हिस्सा कैसे मिल सकता है? 7. **विसूला**=विष-भरा।

फरीदा उमर सुहावड़ी संगि सुवंनड़ी देह ॥
विरले केई पाईअनि जिंन्हा पिआरे नेह ॥ 83 ॥
फरीदा डुखा सेती दिहु गइआ सूलां सेती राति ॥
खड़ा पुकारे पातणी बेड़ा कपर वाति ॥ 85 ॥[1]
लंमी लंमी नदी वहै कंधी केरै हेति ॥[2]
बेड़े नो कपरु किआ करे जे पातण रहै सुचेति ॥ 86 ॥
फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग ॥
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग ॥ 90 ॥
कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु ॥
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ॥ 91 ॥
कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि ॥
जितु पिंजरै मेरा सहु वसै मासु न तिदू खाहि ॥ 92 ॥
आपु सवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ ॥
फरीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ॥ 95 ॥
कंधी उतै रुखड़ा किचरकु बंनै धीरु ॥
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु ॥ 96 ॥
फरीदा महल निसखण रहि गए वासा आइआ तलि ॥[3]
गोरां से निमाणीआ बहसनि रूहां मलि ॥
आखीं सेखा बंदगी चलणु अजु कि कलि ॥ 97 ॥
फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा ॥[4]
अगै दोजकु तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा ॥[5]
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे वेपरवाहा ॥
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा ॥ 98 ॥[6]

---

1. **बेड़ा...वाति**=नाव लहरों में फँसी हुई है। 2. **कंधी...हेति**=किनारों को गिरा देने के लिए। 3. **निसखन**=ख़ाली; **तलि**=धरती के नीचे यानी क़ब्र में। 4. **फरीदा...ढाहा**=मौत, जीवन रूपी किनारे को ढाह रही है। 5 . **अगै...काहाहा**=आगे नरक की अग्नि है और हाहाकार मची हुई है। 6. **ओगाहा**=साक्षी, गवाह।

फरीदा दरीआवै कंन्है बगुला बैठा केल करे॥
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं॥[1]
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं॥ 99 ॥[2]
साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि॥
आइओ बंदा दुनी विचि वति आसूणी बंन्हि॥[3]
मलकल मउत जां आवसी सभ दरवाजे भंनि॥
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंन्हि॥
वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि॥[4]
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि॥ 100 ॥
फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखीआ जंगलि जिन्हा वासु॥
ककरु चुगनि थलि वसनि रब न छोडनि पासु॥ 101 ॥
फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि॥
चारे कुंडा ढूंढीआं रहणु किथाऊ नाहि॥ 102 ॥
फरीदा पाड़ि पटोला धज करी कंबलड़ी पहिरेउ॥[5]
जिन्ही वेसी सहु मिलै सेई वेस करेउ॥ 103 ॥
काइ पटोला पाड़ती कंबलड़ी पहिरेइ॥
नानक घर ही बैठिआ सहु मिलै जे नीअति रासि करेइ॥ 104 ॥
फरीदा गरबु जिन्हा वडिआईआ धनि जोबनि आगाह॥
खाली चले धणी सिउ टिबे जिउ मीहाहु॥ 105 ॥
फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ॥
ऐथै दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ॥ 106 ॥
फरीदा पिछल राति न जागिओहि जीवदड़ो मुइओहि॥
जे तै रबु विसारिआ त रबि न विसरिओहि॥ 107 ॥

1-2. **बाज...कीआं**=संसार में मौज करते हुए जीव पर अचानक मौत का बाज टूट पड़ता है, ईश्वर वह कर देता है जिसका जीव को ख़याल भी नहीं होता। 3. **आइओ...बंन्हि**=इनसान संसार में सुन्दर आशाएँ लेकर आया है। 4. **कंन्हि**=कन्धों पर। 5. **धज करी**=टुकड़े-टुकड़े करके।

फरीदा कंतु रंगावला वडा वेमुहताजु ॥
अलह सेती रतिआ एहु सचावां साजु ॥ 108 ॥[1]
फरीदा दुखु सुखु इकु करि दिल ते लाहि विकारु ॥
अलह भावै सो भला तां लभी दरबारु ॥ 109 ॥
फरीदा दिलु रता इसु दुनी सिउ दुनी न कितै कंमि ॥
मिसल फकीरां गाखड़ी सु पाईऐ पूर करंमि ॥ 111 ॥[2]
पहिलै पहरै फुलड़ा फलु भी पछा राति ॥
जो जागंन्हि लहंनि से साई कंनो दाति ॥ 112 ॥
दाती साहिब संदीआ किआ चलै तिसु नालि ॥
इकि जागंदे ना लहन्हि इकन्हा सुतिआ देइ उठालि ॥ 113 ॥
फरीदा दरवेसी गाखड़ी चोपड़ी परीति ॥[3]
इकनि किनै चालीऐ दरवेसावी रीति ॥ 118 ॥
तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि ॥
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलंन्हि ॥ 119 ॥[4]
तनु न तपाइ तनूर जिउ बालणु हड न बालि ॥
सिरि पैरी किआ फेड़िआ अंदरि पिरी निहालि ॥ 120 ॥[5]
हउ ढूढेदी सजणा सजणु मैडे नालि ॥
नानक अलखु न लखीऐ गुरमुखि देइ दिखालि ॥ 121 ॥
हंसा देखि तरंदिआ बगा आइआ चाउ ॥
डुबि मुए बग बपुड़े सिरु तलि उपरि पाउ ॥ 122 ॥
मै जाणिआ वड हंसु है तां मै कीता संगु ॥
जे जाणा बगु बपुड़ा जनमि न भेड़ी अंगु ॥ 123 ॥

---

1. **सचावां साजु**=सच्चा हार-शृंगार। 2. **मिसल...करंमि**=फ़क़ीरों जैसी रहनी धारण करना कठिन है। वह प्रभु की दया से प्राप्त होती है। 3. **चोपड़ी परीति**=दिखावे की प्रीति; **फरीदा...परीति**=सच्ची दरवेशी कठिन है, दिखावे की प्रीति से सच्ची दरवेशी नहीं मिल सकती। 4. **पैरी...मिलंन्हि**=मैं अगर पैरों से चलते-चलते थक जाऊँ तो सिर के बल चलना शुरू कर दूँगा, यदि ऐसा करने से मेरा प्रियतम से मिलाप हो जाये। 5. **किआ फेड़िआ**=क्या बिगाड़ा है; **सिरि...निहालि**=शरीर को कष्ट क्यों देता है, प्रियतम को अपने अन्दर ही देख।

किआ हंसु किआ बगुला जा कउ नदरि धरे॥
जे तिसु भावै नानका कागहु हंसु करे॥ 124॥
सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास॥
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरी आस॥ 125॥[1]
कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु॥
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु॥ 126॥
निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहबा मणीआ मंतु॥
ए त्रै भैणे वेस करि तां वसि आवी कंतु॥ 127॥
मति होदी होइ इआणा॥ ताण होदे होइ निताणा॥
अणहोदे आपु वंडाए॥ को ऐसा भगतु सदाए॥ 128॥
इकु फिका न गालाइ सभना मै सचा धणी॥
हिआउ न कैही ठाहि माणक सभ अमोलवे॥ 129॥
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि मचांगवा॥
जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥ 130॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 1377-84

रागु सूही बाणी शेख फरीद जी की

तपि तपि लुहि लुहि हाथ मरोरउ॥ बावलि होई सो सहु लोरउ॥
तै सहि मन महि कीआ रोसु॥ मुझु अवगन सह नाही दोसु॥
तै साहिब की मै सार न जानी॥ जोबनु खोइ पाछै पछुतानी॥ रहाउ॥
काली कोइल तू कित गुन काली॥ अपने प्रीतम के हउ बिरहै जाली॥
पिरहि बिहून कतहि सुखु पाए॥ जा होइ क्रिपालु ता प्रभू मिलाए॥[3]
विधण खूही मुंध इकेली॥ ना को साथी ना को बेली॥[4]
करि किरपा प्रभि साधसंगि मेली॥ जा फिरि देखा ता मेरा अलहु बेली॥

---

1. **थिआ**=फँस गया। 2. **हिआउ...कही दा**=किसी का दिल न दुखा। 3. **पिरहि...पाए**=परमात्मा रूपी पति के बिना आत्मा रूपी स्त्री को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? 4. **विधण...इकेली**=संसार सुनसान कुएँ के समान है और जीवात्मा रूपी स्त्री (मुंध) इस कुएँ में अकेली गिरी हुई है।

वाट हमारी खरी उडीणी॥ खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी॥[1]
उसु ऊपरि है मारगु मेरा॥ सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 794

आसा सेख फरीद जीउ की बाणी

दिलहु मुहबति जिंन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥[2]
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥[3]
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥
तिन धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तूं॥
जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥

— आदि ग्रन्थ, पृ. 488

राग सूही ललित बाणी सेख फरीद जी की

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की वेला॥
भरि सरवरु जब ऊछलै तब तरणु दुहेला॥
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला॥
इक आपीन्है पतली सह केरे बोला॥[4]
दुधा थणी न आवई फिरि होइ न मेला॥

---

1. **वाट...पिईणी**=रास्ता तलवार की धार की तरह तेज़ और तंग है। सफ़र चिन्ता और उदासी भरा है। 2. **कांढे कचिआ**=वे कच्चे कहलाते हैं। 3. **रते...के**=जो परमात्मा के प्रेम और उसके दर्शनों के रंग में रँगे हुए हैं। 4. **इक...बोला**=जो गुणहीन है, उसका प्रियतम उसके साथ कैसे प्रसन्न हो।

कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाइसी॥[1]
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी॥[2]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 794

आसा सेख फरीद जीउ की बाणी

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे॥
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥
आजु मिलावा सेख फरीद
टाकिम कूंजड़ीआ मनहु मचिंदड़ीआ॥ रहाउ॥[3]
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ॥
झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ॥
बोलीऐ सचु धरमु झूठु न बोलीऐ॥
जो गुरु दसै वाट मुरीदा जोलीऐ॥
छैल लंघंदे पारि गोरी मनु धीरिआ॥
कंचन वंने पासे कलवति चीरिआ॥
सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ॥
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ॥
कतिक कूंजां चेति डउ सावणि बिजुलीआं॥
सीआले सोहंदीआं पिर गलि बाहड़ीआं॥
चले चलणहार विचारा लेइ मनो॥
गंढेदिआं छिअ माह तुड़ंदिआ हिकु खिनो॥
जिमी पुछै असमान फरीदा खेवट किंनि गए॥[4]
जालण गोरां नालि उलामे जीअ सहे॥[5]

— आदि ग्रन्थ, पृ. 488

---

1. **सहु**=पति, परमात्मा; **अलाइसी**=बुलायेगा, आवाज़ देगा। 2. **हंसु**=आत्मा; **डुंमणा**=दुविधा में। 3. **टाकिम...मचिंदड़ीआ**=ऐ फ़रीद, मन को चंचल करने वाली इन्द्रियों को यदि तुम क़ाबू में कर लो तो तुम्हारा आज ही प्रभु से मिलाप हो जायेगा। 4. **जिमी**=ज़मीन, धरती; **खेवट**=दूसरों को पार ले जाने का दावा करनेवाले। 5. **जालण...सहे**=वे क़ब्रों में पड़े हैं और उनकी आत्माएँ दुःख सह रही हैं।

बानी सहजोबाई जी

[1]

अब तुम अपनी ओर निहारो॥
हमरे औगुन पै नहिं जाओ, तुमहीं अपना बिरद सम्हारो॥
जुग जुग साख तुम्हारी ऐसी, वेद पुरानन गाई॥
पतित-उधारन नाम तुम्हारो, यह सुनके मन दृढ़ता आई॥
मैं अजान तुम सब कछु जानो, घट घट अंतरजामी॥
मैं तो चरन तुम्हारे लागी, हो किरपाल दयालहि स्वामी॥
हाथ जोरि के अरज करत हौं, अपनाओ गहि बाहीं॥
द्वार तिहारे आय परी हौं,पौरुष गुन मो में कछु नाहीं॥
चरनदास सहजिया तेरी, दरसन की निधि पाऊँ॥
लगन लगी अरु प्रान अड़े हैं, तुम को छोड़ कहौ कित जाऊँ॥

— सहजोबाई की बानी, पृ. 57

[2]

धनवन्ते सब ही दुखी, निरधन हैं दुख रूप।
साध सुखी सहजो कहै, पायौ भेद अनूप॥ 1॥
ना सुख बिद्या के पढ़े, ना सुख बाद बिबाद।
साध सुखी सहजो कहै, लागै सुन्न समाध॥ 2॥
जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग॥ 3॥

सहजो जग में यों रहे, ज्यों जिह्वा मुख माहिं।
घीव घना भक्षन करे, तौ भी चिकनी नाहिं॥ 4॥
चलना है रहना नहीं, चलना बिस्वाबीस।
सहजो तनक सुहाग पर, कहा गुंधावे सीस॥ 5॥
सहजो गुरु प्रताप से, ऐसी जान पड़ी।
नहीं भरोसा स्वाँस का, आगे मौत खड़ी॥ 6॥
ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिव माहिं।
ऐसे जन जग में रहें, गुरु को भूले नाहिं॥ 7॥
पहिले बुरा कमाय कर, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम पल में कटे, जब आये गुरु ओट॥ 8॥

— संकलित दोहे

[3]

सिष का मान सतगुरु, गुरु झिड़कै लख बार।
सहजो द्वार न छोड़िये, यही धारना धार॥ 1॥
गुरु दरसन कर सहजिया, गुरु का कीजै ध्यान।
गुरु की सेवा कीजिये, तजिये कुल अभिमान॥ 2॥
सतगुरु दाता सर्ब के, तू किर्पिन कंगाल।
गुरु महिमा जानै नहीं, फस्यौ मोह के जाल॥ 3॥
गुरु सूँ कछु न दुराइये, गुरु सूँ झूठ न बोल।
बुरी भली खोटी खरी, गुरु आगे सब खोल॥ 4॥
सहजो गुरु रच्छा करैं, मेटैं सब दुख दुन्द।
मन की जानैं सब गुरु, कहा छिपावै अन्ध॥ 5॥
सहजो सतगुरु के मिले, भये और सूँ और।
काग पलट गति हंस ह्वै, पाई भूली ठौर॥ 6॥
सहजो यह मन सिलगता, काम क्रोध की आग।
भली भई गुरु ने दिया, सील छिमा की बाग॥ 7॥
निस्चै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार॥ 8॥

ज्ञान दीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया कोट।
साजन बसि दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट॥ 9॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझि पड़ै भगवन्त॥ 10॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेटयौ मन सन्देह।
रोम रोम सूँ प्रेम उठि, भींज गई सब देह॥ 11॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, एक कह्यौ परसंग।
तन मन तें पलटी गई, रँगी प्रेम के रंग॥ 12॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूँद लिये दोउ नैन।
फिर मो सूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन॥ 13॥
सहजो गुरु किरपा करी, कहा कहूँ मैं खोल।
रोम रोम फुल्लित भई, मुखे न आवै बोल॥ 14॥

— सहजोबाई की बानी, पृ. 8-9

[4]

सो बसंत नहिं बार बार। तैं पाई मानुष देह सार॥
यह औसर बिरथा न खोव। भक्ति बीज हिये धरती बोव॥
सतसंगत को सींच नीर। सतगुरु जी सों करौ सीर॥
नीकी बार बिचार देव। परन राखि या कूँ जु सेव॥
रखवारी कर हेत हेत। जब तेरी होवै जैत जैत॥
खोट कपट पंछी उड़ाव। मोह प्यास सबही जलाव॥
सँभलै बाड़ी नऊ अंग। प्रेम फूल फूलै रँग रंग॥
पुहुप गूँध माला बनाव। आदि पुरुष कूँ जा चढ़ाव॥
तौ सहजो बाई चरनदास। तेरे मन की पुरवैं सकल आस॥

— सहजोबाई की बानी, पृ. 54

[5]

हम बालक तुम माय हमारी। पल पल मोहिं करो रखवारी॥
निस दिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो॥
बिषै ओर जान नहिं देवो। ढुर ढुर जाउँ तो गहि गहि लेवो॥
मैं अनजान कछू नहिं जानूँ। बुरी भली को नहिं पहिचानूँ॥
जैसी तैसी तुमहीं चीन्हेव। गुरु है ध्यान खेलौना दीन्हेव॥
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ। नाम तुम्हारो इमृत पीऊँ॥
दिष्टि तिहारी ऊपर मेरे। सदा रहूँ मैं सरनैं तेरे॥
मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ। सरक सरक तुमहीं पै आऊँ॥
चरनदास है सहजो दासी। हो रिच्छक पूरन अबिनासी॥

— सहजोबाई की बानी, पृ. 57

[6]

हमारे गुरु पूरन दातार।
अभय दान दीनन को दीन्हे, कीन्हें भवजल पार॥
जन्म जन्म के बंधन काटे, जम की बंध निवार।
रंक हुते सो राजा कीन्हे, हरि धन दियौ अपार॥
देवैं ज्ञान भक्ति पुनि देवैं, जोग बतावनहार।
तन मन बचन सकल सुखदाई, हिरदे बुधि उँजियार॥
सब दुख-गंजन पातक-भंजन, रंजन ध्यान बिचार।
साजन दुर्जन जो चलि आवै, एकहि दृष्टि निहार॥
आनँद रूप सरूप मई है, लिप्त नहीं संसार।
चरनदास गुरु सहजो के रे, नमो नमो बारम्बार॥

— सहजोबाई की बानी, पृ. 49

कलाम हज़रत सुलतान बाहू

अलिफ़-अल्ला चम्बे दी बूटी, मुर्शिद मन विच लाई हू।
नफ़ी इस्बात दा पाणी मिलयोस, हर रगे हर जाई हू।
अंदर बूटी मुश्क मचाया, जां फुल्लां ते आई हू।
जीवे मुर्शिद कामिल बाहू, जैं एह बूटी लाई हू।

अल्ला पढ़यों हाफ़िज़ होयों, न गया हिजाबों परदा हू।[1]
पढ़-पढ़ आलिम फ़ाज़िल होयों, तालिब होयों ज़र दा हू।[2]
लख हज़ार किताबां पढ़ियां, ज़ालिम नफ़्स न मरदा हू।
बाझ फ़क़ीरां कोई न मारे, एहो चोर अंदर दा हू।

ईमान सलामत हर कोई मंगे, इश्क़ सलामत कोई हू।
मंगण ईमान शरमावण इश्क़ों, दिल नूं ग़ैरत होई हू।
जिस मंज़ल नूं इश्क़ पहुँचावे, ईमान ख़बर न कोई हू।
इश्क़ सलामत रक्खीं बाहू, देयां ईमान धरोई हू।

एह तन मेरा चश्मां होवे, मुर्शिद वेख न रज्जां हू।[3]
लूं लूं दे मुढ लक्ख लक्ख चश्मां, हिक्क खोलां हिक्क कज्जां हू।
इतनयां डिठयां सबर न आवे, होर किते वल भज्जां हू।
मुर्शिद दा दीदार है बाहू, लक्ख करोड़ां हज्जां हू।

एह तन रब्ब सच्चे दा हुजरा, विच पा फ़क़ीरा झाती हू।[4]
न कर मिन्नत ख़्वाज ख़िज़र दी, तैं अंदर आब हयाती हू।[5]
शौक दा दीवा बाल हनेरे, मत लब्भे वस्त खड़ाती हू।[6]
मरन थीं अग्गे मर रहे, जिन्हां हक़ दी रमज़ पछाती हू।

---

1. **हाफ़िज़**=जिसे क़ुरान ज़बानी याद हो। 2. **आलिम फ़ाज़िल**=विद्वान; **तालिब**=चाहवान; **ज़र**=सोना यानी धन-दौलत। 3. **चश्मां**=आँखें। 4. **हुजरा**=कोठरी। 5. **आब हयाती**=अमृत। 6. **खड़ाती**=खोई हुई।

एह तन रब्ब सच्चे दा हुजरा, खिड़ियां बाग़ बहारां हू।
विच्चे कूज़े, विच मुसल्ले, विच सजदे दियां ठारां हू।[1]
विच्चे काबा विच्चे क़िबला, इल-लिल्लाह पुकारां हू।[2]
कामिल मुर्शिद मिलया बाहू, आपे लैसी सारां हू।

अलिफ़ अल्ला चम्बे दी बूटी, मुर्शिद मन विच लांदा हू।
जिस गत उत्ते सोहणा राज़ी, ओहो गत सिखांदा हू।[3]
हरदम याद रक्खे हर वेले, सोहणा उठांदा बहांदा हू।
आप समझ समझेंदा बाहू, आप आपे बण जांदा हू।

बे-अदबां न सार अदब दी, गए अदब थीं वांजे हू।[4]
जेहड़े होण मिट्टी दे भांडे, कदी न थीवण कांजे हू।[5]
जेहड़े मुढ क़दीम दे खेड़े, कदीं न होंदे रांझे हू।[6]
जैं हजूर न मंगया बाहू, दोहीं जहानीं वांजे हू।

पढ़-पढ़ इलम हज़ार कताबां, आलिम होए भारे हू।
हरफ़ इक इश्क़ दा पढ़ न जाणन, भुल्ले फिरन विचारे हू।
इक निगाह जे आशिक़ वेखे, लख हज़ारां तारे हू।
लक्ख निगाह जे आलिम वेखे, किसे न कद्धी चाढ़े हू।[7]
इश्क अक़ल विच मंज़िल भारी, सैआं कोहां दे पाड़े हू।[8]
जिन्हां इश्क़ ख़रीद न कीता, दोहीं जहानीं मारे हू।

पीर मिले ते पीड़ न जावे, तां उस पीर की धरना हू।
मुर्शिद मिलयां रुशद न मन नूं, ओह मुर्शिद की करना हू।[9]
जिस हादी थीं नहीं हदायत, ओह हादी की फड़ना हू।
सिर दितयां हक़ हासल होवे, मौतों मूल न डरना हू।[10]

---

1. **मुसल्ले**=नमाज़ पढ़ने वाली चटाई। 2. **क़िबला**=ख़ुदा; **इल-लिल्लाह**=ख़ुदा का कलमा। 3. **गत**=बात, रम्ज़, भेद। 4. **वांजे**=ख़ाली। 5. **कांजे**=शीशे के बर्तन। 6. **खेड़े**=हीर के ससुराल की जाति; **रांझे**=रांझा की जाति; **जेहड़े...रांझे हू**=जो सिर्फ़ दुनिया के आशिक़ हैं, वे प्रभु के आशिक़ नहीं बन सकते। 7. **कद्धी**=किनारे। 8. **पाड़े**=दूरी, फ़ासला। 9. **रुशद**=तसल्ली, शान्ति। 10. **हक़**=प्रभु रूपी सत्य।

*पंजे महल, पंजां विच चानण, डीवा कित वल धरिये हू।[1]
पंजे महर, पंजे पटवारी, हासल कित वल भरिये हू।
पंज इमाम ते पंजे क़िबले, सजदा कित वल करिये हू।[2]
जे साहिब सिर मंगे बाहू, हरगिज़ ढिल्ल न करिये हू।

तन मैं यार दा शहर बणाया, दिल विच ख़ास महल्ला हू।
आण अलिफ़ दिल वस्सों कीती, होई ख़ूब तसल्ला हू।[3]
सब कुझ मैनूँ पया सुणीवे, जो बोले मासवा अल्ला हू।[4]
दर्दमंदा एह रमज़ पछाती, बेदर्दां सिर खल्ला हू।

तस्बीह दा तूं कस्बी होयों, दम मारें संग वलियां हू।
दिल दा मणका इक न फेरें, गल पावें पंज वीहां हू।[5]
देण गयां गल घोटू आवे, लैण गयां झुट शीहां हू।[6]
पत्थर चित्त जिन्हां दे, ओथे ज़ाया वसणा मीहां हू।

तूं तां जाग न जाग फ़क़ीरा, लोड़ें अंत जगाया हू।
अक्खीं मीटयां दिल न जागे, जागे मतलब पाया हू।
एह नुक़्ता जद पुख़्ता कीता, ज़ाहर आख सुणाया हू।[7]
मैं तां भुल्ली वैंदी बाहू, मुर्शिद राह विखाया हू।[8]

साबत सिद्क़, क़दम अगेरे, ताईं रब्ब लभीवे हू।[9]
लूं-लूं दे विच ज़िकर अल्ला दा, हरदम पया पढ़ीवे हू।
ज़ाहर बातिन ऐन-अयानी, हू हू पया सुणीवे हू।[10]
नाम फ़क़ीर तिन्हां दा बाहू, क़बर जिन्हां दी जीवे हू।[11]

---

1. **डीवा**=दीया, दीपक। 2. **क़िबले**=धनी, हाकिम; **सजदा**=माथा टेकना। 3. **तसल्ला**=तसल्ली। 4. **मासवा**=बिना। 5. **गल...वीहां**=गले में सौ मनकों वाली माला डाली हुई है। 6. **शीहां**=बाघ या शेरों जैसे। 7. **पुख़्ता**=पक्का। 8. **भुल्ली वैंदी**=मैं तो भूली हुई थी। 9. **साबत**=दृढ़, मज़बूत; **सिद्क़**=सब्र, भरोसा। 10. **ज़ाहर...अयानी**=अन्दर-बाहर प्रभु साक्षात् दिखाई देता है। 11. **क़बर...जीवे**=जो जीते-जी मर जाते हैं।
* इस बैंत में पाँच आन्तरिक मण्डलों की ओर संकेत है।

जो दम ग़ाफ़िल सो दम काफ़िर, मुर्शिद एह पढ़ाया हू।
सुणया सुख़न गइयां खुल अक्खीं, चित्त मौला वल लाया हू।
कीती जान हवाले रब्ब दे, ऐसा इश्क़ कमाया हू।
मरन तों अग्गे मर गए बाहू, तां मतलब नूं पाया हू।

जंगल दे विच शेर मरेला, बाज़ पवे विच घर दे हू।
इश्क़ जिहा सर्राफ़ न कोई, खोट न छड्डे ज़र दे हू।[1]
आशिक़ नींदर भुख न काई, आशिक़ मूल न मरदे हू।
आशिक़ सोई जींदे जेहड़े रब्ब अग्गे सिर धरदे हू।

जिन्हां इश्क़ हक़ीक़ी पाया, मूँहों ना अलावन हू।[2]
ज़िकर फ़िक्र विच रहण हमेशा, दम नूं क़ैद लगावन हू।
नफ़्सी, क़ल्बी, रूही, सिर्री, अख़फ़ी, ख़फ़ी कमावन हू।[3]
मैं क़ुरबान तिन्हां तों जेहड़े हिक्कस निगाह जिवावन हू।[4]

जीवंदयां मर रहणा होवे, तां देस फ़क़ीरां बहिये हू।
जे कोई सुट्टे गुद्दड़ कूड़ा, वांग अरूड़ी रहिये हू।
जे कोई देवे गालां मेहणे, उस नूं जी-जी कहिये हू।
गिला, उलाह्मां, भंडी, ख़्वारी, यार दे पारों सहिये हू।[5]
क़ादर दे हत्थ डोर असाडी, ज्यों रक्खे त्यों रहिये हू।

जिन्हां शौह अलिफ़ थीं पाया, फोल क़ुरान न पढ़दे हू।
मारन दंम मुहब्बत वाला, दूर होयो ने परदे हू।
दोज़ख़ बहिश्त ग़ुलाम तिन्हां दे, चा कीतोने बरदे हू।[6]
मैं क़ुरबान तिन्हां दे जेहड़े वहदत दे विच वड़दे हू।

---

1. **सर्राफ़**=सुनार। 2. **मूँहों...हू**=मुँह से नहीं बोलते। 3. **नफ़्सी...ख़फ़ी**=सुमिरन की क़िस्में। 4. **हिक्कस**=एक ही। 5. **यार...पारों**=प्रीतम की ख़ातिर। 6. **दोज़ख़ बहिश्त**=स्वर्ग-नरक।

जद दा मुर्शिद कासा दितड़ा, तद दी बेपरवाही हू।[1]
की होया जे रातीं जागें, मुर्शिद जाग न लाई हू।
रातीं जागें करें इबादत, निंदया करें पराई हू।
कूड़ा तख़्त दुनिया दा बाहू, फ़क़र सच्ची पातशाही हू।[2]

जब लग ख़ुदी करें ख़ुद नफ़्सों, तब लग रब्ब न पावें हू।
शर्त फ़ना नूं जाणें नाहीं, नाम फ़क़ीर रखावें हू।
मोए बाझ न सोहन्दी अलफ़ी, ऐवें गल विच पावें हू।[3]
नाम फ़क़ीर तदां ही सोहन्दा, जद जीवंदयां मर जावें हू।

चढ़ चंना ते कर रुशनाई, ज़िकर करेंदे तारे हू।[4]
गलियां दे विच फिरन निमाणे, लालां दे वणजारे हू।
शाला कोई न थिवे मुसाफ़र, कक्ख जिन्हां तों भारे हू।
ताड़ी मार उडा न सानूं, आपे उड्डणहारे हू।

हाफ़िज़ पढ़ पढ़ करन तकब्बुर, मुल्लां करन वडाई हू।[5]
सावन माह दे बदलां वांगूं, फिरन किताबां चाई हू।
जित्थे वेखण चंगा चोखा, पढ़न कलाम सवाई हू।
दोहीं जहानीं मुठ्ठे, जिन्हां खाधी वेच कमाई हू।

ख़ाम की जाणन सार फ़क़र दी, महरम नाहीं दिल दे हू।[6]
आब मिट्टी थीं पैदा होए, खामी भांडे गिल्ल दे हू।[7]
क़दर की जाणन लाल जवाहर, जो सौदागर बिल दे हू।
सो ईमान सलामत वैसन, भज्ज फ़क़ीरां मिलदे हू।

---

1. **कासा**=भीख माँगने वाला कटोरा। 2. **फ़क़र**=फ़क़ीरी। 3. **अलफ़ी**=फ़क़ीरी का चोला। 4. **रुशनाई**=रोशनी। 5. **तकब्बुर**=अहंकार। 6. **ख़ाम**=कच्चे। 7. **गिल्ल**=मिट्टी।

दिल काले तों मुंह काला चंगा, जे कोई उसनूं जाणे हू।
मुंह काला दिल अच्छा होवे, तां दिल यार पछाणे हू।
एह दिल यार दे पिच्छे होवे, तां यार वी कदी पछाणे हू।
आलिम छोड़ मसीतां नट्ठे, जद लग्गे दिल टिकाणे हू।

दर्दमंदां दियां आहीं कोलों, पत्थर पहाड़ दे झड़दे हू।
दर्दमंदां दियां आहीं तों, भज नाग ज़मीं विच वड़दे हू।
दर्दमंदां दियां आहीं तों, असमानों तारे झड़दे हू।
दर्दमंदां दियां आहीं कोलों, आशिक़ मूल न डरदे हू।

राह फ़क़र दा परे परेरे, ओड़क कोई न दिस्से हू।[1]
न उथ पढ़न पढ़ावण कोई, न उथ मसले किस्से हू।
इह दुनिया है बुत्त-परस्ती, मत कोई इस तों विस्से हू।[2]
मौत फ़क़ीरी जैं सिर आवे, मालम थीवे तिस्से हू।

रातीं रत्ती नींद न आवे, दिहां रहे हैरानी हू।[3]
आरिफ़ दी गल आरिफ़ जाणे, क्या जाणे नफ़्सानी हू।[4]
कर इबादत पच्छोतासें, ज़ाया गई जवानी हू।
हक़्क़ हुज़ूर उन्हां नूं हासल, जिन मिलया पीर जिलानी हू।[5]

राह फ़क़र दा तद लधोसे, जद हथ फड़योसे कासा हू।[6]
तरक दुनिया तौ तद थियोसे, जद फ़क़ीर मिलयोसे ख़ासा हू।[7]
दरिया वहदत नोश कीतोसे, अजां भी जी प्यासा हू।[8]
राह फ़क़र रत्त हंझू रोवन, लोकां भाणे हासा हू।

---

1. **ओड़क**=अन्त। 2. **विस्से**=विश्वास न करें। 3. **दिहां**=दिन में। 4. **आरिफ़**=ज्ञानी; **नफ़्सानी**=दुनियादार, मनमुख। 5. **हक़्क़...जिलानी हू**=जिनको गुरु मिला वह प्रभु के दरबार में पहुँचने के हक़दार हो गये। 6. **लधोसे**=मिला; **कासा**=भिक्षा माँगने वाला पात्र। 7. **तरक**=त्याग; **ख़ासा**=पूरा। 8. **दरिया...कीतोसे**=वहदत का दरिया पी लिया।

रातीं ख़्वाब न तिन्हां हरगिज़ जेड़े अल्ला वाले हू।
बाग़ां वाले बूटे वांगूँ, तालिब नित्त सँभाले हू।[1]
नाल नज़ारे रहमत वाले, खड़े हजूरों पाले हू।
नाम फ़क़ीर तिन्हां दा, जो घर बैठे यार विखाले हू।

ज़े-ज़बानी हर कोई पढ़दा, दिल दा कलमा कोई हू।
जित्थे कलमा दिल दा पढ़िये, मिले ज़बां न ढोई हू।
दिल दा कलमा आरिफ़ पढ़दे, जाणे की गलोई हू।[2]
कलमा मैनूं पीर पढ़ाया, सदा सुहागण होई हू।

सै रोज़े सै नफ़ल नमाज़ां, सै सजदे कर थक्के हू।
मक्के हज्ज गए सै वारी, दिल दी दौड़ न मुक्के हू।
चिल्हे, चलिये, जंगल भौणा, इस गल्ल थीं न पक्के हू।[3]
सभ मतलब हो जांदे हासिल, जद पीर नज़र इक तक्के हू।

सुण फ़रयाद पीरां दिआ पीरा, अरज़ सुणी कंन धर के हू।
बेड़ा अड़या विच कपरां दे, जिथ मच्छ न बैह्न्दे डर के हू।
शाह जिलानी महबूब सुबहानी, ख़बर लयो झट कर के हू।
पीर जिन्हां दा मीरां बाहू, कद्धी लगदे तर के हू।[4]

सुण फ़रयाद पीरां दिआ पीरा, आख सुणावां कैनूं हू।
तैं जेहा मैनूं होर न कोई, मैं जेहियां लक्ख तैनूं हू।
फोल न काग़ज़ बदियां वाले, दर तों धक्क न मैनूं हू।
मैं विच ऐड गुनाह न हुंदे, तूं बख़शेंदों कैनूं हू।

---

1. **बाग़ां...सँभाले हू**=मुर्शिद अपने तालिब (शिष्य) की ऐसे सँभाल करता है जैसे माली पौधों की सँभाल करता है। 2. **गलोई**=बातें बनाने वाले। 3. **चिल्हे**=चालीस दिन का तप। 4. **कद्धी**=किनारे।

शोर शहर ते रहमत वस्से, जित्थे बाहू जाले हू।[1]
बाग़बानां दे बूटे वांगू, तालिब नित्त संभाले हू।[2]
नाल नज़ारे रहमत वाले, खड़ा हजूरों पाले हू।
नाम फ़क़ीर तिसे दा बाहू, घर विच यार विखाले हू।

तालिब बणके तालिब होवें, ओस नूं पया गावें हू।
लड़ सच्चे हादी दा फड़ के, ओहो तूं हो जावें हू।[3]
कलमे दा तूं ज़िकर कमावें, कलमे नाल नहावें हू।
अल्ला तैनूं पाक करे, जे ज़ाती इस्म कमावें हू।[4]

ज़ाहर वेखां जानी ताईं, नाले अंदर सीने हू।
बिरहों मारी नित्त फ़िरां मैं, हस्सण लोक नाबीने हू।[5]
मैं दिल विच्चों है शौह पाया, लोकीं जाण मदीने हू।
कहे फ़क़ीर मीरां दा बाहू, अंदर दिलां ख़ज़ीने हू।[6]

इल्मों बाझ जे फ़क़र कमावे, काफ़िर मरे दीवाना हू।
सै वर्हयां दी करे इबादत, अल्ला थीं बेगाना हू।
ग़फ़लत थीं न खुलसन परदे, दिल जाहिल बुतख़ाना हू।
मैं क़ुरबान तिन्हां तों जिन्हां मिलया यार यगाना हू।

आशिक़ पढ़न नमाज़ पिरम दी, जैं विच हरफ़ न कोई हू।
जेहा केहा नीत न सक्के, उथ दर्दमंद दिल ढोई हू।
अक्खीं नीर ते ख़ून जिगर दा, वुज़ू पाक कीतोई हू।
जीभ न हिल्ले, होठ न फड़कण, ख़ास नमाज़ी सोई हू।

---

1. **शोर**=शोरकोट, जहाँ सुलतान बाहू रहते थे। 2. **बाग़बानां**=मालियों; **वांगू**=की तरह; **तालिब**=शिष्य। 3. **हादी**=मुर्शिद। 4. **अल्ला...हू**=अगर तू सच्चे धुनात्मक नाम की कमाई करे तो प्रभु तेरी आत्मा को निर्मल कर देगा। 5. **नाबीने**=अन्धे। 6. **ख़ज़ीने**=ख़ज़ाने।

आशिक़ हो ते इश्क़ कमा, दिल रक्खीं वांग पहाड़ां हू।
सै-सै बदियां, लक्ख उलाहमें, जाणीं बाग़ बहारां हू।[1]
चा सूली मनसूर दित्ता जो वाक़फ़ कुल असरारां हू।[2]
सजदों सिर न चाइये बाहू, काफ़िर कहण हज़ारां हू।

आशिक़ राज़ माही दे कोलों, होण कदीं न वांदे हू।
नींद हराम तिन्हां ते जेहड़े ज़ाती इस्म कमांदे हू।
हिक पल मूल आराम न आए, रात दिने कुरलांदे हू।
जिन्हां अलिफ़ सही कर पढ़्या, वाह नसीब तिन्हां दे हू।

आशिक़ इश्क़ माही दे कोलों, फिरन हमेशा खीवे हू।[3]
जींदे जान माही नूं डित्ती, दोहीं जहानीं जीवे हू।
शमा चराग़ जिन्हां दिल रोशन, उह क्यों बालण डीवे हू।[4]
अक़्ल फ़िकर दी पहुंच न ओथे, फ़ानी फ़हम कचीवे हू।[5]

इश्क़ माही दे लाइयां अग्गीं, लग्गी कौण बुझावे हू।
मैं की जाणां ज़ात इश्क़, जो दर दर चा झुकावे हू।
न सौवें न सौवण देवे, सुतयां आण जगावे हू।
मैं क़ुरबान हां उसदे जेहड़ा विछड़े यार मिलावे हू।

इश्क़ दी गल्ल अवल्ली जेहड़ा शरआ थीं दूर हटावे हू।[6]
काज़ी छोड़ कज़ाई जाण, जद इश्क़ तमांचा लावे हू।[7]
लोक अयाणे मत्तीं देवण, आशिक़ मत्त न भावे हू।
मुड़न मुहाल तिन्हां नूं जिन्हां साहिब आप बुलावे हू।[8]

---

1. **बदियां**=बदनामियाँ, निन्दाएँ। 2. **असरारां**=इसरार, भेद, राज़। 3. **खीवे**=ख़ुश, प्रसन्न, मस्त। 4. **डीवे**=दीपक। 5. **फ़हम**=अक़्ल, बुद्धि। 6. **अवल्ली**=अनोखी, अजीब। 7. **कज़ाई**=काज़ीपन। 8. **मुहाल**=कठिन, मुश्किल, असंभव।

इश्क़ असानूं लिसयां जाता, करके आवे धाई हू।
जित वल वेखां इश्क़ दिसीवे, ख़ाली जा न काई हू।
मुर्शिद कामिल ओह मिलया, जिस दिल दी ताकी लाही हू।[1]
मैं क़ुरबान उस मुर्शिद तों जिस दसया भेत इलाही हू।

ग़ौस क़ुतब ने उरे उरेरे, आशिक़ जाण अगेरे हू।
जेहड़ी मंज़िल आशिक़ पहुंचण, ग़ौस न पावण फेरे हू।
आशिक़ विच विसाल दे रैह्न्दे, लामकानी डेरे हू।
मैं क़ुरबान तिन्हां तों जिन्हां ज़ातों ज़ात बसेरे हू।

कलमे दी कल तदां पई, जद मुर्शिद कलमा दसया हू।
सारी उमर कुफ़र विच जाली, बिन मुर्शिद दे दसयां हू।[2]
शाह अली शेर-अल्ला वांगण, वड्ढ कुफ़र नूं सुटया हू।[3]
दिल साफ़ी तां होवे जे कर, कलमा लूं-लूं रसया हू।[4]

कलमे लक्ख करोड़ां तारे, वली कीते सै राहीं हू।[5]
कलमे नाल बुझाए दोज़ख, जिथ अग्ग बले अज़गाही हू।[6]
कलमे नाल बहिश्तीं जाणा, जिथ नियामत संझ सबाही हू।[7]
कलमे जही न दौलत बाहू, अंदर दोईं सराईं हू।

कलमे नाल मैं न्हाती धोती, कलमे नाल व्याही हू।
कलमा मेरा पढ़े जनाज़ा, कलमे गोर सुहाई हू।
कलमे नाल बहिश्तीं जाणा, कलमा करे सफ़ाई हू।
मुड़न मुहाल तिन्हां नूं जिन्हां साहिब आप बुलाई हू।

कुन फ़यकून जदों फ़रमाया, असां भी कोले हासे हू।
हिक्के ज़ात सिफ़ात रब्बे दी, हिक्के जग ढूंडयासे हू।

---

1. **ताकी**=खिड़की। 2. **जाली**=बितायी। 3. **शाह अली**=हज़रत मुहम्मद के दामाद और चौथे ख़लीफ़ा। 4. **साफ़ी**=निर्मल, पाक; **रसया**=समाया हुआ, व्यापक। 5. **वली**=सन्त। 6. **दोज़ख**=नरक; **अग्ग**=आग; **अज़गाही**=भयानक। 7. **बहिश्तीं**=बहिश्त में, स्वर्ग में।

हिक्के लामकान असाडा, हिक्के बुत विच फासे हू।
नफ़्स शैतान पलीती कीती, असल पलीत तां नासे हू।[1]

की होया बुत दूर गया, दिल हरगिज़ दूर न थीवे हू।
सै कोहां ते वसदा मुर्शिद, विच हजूर दिसीवे हू।
जैंदे अंदर इश्क़ दी रत्ती, बिना शराबों खीवे हू।
नाम फ़क़ीर तिन्हां दा बाहू, क़बर जिन्हां दी जीवे हू।

कूक दिला मत रब्ब सुणे चा, दर्दमंदां दियां आहीं हू।
सीना मेरा दर्दी भरया, अंदर भड़कण भाहीं हू।
तेलां बाझ न बलण मशालां, दर्दां बाझ न आहीं हू।
आतश नाल यराने ला के, भंबट सड़न कीहे नाहीं हू।

कामिल मुर्शिद ऐसा होवे, जो धोबी वांगूं छट्टे हू।
नाल निगाह दे पाक करे, न सज्जी साबण घत्ते हू।
मैले नूं कर देंदा चिट्टा, ज़रा मैल न रक्खे हू।
ऐसा मुर्शिद होवे जेहड़ा, लूं लूं दे विच वस्से हू।

कर इबादत पच्छोतासें, उमरां चार दिहाड़े हू।
थी सौदागर कर लै सौदा, जां तक हट्ट न ताड़े हू।
जे जाणें दिल ज़ौक मनेसी, मौत मरेंदी धाड़े हू।
चोरां साधां पूर चा भरया, रब्ब सलामत चाढ़े हू।

गूढ़ ज़ुलमात अंधेर ग़ुबारां, राह ने ख़ौफ ख़तर दे हू।
आब हयात मुनव्वर चश्मे, साए ज़ुलफ़ अंबर दे हू।[2]
मुख महबूब दा ख़ाना काबा, आशिक़ सजदा करदे हू।
दो ज़ुलफ़ां विच नैण मुसल्ले, चार मज़हब जिथ मिलदे हू।
मिसल सिकंदर ढूंढण आशिक़, पलक आराम न करदे हू।
खिज़र नसीब जिन्हां दे बाहू, घुट ओथे जा भरदे हू।

---

7. **नफ़्स...नासे हू**=आत्मा असल में मैली नहीं थी, निर्मल थी इसमें जो भी मलिनता आयी, मन रूपी शैतान के कारण आयी। 2. **मुनव्वर**=प्रकाशवान; **चश्मे**=सरोवर।

मुर्शिद मैनूं हज्ज मक्के दा, रहमत दा दरवाज़ा हू।
करां तवाफ़ दुआले क़िबले, हज्ज होवे नित्त ताज़ा हू।[1]
कुन फ़यकून जदोका सुणया, डिट्ठा ओह दरवाज़ा हू।
मुर्शिद सदा हयाती वाला, ओह ख़िज़र ते ख़्वाजा हू।

मुर्शिद ओह सहेड़िये जेहड़ा, दो जग ख़ुशी विखावे हू।
पहले ग़म टुकड़े दा मेटे, वत रब्ब दा राह सुझावे हू।
कल्लर वाली कंधी नूं चा, चांदी ख़ास बणावे हू।
जिस मुर्शिद इथ कुझ न कीता, कूड़े लारे लावे हू।

मुर्शिद है शाहबाज़ इलाही, रलया संग हबीबां हू।[2]
तक़दीर इलाही छिक्कियां डोरां, मिलसी नाल नसीबां हू।
कोढ़यां दे दुख दूर करेंदा, करे शफ़ा मरीज़ां हू।
हर इक मरज़ दा दारू तूं हैं, घत्त न वस्स तबीबां हू।

मुर्शिद मक्का, तालिब हाजी, काबा इश्क़ बणाया हू।
विच हज़ूर सदा हर वेले, करिये हज्ज सवाया हू।
हिक्क दम मैथों जुदा न होवे, दिल मिलणे ते आया हू।
मुर्शिद ऐन हयाती बाहू, लूं लूं विच्च समाया हू।[3]

मुर्शिद हादी सबक़ पढ़ाया, पढ़यों बिना पढ़ीवे हू।
उँगलियाँ विच कंनां दित्तियां, सुणयों बिना सुणीवे हू।
नैण नैणां वल तुर तुर तकदे, डिठयों बिनां डसीवे हू।
हर ख़ाने विच जानी बाहू, किन सिर ओह रखीवे हू।

---

1. **तवाफ़**=परिक्रमा। 2. **इलाही**=दिव्य; **हबीबां**=हबीब, प्रियतम, परमात्मा।
3. **हयाती**=जीवन रूप, असल जीवन।

मैं कोझी मेरा दिलबर सोहणा, क्योंकर उस नूं भावां हू।[1]
विहड़े साडे वड़दा नाहीं, लक्ख वसीले पावां हू।
न सोहणी न दौलत पल्ले, क्योंकर यार मनावां हू।
दु:ख हमेशा इह रहसी बाहू, रोंदी ही मर जावां हू।

मज़हबां दे दरवाज़े उच्चे, राह रब्बाना मोरी हू।[2]
पंडत ते मुलवाणे कोलों, छुप छुप लंघिये चोरी हू।
अड्डियां मारन करन बखेड़े, दर्दमंदां दे खोरी हू।[3]
बाहू चल उथाईं वसिये, दाह्वा न जित्थ होरी हू।[4]

नाल कुसंगी संग न करिये, कुल नूं लाज न लाइये हू।
तुंमे मूल तरबूज़ न होंदे, तोड़ मक्के लै जाइये हू।
कां दे बच्चे हंस न थींदे, पए मोती चोग चुगाइये हू।
कौड़े खूह न मिट्ठे हुंदे, सै मणां खंड पाइये हू।

नां रब्ब अरश मु अल्ला उत्ते, न रब्ब ख़ाने काबे हू।[5]
ना रब्ब इलम किताबीं लब्भा, न रब्ब विच महाराबे हू।
गंगा तीरथ मूल न मिलया, पैंडे बे-हिसाबे हू।
जद दा मुर्शिद फड़या बाहू, छुट्टे सब अज़ाबे हू।[6]

न मैं आलिम, न मैं फाज़िल, न मुफ़ती, न काज़ी हू।[7]
ना दिल मेरा दोज़ख़ ते, ना शौक़ बहिश्तीं राज़ी हू।
ना मैं त्रीहो रोज़े रक्खे, ना मैं पाक नमाज़ी हू।[8]
बाझ विसाल अल्ला दे बाहू, दुनिया कूड़ी बाज़ी हू।

---

1. **कोझी**=बदसूरत, गुणहीन। 2. **मोरी**=तंग रास्ता। 3. **खोरी**=दुश्मन। 4. **दाह्वा**=दावा। 5. **नां...काबे**=प्रभु न ऊँचे आकाशों में बसता है न मक्के आदि में। 6. **अज़ाबे**=अज़ाब, झंझट, दु:ख, कष्ट। 7. **मुफ़ती**=इसलामी धर्म-ग्रन्थों का ज्ञाता। 8. **त्रीहो रोज़े**=तीस व्रत।

न मैं जोगी, न मैं जंगम, न मैं चिला कमाया हू।[1]
न मैं भज्ज मसीतीं वड़या, न तस्बा खड़काया हू।[2]
जो दम ग़ाफ़ल सो दम काफ़िर, मुर्शिद इह फ़रमाया हू।
मुर्शिद सोहणी कीती बाहू, पल विच जा पहुँचाया हू।

हू दा जामा पहन कराहां, इस्म कमावण ज़ाती हू।
कुफ़र इस्लाम, मक़ाम न मंज़ल, न उत्थ मौत हयाती हू।[3]
शाह-रग थीं नज़दीक लधोसे, पा अंदरूने झाती हू।[4]
ओह असां विच, असीं उन्हां विच, दूर रही क़ुरबाती हू।[5]

हिक्क जागण, हिक्क जाग न जाणन, हिक्क जागदयां ही सुत्ते हू।
हिक्क सुतयां जा वासिल होए, हिक्क जागदयां ही मुट्ठे हू।[6]
की होया जे घुग्गू जागे, जो लैंदा साह अपुट्ठे हू।[7]
मैं क़ुरबान तिन्हां तों बाहू जिन्हां खूह प्रेम दे जुत्ते हू।

हस्सण दे के रोवण लयोई, दित्ता किस दिलासा हू।[8]
उमर बंदे दी ऐवें गई, ज्यों पाणी विच पतासा हू।
सौड़ी सामी सुट्ट घतेसन, पलट न सकसें पासा हू।[9]
साहिब लेखा मंगसी बाहू, रत्ती घट्ट न मासा हू।

होर दवा ना दिल दी कारी, कलमा दिल दी कारी हू।
कलमा दूर ज़ंगार करेंदा, कलमे मैल उतारी हू।
कलमा हीरे, लाल, जवाहर, कलमा हट्ट पसारी हू।
एथे ओथे दोहीं जहानीं, कलमा दौलत सारी हू।

---

1. **जंगम**=भ्रमण करने वाले; **चिला**= चालीस दिन का तप। 2. **तस्बा**=लम्बी, माला। 3. **हयाती**=जीवन। 4. **लधोसे**=ढूँढ़ लेगा, पा लेगा। 5. **क़ुरबाती**=दूरी। 6. **वासिल होए**=विसाल हो गया, मिलाप हो गया; **मुट्ठे**=लुट गये। 7. **लैंदा**=लेता है; **साह**=स्वाँस; **अपुट्ठे**=उलटे। 8. **लयोई**=ले लिया। 9. **सौड़ी...घतेसन**=तंग क़ब्र में दफ़न कर देंगे।

बानी सूरदास जी

[1]

करम गति टारैउ नाहिं टरै॥
कहँ वै राहु, कहाँ वै रबि ससि, आनि संजोग परै॥
गुरु वसिष्ठ पंडित मुनि ज्ञानी, रुचि रुचि लगन धरै॥
तात मरन, सिया हरन राम बन, बिपति में बिपति परे॥
पंडों के प्रभु बड़े सारथी, सोऊ बन निकरे॥
दुरबासा से स्राप दिवायौ, जदु कुल नास करे॥
रावन अस तैंतीस कोटि सब, एक छत राज करे॥
मिरतक बाँधि कूप में डारे, भावी सोच मरे॥
हरीचन्द ऐसे भये राजा, डोम घर पानी भरे॥
भारत में भरुही के अंडा, घंटा टूटि परे॥
तीनि लोक करमन के बस में, जो जो जनम धरे॥
दस औतार भावी के बस में, सूर सुरति उबरे॥

— वाणी सूरदास जी, पृ. 438

[2]

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजति है परत भजनमें भंग॥
कहा होत पय पान कराये, बिष नहिं तजत भुजंग।[1]
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गंग॥
खरको कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।[2]

---

1. **पय**=दूध; **भुजंग**=साँप। 2. **खरको**=गधा; **अरगजा**=एक सुगंधित लेप जो चन्दन, केसर आदि को मिलाकर तैयार किया जाता है।

गजको कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छंग॥[1]
पाहन पतित बाँस नहिं बेधत, रीतो करत निषंग।[2]
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥

— भजन संग्रह, पृ. 51

[3]

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन-तरुवरके सबै पात झरि जैहैं॥
घरके कहिहैं बेगहिं काढ़ो, भूत भये कोउ खैहैं।[3]
जा प्रीतमसों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥
कहँ वह ताल कहाँ वह शोभा, देखत धूरि उड़ैहैं।[4]
भाई बन्धू कुटुँब कबीला, सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं॥
बिना गुपाल कोऊ नहिं अपनों, जस कीरति रहि जैहैं।
सो तो सूर दुर्लभ देवनको, सत-संगति महँ पैहैं॥

— भजन संग्रह, पृ. 53-54

[4]

तुम गोपाल मोसों बहुत करी।
नर देही दीनी सुमिरनको मो पापीते कछु न सरी॥
गरभ-बास अति त्रास अधोमुख तहाँ न मेरो सुधि बिसरी।[5]
पावक जठर जरन नहिं दीनों कंचन-सी मेरी देह करी॥[6]
जगमें जनमि पाप बहु कीने आदि-अंत लौ सब बिगरी।
सूर पतित तुम पतित उधारन अपने बिरदकी लाज धरी॥

— भजन-संग्रह, पृ. 47

---

1. **खहि**=धूल; **छंग**=अंग, शरीर। 2. **निषंग**=तरकस। 3. **बेगहिं**=शीघ्र ही, तुरन्त। 4. **कहँ...उड़ैहैं**=वह (कमल से सुशोभित) तालाब जिसमें भँवरे गुँजार करते थे, अब कहाँ हैं? देखते ही देखते उस सूखे तलाब में धूलि उड़ रही है। 5. **अधोमुख**=उलटे मुख। 6. **पावक**=आग; **कंचन**=सोना।

[5]

तुम मोरी राखो लाज हरि॥
तुम जानत सब अन्तरजामी, करनी कछु न करी॥
औगुन मो से बिसरत नाहीं, पल छिन घरी घरी॥
सब प्रपंच की पोट बाँध करि, अपने सीस धरी॥
दारा सुत धन मोह लिये हौं, सुध बुध सब बिसरी॥
सूर पतित को बेग उधारो, अब मेरी नाव भरी॥

— संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. 54

[6]

नाथ मोहि अबकी बेर उबारो॥
तुम नाथन के नाथ सुवामी, दाता नाम तिहारो॥
करमहीन जनम को अंधो, मो तें कौन नकारो॥
तीन लोक के तुम प्रति पालक, मैं तो दास तिहारो॥
तारी जाति कुजाति प्रभू जी, मो पर किरपा धारो॥
पतितन में इक नायक कहिये, नीचन में सरदारो॥
कोटि पापी इक पासँग मेरे, अजामिल कौन बिचारो॥
नाठो धरम नाम सुनि मेरो, नरक कियो हठ तारो॥[1]
मो को ठौर नहीं अब कोऊ, अपनो बिरद सम्हारो॥
छुद्र पतित तुम तारे रमापति, अब न करो जिय गारो॥
सूरदास साचो तब माने, जो ह्वै मम निस्तारो॥

— संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. 56-57

1. **नाठो**=भाग गया।

[7]

प्रभु जी मेरे औगुन चित न धरो॥
सम दरसी है नाम तिहारो, अब मोहिं पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरो॥
जब दोनों मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो॥
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै, कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम जाल निवारो, सूरदास सगरो॥
अब की बेर मोहिं पार उतारो, नहिं प्रन जात टरो॥

— संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. 54-55

[8]

मुरली धुनि गाजा, सूर सुरति सर साजा॥
निरखत कंवल नैन नभ ऊपर, सब्द अनाहद बाजा॥
सुनि धुनि मैल मुकर मन माँजा, पाया अमी रस झांझा॥
सूरति संध सोध सत काजा, लखि लखि सब्द समाजा॥
घट घट कुंज पुंज जहँ छाजा, पिंड ब्रह्मंड बिराजा॥
फोड़ अकास अललपछ भाजा, उलटि के आप समाजा॥
ऐसे सुरति निरखि निःअच्छर, कोटि कृष्न तहँ लाजा॥
सूरदास सार लखि पाया, लखि लखि अलख अकाया॥
सतगुरु गगन गली घर पाया, सिंध में बुन्द समाया॥

— घट रामायण, भाग 2, पृ. 10

[9]

मो सम कौन कुटिल खल कामी॥
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो, ऐसा निमक-हरामी॥
भरि भरि उदर बिषय को धावों, जैसे सूकर ग्रामी॥
हरिजन छाड़ हरि-बिमुखन की, निसि दिन करत गुलामी॥
पापी कौन बड़ो है मो तें, सब पतितन में नामी॥
सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी॥

— संतबानी संग्रह, भाग 2, पृ. 58

[10]

रे मन मूरख जनम गँवायो।
कर अभिमान बिषयसों राच्यों, नाम सरन नहिं आयो॥[1]
यह संसार फूल सेमरको सुंदर देखि लुभायो।
चाखन लाग्यो रूई उड़ि गइ, हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अबके मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो।
सूरदास हरि नाम-भजन बिनु सिर धुनि-धुनि पछितायो॥

— भजन-संग्रह, पृ. 53

1. **बिषयसों राच्यों**=विषयों में लिप्त है।

सन्दर्भ-सूची : सन्त-मार्ग

1. आदि ग्रन्थ, पृ. 1379
2. आदि ग्रन्थ, पृ. 871
3. रत्न सागर, पृ. 82
4. मानस 7:116(ख):1
5. आदि ग्रन्थ, पृ. 1153
6. प्राप्त नहीं
7. मानस 2:218:2
8. आदि ग्रन्थ, पृ. 433
9. आदि ग्रन्थ, पृ. 134
10. गैलेतियन्ज़ 6:7
11. सारबचन 19:2:5
12. सहजो बाई की बानी, पृ. 20
13. आदि ग्रन्थ, पृ. 954
14. मानस 1:22:4
15. मैथ्यू 10:34:35
16. कबीर शब्दावली, भाग 2, पृ. 12
17. सारबचन 19:18:1
18. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
19. आदि ग्रन्थ, पृ. 425
20. मसनवी मौलाना रूम, दफ़्तर 1, पृ. 125
21. आदि ग्रन्थ, पृ. 133
22. सहजो बाई की बानी, पृ. 15
23. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 34
24. संत-बानी संग्रह, भाग 1, पृ. 213
25. आदि ग्रन्थ, पृ. 954
26. आदि ग्रन्थ, पृ. 417
27. आदि ग्रन्थ, पृ. 330
28. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
29. भीखा साहिब की बानी
30. गुलिस्ताँ, पृ. 42
31. आदि ग्रन्थ, पृ. 611
32. आदि ग्रन्थ, पृ. 2
33. आदि ग्रन्थ, पृ. 1045
34. आदि ग्रन्थ, पृ. 1
35. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
36. आदि ग्रन्थ, पृ. 468
37. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
38. आदि ग्रन्थ, पृ. 1346
39. प्राप्त नहीं
40. प्राप्त नहीं
41. संत-बानी संग्रह, भाग 1, पृ. 218
42. संत-बानी संग्रह, भाग 1, पृ. 210
43. पलटू बानी, भाग 1, कुण्डली 218
44. आदि ग्रन्थ, पृ. 426
45. आदि ग्रन्थ, पृ. 1155-56
46. आदि ग्रन्थ, पृ. 38
47. आदि ग्रन्थ, पृ. 1413
48. आदि ग्रन्थ, पृ. 102
49. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
50. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
51. आदि ग्रन्थ, पृ. 754

52-53. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 106
54. संत-बानी संग्रह, भाग 1, पृ. 137-138
55. तुलसी साहिब
56. ल्यूक 17:21
57. पलटू बानी, भाग 1, कुण्डली 93
58. आदि ग्रन्थ, पृ. 116
59. दादू बानी, भाग 1, पृ. 228-29
60. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
61. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 225
62. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 165
63. तुलसी साहिब
64. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 407
65. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 196
66. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 69
67. कोरिन्थियन्ज़ 6:16
68. आदि ग्रन्थ, पृ. 1346
69. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 44
70. आदि ग्रन्थ, पृ. 425
71. आदि ग्रन्थ, पृ. 1349
72. प्राप्त नहीं
73. आदि ग्रन्थ, पृ. 205
74-75. आदि ग्रन्थ, पृ. 466
76. आदि ग्रन्थ, पृ. 1009-1010
77. आदि ग्रन्थ, पृ. 123
78. सन्त संग्रह, भाग 1, पृ. 71
79. मैथ्यू 19:24
80. फ़क़ीर मुहम्मद, कुल्लियात, पृ. 126
81. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 48
82. मैथ्यू 10:36
83. मैथ्यू 12:50
84. आदि ग्रन्थ, पृ. 6
85. प्राप्त नहीं
86. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
87. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 2
88. सारबचन 24:1:62
89. चरनदास की बानी भाग 1, पृ. 16
90-91. आदि ग्रन्थ, पृ. 641
92. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 404
93. सारबचन 9:9:1-9
94. सारबचन 15:19:1-10
95. सारबचन 19:2:7-11
96. आदि ग्रन्थ, पृ. 116
97. आदि ग्रन्थ, पृ. 1009
98. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
99. सारबचन 20:10:10
100-101. प्राप्त नहीं
102. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
103. सारबचन 10:1:1-4
104. मार्क 8:18
105. आदि ग्रन्थ, पृ. 139
106. प्राप्त नहीं
107. आदि ग्रन्थ, पृ. 117
108. आदि ग्रन्थ, पृ. 284
109. आदि ग्रन्थ, पृ. 753
110. जॉन 1:1:3
111. जन्म साखी, पृ. 19
112. दीवाने-नयाज़ बरेलवी, पृ. 91
113. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
114. आदि ग्रन्थ, पृ. 601
115. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
116. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
117. जॉन 8:31-32
118. जॉन 4:24
119. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 84

120. दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 5
121. आदि ग्रन्थ, पृ. 1324
122. सारबचन 9:5:13
123. जॉन 15:3
124. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 86
125. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
126. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
127. आदि ग्रन्थ, पृ. 1076
128. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
129. आदि ग्रन्थ, पृ. 1208
130. सारबचन 19:2:1
131. जॉन 12:45
132. आदि ग्रन्थ, पृ. 1365
133. आदि ग्रन्थ, पृ. 730
134. कोरिन्थियन्ज़ 15:31
135. हदीस
136. दादू बानी,भाग 1, पृ. 191
137. आदि ग्रन्थ, पृ. 116
138. दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी, पृ. 1
139. आदि ग्रन्थ, पृ. 639
140. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
141. मैथ्यू 7:7
142. तुलसी साहिब
143. आदि ग्रन्थ, पृ. 110
144. आदि ग्रन्थ, पृ. 123
145. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 112
146. पलटू बानी भाग 1, कुण्डली 169
147. सारबचन 19:18:11
148. मैथ्यू 6:22
149. आदि ग्रन्थ, पृ. 634
150. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
151. जॉन 9:39
152. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
153. आदि ग्रन्थ, पृ. 115
154. आदि ग्रन्थ, पृ. 58
155. सारबचन 19:2:2
156. सारबचन 14:12:14-15
157. आदि ग्रन्थ, पृ. 467
158. संत-बानी संग्रह भाग 1, पृ. 215
159. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 167
160. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 201
161. मैथ्यू 11:25
162. आदि ग्रन्थ, पृ. 893
163. आदि ग्रन्थ, पृ. 124
164. आदि ग्रन्थ, पृ. 205
165. आदि ग्रन्थ, पृ. 1057
166. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
167-168. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
169. आदि ग्रन्थ, पृ. 1326
170. आदि ग्रन्थ, पृ. 495
171. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
172. मैथ्यू 11:28
173. जॉन 14:6:7
174. जॉन 12:45
175. जॉन 8:12
176-77. संत-बानी संग्रह, भाग 1, पृ. 214
178. सारबचन 15:5:5-7
179. सारबचन 20:10:7-8
180. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 15
181. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 62
182. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 15
183. आदि ग्रन्थ, पृ. 1030
184. आदि ग्रन्थ, पृ. 40

185. आदि ग्रन्थ, पृ. 589
186. आदि ग्रन्थ, पृ. 26
187. कुल्लियाते बुल्लेशाह, पृ. 408
188. कुल्लियाते, पृ. 326
189. आदि ग्रन्थ, पृ. 1323
190. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
191. आदि ग्रन्थ, पृ. 1324
192. आदि ग्रन्थ, पृ. 1323
193. आदि ग्रन्थ, पृ. 1179
194. आदि ग्रन्थ, पृ. 72
195. आदि ग्रन्थ, पृ. 1068
196. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 49
197. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 50
198. सारबचन 15:5:1-2
199. सारबचन 15:12:1-2
200. मसनवी मौलाना रूम I, पृ. 101
201. जॉन 10:30
202. जॉन 1:1
203. जॉन 1:14
204. ल्यूक 4:1
205. जॉन 16:28
206. जॉन 17:12
207. प्राप्त नहीं
208. आदि ग्रन्थ, पृ. 1076
209. आदि ग्रन्थ, पृ. 466
210. प्राप्त नहीं
211. आदि ग्रन्थ, पृ. 1024
212. आदि ग्रन्थ, पृ. 442
213. आदि ग्रन्थ, पृ. 864
214. मसनवी मौलाना रूम, I, पृ. 311
215. प्राप्त नहीं
216. कबीर समग्र, भाग 1, पृ. 470
217. जॉन 14:11
218. सारबचन 1:2:1
219. संत-बानी संग्रह भाग 2, पृ. 26
220. दीवाने-शम्स तब्रेज़, पृ. 136
221. आदि ग्रन्थ, पृ. 1291
222. सारबचन 20:10:3
223. जॉन 14:2
224. आदि ग्रन्थ, पृ. 1350
225. कबीर शब्दावली, भाग 1, पृ. 4
226. कुल्लीयाते शम्स तब्रेज़, पृ. 824
227. दीवाने-शम्स तब्रेज़, पृ. 138
228. दीवाने-शम्स तब्रेज़, पृ. 405
229. आदि ग्रन्थ, पृ. 917
230. आदि ग्रन्थ, पृ. 974
231. सारबचन 13:1:1-4
232. मैथ्यू 15:14
233. आदि ग्रन्थ, पृ. 1055
234. पलटू बानी, भाग 1, कुण्डली 5
235-236. आदि ग्रन्थ, पृ. 393
237. आदि ग्रन्थ, पृ. 236
238. प्राप्त नहीं
239. जॉन 14:9-10
240. सारबचन 9:5:7
241. जॉन 14:25:26
242. आदि ग्रन्थ, पृ. 943
243. जॉन 5:35
244. जॉन 9:4:5
245. आदि ग्रन्थ, पृ. 982
246. आदि ग्रन्थ, पृ. 394
247. आदि ग्रन्थ, पृ. 1030
248. जॉन 10:28
249. मैथ्यू 24:35
250. सारबचन 38:7:31
251. आदि ग्रन्थ, पृ. 915

252. आदि ग्रन्थ, पृ. 729
253. आदि ग्रन्थ, पृ. 1102
254. आदि ग्रन्थ, पृ. 698
255. आदि ग्रन्थ, पृ. 1348
256. आदि ग्रन्थ, पृ. 614
257. ल्यूक 11:28
258. जॉन 5:24
259. आदि ग्रन्थ, पृ. 1025
260. आदि ग्रन्थ, पृ. 79
261. आदि ग्रन्थ, पृ. 1245
262. मैथ्यू 10:8
263. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 17
264. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 139
265. सारबचन 16:1:43-44
266. आदि ग्रन्थ, पृ. 938
267. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
268. आदि ग्रन्थ, पृ. 1046
269. जॉन 3:3
270. आदि ग्रन्थ, पृ. 940
271. जॉन 15:3
272. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
273. आदि ग्रन्थ, पृ. 1153
274. आदि ग्रन्थ, पृ. 754
275. सारबचन 20:10:1-2
276. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
277. सारबचन 9:5:11-15
278. आदि ग्रन्थ, पृ. 62
279. आदि ग्रन्थ, पृ. 1010
280. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
281. सारबचन 38:3:11
282. आदि ग्रन्थ, पृ. 443
283. आदि ग्रन्थ, पृ. 230
284. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
285. सारबचन 15:10:5
286. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
287. प्राप्त नहीं
288. सारबचन 14:12:10-13
289. आदि ग्रन्थ, पृ. 123
290. मैथ्यू 12:32
291. आदि ग्रन्थ, पृ. 1365
292. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 84
293. आदि ग्रन्थ, पृ. 425
294. मैथ्यू 7:6
295. सारबचन 15:15:3
296. तुलसी साहिब
297. आदि ग्रन्थ, पृ. 425
298. पलटू बानी, भाग 1, कुण्डली 11
299. तुलसी साहिब
300. आदि ग्रन्थ, पृ. 2
301. प्राप्त नहीं
302. सारबचन 15:13:4-9
303. आदि ग्रन्थ, पृ. 525
304. आदि ग्रन्थ, पृ. 1211
305. सारबचन 18:8:1-2
306-307. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
308. जॉन 5:30
309. जॉन 5:19
310. प्राप्त नहीं
311. आदि ग्रन्थ, पृ. 1075
312. आदि ग्रन्थ, पृ. 176
313. प्राप्त नहीं
314. कुल्लियात-शम्स तब्रेज़, पृ. 507
315. जैनेसिज़ 1:27
316. आदि ग्रन्थ, पृ. 1366
317. सारबचन 15:13:1-3
318. आदि ग्रन्थ, पृ. 1010

319. सारबचन 15:12:7-8
320. कबीर साहिब
321. आदि ग्रन्थ, पृ. 417
322. जॉन 6:27
323. सारबचन 14:12:7
324. सारबचन 19:18:1-4
325. आदि ग्रन्थ, पृ. 1153
326. सारबचन 15:9:3-5
327. सारबचन 15:12:13
328. कबीर साखी, पृ. 256
329. सारबचन 15:15:1
330. मैथ्यू 5:3
331. मैथ्यू 5:5
332. मैथ्यू 18:4
333. मैथ्यू 18:3
334. सारबचन 15:15:2
335. आदि ग्रन्थ, पृ. 378
336. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 141
337. दादू बानी, भाग 1, पृ. 98
338. चरनदास की बानी, भाग 1, पृ. 31
339. आदि ग्रन्थ, पृ. 109ह्य
340. आदि ग्रन्थ, पृ. 910
341. आदि ग्रन्थ, पृ. 110
342. कबीर साखी-संग्रह, पृ. 103
343. जॉन 6:65
344. जॉन 6:44
345. आदि ग्रन्थ, पृ. 133
346. आदि ग्रन्थ, पृ. 134
347. जॉन 17:9
348. आदि ग्रन्थ, पृ. 119
349. आदि ग्रन्थ, पृ. 109
350. जॉन 15:16
351. जॉन 3:27
352. आदि ग्रन्थ, पृ. 125
353. जॉन 17:23
354. जॉन 4:14
355. जॉन 12:49
356. जॉन 7:16
357. जॉन 3:11
358. आदि ग्रन्थ, पृ. 894
359. आदि ग्रन्थ, पृ. 722
360. तुलसी साहिब, घट रामायण 2, पृ. 8
361. तुलसी साहिब, घट रामायण 1, पृ. 69

सन्दर्भ ग्रन्थ

आदि ग्रन्थ, भाग-1, अमृतसर: शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1999.

आदि ग्रन्थ, भाग-2, अमृतसर: शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी, 1999.

कबीर साखी संग्रह, भाग 1, 2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1996.

कबीर साहिब का रत्नसागर, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1997.

कबीर साहिब की शब्दावली, भाग-1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1998.

कबीर साहिब की शब्दावली, भाग-2,3 इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 2000.

कबीर साहिब की शब्दावली, भाग-4 इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1996.

घट रामायण, भाग-1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1979.

घट रामायण, भाग-2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1999.

चरनदास की बानी, भाग-1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1978.

चरनदास की बानी, भाग-2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1976.

तुलसीदास की दोहावली, गोरखपुर: गीता प्रेस, 1984.

तुलसी साहिब की शब्दावली, भाग-1,2 इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1997.

दयाबाई की बानी, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1976.

दरिया साहिब मारवाड़ वाले, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1973.

दरिया साहिब बिहार वाले, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1970.

दादू दयाल की बानी, भाग-1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1963.

दादू दयाल की बानी, भाग-2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1974.

धनी धर्मदास की शब्दावली, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1997.

पलटू साहिब की बानी, भाग-1, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1993.

पलटू साहिब की बानी, भाग-2, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिग वर्क्स, 1995.

पलटू साहिब की बानी, भाग-3, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1996.

भजन संग्रह, गोरखपुर: गीता प्रेस, सं० 2059.

भीखा साहिब की बानी, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1974.

मीरा बृहत्पदावली, भाग-1, जोधपुर: राजस्थान प्राच्याविद्या प्रतिष्ठान,1968.

मीरा बाई की शब्दावली, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 2000.

रामचरित मानस, गोरखपुर: गीता प्रेस, 1973.

सहजोबाई की बानी, इलाहाबाद: बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, 1977.

साईं बुल्लेशाह, ब्यास: साईं बुल्लेशाह, राधास्वामी सत्संग ब्यास, 2002.

सारबचन संग्रह, ब्यास: राधास्वामी सत्संग ब्यास, 2003.

स्वामी चरनदास, **भक्तिसागर,** लखनऊ: राजा रामकुमार प्रेस, 1951.

हज़रत सुलतान बाहू , ब्यास: राधास्वामी सत्संग ब्यास, 2002.

हमारे प्रकाशन

स्वामी जी महाराज

1. सारबचन संग्रह
2. सारबचन वार्तिक

बाबा जैमल सिंह जी महाराज

1. परमार्थी पत्र, भाग 1

महाराज सावन सिंह जी

1. परमार्थी पत्र, भाग 2
2. शब्द की महिमा के शब्द
3. प्रभात का प्रकाश
4. गुरुमत सिद्धान्त, भाग 1, 2
5. सन्तमत सिद्धान्त
6. सन्तमत प्रकाश, भाग 1 से 5
7. परमार्थी साखियाँ
8. गुरुमत सार

महाराज जगत सिंह जी

1. आत्म-ज्ञान
2. रूहानी फूल

महाराज चरन सिंह जी

1. सन्तों की बानी
2. सन्तमत दर्शन
3. सन्तमत दर्शन, भाग 2, 3
4. सन्त-संवाद
5. सन्त-वचन
6. सन्त-मार्ग
7. जीवत मरिए भवजल तरिए
8. पारस से पारस
9. सत्संग संग्रह, भाग 1 से 6

'पूर्व के सन्त' पुस्तक-माला के अन्तर्गत

1. सन्त नामदेव — जनक पुरी, वीरेन्द्र कुमार सेठी
2. सन्त कबीर — शान्ति सेठी
3. परम पारस गुरु रविदास — के. एन. उपाध्याय
4. गुरु नानक का रूहानी उपदेश — जनक पुरी
5. गुरु अर्जुन देव — महिन्दर सिंह जोशी
6. सन्त तुकाराम — चन्द्रावती राजवाडे
7. नाम-भक्ति : गोस्वामी तुलसीदास — के. एन. उपाध्याय, पंचानन उपाध्याय
8. मीरा : प्रेम-दीवानी — वीरेन्द्र कुमार सेठी
9. सन्त दादू दयाल — के. एन. उपाध्याय
10. सन्त पलटू — राजेन्द्र कुमार सेठी

11. सन्त चरनदास	टी. आर. शंगारी
12. सन्त दरिया (बिहार वाले)	के. एन. उपाध्याय
13. तुलसी साहिब	जनक पुरी, वीरेन्द्र कुमार सेठी
14. उपदेश राधास्वामी	सहगल, शंगारी, 'ख़ाक', भण्डारी
15. साईं बुल्लेशाह	जनक पुरी, टी. आर. शंगारी
16. हज़रत सुलतान बाहू	कृपाल सिंह 'ख़ाक'
17. सरमद शहीद	टी. आर. शंगारी, पी. एस. 'आलम'
18. बोलै शेख़ फ़रीद	टी. आर. शंगारी

सतगुरुओं के विषय में

1. रूहानी डायरी, भाग 1 से 3	राय साहिब मुंशीराम
2. धरती पर स्वर्ग	दरियाईलाल कपूर
3. अनमोल ख़ज़ाना	शान्ति सेठी
4. मेरा सतगुरु	जूलियन पी. जॉनसन

सन्तमत के सम्बन्ध में

1. नाम-सिद्धान्त	शंगारी, 'ख़ाक', भण्डारी, सहगल
2. सन्तमत विचार	टी. आर. शंगारी, कृपाल सिंह 'ख़ाक़'
3. सन्त-सन्देश	शान्ति सेठी
4. सन्त-समागम	दरियाई लाल कपूर
5. अमृत नाम	महिन्दर सिंह जोशी
6. अन्तर की आवाज़	सी. डब्लयू. सेंडर्स
7. मार्ग की खोज में	फ़्लोरा ई. वुड
8. रामचरितमानस का सन्देश	एस. एम. प्रसाद
9. हंसा हीरा मोती चुगना	टी. आर. शंगारी
10. जपुजी साहिब	टी. आर. शंगारी
11. हउ जीवा नाम धिआए	हेक्टर एस्पॉण्डा डबिन
12. हक़-हलाल की कमाई	टी. आर. शंगारी
13. जिज्ञासुओं के लिये	टी. आर. शंगारी
14. विनती और प्रार्थना के शब्द	संकलित
15. अमृत वचन	संकलित

अन्य प्रकाशन

1. भाई गुरदास	महिन्दर सिंह जोशी
2. किताब-ए-मीरदाद	मिखाइल नईमी

22/-